ग़ालिब के पत्र

लिप्यन्तरकार तथा सम्पादक

श्रीराम शर्म्मा

रामनिवास शम्म

१९५८

हिन्दुस्तानी एकेडेमी
उत्तर प्रदेश-इलाहाबाद

प्रकाशकीय

हिंदुस्तानी एकेडेमी, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद की ओर से सपादक-द्वय श्री राम शर्मा तथा श्री राम निवास शर्मा द्वारा लिप्यन्तरित एव सपादित "गालिब के पत्र" का प्रकाशन हर्ष का विषय है ।

एकेडेमी का निश्चय था कि भारतीय साहित्य के मूर्धन्य साहित्यिको के वैयक्तिक पत्रो का सग्रह कर उन्हे प्रकाशित किया जावे। निश्चय के अनुसार श्री बैजनाथ सिह "विनोद" द्वारा सकलित एव सपादित "द्विवेदी युग के साहित्यकारो के कुछ पत्र" को प्रकाशित किया गया। पत्र साहित्य को प्रस्तुत करने की दिशा मे "गालिब के पत्र" एक अगला कदम है । हिंदुस्तानी एकेडेमी द्वारा गालिब के कुछ पत्रो का सकलन एव प्रकाशन उर्दू मे "खुतूते गालिब" के नाम से पहले हो चुका था, परन्तु कालान्तर मे अनुभव किया गया कि देवनागरी लिपि में भी गालिब के पत्र प्रकाशित किए जावे। अत लिप्यन्तरकारो ने "खुतूते गालिब" की ही सामग्री को देवनागरी मे पाद-टिप्पणियो के साथ प्रस्तुत किया है। विश्वास है कि शर्मा बन्धु गालिब के अप्रकाशित पत्रो को भी इसी प्रकार प्रकाश मे लावेगे ।

हिंदुस्तानी एकेडेमी,
उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद.

धीरेन्द्र वर्मा,
मत्री तथा कोषाध्यक्ष,

भूमिका

मिर्जा असदुल्ला बेग 'गालिब' अपने आपको फारसी का कवि मानते रहे। कई शतियो तक हमारे देश मे हजारो परिवारो के लिए फारसी केवल शासन की भाषा ही नही थी। इन परिवारो ने उसे सास्कृतिक भाषा के रूप मे भी स्वीकार किया था। जो मुसलमान विदेशो से आए थे उन सबकी मातृभाषा फारसी नही थी। जो मुस्लिम राजवश दिल्ली की गद्दी पर बैठे उनमे से अधिकाश फारसी नही बोलते थे। फिर भी फारसी का प्रभाव दिन पर दिन बढता गया। जिन भारतीय परिवारो ने नई सभ्यता के प्रभाव को स्वीकार किया था उन्होने भी फारसी के सीखने-समझने मे कम परिश्रम नही किया। यह गौरव की बात थी कि भारत मे जन्म लेकर कुछ व्यक्तियो ने फारसी मे इतनी उत्कृष्ट कविता लिखी है कि उनकी गिनती ईरान मे उत्पन्न होने वाले फारसी के श्रेष्ठतम कवियों के साथ की जा सकती है। इन कवियो की परम्परा अमीर ख़ुसरो से प्रारम्भ होती है। गालिब भी इसी परम्परा के कवि थे।

गालिब की युवावस्था मे ही देश मे बडे-बडे परिवर्त्तन हो रहे थे। दिल्ली और लखनऊ के राजवश अपना प्रभाव खो चुके थे। जनता का बहुत बडा वर्ग साहित्य मे रुचि लेने लगा था। देश की वर्त्तमान भाषाएँ बडी तीव्र-गति से समुन्नत हो रही थी। गालिब के मित्रो ने यह सुझाव रखा था कि वे उर्दू मे भी लिखे, जिससे साधारण जनता उनकी रचनाओ से लाभ उठा सके। इस प्रकार के सुझाव के सम्बन्ध मे आरम्भ मे गालिब का विचार था—"मै उर्दू में अपना कमाल क्या जाहिर कर सकता हूँ। उसमे गुजायश इबारत आराई (अलकरण) की कहाँ है? बहुत होगा तो ये होगा के मेरा उर्दू बनिस्बत औरो के उर्दू के फसीह होगा। खैर, बहरहाल कुछ

करूँगा और उर्दू मे अपना जोरे कलम दिखाऊँगा।" ये विचार गालिव ने सन् १८५८ में मुशी शिवनारायण को लिखे गए पत्र मे व्यक्त किए थे। १८६४ तक भी गालिब सोचते रहे कि उन्हे उर्दू मे लिखना चाहिए या नही।···"उर्दू क्या लिखूँ···खर, हुई। अब मै कहानियाँ-किस्से कहाँ ढूँढता फिरूँ ? किताब नाम को मेरे पास नही। पिन्सन मिल जाए, हवास ठिकाने हो जायें तो कुछ फिक्र करूँ। पेट चढी रोटिया तो सभी गलाँ मोटियाँ।" लेकिन गालिब १८५७ के बाद शायद ही कभी पेट भर रोटी खा सके। और फिर उनकी अवस्था ऐसी नही रह गई थी कि वे व्यवस्थित रूप से उर्दू मे कोई बडी रचना कर पाते। धीरे-धीरे शरीर ने जवाब दे दिया था। गालिब उर्दू लिखने के लिए पूरी तरह प्रवृत्त न हो सके, फिर भी समय समय पर उन्होने उर्दू में बहुत सी कविताएँ लिखी। इन कविताओ का सकलन उनके जीवन-काल मे ही प्रकाशित हो गया था। गालिब ने देखा कि उनकी उर्दू कविताओ का भी उतना ही आदर हुआ जितना फारसी कविताओ का हुआ था। फारसी काव्य-सकलन और उर्दू-काव्यसकलन की प्रसिद्धि मे बहत बडा अन्तर था। फारसी-काव्यसकलन को जहा विद्वानो मे प्रसिद्धि प्राप्त हुई वहाँ उर्दू सकलन ने विद्वानो के साथ-साथ साधारण जनता का ध्यान भी आकर्पित किया।

गालिब से पहले उर्दू मे वडे-वडे कवियो ने कविता लिखी थी। फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना के पश्चात् उसका गद्य भी बहुत कुछ विकसित हो चुका था, किन्तु गालिव ने अनजाने ही उसे एक नया मोड दिया। वे एक युग प्रवर्त्तक के रूप मे उर्दू साहित्य मे स्थान प्राप्त करते है। गालिब फारसी कवियो की जिस परम्परा मे उत्पन्न हुए थे, वह परम्परा समास-बहुलभाषा और वर्णन-प्रधानशैली के प्रयोग की परम्परा थी। गालिव ने फारसी में इस परम्परा को निभाने का प्रयत्न भी किया किन्तु उन्होने अनुभव किया—उर्दू मे इस परम्परा की आवश्यकता नही। "उसमे गुजायश इवारत आराई की कहाँ है" इस अनुभूति ने गालिव की उर्दू-रचना मे एक नया कमाल पैदा

किया। इस कमाल को आगे चलकर गालिब पहचान गए थे। इसीलिए तो उन्होंने कहा—"है और भी दुनिया में सुखनवर बहुत अच्छे, कहते हैं के गालिब का है अन्दाजे बयाँ और।" यह 'अन्दाजे बयां और' क्या है ? गालिब ने उर्दू मे कृत्रिमता से बचने का भरसक प्रयत्न किया। यह बात हम भापा मे भी देखते है और भावो मे भी। उनका यह 'अन्दाज' उनके गद्य मे अधिक निखरा है।

गालिब ने इस अन्दाज को लेकर उर्दू मे कोई स्वतन्त्र पुस्तक नही लिखी। सभवत वे कोई कहानी लिखने की बात सोचते रहे हो। उनके गद्य का स्वरूप उनके पत्रो मे देखा जा सकता है। ये पत्र एक समय मे एक व्यक्ति को नही लिखे गए। उन्नीसवी शती के पाँचवे दशक से गालिब हिन्दी मे (गालिब अपनी मृत्यु से कुछ दिन पहले तक उर्दू के लिए हिन्दी शब्द का ही प्रयोग करते रहे) पत्र लिखने लगे। इससे पहले वे फारसी मे ही पत्र लिखा करते थे। सम्भवत. उनका अन्तिम पत्र सन् १८६८ का है। गदर के बाद उन्होंने फ़ारसी लिखना बहुत कम कर दिया था।

गालिब फारसी के कवि थे। फारसी भाषा पर उनका आश्चर्यजनक अधिकार था। अपने समय मे वे फारसी के श्रेष्ठतम कवि थे और भापा ज्ञान तथा काव्य-शास्त्र की दृष्टि से बहुत बडे आचार्य थे। उनका जीवन दिल्ली के अन्तिम मुगल सम्राट् और बडे बडे सामन्तो के साथ व्यतीत हुआ था। उस समय के पढे लिखे लोगो के मनोभावो का प्रभाव भी गालिब पर कम नही था, किन्तु इतना सब होते हुए भी उन्होने जब उर्दू मे लिखना शुरू किया तो एक साथ ही समूची परम्परा समाप्त हो गई। उन्होने एक नई शैली को जन्म दिया। गालिब इस नई शैली मे इतने निष्णात् थे कि अनेक व्यक्तियो ने इस शैली को अपनाया किन्तु वे गालिब का अनुकरण नही कर सके।

गालिब के पत्र हिन्दी और उर्दू की मिली-जुली सम्पत्ति है। हमारे देश की भापाओ मे पत्र-साहित्य की बडी कमी है। गालिब के ये पत्र एक अश मे इस कमी को पूरा करते हैं। गालिब ने पत्र लिखते समय नए प्रभावो को स्वीकार किया है। पुराने जमाने मे "सिद्ध श्री सर्वोपमान, सकल गुण निधान,

विराजमान" आदि का लम्बा चौड़ा सम्बोधन लिखकर "यहाँ सब सकुशल हैं, आपकी कुशलता श्री परमात्मा से चाहते हैं" मे ही पत्र का दो तिहाई अश चला जाता था। उर्दू मे भी इसी प्रकार की रूढि का पालन किया जाता था। हम गालिब के किसी भी पत्र मे इस प्रकार का शिष्टाचार नही देखते। वे इस रूढि पर यथास्थान अच्छा व्यग कसते हे। एक मित्र को पत्र लिखते समय उन्होने लिखा था—"तुम मेरे हमउम्र नही जो सलाम लिखूँ। मै फकीर नही जो दुआ लिखूँ। तुम्हारा दिमाग चल गया है, लिफाफे को करेदा करो। मसविदे के कागज को बराबर देखा करो, पाओगे क्या? याने तुमको वो मुहम्मदशाही रविशे पसन्द हैं, यहाँ खैरियत है, वहाँ की आफियत (कुशलता) मतलूब (अभीष्ट) है। खत तुम्हारा बहुत दिन के बाद पहुँचा। जी खुश हुआ।··हमेशा इसी तरह खत भेजते रहो। क्यो, सच कहिए। अगले के खुतूत (पत्र) की तहरीर (लेखन) की यही तर्ज थी या और? हाय क्या अच्छा शेवा (ढग) है। जब तक यो न लिखो वो खत ही नही है··अगर तुम्हारी खुश-नूदी (प्रसन्नता) उसी तरह की निगारिश (लेखन) पर मुन्हसिर (आधारित) है तो भाई साढ़े तीन सतरे वैसी भी मैने लिख दी।"

प्राचीन रूढि का पालन करते हुए जो पत्र लिखा जाता था उन्हे गालिब पसंद नही करते थे, "····क्या खत लिखा है! इस खुराफात के लिखने का फायदा, बात इतनी ही है के मेरा पलग मुझको मिला। मेरा बिछौना मुझको मिला। मेरा हमाम मुझको मिला···"

गालिब के ये पत्र शैली और भाव की दृष्टि से इतने उच्चकोटि के क्यो है? ऐसे कौन-से तत्व हैं जिन्होने गालिब को पत्र-साहित्य मे उच्च स्थान प्रदान किया है? इन प्रश्नो का उत्तर उस समय मिलता है जब हम इस बात पर ध्यान देते है कि गालिब ने किस उद्देश्य से प्रेरित होकर ये पत्र लिखे हैं। उन्होने अपने पत्र अपनी विद्वत्ता के प्रदर्शन के लिए नही लिखे। वास्तव में यह साधन एक बडे उद्देश्य की पूर्त्ति के लिए स्वीकार किया गया था—"मैंने

वो अन्दाजे तहरीर (लिखने का ढग) ईजाद किया है (निकाला है) के मुरासिले (पत्र) को मुकालिमा (बातचीत) बना दिया है। हजार कोस से बजबानें कलम (लेखनी की जिह्वा) से बाते किया करो। हिज्र (वियोग) मे विसाल (मिलन) के मज़े लिया करो।" जब पत्र-लेखक का उद्देश्य इतना ऊँचा हो तो कृत्रिमता को कहाँ स्थान मिल सकता था। सरनामे से लेकर अन्त तक उन्होने कृत्रिमता से बचनें का प्रयत्न किया है।

जैसा कि ऊपर बताया गया है, ये पत्र एक समय मे नही लिखें गए। पत्र प्राप्त करने वालो की योग्यता भी एक जैसी नही है। जिन लोगो को पत्र लिखे गए है, उनमे से अधिकांश व्यक्ति साहित्यिक है, किन्तु उनकी रुचियो मे समानता नही है, उनकी सामाजिक और आर्थिक स्थिति भी भिन्न है और उन लोगो के साथ ग़ालिब का सम्बन्ध भी एक जैसा नही है। गालिब जिन लोगो से बहुत स्नेह करते है, उनके पत्र के लिए तरसते है, किन्तु जिन लोगो से वे अधिक सम्बन्ध नही रखते उनका पत्र पाकर उन्हे प्रसन्नता नही होती। क़ाजी अब्दुल जमील को (१८५५ ई० मे) पत्र लिखते समय उन्होने लिखा था—"जवाब लिखने मे जो मेरी तरफ से कुसूर वाके होता है, उसके दो सबब है। एक तो ये के हज़रत महीना भर में नौ पते लिखते है, मैं कहाँ तक याद रखूँ। दूसरा सबब ये के शौकिया खुतूत का जवाब कहाँ तक लिखूँ और क्या लिखूँ? मैंने आईने नामानिगार (पत्र लेखन का विधान) छोड़कर मतलब नवीसी पर मदार (आधार) रखा है। जब मतलब जरूरी उल तहरीर (लिखने की आवश्यकता) न हो तो क्या लिखूँ?" किन्तु अपने प्रिय-जन अथवा समान रुचि रखने वाले व्यक्ति से पत्र मिलते ही लिखते "खत आया, मुझको बाते करने का मजा मिला।" अपने प्रिय-जन का पत्र पाते ही तुरन्त उत्तर लिखते। कई स्थानो पर ऐसा प्रतीत होता है जैसे गालिब पत्र लिखने के लिए अवसर की राह देख रहे हैं। गालिब को पत्र लिखने का चसका था। वे जिस तरह अच्छा पत्र लिखते थे, उसी तरह अच्छा पत्र पाना भी चाहते थे।

कई बार वे शोक के अथाह सागर मे डूबे होते थे कि प्रिय-जन का पत्र पाते ही सारा दु ख न जाने कहाँ चला जाता था । पत्र पाते ही उन्हे इस प्रकार की प्रसन्नता होती थी--"अगर आज मेरे सब दोस्त व अजीज यहाँ फराहम होते और हम और वो वाहम होते तो मै कहता के आओ और रस्मे तहनियत (वधाई की रस्म) वजा लाओ । खुदा ने फिर वो दिन दिखाया के डाक का हरकारा अनवरद्दौला का खत लाया ।" कई बार लिफाफे के लिए पैसे न रहते। टिकट खरीदना गालिब के लिए सभव न होता, फिर भी वे पत्र लिखते थ। पत्र लिखने से उनकी आत्मा को अपूर्व सन्तोष मिलता था, इसीलिए वे अपने मित्रो को बैरग पत्र भी भेजते थे और इस सन्तोप से वचित होना नही चाहते थे।

गालिव के पत्रो मे एक विशेपता यह है कि प्राय' सभी पत्र अपने मे एक सजीव वातावरण रखते हैं। लेखक ने अपने युग को, अपने स्थान और समय को जैसे शब्दो मे अकित कर दिया है "· ·सुवह का वक़्त है। जाडा खूब पड रहा है। अँगीठी सामने रखी हुई है। दो हर्फ लिखता हूँ, आग तापता जाता हूँ।" जो पत्र प्राप्त करता है वह अनुभव करता है जैसे पत्र लेखक सामने बैठा हुआ बाते कर रहा है। किसी पत्र की उत्कृष्टता के लिए यही सब से बड़ा गुण है। इस पत्र मे लेखक की भावना कितने अच्छे ढग से व्यक्त हुई है--" लो भाई, अब तुम चाहो बैठे रहो चाहे जाओ अपने घर। मै तो रोटी खाने जाता हूँ। अन्दर-वाहर सब रोज़ेदार हैं। यहाँ तक के वडा लड़का वाकरअलीखाँ भी। सिर्फ एक मै और एक मेरा प्यारा बेटा हुसेनखाँ ये हम रोजाखार हैं। वही हुसेनअलीखाँ जिसका रोज़मर्रा है, "खिलौने मँगा दो, मै भी वाजार जाऊँगा।"

१८५७ का प्रथम भारतीय स्वतन्त्रता सग्राम गालिव ने अपनी आँखो से देखा था। सन् १८५७ से सन् १८६२ तक दिल्ली पर न जाने क्या क्या विपत्तियाँ आई। गालिव के अधिकाश मित्र और सम्बन्धी या तो लडते हुए मारे गए या फाँसी पर लटका दिए गए। यह ऐसा परिवर्त्तन था, इतना वड़ा आघात

था कि उसे सहकर अपनी बुद्धि को सन्तुलित रख सकना किसी के लिए भी सभव न होता। गालिब दिल्ली से वेहद प्यार करते थे। उन्होने अपने जीवन के सान्ध्यकाल मे देखा—उस दिल्ली की बडी-बडी इमारते ढाई जा रही है, दिल्ली के साहित्यिको का समाज तितर-वितर हो गया। ऐसी स्थिति मे गालिव यदि अपने आपको जीवित अवस्था मे भी मृत मानते थे तो उनके कथन मे किसी प्रकार का सन्देह नही किया जा सकता। भारतीय इतिहास की यह अत्यन्त करुणाजनक घटना गालिब के वहुत से पत्रो मे चित्रित हुई है। अति-वर्षा, वृद्धावस्था, रुग्णता, मृत्यु आदि के सम्बन्ध मे जहाँ कही गालिब ने लिखा है, ऐसा प्रतीत होता है जैसे उनका व्यथित हृदय निरावरण हो हमारे सामने अपनी विह्वलता प्रकट कर रहा है।

इन पत्रो मे कही वे समकालीन परिस्थिति का चित्रण करते है, कही किसी दु खी व्यक्ति के प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट करते है। कही भाषा, व्याकरण और साहित्य शास्त्र सम्बन्धी गभीर चर्चा मे निमग्न दिखाई देते है, कही अपने पारिवारिक जीवन का चित्रण उपस्थित करते है। कही पर ये पत्र धार्मिक सिद्धान्तो का प्रतिपादन करते है और कही व्यावहारिक समस्याओं के सम्बन्ध मे अनुभव प्रकट करते है।

गालिव उच्चकोटि के कवि होने के साथ-साथ एक अनोखा व्यक्तित्व रखते थे। उनका व्यक्तित्व जैसे प्रत्येक पत्र मे मुखरित होता है। उनकी निरपेक्षता, मृत्यु के प्रति निश्चिन्तता, आर्थिक कठिनाइयो मे रहते हुए भी उनके हृदय की उदारता इन सब बातो से हम अनायास परिचित हो जाते है।

विषय की विविधता की तरह पत्र लिखने का ढग भी बदलता जाता है। एक पत्र एक ढग से लिखा गया है तो दूसरा पत्र दूसरे ढंग से। एक पत्र प्रारंभ होता है—"अहा, हा हा! मेरा प्यारा मीर मेहदी आया। आओ भाई, मिजाज तो अच्छा है? वैठो। ये रामपूर है···!" दूसरा पत्र प्रारम्भ होता है—"आओ साहब, मेरे पास वैठ जाओ।" एक जगह प्रारम्भ इस प्रकार है—

"कोई है ? जरा यूसुफ मिर्ज़ा को बुलाइयो। लो साहब वो आए। मियाँ, मैंने कल खत तुमको भेजा है मगर···।"

जो पत्र कविता के सशोधन से सम्बन्धित हैं, उन्हे छोडकर सभी पत्रो में समान भाषा प्रयुक्त हुई है। यह भाषा अत्यन्त सरल और स्वाभाविक है–"जो ज़बान पर आए वह कलम लिखे" इस बात का पालन गालिब ने अक्षरश किया है। दिल्ली की ठेठ खडी बोली गालिब के इन पत्रो मे देखने को मिलती है। जहाँ कही फारसी के समासित शब्दो का प्रयोग हुआ है, उन अशो को यदि न भी समझा जाए तब भी पत्र के भावार्थ के समझने मे कोई कठिनाई नही हो सकती।

ये पत्र पूरी तरह व्यक्तिगत थे। गालिब इस बात की कल्पना भी नहीं करते थे कि य पत्र किसी समय प्रकाशित होगे। इन पत्रो को वे अपनी स्थिति के अनुरूप भी नही मानते थे। सब से पहले मु शी हरगोपाल तफ्ता ने गालिब से आग्रह किया था कि इन पत्रो को छपवा दिया जाए। गालिब ने इन पत्रो की छपाई का निषेध करते हुए लिखा था—"रुक्क़ात (पत्र) के छापे जाने मे हमारी खुशी नही है। लडको की-सी ज़िद न करो, और अगर तुम्हारी इसी मे खुशी है तो साहब मुझसे न पूछो।" (सन् १८५८ ई०)। सन् १८५८ में ही मु शी शिवनारायण को जो पत्र गालिब ने लिखा था, उसमे भी यही भाव प्रकट किया गया है—"उर्दू के खुतूत जो आप छापा चाहते हैं, ये भी जायद बात है। कोई रुक्का ऐसा होगा जो मैंने कलम सभाल कर और दिल लगा कर लिखा होगा, वर्ना सिर्फ तहरीर सरसरी है। उसकी शोहरत मेरी सुखन-वरी के शुकूह (शान) के मनाफ़ी (विरुद्ध) है। इससे कतै नजर (इस बात को ध्यान मे न रखा जाए तब भी), क्या जरूर है के हमारे आपस के मामलात औरो पर ज़ाहिर हो।"

गालिब जिन कारणो से अपने पत्रो को प्रकाश मे नही लाना चाहते थे, उन्ही कारणो ने इन पत्रो को महत्व प्रदान किया। अपने अन्तिम दिनो में

गालिब ने इन पत्रो के महत्व को समझ लिया था। उनके जीवन-काल मे ही 'ऊदे हिन्दी' नाम से गालिब के पत्रो का एक सकलन छपा। 'ऊदे हिन्दी' मे छापे की बहुत-सी गलितयाँ रह गईं थी। गालिब इस संकलन से प्रसन्न नही हुए। उनकी सम्मति से एक प्रामाणिक सकलन तैयार किया गया 'जो उर्दू ए मुअल्ला' के नाम से उनकी मृत्यु के कुछ दिन बाद ही प्रकाशित हुआ। 'उर्दू ए मुअल्ला' मे प्रत्येक पत्र के साथ लेखन-तिथि दी गई और छपाई मे सावधानी बरती गई। रामपुर से सम्बन्धित गालिब के सभी पत्रो का सकलन 'मकातिबे गालिब' नाम से छपा। स्वर्गीय मौलवी महेश प्रसाद ने इन सकलनो के आधार पर और व्यक्तिगत पत्रो के अध्ययन के पश्चात् गालिब के पत्रो का संकलन 'खुतूते गालिब' के नाम से सम्पादित किया। इस सकलन का प्रथम भाग 'हिन्दुस्तानी एकेडेमी' की ओर से छपा। मौलवी महेश प्रसाद जी ने इन पत्रो को इतने अच्छे ढंग से सम्पादित किया है कि कम से कम जो पत्र प्रकाश मे आ चुके हैं, उनके सम्बन्ध मे किसी प्रकार का भ्रम नही रह गया। विराम चिह्नो तक पर विशेष ध्यान दिया गया है। अभी हाल मे पाकिस्तान से भी गालिब के पत्रो का एक सकलन 'खुतूते गालिब' के नाम से दो खडो मे छपा है। इस सकलन मे कुछ नई सामग्री प्रकाश मे आई है—कुछ दिन हुए पाकिस्तान से आफाक हुसेन 'आफाक' के 'नादिराते गालिब' नाम से गालिब के ७४ महत्वपूर्ण किन्तु अब तक ३ प्रकाशित पत्रो का सकलन छपा है।

इन पत्रो का महत्व केवल उर्दू के लिए ही नही है। हिन्दी-गद्य के लिए भी इन पत्रो का उतना ही महत्व है। सौ वर्ष पहले हिन्दी-गद्य का इतना परिमार्जित रूप अन्यत्र देखने को नही मिल सकता। खड़ी-बोली के विकास को समझने मे ये पत्र अत्यन्त सहायक सिद्ध होगे। खड़ी बोली की जो परम्रपा विकसित हुई हैं, गालिब के पत्रो की भाषा उसी परम्परा की कड़ी है।

गालिब के पत्रो का यह हिन्दी-रूपान्तर मौलवी महेश प्रसाद जी द्वारा सम्पादित सकलन के आधार पर किया गया है। अत. इस संकलन मे जो अच्छाइयाँ है उन सब का श्रेय स्वर्गीय मौलवी साहब को है। हम लोगो को

प्रामाणिक सामग्री अनायास ही .प्राप्त हो गई। ऐसे शब्दो का अर्थ दे दिया गया है, जो हिन्दी भाषियो के लिए अपरिचित है। गालिब ने स्थान-स्थान पर अपनी तथा अन्य कवियो की फारसी कविता उद्‌वृत की है। इस प्रकार के सभी उद्धरणो का हिन्दी मे अर्थ दिया गया है। निस्सन्देह यह सकलन हिन्दी मे पत्र-साहित्य की कमी को दूर करने मे सहायक सिद्ध होगा।

इस सकलन मे फारसी और अरबी के उद्धरणो के अतिरिक्त सर्वत्र शब्दो को उच्चारण के अनुसार लिखा गया है। हिन्दी के शब्दो का भी वही रूप दिया गया है जो उर्दू मे बोला जाता है। उदाहरण के लिए हिन्दी का 'कि' उर्दू मे 'के' के समान उच्चरित होता है। 'के' के लघुत्व को सूचित करने वाला कोई चिह्न नही है, अत 'के' ही लिखा गया है। कुछ स्थलो पर फारसी के षष्ठ तत्पुरुष का सूचक एकार और द्वन्द्व समास का 'व' अथवा ओकार नही दिया गया है।

मौलवी महेश प्रसाद ने गालिब के पत्रो का जो सकलन तैयार किया था उसका प्रथम खड ही हिन्दुतानी एकेडेमी की ओर से छप सका। हम लोगो ने इस प्रथम खड की सामग्री ही इस सकलन मे दी है। हम लोग इस का प्रयत्न करेगे कि इधर गालिब के जो नये पत्र प्रकाश मे आये है, उनका सकलन भी इस सग्रह के द्वितीय खड के रूप मे शीघ्र ही प्रकाशित हो।

फारसी गज़लो के अर्थ देने मे हम लोगो को हैदराबाद के फारसी के वयोवृद्ध विद्वान् शेख मुहम्मद साहब से सहायता मिली है। मौलवी अब्दुल-रज़ाक साहब ने भी हम लोगो की सहायता की है, अत हम लोग दोनो महानुभावो के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते है।

हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग के मन्त्री डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा के प्रति हम लोग कृतज्ञता प्रकट करते है, जिनके कारण इस सकलन का प्रकाशन सभव हो सका। एकेडेमी के सहायक मन्त्री डाक्टर सत्यव्रत सिन्हा ने प्रूफ आदि के सम्बन्ध मे जो सहायता की है, उसके लिए भी हम लोग आभारी है।

चार कमान
हैदराबाद—२
१३-६-५७

लिप्यन्तरकार

पत्र-सूची

मुंशी हरगोपाल तफ़्ता के नाम

१

(अगस्त १८४९ ई०)

महाराज,

आपका मेहरबानीनामा पहुँचा। दिल मेरा अगरचे खुश न हुआ, लेकिन नाखुश भी न रहा। बहर हाल, मुझको, के नालायक व ज़लील[१]तरीन खलायक[२] हूँ, अपना दुआगो[३] समझते रहो। क्या करूँ? अपना शेवा[४] तर्क[५] नही किया जाता। वो रविश[६] हिन्दुस्तानी फारसी लिखने वालो की मुझको नही आती के बिल्कुल भाटो की तरह बिकना शुरू करे। मेरे कसीदे देखो, तशवीब[७] के शेर बहुत पाओगे और मदह[८] के शेर कमतर। नस्र[९] मे भी यही हाल है। मुस्तफाखा के तजकिरे[१०] की तकरीज[११] को मुलाहिजा करो के उनकी मदह कितनी है। मिर्जा रहीमुद्दीन बहादुर 'हया' तखल्लुस के दीवान के दीबाचे को देखो। वो जो तकरीज 'दीवाने हाफिज' की बमूजिबे[१२] फरमाइश जान जाकूब बहादुर के लिखी है उसको देखो के फक्त एक बैत मे उनका नाम और उनकी मदह आई है और बाकी सारी नस्र में कुछ और ही और मतलब है। वल्लाह[१३] बिल्लाह अगर किसी शहजादे या अमीरजादे के दीवान का दीबाचा[१४] लिखता, तो उसकी इतनी मदह न करता

---

१. नीचतम। २. मनुष्य। ३. पुरोहित, पाठ पूजा करने वाला। ४. ढग। ५. छोड़ा नही जा सकता। ६. चाल चलन। ७. सौन्दर्य, प्रेमिका की प्रशंसा। ८. प्रशसा। ९ गद्य। १०. समालोचन। ११. आलोचना। १२. अनुसार। १३. ईश्वर की सौगन्ध। १४. भूमिका।

के जितनी तुम्हारी मदह की है। अब हमको और हमारी रविश को अगर पहचानते तो इतनी मदह को बहुत जानते। किस्सा[1] मुख्तसर तुम्हारी खातिर की और एक फिकरा तुम्हारे नाम का बदल कर उसके एवज एक फिकरा और लिख दिया है। इससे ज्यादा भटई मेरी रविश नही। जाहिरा तुम खुद फिक्र नही करते, और हजरात[2] के बहकाने मे आ जाते हो। वो साहब, तो बेशतर[3] इस नज्म व नस्र को मोहमल[4] कहेगे, किस वास्ते के उनके कान इस आवाज से आशना[5] नही। जो लोग के "कतील" को अच्छे लिखने वालो मे जानेगे वो नज्म[6] व नस्र की खूबी को क्या पहचानेगे ?

हमारे शफीक[7] मु शी नबीबख्श साहब को क्या आरिज़ा[8] है के जिसको तुम लिखते हो के मौलजुब्न[9] से भी न गया। एक नुस्खा "तिबे मुहम्मद हुसेन खानी" मे लिखा है और वो बहुत बेजरर और बहुत सूदमन्द है मगर असर उसका देर मे जाहिर होता है। वो नुस्खा ये है के पान-सात सेर पानी लेवे और उसमे सेर पीछे तोला भर चोब चीनी कूट कर मिला दे और उसको जोश[10] करे, इस कदर के चेहारुम[11] पानी जल जावे। फिर उस बाकी पानी को छान कर कोरी ठिलिया[12] मे भर रखे और जब बासी हो जावे उसको पिएँ। जो गिज़ा[13] खाया करते है, खाया करे, पानी दिन रात, जब प्यास लगे, यही पिएँ। तबरीद[14] की हाजत[15] पडे, इसी पानी मे पिएँ। रोज जोश करवा कर, छनवा कर रख छोडे। बरस दिन मे इसका फायदा मालूम होगा। मेरा सलाम कह कर ये नुस्खा अर्ज कर देना। आगे उनको अख्तियार है।

---

१. कहानी सक्षेप में। २. हजरत (ब० ब०)। ३. अधिकतर। ४. निरर्थक, भ्रान्तियुक्त। ५. परिचित। ६ कविता, पद्य। ७. प्रियकारी। ८. बीमारी। ९. बीमार को देने के लिए फाड़ा गया दूध। १०. उबाले। ११. चौथाई। १२ मिट्टी की हडी। १३. भोजन, खाद्य पदार्थ। १४. ठडाई, शर्बत आदि। १५. आवश्यकता।

२

अगस्त १८५० ई०

भाई,

ये मिसरा[1] जो तुमको बहम पहुँचा है, फने[2] तारीखगोई मे इसको 'करामत' और 'एजाज' कहते है। ये मिसरा 'सलमाने' सावजी व 'जहीर' का सा है। चार लफ्ज और चारो वाकये के मुनासिब। ये मिसरा कह कर और मिसरे की फिक्र करनी किस वास्ते ? वाह वाह, सुभान[3] अल्लाह्!

और ये जो तुमको 'फर' के लफ्ज मे तरद्दुद[4] हुआ और एक सूखा-सहमा शेर 'जहूरी' का लिखा, बडा ताज्जुब है। ये लफ्ज मेरे हाँ[5] 'पज आहग'[6] मे दस हजार जगह आया होगा। 'फर' और 'फर्रह' लफ्ज फारसी है, मुरादिफ[7] 'जाह' के। पस[8] 'जाह' को और इसको किसने कहा है के बगैर तरकीब दिए न लिखिए ? 'आलीजाह' और 'सिकन्दरजाह' और 'मुज़फ्फर फर' और 'फ़रीदूँ फर' यो भी दुरुस्त, और सिर्फ 'जाह' और 'फर' यो भी दुरुस्त।

और एक बात तुमको मालूम रहे के इस पूरे खिताब को 'खिताबे बहादुरी' कहना बहुत बेजा है। सुनो, खिताब के मरातिब[9] मे पहले तो 'खानी' का खिताब है और ये बहुत जईफ[10] है और बहुत कम है। मसलन[11] एक शख्स का नाम है "मीर मुहम्मद अली" या 'शेख मुहम्मद अली' या 'मुहम्मद अली बेग'

१. कविता की पक्ति, एक चरण। २. तारीख कहने की कला (फारसी तथा उर्दू में किसी के जन्म-मरण अथवा किसी घटना का सवत्सर कविता बद्ध करते है। उर्दू वर्णमाला के प्रत्येक अक्षर की सख्या निश्चित है। इन अक्षरो के आधार पर ही घटना का सवत् दिया जाता है)। ३ ईश्वर पवित्र है। ४. सन्देह। ५. गालिब ने 'यहाँ' के स्थान पर 'हाँ' का प्रयोग भी किया है। ६. गालिब की एक रचना का नाम। ७. प्रताप। ८. वस। ९. प्रतिष्ठा, पद। १०. वृद्ध, पुराना। ११. उदाहरण स्वरूप।

और उसको ख़ानदानी भी 'ख़ानी' नही हासिल। पस जब उसको बादशाहे[1] वक्त 'मुहम्मद अली खाँ' कह दे, तो गोया उसको 'खानी' का खिताब मिला। और जो शख़्स के उसका नामे असली 'मुहम्मद अली खाँ'[2] है, या तो वो कौमे अफगान है या 'ख़ानी' उसकी ख़ानदानी है, बादशाह ने उसको 'मुहम्मद अली ख़ॉ बहादुर' कहा। पस, ये ख़िताब 'बहादुरी' का है, इसको बहादुरी का ख़िताब कहते है, इससे बढ कर खिताब 'दौलगी' का है, याने मसलन "मुहम्मद अली ख़ॉ बहादुर" उसको मुनीरुद्दौला मुहम्मद अलीख़ॉ बहादुर" कहा, अब ये ख़िताब दौलगी का हुआ, इसको 'बहादुरी' का ख़िताब नही कहते, अब इस ख़िताब पर अफज़ायश[3] 'जग' की होती है "मुनीरद्दौला मुहम्मद अली ख़ॉ बहादुर शौकत जंग"। अभी ख़िताब पूरा नही, पूरा जब होगा के जब 'मुल्क' भी हो। पस, पूरे ख़िताब को 'खिताबे बहादुरी' लिखना गलत है। ये वास्ते तुम्हारे मालूम रहने के लिखा गया है।

अब आप इस सात बैत के कते को अपने दीवान मे दाख़िल और शामिल कर दीजिये। याने कतो में लिख दीजिये। जब तुम्हारा दीवान[4] छापा जावेगा, ये कता भी छप जावेगा। मगर हॉ, मुंशी साहब के सामने इसको पढिये और उनसे इस्तदुआ[5] कीजिए के इसको आगरे भेजिगे ताके छापा हो जावे 'असदुल अख़बार' मे और 'जुब्दतुल अख़बार' मे। यकीन है के वो तुम्हारे कहने से अमल मे लावेगे। मुझको क्या जरूर है के मै लिखूं? मैने यहाँ 'सादिकुल अख़बार' मे छपवा दिया है।

३

(१८५१ ई०)

मै तुमको खत भेज चुका हूँ। पहुँचा होगा? कल एक रुक्का मेरे पास आया। कोई साहब है अताउल्लाख़ॉ, और 'नामी' तख़ल्लुस[6] करते हैं। ख़ुदा

---

१. समकालीन शासक। २ अफगानिस्तानी। ३. आधिक्य, शोभा। ४. कविता सग्रह। ५. प्रायना। ६. काव्यनाम।

जाने, कहाँ है और कौन है। एक दोस्त ने वो रुक्का मेरे पास भेजा, मैंने उसका जवाब लिख कर उसी दोस्त के पास भेज दिया, रुक़्क़ा तुमको भेजता हूँ, पढ़ कर हाल मालूम करोगे। तुम्हारे शेर मे जो तरद्दुद था उसका जवाब मैंने ये लिखा है, तुमको भी मालूम रहे—

रफ्त[1] उचे ब मसूर शनीदी तू वो मन हम
अै दिल सखुने हस्त निगाह्दार जबाँ रा

तरद्दुद ये के "उचे ब मसूर रफ्त" नही देखा। 'उचे बर मसूर रफ्त' दुरुस्त है। जवाब—बाए[2] मौह हेदा 'अला' बाए[3] 'अला' के माने भी देती है। पस जो कुछ 'बर' से मुराद थी, वो बाये मौह हेदा से हासिल हो गई और अगर बाये मौह हेदा के माने मैयत[2] के ले तो भी दुरुस्त है, नजीरी कहता है,—"[3]शादी के गबन मी कशी दम न मी जनी, दर शहर ई मामल बाहर गदा रवद" अगर कोई ये कहे के यहाँ 'मामला' है और उस शेर मे मामले का लफ्ज नही, जवाब इसका ये है के सरासर दोनो शेरो की सूरत एक है। नजीरी के हाँ 'मामला' मजकूर है और तफ़्ता के यहाँ मुकद्दर है। 'रफ़्त' का सिला और 'तादिया' बाए मौहहेदा के साथ दोनो जगह है। [4]वस्सलाम।

असदुल्लाह

४

(सोमवार ४ जनवरी १८५२)

क्यो महाराज,

कोल[5] मे आना और मु शी नबी बख्श साहब के साथ गजलखानी करनी

---

१. मसूर के सम्बन्ध मे हम लोगो ने जो कुछ सुना वह हो चुका, अरे हृदय, मै एक बात कहता हूँ, सुन ले, अपनी जिव्हा को काबू मे रख। २. उर्दू वर्णमाला के ऐसे अक्षर जिनमे एक बिन्दु लगता है। ३. साथी। ४. ईश्वर कल्याण करे। ५. अलीगढ का पुराना नाम।

और हमको याद न लाना। मुझ से पूछ के मैंने क्यो कर जाना के तुम मुझको भूल गए। कोल मे आए और मुझको अपने आने की इत्तला न दी, न लिखा के मै क्यो कर आया हूँ और कब आया हूँ और कब तक रहूँगा और कब जाऊँगा और बाबूसाहब से कहाँ जा मिलूँगा। खैर, अब जो मैंने बेहयाई करके तुमको खत लिखा है, लाजिम है के मेरा कुसूर माफ करो और मुझको आप अपनी सारी हकीकन लिखो।

तुम्हारे हात की लिखी हुई गजले, बाबू साहब की, मेरे पास मौजूद है। और इस्लाह[1] पा चुकी है। अब मै हैरान हूँ के कहाँ भेजूँ? हर चन्द उन्होने लिखा है के अकबराबाद[2], हाशिम अली खाँ को भेज दो, लेकिन मै न भेजूँगा। जब वो अजमेर या भरतपूर पहुँच कर मुझको खत लिखेगे तो मै उनको वो औराक[3] इरसाल[4] करूँगा या तुम जो लिखोगे उस पर अमल करूँगा।

भाई, एक दिन शराब न पीओ या कम पीओ और हमको दो-चार सतरें लिख भेजो के हमारा ध्यान तुममे लगा हुआ है। रकमजदा[5] यक[6]शबा चारुम[7] जनवरी सन् १८५२ ई०।

—असदुल्लाह

५

(२१ फरवरी १८५२ ई०)

शफीक[8] बित्तहकीक मुन्शी हरगोपाल 'तफ्ता' हमेशा सलामत रहे। आपका वो खत जो आपने कानपुर से भेजा था पहुँचा। बाबूसाहब के सैरो[9] सफर का हाल और आपका लखनऊ जाना और वहाँ के शोअरा[10] से मिलना सब

---

१. सुधार, सशोधन। २. आगरा। ३. पृष्ठ (वर्क ब० व०)। ४. दूँगा। ५. लिखित। ६. रविवार। ७. चौथी। ८. असन्दिग्ध प्रेमी। ९. यात्रा। १०. कवियो से।

मालूम हुआ। अशार[1] जनाब 'रिन्द' के पहुँचने के एक हफ्ते के बाद दुरुस्त हो गए और इस्लाह और इशारे और फवायद जैसा के मेरा शेवा है, अमल मे आया। जब तक के उनका या तुम्हारा ख़त न आवे और इकामतगाह[2] मालूम न हो मै वो कवागज़[3] जरूरी कहाँ भेजूँ और क्यो कर भेजूँ और क्यो भेजूँ? अब जो तुम्हारे लिखने से जाना के १९ फरवरी तक अकबराबाद आओगे तो मैने यह ख़त तुम्हारे नाम लिख कर लिफाफा कर रखा है। आज १९ वी है, परसो २१ वी को लिफाफा आगरे रवाना होगा। बाबूसाहब को मैने ख़त इस वास्ते नही लिखा के जो कुछ लिखना चाहिए था, वो ख़ातिमे[4] औराक अशार पर लिख दिया है। तुमको चाहिए के उनकी खिदमत मे मेरा सलाम पहुँचाओ और सफर के अजाम और हुसूले[5] मराम की मुबारकबाद दो और औराके अशार गुजरानो और ये अर्ज करो के जो इबारत ख़ात्मे पर मरकूम[6] है उसको गौर से पढिए और अपना दस्तूरुल[7] अमल गरदानिए[8] न ये के सरसरी देखिए और भूल जाइए। बस। तमाम हुआ वो पयाम[9] के जो बाबूसाहब की खिदमत मे था।

अब फिर तुम से कहता हूँ के वो जो तुमने उस शख्स कोली[10] का हाल लिखा था, मालूम हुआ। हरचन्द ऐतराज उनका लगो[11] और पुरसिश[12] उनकी बेमजा हो, मगर हमारा ये मनसब[13] नही के मौतरिज[14] को जवाब न दे या सायल से बात न करे। तुम्हारे शेर पर ऐतराज़, इस राह से के वो हमारा देखा हुआ है, गोया हम पर है। इससे हमे काम नही के वो माने या न माने, कलाम हमारा अपने नफ्स[15] मे माकूल[16] व उस्तवार है। जो जवानदाँ होगा

---

१. शेर का (ब० व०)। २. निवास स्थान। ३ कागज का (ब० व०) ४. पृष्ठ का अन्तिम भाग। ५. सफलता। ६. लिखी हुई। ७. विधान, नियमावली। ८. पाठ कीजिए। ९. सन्देश। १०. अलीगढ निवासी। ११. बनावटी, निराधार। १२. पूछताछ। १३. भाव। १४. विरोधी। १५. भावना। १६ पूर्ण और उचित।

वो समझ लेगा। ग़लतफहम व कजअन्देश[1] लोग न समझे, न समझे। हम को तमाम खल्क[2] की तहजीब[3] व तलकीन से क्या इलाका ? तालीम व तलकीन वास्ते दोस्तो के और यारो के है, न वास्ते अगयार[4] के। तुम्हे याद होगा के मैंने तुम्हे बारहा[5] समझाया है के खुद गलती पर न रहो और गैर की गल्ती से काम न रखो। आज तुम्हारा कलाम वो नही के कोई गिरफ्त कर सके, मगर हॉ—

हसूद रा चे कुनम कूजे खुद बरज दरस्त[6]

वस्सलाम वलग्रिकराम। रकमजदा १९ फरवरी व मुरसिला[7] बिस्तो[8] यकुम फरवरी सन् १८५२ ई०।

—असदुल्लाह

६

(२२ मार्च १८५२ ई०)

बन्दा परवर,

"बेश[9] अज बेश व कम अज कम"—ये तरकीब बहुत फसीह[10] है। इसको कौन मना करता है ? और "जलाले असीर' के ये बैत बहुत पाकीजा और खूब है। इसके मानें यही है के "दर[11] जमाने मन मेहर बेश अजबेश शुद व दर जमाने तू वफ कम अज कम शुद।" उस्ताद क्या कहेगा ? इसमे तो तीन टुकडे का लफ[12] व नश्र है—मन और तू, मेहर और वफा, बेश-अजबेश और

१. दुर्बुद्धि। २. ससार। ३ सभ्यता। ४. शत्रु, पराये लोग। ५. कई बार। ६. ईर्ष्यालू के लिए हम क्या करे, वह स्वयं कष्ट उठा रहा है। ७. भेजा हुआ। ८. कल्याण और दया हो। ९. अधिक से अधिक कम से कम। १०. परिमार्जित। ११ मेरे युग मे प्रेम अधिक से अधिक था और तुम्हारे युग मे वफादारी कम से कम रह गई। १२. सलग्न।

कम अज कम। याद रहे के बेशतर-अज बेश व कम तर अज कम अगर चे बहस्बे माना जायज है, लेकिन फसाहत इसमे कम है। 'बेश अजबेश व कमज कम' अफसा है। वो शेर तम्हारा खूब है और हमारा देखा हुआ है।

कैस अस्तो न एम कम बले सब्र
बेशस्त तुरा कमस्त मारा[1]

लेकिन हाँ, पहले मिसरे मे अगर 'कमतर' होता तो और अच्छा था। बहरहाल, इतना खयाल रहे के ऐसी जगह 'तू' का लफ्ज अफसा है। चुनाचे मेरा शेर है—

जल्वा कुन मिन्नत मने अज जर्रा कमतर नीस्तम
हुस्न बा ईं तावनाकी आफताबे बेश नीस्त
वर्ना चश्मे तो चे अज रोजने दीवार कमस्त[2]

यहा बहुत ही ऊपरी मालूम होता है और निरा हिन्दी का तर्जुमा रह जाता है और फारसियत नही रहती। "सहल[3] मशमार जिन्देगानी हा।" मुझको याद पडता है के मैने इस मतले को यो दुरुस्त कर दिया है—"रायगा नस्त[4] जिन्दगानी हा। मी तुआँ कर्द जाँ फिशानी हा"। और इस सूरत मे यह मतला ऐसा हो गया था के मेरे दिल मे आई थी के तुमको न दूँ और खुद इस जमीन मे गजल लिखूँ, मगर फिर मैंने किस्सत न[5] की और तुमको दे दिया। हजरत ने मुलाहिजा नही फरमाया। ये खत जो आपने मुझे लिखा है, शराव के

१. कैस (मजनूँ), हम तुम से किसी बात मे कम नही है। अन्तर इतना ही है कि तुम मे धैर्य अधिक है और हम मे कम। २. तुम अपना प्रकाश दिखाओ। मैं कण से कम नही हूँ। सूर्य के प्रकाश मे कण प्रदीप्त हो उठता है। अन्यथा तुम्हारी आँखे द्वार के छिद्र से भी हेय है। ३. जीवन को सरल मत समझो। ४. जब तक प्रयत्न न किया जाए जीवन निरर्थक है। ५. ओछापन,—कजूसी।

नशे में लिखा है और वो इस्लाही[1] औराक भी इसी आलम[2] मे मुलाहिज़ा फ़रमाए है। अब--

गिला[3] ताकै जे जिन्दगानी हा

इसको मौकूफ कीजे और वो मतला रहने दीजे के वो बहुत खूब है। वे[4]-अैनेही, मौलाना जहूरी का मालूम होता है। भाई, हमारे औराके इस्लाही को गौर से देखा करो, हमारी मेहनत तो जाया[5] न जावे।

'अय्यामे चन्द' मे जम उल[6] जमा ऐसी खुली हुई नहीं है, बल्के फकीर के नजदीक जमउल जमा ही नही है। मसलन् 'मानेचन्द' और 'अहकामेचन्द' और 'इसरारे चन्द' ये आदमी लिख सकता है, मगर हा 'आमाल हा' ये खुली सुहरट[7] है।

खता ए[8] बुजुंग गिरफ्तन खतास्त।

हमको अपनी तहजीब से काम है। अगलात[9] मे सनद[10] क्यो ढूंडते फिरे। मसलन हजरत हाफिज ने लिखा है--

सलाहे[11] कार कुजा वो मने खराव कुजा
विवी तफाउते रह अज कुजास्त ता व कुजा

मेरी जान, ऐसे मौके मे ये चाहिए के बुजुर्गो के कलाम को हम मौरिदे[12] ऐतराज़ न करे और खुद इसकी पैरवी न करें। फकीर गवारा नही रखने का जमा उल जमा को और बुरा न कहेगा हजरत "सायब" को,।

शोहरत फलाने शख्स से इन्तकाल की वगलत। अलवत्ता मेरा भी मूजिवे[13]

---

१ सशोधित पृष्ठ। २ स्थिति। ३. जीवन की शिकायत कब तक करे। ४ जैसा है वैसा। ५ व्यर्थ न जाए। ६ बहुवचन का बहुवचन। ७. सोरठ। ८. वडे लोगो की त्रुटियाँ दिखाना अपराध है। ९. गल्त (व० व०), अशुद्धिया। १०. प्रमाण। ११. शुभ कार्य कहाँ और मुझ जैसा वुरा व्यक्ति कहाँ ? दोनो के मार्ग में अन्तर तो देखिए। १२. आक्षेपार्ह। १३. दुख का कारण।

मलाल है; मगर ये कौन वाके[१] अज़ीमे हौलनाक है के साहेबाने अख़बार इसको छापें। आप इस तरफ इतना ऐतना[२] न फरमाइए।

गर माहो[३] आफताब वेमीरद अजा मगीर

वर तीरो जुहरा कुश्ता शवद नौहाख़ां मख़ाह

मै काले साहब के मकान से उठ आया हूँ। बल्लीमारो के महल्ले मे एक हवेली किराए को लेकर उसमे रहता हूँ। वहाँ का मेरा रहना तख़फीफे[४] किराए के वास्ते न था। सिर्फ काले साहब की मुहब्वत से रहता था वास्ते इत्तला के तुमको लिखा है, अगर चे मेरे ख़त पर हाजत मकान के निशान की नही है, 'दर देहली व असदुल्लाह ब रसद[५]' काफी है, मगर अब 'लाल कुआँ' न लिखा करो, मुहल्ले बल्लीमारॉ लिखा करो।

और हाँ साहब, हमारे शफीक वावसाहब का हाल लिखो। मुस्हिल[६] से फरागत हुई और मिज़ाज कैसा है ? और अब अजमेर और वहाँ से आबू पहाड को कब जाएँगे ? मेरा सलाम भी कह दीजिएगा। वस्सलाम।[७]

मुहर्रिर[८] ए दो शम्बा बिस्त व दुअम मार्च १८५२।

असदुल्लाह

७

(१८ जून १८५२)

काशान[९] ए दिल के माहे दो हफ्ता, मुंशी हरगोपाल 'तफ्ता' तहरीर मे क्या क्या सेहर[१०] तराजियां करते है।

---

१. भयानक दुखद घटना। २. भयानक घटना। ३. यदि चॉद और सूरज नष्ट हो जाएँ तो शोक मत कर, यदि बुध और जुहरा नष्ट हो जाएँ तो भी किसी मातम करने वाले को मत बुला। ४. किराए की कमी। ५. पहुँचे ६. जुल्लाव, विरेचन। ७. वाईसवी। ८. लिखा हुआ। ९. हृदय नीड के पूर्ण चन्द्र। १०. जादू, चमत्कार।

अब जरूर आ पडा है के हम भी जवाब उसी अन्दाज से लिखे। सुनो साहब, ये तुम जानते हो के जैनुल आबदीन खाँ मरहूम[1] मेरा फरजन्द[2] था। और अब उसके दोनो बच्चे, के वो मेरे पोते है, मेरे पास आ रहे है और दम बदम[3] मुझको सताते है और मै तहम्मुल[4] करता हूँ। खुदा गवाह है के मै तुमको अपने फ़रजन्द की जगह समझता हूँ। बस, तुम्हारे नतायजे[5] तबा मेरे मानवी[6] पोते हुए। जब इन आलमे[7] सूरत के पोतो से, के मुझे खाना नही खाने देते, मुझको दोपहर को सोने नही देते, नगे नगे पॉव मेरे पलग पर रखते है, कही पानी लुढाते है, कही खाक उडाते है, मै नही तग आता; तो उन मानवी पोतो से, के उनमे ये बाते नही है; क्यो घबराऊँगा? आप उनको जल्द मेरे पास ब-सबीले[8] डाक भेज दीजिए के मै उनको देखूँ। वादा करता हूँ के फिर जल्द उनको तुम्हारे पास बसबीले डाक भेज दूँगा। हक ताला[9] तुम्हारे आलमे सूरत के बच्चो को जीता रखे और उनको दौलत व इकबाल दे और तुमको उनके सर पर सलामत रखे और तुम्हारे मानवी बच्चो याने नतायजे तबा को फरोग शोहरत और हुस्ने[11] कुबूल अता फरमाए। बाबू साहब के नाम का खत उनके खत के जवाब मे पहुँचता है। उनको दे दीजिएगा और हॉ साहब, बाबू साहब और तुम आबू को जाने लगो तो मुझको इत्तला करना और तारीखे रवानगी लिख भेजना ताके मै बेखबर न रहूँ। वद्दुआ[12]।

निगाश्ता जुमा, १८ जून १८५२ ई०

—असदुल्लाह

८

(१० दिसम्बर १८५२)

कल तुम्हारा खत आया। राजेनिहानी[14] मुझ पर आशकारा[15] हुआ। मैं

---

१. स्वर्गीय। २. पुत्र। ३. प्रतिक्षण। ४. धैर्य। ५. भावनाओ के परिणाम। ६. अर्थ की दृष्टि से पौत्र। ७. प्रत्यक्ष जगत। ८. द्वारा। ९. ईश्वर। १०. पूर्ण प्रसिद्धि ११. लोकप्रियता। १२. आशीर्वाद। १३. गुप्तभेद। १४. प्रकट। १५. कोलाहल।

समझा हुआ के तुम दीवानगी और शोरिश[1] कर रहे हो। अब मालूम हुआ के हक[2] बजानिब तुम्हारे है। मैं जो अपने अजीज को नसीहत करता हूँ तो अपने नफ्स को मुख़ातिब[3] करके कहता हूँ के ऐ दिल, तू अपने को इस अज़ीज की जगह समझकर तसव्वुर[4] कर के अगर तुझ पर यह हादिसा पडा होता या तू इस बला मे गिर-फ़्तार हुआ होता तो क्या करता ? अयाजन बिल्लाह् !

अब मैं तुमको क्यो कर कहूँ के ये बेहुरमती[5] गवारा करो और रिफाकत[6] न छोडो बल्के यह भी जायद है जो दोस्त से कहे के तू हमारे वास्ते इसको तर्क कर। बहर हाल दोस्त की दोस्ती से काम है, उसके अफआल[7] से क्या गरज ? जो मुहब्बत व ख़िलास[8] उनमे-तुममे है, बदस्तूर बल्के रोज[9] रोज अफजूँ रहे। साथ रहना और पास रहना नही है, न सही।

"वस्ले के दरॉ मलाल बाशद हिज्रॉ बेह अजॉ विसाल बाशद"[10]।

आमदम[11] बरसरे मुद्दआ। तुम्हारी राय हम को इस बात में पसन्द। अजब तरह का पेच पडा के निकल नही सकता, न तुमको समझा सकता हूँ और न उनको कुछ कह सकता हूँ। मुझे तो इस मौके मे सिवाय इसके के "[12]तमाशा नैरगे कजा वो कद्र बना रहूँ," कुछ बन नही आती

बबीनम[13] के ताह किर्दगारे जहॉ
दरी आशकारा के दारद निहॉ

---

१. सत्य तुम्हारी ओर है। २. सम्बोधित। ३ कल्पना। ४ ईश्वर की शरण मे जाता हूँ। ५. अपमान। ६. साथ। ७. आचरण। ८. शिष्टता। ९ नित्य वृद्धिशील। १०. जिस सयोग से दुख होता है उससे तो वियोग अच्छा। ११. जो कुछ अभीष्ट है कहता हूँ। १२. मैं एक दर्शक की भॉति विधाता का लेख क्रियान्वित होता देखता रहूँगा। १३. इस गोचर जगत मे ईश्वर ने जो कुछ छिपा रखा है, मैं उसे देखता हूँ।

जपूर का अमर महज इत्तेफाकी[1] है। बेकस्द[2] व बेफिक्र दरपेश आया है, हवसनाकाना[3] इधर मुतवज्जे हूँ। बूढा हा गया हूँ, बहरा हो गया हूँ। सरकार अंग्रेजी मे बड़ा पाया रखता था। रईसजादो मे गिना जाता था। पूरा खलत पाता था; अब बदनाम हो गया हूँ और एक बडा धब्बा लग गया है। किसी रियासत मे दखल नही कर सकता, मगर हा उस्ताद या पीर या मद्दाह बन कर राहो[4] रस्म पैदा करूँ, कुछ आप फायदा उठाऊँ; कुछ अपने किसी अजीज को वहाँ दाखिल कर दूँ। देखो, क्या सूरत पैदा होती है।

ता[5] निहाले दोस्ती कै बर दिहत
हालिया रफ्तेम व तुख्मे काश्तेम

सहाफ के यहा से दीवान अभी नही आया, आज-कल आ जाएगा, फिर उसके जुजो दान की तैयारी करके रवाना करूँगा। अभी कोल मे आराम करो, अपने बच्चो मे अपना दिल बहलाओ। अगर जी चाहे तो अकबराबाद चले जाइयो। वहाँ अपना दिल बहलाइयो। देखो इस खुद्दारी[7] मे उधर से क्या होता है? और वो क्या करते है। वस्सलाम[8]।

जुमा दहुम[9] दिसम्बर १८५२ ई० असदुल्लाह

९

परसो तुम्हारा खत आया। हाल जो मालूम था वो फिर मालूम हुआ।' ग़ज़ले देख रहा था। आज शाम को देखना तमाम[11] हुआ था। गज़लो को रख दिया था। चाहता था के उनको बन्द करके रहने दूँ, कल नौ बजे–दस बजे

---

१. सायोगिक। २. विना सकल्प। ३. विवशतावश। ४. परिचय। ५. देखना है यह मित्रता का पौधा कब फल देगा, हम गए और हमने बीज बो दिया। ७. स्वात्मा-भिमान। ८. अभिवादन। ९. दशमी। १०. पूर्ण। ११. प्रतिष्ठा के अनुसार।

डाक मे भेज दूँ । खत कुछ जरूर नही, मै इसी खयाल मे था के डाक का हरकारा आया। जानीजी का ख़त लाया। उसको पढा । अब मुझको जरूर हुआ के ख़लासा उसका तुमको लिखूँ । ये रुक्का लिखा--

ख़ुलासा बतरीके एजाज ये है के अर्जी गुजरी। दीवान गुजरा, रावलजी के नाम का खत गुजरा। राजा साहब दीवान के देखने से ख़ुश हुए। जानाजी ने जो एक मौतमद[1] अपना सादुल्लाह खाँ वकील के साथ कर दिया ह, वो मुन्तजिर जवाब का है। रावलजी नए अजट के इस्तकबाल[2] को गए है और अब अजण्ट इलाक ए जयपुर की राह से नही आता। आगरे और गवालियार, करोली होता हुआ अजमेर आएगा। और इस राह मे जैपुर का अमल नही। पस, चाहिए के रावल जी उल्टे फिर आवे। उनके आए पर अर्जी का जवाब मिलेगा और उसमे दीवान की रसीद भी होगी। भाई, जानीजी तुमको बहुत ढूँढते और तुम्हारे बगैर बहुत बेचैन है।

मै न तुमको कुछ कह सकता हूँ, न उनको समझा सकता हूँ। तुम वो करो के जिसमे साँप मरे और लाठी न टूटे। हाँ, यह भी जानीजी ने लिखा था के बहुत दिन के वाद मु शीजी का ख़त आया है।

असद

१०

(२५ फरवरी १८५३)

भाई,

परसो शाम को डाक का हरकारा आया और एक खत तुम्हारा और एक जानीजी का लाया। तुम्हारे खत मे औराके अशार और वावूसाहव के ख़त मे जैपूर के अख़वार। दो दिन से मुझको वजुल्द[3] सद्र है और मै वहुत वेचैन हूँ। अभी अशार को देख नही सकता। वावू साहव के भेजे हुए कवागज़ तुम को

१. सचिव। २. स्वागत। ३. छाती का दर्द।

भेजता हूँ। अशार बाद दो चार रोज के भेजे जाएँगे। मुरस्सिला जुमा २५ फरवरी सन् १८५३ ई०।

असदुल्लाह

११

(२८ मार्च १८५३)

भाई,

आज मुझको बडी तशवीश है और ये खत मैं तुमको कमाले[१] सरासीमगी मे लिखता हूँ। जिस दिन मेरा खत पहुँचे, अगर वक्त डाक का हो तो उसी वक्त जवाब लिख कर रवाना करो, और अगर वक्त न रहा हो तो नाचार दूसरे दिन जवाब भेजो। मशा तशवीश[२] व इज्तराब का ये है के कई दिन से राजा भरतपूर की बीमारी की खबर सुनी जाती थी। कल से और बुरी खबर शहर मे मशहूर है। तुम भरतपूर से करीब हो। यकीन है के तुमको तहकीके हाल मालूम होगा। जल्द लिखो के क्या सूरत है? राजा का मुझको गम नही, मुझको फिक्र जानीजी का है के उसी इलाके मे तुम भी शामिल हो। साहेबाने अंग्रेज ने रियासतो के बाब[३] मे एक कानून वजा किया है। याने जो रईस मर जाता है, सरकार उस रियासत पर काबिज व मुतसर्रिफ होकर रईसजादे के बालिग होने तक बँदोबस्त रियासत का अपने तौर पर रखती है। सरकारी बँदोबस्त मे कोई दीमुल[४] खिदमत मौकूफ नही होता। इस सूरत मे यकीन है के जानी साहब का इलाका बदस्तूर कायम रहे। मगर ये वकील है, मालूम नही मुख्तार कौन है और हमारे बाबू साहब मे और उस मुख्तार मे सोहबत कैसी है? रानी से इनकी क्या सूरत है? तुम अगर चे बाबू साहब की मुहब्बत का इलाका रखते हो, लेकिन उन्होने अजराहे[५] दूरन्देशी तुमको मुतवस्सिल[६] उस सरकार कर

---

१. परेशानी। २. बेचैनी और उद्विग्नता। ३. सम्बन्ध में। ४ पुराना कर्मचारी। ५. दूरदर्शिता से। ६. सम्बन्धी।

रखा है और तुम मुस्तगनियाना[१] और लाउबालियाना[२] जिन्दगी बसर करते थे। जिन्हार[३] अब वो रविश न रखना। अब तुमको भी लाजिम आ पड़ा है जानीजी के साथ रूशनासे[४] हुक्कामे वाला मुकाम होना। पस, चाहिए कोल की आरामिश[५] का तर्क करना और खाही[६] न खाही बाबू साहब के हमराह[७] रहना। मेरी राय मे यो आया है, और मै नही लिख सकता के मौका क्या है और मसलिहत क्या है। जानीजी भरतपूर आए है या अजमेर मे है, किस फिकर मे है और क्या कर रहे है? वास्ते खुदा के न मुख्तसर[८] न सरसरी बल्के मुफस्सिल[९] और मुनक्कह[१०] जो कुछ वाकै हुआ हो और जो सूरत हो मुझको लिखो और जल्द के मुझ पर खावो खोर[११] हराम है। कल शाम को मैंने सुना, आज सुवह किले नही गया और ये खत लिख कर अज राहे अहतियात बैरग रवाना किया है। तुम भी इसका जवाब बैरग रवाना करना। आधाना ऐसी बड़ी चीज़ नही। डाक के लोग बैरग खत को जरूरी समझ कर जल्द पहुँचाते है और पोस्ट पेड पडा रहता है जब उस मुहल्ले मे जाना होता तो उसको भी ले जाते है। ज्यादा क्या लिखूँ के परेशान हूँ।

नविश्ता चाश्तगाहे[१२] दो शबा,[१३] २८ मार्च सन् १८५३ ई०। जरूरी। जवाब तलब।

१२

(५ अप्रैल १८५३)

आज मगल के दिन पाँचवी अप्रैल को तीन घडी दिन रहे डाक का हरकारा आया। एक खत मुंशी साहब का और एक खत तुम्हारा और एक खत बाबू साहब का लाया। बाबू साहब के खत से और मतालिब[१४] तो मालूम हो

---

१. निरपेक्ष। २. वीतराग। ३. सम्प्रति। ४. उच्चाधिकारियो से परिचय। ५. आराम। ६. चाहते हुए या न चाहते हुए। ७. साथ। ८. सक्षिप्त। ९. विवरण सहित। १० स्पष्ट। ११. नीद और भोजन। १२. प्रात काल। १३. सोमवार। १४. मतलब (ब० व०)।

गए मगर एक अम्र[1] मे मैं हैरान हूँ के क्या करूँ। याने उन्होने एक खत किसी शख्स का आया हुआ मेरे पास भेजा है और मुझको ये लिखा है के उसको उल्टा मेरे पास भेज देना। हालाँ के खुद लिखते है के मै अप्रैल की चौथी को सपाटू या आबू जाऊँगा और आज पाँचवी है। बस तो वो कल रवाना हो गए। अब मै वो खत किसके पास भेजूँ ? लाचार तुमको लिखता हूँ के मै खत को अपने पास रहने दूँगा। जब वो आकर मुझको अपने आने की इत्तला देगे तब वो खत उनको भेजूँगा। तुमको तरद्दुद न हो के क्या खत ह। खत नही, मेढूलाल कायथ गम्मास की अर्जी थी बनाम महाराजा बैकुठबाशी, सय्यात[2] बाबू साहब पर मुश्तमिल के उसने लिखा था के हरदेवसिह जानीजी का दीवान और एक शायरे देहली का दीवान महाराजा जैपुर के पास लाया है और जानीजी की दुरुस्ती-ए-रोजगार जैपूर की सरकार मे कर रहा है। और उसके भेजने की ये वजह के पहले उनके लिखने से मुझको मालूम हुआ था के किसी ने ऐसा कहा है। मैने उनको लिखा था के तुमको मेरे सर की कसम अब हरदेवसिह को बुलवालो। मै अम्रे[3] जुजवी के वास्ते अम्र[4] कुल्ली का बिगाड नही चाहता। उसके जवाब मे उन्होने जो अर्ज़ी भेजी और लिख भेजा के राजा मरने वाला ऐसा न था के इन बातो पर निगाह करता। उसने ये अर्ज़ी गुजरते ही मेरे पास भेज दी थी। फ़कत[5]। बारे, इस खत के आने से जानीजी की तरफ से मेरी खातिर जमा हो गई। मगर अपनी फिक्र पडी। याने बाबूसाहब आबू होगे। अगर हरदेवसिह फिर कर आएगा तो वो बग़ैर उनके मिले और उनके कहे मुझ तक काहे को आएगा। ख़ैर, वो भी लिखता है के रावल कही गया हुआ है, उसके आए पर रुखसत होगी। देखिए, वो कब आवे और क्या फर्ज़ है के उसके आते ही रुखसत हो भी जाए। तुम्हारी गजल पहुँची। ये अलबत्ता कुछ देर से पहुँचेगी तुम्हारे पास। घबराना नही। बद्दुआ।

---

१. विषय। २. अपराध, पाप। ३. आशिक विषय। ४. पूर्ण विषय। ५. केवल।

निगाश्ता[1] मे शम्बा, रोज वरूदनामा[2]

व मुरसिला चहार शबा शशुम अप्रैल १८५३।

जवाब तलब। अज़-असदुल्ला।

१३

(२ मई १८५३)

भाई,

तुमने मुझे कौन-सा दो-चार सौ रुपए का नौकर या पिन्सनदार करार दिया है जो दस बीस रुपया महीना किस्त आरजू रखते हो। तुम्हारी बातो पर कभी-कभी हँसी आती है। अगर अहियानन देहली के डिप्टी कलक्टर या वकील कम्पनी होते तो मुझको बड़ी मुश्किल पडती। बहरहाल खुश रहो और मुतफक्किर[3] न हो। पाँच रुपया महीना पिन्सन अंग्रेजी मे से किस्त मुकर्रर हो गया ता अदा-ए-जर[4]। इब्तिदा-ए-जून[5] सन १८५३ ई० याने माहे आइन्दा से ये किस्त जारी होगी। बाबूसाहब का खत तुम्हारे नाम का पहुँचा। अजब तमाशा है, वो दिरग[6] के होने से खिजिल[7] होते है और मै उनके उज्र चाहने से मरा जाता हूँ। हाय इत्तेफ़ाक,[8] आज मैने उनको लिखा और कल राजा के मरने की खबर सुनी। वल्लाह बिल्लाह! अगर दो दिन पहले खबर सुन लेता, तो, अगर मेरी जान पर आ बनती, तो भी उनको न लिखता। जैपूर के आए हुए रुपए की हुण्डवी इस वक्त तक नही आई। शायद आज शाम तक या कल तक आ जावे। खुदा करे, वो आबू पहाड पर से हुण्डवी रवाना कर दे, वर्ना फिर खुदा जाने कहाँ कहाँ जाएँगे और रुपया भेजने मे

---

१. लिखा गया। २. भेजने का दिन। ३. चिन्तित। ४. रुपए की अदायगी तक। ५ जून के आरभ। ६. विलम्ब। ७. लज्जित। ८. सयोग।

कितनी देर हो जाएगी। खुदा करे, जरे मसारिफ[1] हरदेवसिह उसी मे मे मुजरा ले, मेरी कमाल खुशी है, और ये न हो तो '२५' हरदेवसिह को मेरी तरफ से जरूर दे। मुशी साहब का एक खत हातरस से आया था। कल उसका जवाब हातरस को रवाना कर चुका हूँ। वदुआ, मुहर्रिरा दा शम्बा २ मई १८५३ ई०।

अज्ञ-असदुल्लाह

१४

भाई,

हॉ, मैने जब्दतुल अखबार मे देखा के रानी साहब मर गई। कल एक दोस्त का खत अकबराबाद से आया। वो लिखता है के राजा मरा, रानी मरी। अभी रियासत का कोई रग करार नही पाया, सूरते इतजाम जानी बैजनाथ के आने पर मौकूफ है, यहाँ तक उस दोस्त की तहरीर है। जाहिरा उसको बाबूसाहब का नाम नही मालम। उनके भाई का नाम याद रह गया। सिर्फ उस दोस्त ने बतरीके अखबार लिखा है। उसको मेरी और जानी की दोस्ती का भी हाल मालूम नही। हासिल इस तहरीर से ये है के अगर ये खबर सच है तो हमारे-तुम्हारे दोस्त का काम बना रहेगा। आमीन, या रब्बुल आलमीन[2]।

साहब, जैपूर का मुकदमा अब लायक इसके नही है के हम उसका खयाल करे। एक बिना डाली थी, वो न उठी। राजा लडका है और छिछोरा है। रावलजी और सादुल्लाहखाँ बने रहते तो कोई सूरत निकल आती और ये जो अब लिखते है के राजा तेरे दीवान को पढा करता है और पेशे[3] नजर रखता है, ये भी तो आप अजरूए तहरीरे मुंशी हरदेव सिह[4] कहते है। उनका बयान क्यो कर दिलनशी[5] हो? वो भी जो बाबूसाहब लिख चुके है के पान सौ

१. पैसा भेजने का व्यय। २. विश्वभर इसे स्वीकार करे। ३. दृष्टिगोचर। ४. मुशी हरदेव सिह के लेखानुसार। ५. हृदयाकित।

रुपया नक्द और खिलत मिर्जा साहब के वास्ते तजवीज हो चुका है, होली हो चुकी और मैं लेकर चला। फागुन, चैत, बैसाख, नही मालूम होली किस महीने मे होती है। आगे तो फागुन मे होती थी।

बन्दा परवर, बाबू साहब ने पहले तो मुझको दो हुण्डवियाँ भेजी है— सौ सौ रुपए की। एक तो मीर अहमद हुसेन "मैकश" के वास्ते राजा साहब की तरफ से तारीखे तवल्लुदे कुँअर साहब के इनाम मे और एक अपनी तरफ से मुझको बतरीके नजरे शागिर्दी बाद उसके दो हुण्डवियाँ सौ सौ रुपए की बाद चार चार पाँच पाँच महीने के आइ। मय मीर अहमद हुसेन के सिले के रुपयो के चार सौ और उसके अलावा तीन सौ, और ये के चार सौ या तीन सौ कितने दिन मे आये इसका हिसाब कुअर साहब की उम्र पर हवाला है। अगर वो दो बरस के है तो दो बरस मे, और अगर वो तीन बरस के है तो तीन बरस मे। हाँ साहब, ये वो ही मीर कासिमअली साहब है, जो मेरे पुराने दोस्त है। परसो या तरसो जो डाक का हरकारा खत लाया था, वो एक खत मीर साहब के नाम का, कोई मियाँ हिकमतुल्ला है उनका, मेरे मकान के पते से लाया था, वो मैंने लेकर रख लिया है। जब मीर साहब आ जावे तो तुम उनको मेरा सलाम कहना और कहना के हजरत अगर मेरे वास्ते नही तो इस खत के वास्ते आप दिल्ली आइये।

१५

(५ जून १८५३)

अजीब तमाशा है! बाबूसाहब लिख चुके है के हरदेव सिंह आ गया और पान सौ रुपये की हुण्डवी लाया मगर उसके मसारिफ[1] की बाबत उनतीस रुपए कई आने उस हुण्डवी मे महसूब[2] हो गये है। सो मैं अपने पास से मिला कर

---

१. व्यय। २ हिसाब मे आना।

पूरे पान सौ की हुण्डवी तुझको भेजता हूँ। मैंने उनको लिखा के मसारिफ हरदेवसिह के मै मुजरा दूँगा, तकलीफ न करो। '२५' ये मेरी तरफ़ से हरदेवसिंह को और दे दो और बाकी कुछ कम साढे चार सौ की हुण्डवी जल्द रवाना करो। सो भाई, आज तक हुण्डवी नही आई। मै हैरान हूँ। वजह हैरानी की ये के उस हुण्डवी के भरोसे पर कर्जदारो से वादा जून के अवायल का किया था, आज जून की पाँचवी है। वो तकाजा करते है और मै आजकल कर रहा हूँ। शर्म के मारे बाबूसाहब को कुछ नही लिख सकता। जानता हूँ के दो सैकडा पूरा करने की फिक्र मे होगे। फिर वो क्यो इतना तकल्लुफ करे। तीस रुपए की कौन-सी ऐसी बात है? अगर मसारिफे हरदेवसिंह मेरे हाँ से मुजरा हुए तो क्या गज़ब हुआ? २९ और २५, ५४ रुपए निकाल डाले और बाकी इरसाल करे। लिफाफे खुतूत के जो मैने भेजे थे वो भी अभी नही आये बईहमा[1] ये कैसी बात है के मै ये भी नही जानता के बाबूसाहब कहाँ है? पहाड पर है या भरतपूर आये है? अजमेर आने की तो जाहिरा कोई वजह नही है। नाचार कसरते इन्तेजार[2] से आजिज आकर आज तुमको लिखा है। तुम इसका जवाब मुझको लिखो और अपनी राय लिखो के वजह दिरग की क्या है। ज्यादा, ज्यादा। मरकूमा पजुम जून सन् १८५३ रोज पजशबा।
जवाब तलब।

असदुल्लाह

१६

(९ जून १८५३)

तुम्हारी खैरो आफियत[3] मालूम हुई। गजल ने मेहनत कम ली। भाई का हातरस से आना मालूम हुआ। आवे तो मेरा सलाम कह देना। ये तुम्हारा

---

१ इतना होते हुए भी. तथापि। २. अधिक प्रतीक्षा। ३. कुशलता।

दुआगो अगरचे और उमूर[1] मे पायेआली[2] नही रखता, मगर अेहतियाज[3] मे इसका पाया बहुत आली है, याने बहुत मुहताज हूँ। सौ दो सौ मे मेरी प्यास नही बुझती। तुम्हारी हिम्मत पर सौ हजार आफरी। जैपूर से मुझको अगर दो हजार हाथ आ जाते, तो मेरा कर्ज रफा हो जाता और अगर फिर दो चार बरस की जिन्दगी होती तो इतना ही कर्ज़ और मिल जाता। ये पान सौ तो, भाई तुम्हारी जानकी कसम, मुतफर्रिकात मे जाकर सौ डेढ सौ बच रहेंगे सो वो मेरे सर्फ मे आवेंगे। महाजनो का सूदी जो कर्ज है, जो बकदर पन्दरा सै, सोला सै के बाकी रहेगा और वो जो सौ बाबूसाहब से मँगवाये गए थे वो सिर्फ अग्रेज सौदागर के देने थे कीमत उस चीज की जो हमारे मजहब मे हराम और तुम्हारे मशरब[4] मे हलाल है सो वो दे दिये गये। यकीन है के आजकल मे बाबूसाहब का खत मय हुण्डवी आ जावे।

बाबूसाहब के जो ख़ुतूत[5] जरूरी और कवागज जरूरी मैने पाए आये हुए थे, वो मैने पजशवा, २६ मई को पार्सल मे उनके पास रवाना कर दिये और उसमे लिख भेजा के हुण्डवी और मेरे भेजे हुए लिफाफे जल्द भेज दो।

पजशवा पजशबा आज १५ दिन पूरे हुए।

निगाश्ता पजशबा, नहुम जून सन् १८५३ ई०।

अज़ा-असदुल्लाह

१७

(१४ जून १८५३)

भाई,

जिस दिन तुमको खत भेजा, तीसरे दिन हरदेवसिंह की अर्जी और '२५' की रसीद और '५००' की हुण्डवी पहुँची। तुम समझे बाबूसाहब ने '२५'

---

१. विषयो में। २. उच्च स्तर। ३. लालसा, आवश्यकता। ४. धर्म। ५. खत (पत्र) का ब० व०।

हरदेवसिंह को दिये और मुझसे मुजरा न लिए। वहरहाल हुण्डवी १२ दिन की मयादी थी। ६ दिन गुजर गए थे, ६ दिन वाकी थे। मुझको सब्र कहाँ ? मित्ती काट कर रुपए ले लिए। कर्ज मुतफर्रिक सब अदा हुआ। वहुत सुवुकदोश हो गया। आज मेरे पास '४७' नक्द बक्स मे और चार बोतल शराब की और ३ शीशे गुलाब के तोशाख़ाने में मौजूद है। अलहम्दुलिल्लाह अलाएहसानेही[1]। भाई साहब आ गए हों तो मीर कासिम अलीखाँ का खत उनको दे दो और मेरा सलाम कहो और फिर मुझको लिखो ताके मैं उनको खत लिखूँ। बाबू-साहब भरतपूर आजाएँ तो आप काहिली न कीजिएगा और उनके पास जाइएगा के वो तुम्हारे जोयाए[2] दीदार है।

सेशम्बा १४ जून १८५३ ई०। असदुल्लाह

१८

(२१ अगस्त १८५३)

भाई,

मैंने माना तुम्हारी शायरी को। मैं जानता हूँ के कोई दम तुमको फिक्रे[3] सुख़न से फुर्सत न होगी, पर जो तुमने इल्तेजाम किया है, तरसीअ[4] की सनद का और दो लख़्त शेर लिखने का, इसमें जरूर निशिस्त माने भी मलहूज[5] रखा करो, और जो कुछ लिखो उसको दो बारा से बारा[6] देखा करो। क्यों साहब, य डबल खत पोस्ट पेड भेजना, और वो भी दिल्ली से सिकन्दरावाद को, आया हातिम के सिवा और मेरे सिवा, किसी ने किया होगा ! क्या हँसी आती है तुम्हारी बातो पर ! ख़ुदा तुमको जीता रखे और जो कुछ तुम चाहो तुमको दे। जानीजी की वडी फिक्र है। मैं तुमको लिखा चाहता था के उनका हाल लिखो।

---

१. भगवान का धन्यवाद, उसकी बडी कृपा है। २. देखने के इच्छुक। ३. कविता का चिन्तन। ४. अन्त्यानुप्रास। ५. लिहाज रखना। ६. तीसरी बार।

तुम्हारे खत से मालूम हुआ के तुमको भी नही मालूम के वो कहाँ है। यकीन है के अजमेर मे होगे, मगर खत नही भेजा जाता, के वो वहाँ मुकीम नही है। खुदा जाने कब चल निकले। बहरहाल तुम भरतपूर से करीब हो और उनके मुतवस्सिलो[1] को जानते हो। अगर हो सके तो किसी को लिख कर खबर मँगवाओ और जो कुछ तुमको मालूम हो, वो मुझको भी लिखो। मुंशी साहब मय मुंशी अब्दुल लतीफ कोल मे आ गए। कल उनका खत मुझको आया था, आज उसका जवाब भी रवाना कर दिया।

एक शम्बा, २१ माहे अगस्त १८५३ ई०।

असदुल्लाह

१९

साहब,

दूसरा पार्सल, जिसको तुमने बतकल्लुफ खत बनाकर भेजा है, पहुँचा। न इस्लाह की जगह, न तहरीरे सुतूर[2] का पेचोताब[3] समझ मे आता है। तुमने अलग-अलग दो वर्के पर क्यो न लिखा? और छिदरा छिदरा क्यो न लिखा? एकाध दो वर्का ज्यादा हो जाता तो हो जाता। बहरहाल अब मुझे चुनने पडे है सवालात। अगर कोई सवाल मेरी नजर न चढे और रह जाए तो सुतूर की मोड तोड का गुनाह समझना, मेरा कुसूर न जानना।

'बिला रुबा ए' इसमे ताम्मुल[4] क्या है? लफ्ज सही और पूरा तो यही है, रुबा इसका मुरक्कफ[5] है।

[6]खार हा दर राहश अफशानम के चूँ खाहद शुदन, बहुत खूब और माकूल।

---

१. सम्बन्धी। २. पंक्तियो का। ३. उलझन। ४. सोच-विचार। ५. सक्षिप्त। ६. उसके रास्ते मे काँटे बिछाना चाहता हूँ, तथास्तु।

मै उस वक्त ख़ुदा जाने किस ख़याल मे था 'चूँ ख़ाहद शुदन' व 'कुनूँ ख़ाहद शुदन' रदीफ व काफिया समझा था।

लफ्ज 'बेपीर' तो तूरानी[1] बच्चा हाय हिन्दी नजाद[2] का तराशा हुआ है। जब मै अशार उर्दू मे अपने शागिर्दो को नही बाँधने देता तो तुमको शेरे फारसी मे क्यो कर इजाजत दूँगा ? मिर्जा जलाले 'असीर' अलइर्रहमा[3] मुख़्तार है और उनका कलाम सनद है। मेरी क्या मजाल है के उनके बाँधे हुए लफ्ज को गलत कहूँ ? लेकिन ताज्जुब है और बहुत ताज्जुब है के अमीर-जादए ईरान ऐसा लफ्ज लिखे।

'शिस्त वस्तन' जब जहूरी के हाँ है तो बाँधिए। ये रोजमर्रा है और हम रोज़मर्रा मे उनके पैरो है।

'बेपीर' एक लफ्ज टकसाल बाहर है, वर्ना साहबे जबान होने मे असीर भी जहूरी से कम नही।

जाहिदा ई सुख़नत हर्ज़ा के गुफ्ती चे शुदी
हक गफूरस्त गुनाहे शुदाअम ता चे शवद[4]

पहले जाहिद से ये ये सवाल गलत के 'चे शुदी'[5] 'तरा[6] चे शुद' सवाल हो सकता है, फिर 'गुनाहे शुदा अम[7]' ये जवाब मुहम्मल। 'गुनाहे[8] कर्दा अम' जवाब हो सकता है। यहाँ तुम कहोगे के 'हमा[9] तन गुनाह' या 'सरापा[10] गुनाह' या 'ससासर गुनाह शुदा अम' ये जवाब उस जवाब से सरासर बेरब्त है। जब तक 'हमा तन गुनाह' न हो माने नही बनते हर्गिज़ हर्गिज़। इस्लाह

---

१. ईरानी। २. जो बालक भारत मे उत्पन्न हुए है। ३. उन पर ईश्वर की कृपा हो।४. हे धार्मिक व्यक्ति, तुम्हारी ये बाते निरर्थक है। मुझसे जो अपराध होते है, ईश्वर उन्हे क्षमा कर देता है। ५. क्या हुआ ? ६. तुझे क्या हुआ ? ७. मुझसे पाप हुआ है, ८. मैने पाप किया। ९. सिर से पाँव तक अपराध। १०. नख से शिख तक अपराध।

दिए हुए शेर मे मजमून तुम्हारा ही रहा और टकसाल के माफिक हो गया। अजब है तुम से के सिर्फ 'शुदा अम' और 'ता चे शवद' के पैबन्द मे उलझ कर हकीकते माना[1] गाफिल रहे।

वा जारे दिल खुदज चुनीकार आजार चे मी कुनी दिल मरा।[2]

अहली ने जवर्दस्ती की है। मगर हाँ उसने एक वजह ठहराली है याने 'अजुर्दन' मसदर और 'आजारुद' मजारे और 'आजार' अम्र। अम्र बमाने इस्मे जामिद आता है और इस्मे जामिद '५ रदन' के साथ पैबन्द पाता है। खैर रहने दो।

कुनद आँ आहू ए वहशी ज वरम फरमादारम[3]

ये शेर मोय्यद मेरे कलाम का है। 'वरदारम' व 'जरदारम' व 'सरदारम' व 'फरदारम' ये सब अल्फाज एक तरह के है, अलिफे ममदूद कही नही, हाँ 'वूदारद' व 'रूदारद' व 'फरूदारद' तुम्हारे अकीदे की ताईद करता है मगर ये शेर उस्ताद का नही। मशायक[4] मे से एक बुजुर्ग थे मौलाना अलाउद्दीन, "मा[5] मुकीमाने कुए दिल दारेम" ये तरजी बन्द उन्ही का है। उनको फक्रो[6] फ़ना व सैरो सुलूक[7] मे समझना चाहिए, न अन्दाजे[8] कलाम मे।

'परे[9] मोरस्त शमशीरे के बर मूए मियाँ दारद'

भाई, खुदा की कसम ये मिसरा तलवार की नाजुकी की सनद नही हो सकता। ये तो एक मज़मून है कमर-मोर, व तलवार-परेमोर। वजह तशबीह[10]

---

१ वास्तविक तात्पर्य। २ अपनी करुण प्रार्थना से तुम मुझे क्या कष्ट देना चाहते हो ? ३. वह जगली हिरन मेरे पास से अवश्य भागेगा। ४. गुरु वृन्द। ५. प्रेम की गली मे रहते है। ६. चिन्तन-ध्यान। ७. मुमुक्षु। ८. कविता की शैली। ९. जिस तरह पर का सम्बन्ध चीटी से है उसी तरह तलवार का सम्बन्ध कटि से है। १०. उपमा।

बाद इफाकत होने के तुम मुझको इत्तला करने मे देर न करना, मेरा ध्यान लगा हुआ है।

बाबू साहब का खत आया था। फिर उन्होने तकलीफ की और वो कुछ भेजा जो आगे भेजा था। तुम्हारी मुफारिकत[1] से बहुत मलूल[2] हूँ। तर्जे तहरीर से फिरावानी[3] मुहब्बत मालूम होती थी। मैने उनको लिख भेजा है के मुशी जी गए नही। जरूरत को क्या करे ? जल्द फिर आएँगे। आप उनको अपने पास ही तसव्वुर फरमाइए। बाबू हरगोविन्द सिह तातील मे कोल गए होगे, जो आपके खत मे उनकी बन्दगी लिखी आई। क्यो उन्होने तकलीफ की ? बहमा-जहत[4] दो सौ कदम पर मेरे से उनका मकान, और वो जाते वक़्त मुझसे रुखसत न हो गए, अब बन्दगी-सलाम क्या ज़रूर ?

हॉ साहब, ये तुमने और बाबू साहब ने क्या समझा है के मेरे खत के सर-नामे पर 'इमली के मुहल्ले' का पता लिखते हो। मै 'बल्लीमारो' मे रहता हूँ। 'इमली का मुहल्ला' यहाँ से बेमुबालिगा[5] आध कोस है। वो तो डाक के हर-कारे मुझको जानते है, वर्ना खत हिरजा[6] फिरा करे। आगे काले साहब के मकान मे रहता था, अब बल्लीमारो मे किराए की हवेली मे रहता हूँ। इमली का मुहल्ला कहाँ और मै कहाँ ?

मुशी जी को लिखते हो के हाकिम के साथ गए है और फिर लिखते हो के न दौरे मे बल्के अपने काम को। बहर सूरत अब आ गए होगे ? मेरा सलाम कहिएगा और अपनी खैरो आफियत के साथ उनकी मुआविदत[7] की खबर लिखिएगा वर्ना मुझको खत लिखने मे ताम्मुल रहेगा।

'नजर शिगुफ्तन[8]' व 'गोश शिगुफ्तन[9]' हम नही जानते। अगर चे मुशी हरगोपाल 'तफ्ता' और मौलाना 'नूरुद्दीन जहूरी' ने लिखा हो।

---

१. वियोग। २. दुखी। ३. आधिक्य। ४. इसी तरह। ५. निस्सन्देह। ६. व्यर्थ। ७. वापसी। ८. दृष्टि उन्मीलित होना। ९ कान उन्मीलित होना।

नज़्जारा रा जे ख़ूने दिलम् गुल दरास्ती ख़ूनश मगो के ज चश्मम् चमन चकीद[1]।

ये न समझना के 'चमन अज चश्मे चकीदन', 'शिगुफ़्तने गोशो नजर' के मानिन्द गराबत[2] रखता है। ये "ख़ूँ फिशानी-ए-चश्म" का इस्तेआरा[3] है और 'ख़ूँ फशानी' सिफते चश्म[4] हो सकती है। अगर नजर का ख़ुश होना और कान का शाद होना जायज होता तो हम उसका इस्तेआरा बाशिगुफ़्तगी[5] कर लेते। ख़ुश होना, जब सिफ़्ते चश्म व गोश न हो तो हम क्या करें?

याद रहे ये नुकात सिवा तुम्हारे और को मैं नही बताता। मेरी बात को गौर कर के समझ लिया करो। मैं पूछने से और तकरार से नाख़ुश नही होता, बल्के ख़ुश होता हूँ। मगर हाँ, ऐसी तकरार जैसी 'बेश' और 'बेशतर' के बाब मे की थी, नागवार गुजरती है, के वो सरीह तोहमत[6] थी मुझ पर जो मैं आप लिखूँगा, तुमको उसके लिखने को क्यो मना करूँगा?

ऐ[7] सद हजार राजे निहाँ अन्दरी सुख़न
गर कम सुख़न तु इ निगहत कम सुख़न मबाद
हर[8] चे बा नफ़्से ख़ुद कुनम् जे बदी
नेकियश नाम मी तवानम कर्द

ये दोनो शेर बे सुक़्म है। रहने दो।

---

१. मेरे हृदय के रक्त के पुष्प अपने साथ दृश्य लिए हुए है, किन्तु तुम अब उसे रक्त मत कहो। कहो, मेरे नेत्रो से उद्यान टपका है। २. सम्बन्ध। ३ रूपक। ४. आँख का विशेषण। ५. प्रसन्नतापूर्वक। ६. स्पष्ट आक्षेप। ७. इस बात मे सहस्त्रो रहस्य छिपे हुए है—"तुम अधिक नही बोलते तो कोई बात नही, किन्तु तुम्हारी दृष्टि का क्षेत्र सकीर्ण न होना चाहिए। ८. मैंने अपनी भावनाओ अथवा लालसाओ के साथ जो बुराई की है उसका नाम नेकी रख सकता हूँ।

तीसरी दो तरह पर है—या ए मसदरी, और वो मारूफ होगी, दूसरी तरह-तौहीद व तनकीर। जो मजहूल होगी। मसलन मसदरी—'आशनाई'। यहाँ हमजा जरूर बल्के हमजा न लिखना अक्ल का कुसूर। तौहीदी-आशनाए याने एक आशना या कोई आशना। यहाँ जब तक हमज़ा न लिखोगे दाना न कहाओगे।

'नीम गुनाह' व 'नीम निगाह' व 'नीमनाज' ये रोज[1] मर्रे ए अहले जबा है। 'नीम' बमाने अन्दक, वर्ना 'गुनाह का आधा' और 'निगाह की अधवा और 'नाज़ आधा' ये मुहमिलात में है। इन चीजों का मुनासिफा[2] क्या अगर तुमको नीम गुनाह पसन्द नही, 'ताजा गुनाह' रहने दो। खस्ता, बस्त ताज़ा, गाज़ा, खाना, दाना, आवारा, बेचारा, रोजा, बोजा, हजार लफ्ज है उनके आगे जब या ए तौहीद आती है तो उसकी अलामत[3] के वास्ते हमज लिख देते है। ज़िरह, गिरह, कुलाह, शाह, आगाह, आगह, सुबहगाह, सुबहगह ऐसे अल्फाज़ के आगे अगर तहतानी आती है तो ज़िरहे, गिरहे, कुलाहे, शाहे आगाहे, आगहे, गाहे, गहे लिख देते है।

—गालिब

२३

(१३ जनवरी १८५४)

दीदमस्त ये लफ्ज नया बनाया है। मकसूद तुम्हारा मैंने तो समझ लिया है, मगर जिन्हार और कोई न समझेगा। "अलमाना[4] फी बतनेल कायल" के यही माने है। 'चश्माने पुर खुमार' व 'चश्माने बेहया', इन दोनो तरकीबो में से एक लिख लो। इन सब अशआर में न ऐब न लुत्फ। देखो साहब, खत में

१ भाषाविज्ञो की व्यावहारिक भाषा। २. समान (दो टुकडे)। ३. चिन्ह। ४. बोलने वाला अपना अर्थ स्वयं समझे।

मुंशी हरगोपाल तफ़्ता के नाम,

तुम फिर वही 'बेश' व 'बेशतर' का किस्सा लाए हो, 'चे जुर्म' व 'चे गुनाह' पर जो सनद लाते हैं।

इश्कस्तो[1] सदा हज़ार तमन्ना मरा चे जुर्म

इसकी हाजत क्या है? 'जानाँ मददे', 'याराँ मददे' ये तमाम गज़ल इसी तरह की हैं। अगर ये तरकीब दुरुस्त न होती तो मैं सारी गजल क्यो न काट डालता?

देखो रफी उस्सौदा[2] कहता है—

न जरर कुफर को न दीन को नुक्साँ मुझ से
बाअसे दुश्मनी ऐ गब्रो मुसलमा मुझ से

गालिब कहता है—

मुझ तक कब उनकी बज़्म में आता था दौरे जाम
साकी ने कुछ मिला न दिया हो शराब मे

याने अब जो दौर मुझ तक आया है तो मै डरता हूँ, ये जुमला सारा मुकद्दर[3] है। मेरा फारसी का दीवान जो देखेगा वो जानेगा के जुमले के जुमले मुकद्दर छोड जाता है, मगर—

हर[4] सुखन वक्ते व हर नुक्ता मकाने दारद
ये फर्क अलबत्ता बजदानी[5] है, बमाना[6] नही।

---

१. प्रेम मे सहस्रो लालसाएँ होती है, इसमे मेरा क्या अपराध! २. उर्दू का प्रसिद्ध कवि-सौदा। ३. पद मे शब्द का प्रयोग न हो, किन्तु प्रसग और वाच्यार्थ से उस शब्द का अस्तित्व ज्ञात हो। एक प्रकार की काकूक्ति। ४. प्रत्येक बात के लिए एक निश्चित अवसर होता है। प्रत्येक नुक्ते का एक स्थान है। ५. निरर्थक। ६. अर्थ सहित।

अगर[1] दरयाफ्ती, बरदानिशत बोस
वगर गाफिल शुदी अफसोस अफसोस !

रोज़े जुमा, १३ जनवरी १८५४ ई०   -   अज़-असदुल्ल

२४

(२ मार्च १८५४)

बन्दा परवर,

एक मेहरबानी नामा सिकन्दराबाद से और एक अलीगढ से पहुँचा यकीन है के बाबूसाहब तुम्हारे खत के जवाब मे कुछ हाल लिखेगे और तु माफिक अपने वादे के मुझको लिखोगे । अब जब उस खत का जवाब तुम्हा पास से आएगा तब तुम्हारे अशार तुमको पहुँचेगे । हाय हाय, मीर तफज्जु हुसेनखा हाय हाय !

रफ्ती[2] व मरा खबर न करदी
वर बेकसीयम नज़र न करदी

यहाँ य सुना गया है के मीर अहमद हुसेन, बड़ा बेटा उनका, उन काम पर मुकर्रर हुआ और मीर इर्शाद हुसेन बदस्तूर नायब रहे ।

२३ फरवरी सन् १८५४ ई०   —असदुल्ला

२५

(२ मार्च १८५४)

मुंशी साहब,

तुम्हारा खत उस दिन, याने कल बुध के दिन, पहुँचा के मै चार दिन से लरज़े में मुब्तिला हूँ और मज़ा ये है के जिस दिन से लरज़ा चढा है, खान

१. यदि तुम समझ गए हो तो अपनी बुद्धि से प्यार करो, यदि तुम असावधान रहे तो दुख है, दुख है। २. तुम चले गए और मझे खबर नहीं की, मेरी विवशता पर कोई विचार नही किया !

ुतलक मैंने नही खाया। आज पजशबा पाचवॉ दिन है के न खाना दिन को मयस्सर है और न रात को शराब। हरारत[1] मिजाज मे बहुत है, नाचार अहतराज[2] करता हूँ। भाई इस लुत्फ को देखो के पाचवां दिन है खाना खाए। हरगिज भूक नही लगी और तबियत गिजा की तरफ मुतवज्जह नही हुई। बाबूसाहब वाला मनाकिब[3] का खत तुम्हारे नाम का देखा, अब उस इरसाल मे वो आसानी न रही और बन्दा दुशवारी से भागता है। क्यो तकलीफ करे? और अगर बहरहाल, उनकी मर्जी है तो खैर, मै फरमॉ[4] पिज़ीर हूँ। अशारे[5] साबिक व हाल मेरे पास अमानत है। बाद अच्छे होने के उनको देखूँगा और तुमको भेज दूँगा। इतनी सतरे मुझसे बहजार[6] जर्रे सकील लिखी गई है।

ेज पजशबा, २ मार्च सन् १८५४ ई०

—असदुल्लाह

२६

(जुलाई १८५४)

मेरा सलाम पहुँचे।

खत और कागजे अशार पहुँचा। साबिक व हाल अभी सब यो ही धरे रहेगे। अगरचे गर्मी रफा हो गई, मेह बरसने लगे, हवा ए सर्द चलने लगी, मगर दिल मुकद्दर[7] है और हवास ठिकाने नही। बादशाह का कसीदा सारा और वली अहद[8] का कसीदा बेखात्मा[9] आगे से कह रखा था, उसका खात्मा

---

१. गर्मी। २. परहेज। ३. प्रतिष्ठित। ४. आज्ञापालक। ५. पहले की कविताएँ। ६ क्रेन (सामान उठाने वाला)। ७. विषण्ण। ८ युवराज। ९ अपूर्ण।

बहजार मशक़्क़त रमजान मे कह लिया और ईद को दोनो पढ दिए। भाई मुशी नबी बख्श साहब को परसो या अतरसो भेजूँगा। उनसे लेकर तुम भी देखना। मैंने उनको लिखकर भेजा है के मुशी हरगोपाल साहब को भी देना के वो पढ ले और चाहें तो नकल कर ले। इसके सिवा और जो कुछ तुम्हारे खत मे लिखा था वो जवाब तलब नही और यो ही है जो तुम समझे हो।

—असदुल्लाह

२७

साहब,

दीवाचा व तकरीज का लिखना ऐसा असान नही है के जैसा तुमको दीवान का लिख देना। क्यो रुपया खराब करते हो और क्यो छपवाते हो? और अगर यो ही जी चाहता है, तो अभी कहे जाओ, आगे चल कर देख लेना। अब ये दीवान छपवाकर और तीसरे दीवान की फिक्र मे पडोगे। तुम तो दो चार बरस मे एक दीवान कह लोगे, मै कहाँ तक दीबाचा लिखा करूँगा? मुद्दआ ये है इस दीवान को उस दीवान के बराबर हो लेने दो। अब कुछ कसीदा व रुबाई की फिक्र किया करो। दो चार बरस मे इस किस्म से जो कुछ फराहम हो जाए, दूसरे दीवान मे उसको भी दर्ज करो।

साहब, जहाँ तक्ती[1] में अलिफ न समाये वहाँ क्यो लिखो?

—असद

२८

५ दिसम्बर १८५७

साहब,

तुम जानते हो के ये मामला क्या है और क्या वाकै हुआ? वो एक जनम था के जिसमें हम बाहम दोस्त थे और तरह तरह के हममें तुममें

---

१. परिच्छेद, आकार।

मामलाते मेहरो मुहब्बत दरपेश आये। शेर कहे, दीवान जमा किए। उसी जमाने मे एक और बुजुर्ग थे के वो हमारे तुम्हारे दोस्त दिली थे और मुशी नबीबख्श उनका नाम और 'हकीर' तखल्लुस[1] था। नागाह, न वो जमाना रहा, न वो अशखास,[2] न वो मामलात, न वो एख्तलात,[3] न वो इन-बिसात[4]। बाद चन्द मुद्दत के फिर दूसरा जनम हमको मिला। अगरचे सूरत इस जनम की बेऐनेही[5] मिस्ल[6] पहले जनम के है यानें एक खत मैंने मुंशी नबी-बख्श साहब को भेजा, उसका जवाब मुझको आया और एक तुम्हारा के तुम भी मौसूम[7] बमुंशी हरगोपाल व मुतखल्लस[8] ब 'तफ्ता' हो, आज आया। और मै जिस शहर मे हूँ, उसका नाम भी दिल्ली और उस मुहल्ले का नाम 'बल्ली-मारो का मुहल्ला' है, लेकिन एक दोस्त उस जनम के दोस्तो मे से नही पाया जाता! वल्लाह! ढूँढने को मुसलमान इस शहर मे नही मिलता! क्या अमीर क्या गरीब, क्या अहले[9] हिर्फा। अगर कुछ है, तो बाहर के है। हुनूद[10] अलबत्ता कुछ कुछ आबाद हो गये है। अब पूछो के तू क्यों कर मसकने[11] कदीम मे बैठा रहा। साहबे बन्दा, मै हकीम मुहम्मद हसन खाँ मरहूम[12] के मकान मे नौ दस बरस से किराए को रहता हूँ और यहाँ करीब क्या बल्के दीवार ब दीवार है घर हकीमो के, और वो नौकर है राजा नरेन्द्रसिंघ बहादुर वाली[13] ए-पटि-याला के। राजा ने साहबाने आलीशान से अहद[14] ले लिया था के बरवक्त[15] गारते देहली ये लोग बच रहे। चुनाचे बादे फतह[16] राजा के सिपाही आ बैठे और ये कूचा महफ़ूज रहा, वरना मैं कहाँ और ये शहर कहाँ? मुबालिगा[17]

---

१. काव्यनाम। २. शख्स (ब० व०)। ३. मेल मिलाप। ४ प्रसन्नता। ५. यथापूर्व, ठीक ठीक। ६. समान। ७. नामवाला। ८. काव्यनाम वाला। ९. दस्तकार, उद्योग धंदो मे लगे हुए व्यक्ति। १०. हिन्दू (ब० व०) ११. पुराना निवास-स्थान। १२. स्वर्गीय। १३. पटियाला नरेश। १४. वचन। १५. दिल्ली के विध्वंस के समय। १६ विजय के पश्चात्। १७. अत्युक्ति, अतिरंजन।

न जानना, अमीर-गरीब सब निकल गए। जो रह रहे थे, वो निकाले गए। जागीरदार, पिन्सनदार, दौलतमन्द, अहले हिर्फा कोई भी नही है। मुफस्सल हाल लिखते हुए डरता हूँ। मुलाजिमाने किला पर शिद्दत[१] है और बाजपुर्स[२] दारोगीर मे मुब्तिला है, मगर वो नौकर जो इस हगामे मे नौकर हुए है और हङ्गामे मे शरीक रहे है, मै गरीब शायर दस बरस से तारीख लिखने और शेर की इसलाह देने पर मुताल्लिक[३] हुआ हूँ। खाही[४] उसको नौकरी समझो, खाही मजदूरी जानो। इस फितना[५] व आशोब मे किसी मसलिहत मे मैने दखल नही दिया। सिर्फ अशार की खिदमत बजा लाता रहा और नजर अपनी बेगुनाही पर। शहर से निकल नही गया। मेरा शहर मे होना हुक्काम[६] को मालूम है, मगर चूँके मेरी तरफ बादशाही दफ्तर मे से या मुखबिरो[७] के बयान से कोई बात पाई नही गई, लिहाजा तलबी नही हुई। वर्ना जहाँ बडे-बडे जागीरदार बुलाए हुए या पकडे हुए आए है मेरी क्या हकीकत थी। गरज के अपने मकान बैठा हूँ, दरवाज़े से बाहर नही निकल सकता। सवार होना और कही जाना तो बहुत बडी बात है। रहा ये के कोई मेरे पास आवे, शहर मे है कौन जो आवे ? घर के घर बेचिराग[८] पडे है। मुजरिम[९] सियासत[१०] पाते जाते है। जनरैली[११] बदोबस्त याजेदहुम[१२] मई से आज तक याने शबा पजुम दिसम्बर १८५७ ई० तक बदस्तूर है। कुछ नेको बद का हाल मुझको नही मालूम, बल्के हनोज[१३] ऐसे उमूर की तरफ़ हुक्काम को तवज्जह भी नही। देखिए, अजामेकार क्या होता है ? यहाँ बाहर से अन्दर कोई बगैर टिकट के आने-जाने नही पाता। तुम जिन्हार[१४] यहाँ का इरादा न करना। अभी देखा चाहिए मुसलमानो की आबादी का हुक्म होता है या नही। बहरहाल, मुशी साहब को मेरा सलाम

---

१. आधिक्य। २. पूछताछ। ३ सम्बन्धित। ४. चाहे। ५. सघर्ष और क्रान्ति। ६. हाकिम (अधिकारी) ब० व०। ७. समाचार देने वाला मुखबिर। ८. निर्दोष। ९. अपराधी। १०. दड। ११. मार्शल्ला। १२. ग्यारहवी। १३. अभी। १४. सर्वथा, कभी।

कहना और खत दिखा देना। इस वक़्त तुम्हारा खत पहुँचा और इसी वक्त मैंने ये खत लिख कर डाक के हरकारे को दिया।

शंबा ५ दिसम्बर १८५७ ई०

२९

(३० जनवरी १८५८)

आज शनीचरवार को दोपहर के वक्त डाक का हरकारा आया और तुम्हारा खत लाया। मैंने पढा और जवाब लिखा और कल्यान को दिया। वो डाक को ले गया। खुदा चाहे तो कल पहुँच जाए। मैं तुमको पहले ही लिख चुका हूँ दिल्ली का कस्द क्यों करो और यहाँ आकर क्या करोगे? बङ्क घर मे से, खुदा करे, तुम्हारा रुपया मिल जाए।

भाई, मेरा हाल ये है के दफ्तरे शाही मे मेरा नाम मुन्दर्ज नही निकला। किसी मुखबिर ने बनिस्बत मेरे कोई खबर बदरखाही[1] की नही दी। हुक्कामे वक्त मेरा होना शहर मे जानते है। फरारी नही हूँ। रूपोश नही हूँ। बुलाया नही गया। दारोगीर[2] से महफूज हूँ। किसी तरह की बाजपुर्स[3] हो तो बुलाया जाऊँ। मगर हाँ, जैसा के बुलाया नही गया खुद भी ब रू ए कार[4] नही आया। किसी हाकिम से नही मिला। खत किसी को नही लिखा। किसी से दरखास्ते मुलाकात नही की। मई से पिन्सन नही पाया। कहाँ ये नौ-दस महीने क्यो कर गुज़रे होगे। अजाम कुछ नजर आता नही के क्या होगा? जिन्दा हूँ, मगर जिन्दगी वबाल है। हरगोविन्द सिंघ यहाँ आए हुए है। एक बार मेरे पास भी आये थे। वद्दुआ।

रोजे शबा सिअम[5] जनवरी १८५८ ई० वक़्ते नीमरोज़[6]। —ग़ालिब

१. बुराई। २. पूछताछ। ३. जाँच पडताल ४. काम मे। ५. ३०। ६. मध्याह्न।

३०

(३ फरवरी १८५८)

अज उम्रो[1] दौलत बरखुरदार बाशिन्द,

बुध का दिन, तीसरी तारीख़ फरवरी की, डेढ पहर दिन बाकी रहे, डाक का हरकारा आया और खत मय रजिस्ट्री लाया। खत खोला, सौ रुपए की हुण्डवी, बिल जो कुछ कहिए, वो मिला। एक आदमी रसीदे मुहरी लेकर 'नील के कटरे' चला गया। सौ रुपए चेहर-ए[2] शाही ले आया। आने जाने की देर हुई और बस। चौबीस रुपए दारोगा की मारफत उठे थे, वो दिए गए, पचास रुपए महल मे भज दिए गए। २६ रुपए बाकी रहे, वो बक्स में रख लिए। रुपए के रखने के वास्ते बक्स खोला था सो ये रुक्का भी लिख लिया। कल्यान सौदा लेने बाजार गया हुआ है। अगर जल्द आ गया तो आज, वर्ना कल ये खत डाक मे भेज दूंगा। खुदा तुमको जीता रखे और अजर[3] दे। भाई, बुरी आ बनी है। अजाम अच्छा नज़र नही आता। किस्सा मुख्तसर ये के किस्सा तमाम हुआ।

चार शबा, ३ फरवरी सन् १८५८ ई० वक़्त दोपहर

—ग़ालिब

३१

(५ मार्च १८५८ ई०)

साहब,

तुमने लिखा था के मै जल्द आगरे जाऊँगा तुम्हारे उस खत का जवाब न लिख सका। जवाब तो लिख सकता था मगर कल्यान का पाँव सूज गया था।

१. आयु, सम्पत्ति और सन्तति प्राप्त हो। २. ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रचलित रुपया। ३. पुण्य फल।

वो चल नही सकता था। मुसलमान आदमी शहर मे सडक पर बिना टिकट फिर नही सकता। नाचार तुमको खत न भेज सका। बाद चन्द रोज के जो कहार अच्छा हुआ तो मै तुमको आगरे मे समझकर सिकन्दराबाद खत न भेज सका। मौलवी कमरुद्दीन खाँ के खत मे तुमको सलाम लिखा। कल उनका खत आया, वो लिखते है के मिर्जा तफ्ता अभी यहाँ नही आए, इस वास्ते आज ये रुक्का तुमको भेजता हूँ। मेरा हाल बदस्तूर है। देखिए, खुदा को क्या मजूर है, हाकिमे[1] अकबर ने अगर कोई नया बन्दोबस्त जारी नही किया। ये साहब मेरे आशना-ए-कदीम[2] है, मगर मै मिल नही सकता। खत भेज दिया है। हनोज कुछ जवाब नही आया। तुम लिखो के अकबराबाद कब जाओगे। वद्दुआ।

जुमा, ५ मार्च सन् १८५८ ई०

—ग़ालिब

३२

(६ मार्च १८५८)

जानेमन[3] व जानाने मन,

कल मैने तुमको सिकन्दराबाद मे समझकर खत भेजा। शाम को तुम्हारा खत आया। मालूम हुआ के तुम अकबराबाद पहुँचे। खैर, वो खत पोस्ट पेड गया है। शायद उल्टा न फिरे। अगर फिर आएगा तो खैर ये खत तुमको अकबराबाद भेजता हूँ। पहुँचने पर जवाब लिखना। तक्ती रुबाई की बहुत खूब। मगर खैर हरेक बात का एक वक्त है। हमको हर तरह लुत्फे[4] सोहबत और लुत्फे[5]—

---

१. सर्वोच्च अधिकारी। २. पुराने परिचित। ३. मेरे प्राण, मेरे प्रिय। ४. सत्संग का आनन्द। ५. कविता का आनन्द।

शेर उठा लेना। भाई मुंशी नबीबख्श साहब के नाम का खत पढकर उनको दे देना और उसका मजमून मालूम कर लेना। जिस हाकिम को मैंने खत और कता भेजा ह, उसके सरिश्तेदार कोई साहब हैं, मनफूल उनका नाम है, मुझसे नाआशना[1] ए महज है। अगर तार्रुफ[2] होता तो इस्तेदुआ करता के उस तहरीर को पेश कीजिए। काश तुमसे आशनाई होती, तो तुम्हे ऊपर ऊपर खत लिख कर उनको भेज देते के गालिब एक फकीरे[3] गोशानशी और बेगुनाहे महज और वाजिबुर्रहम[4] है, उसके हुसूले[5] मतालिब मे सई[6] से दरेग न करना।

मी[7] तुआँ आवुर्द इस्तेग्ना सिफारिश नाम ए
चर्खे कजरौ रा अगर दानेम कज याराने कीस्त

बाकी जो हाल है वो भाई के नाम के वर्क मे लिख चुका हूँ। तुम पढ लोगे। दुबारा लिखना क्या जरूर।

गवा, ६ मार्च १८५८ ई०।

जवावतलव।

३३

(१२ मार्च १८५८)

साहब, तुम्हारी सआदतमंदी को हजार-हजार आफरी, तुमको यो ही चाहिए था, लेकिन मैंने तो एक बात बतरीके तमन्ना लिखी थी, जैसा के अरबी में 'लैता'[8] और फारसी में 'काश के'[9]।

---

१. सर्वथा अपरिचित। २. परिचय। ३. एकांतवासी साधु। ४ दया पात्र। ५. मनोरथ प्राप्ति। ६. प्रयत्न। ७ यह टेढी चाल वाला आकाश किसका मित्र है यदि हमे यह मालूम हो जाय तो हमारी निश्चिन्तता उससे सिफारिश की चिट्ठी लिखा लाए। ८, ९. ईश्वर करे।

अब तुम रूदाद सुनो--अर्जी मेरी सरजान लारेन्स चीफ कमिश्नर बहादुर को गुज़री। उस पर दस्तख़त हुए के ये अर्जी मय कवागज[1] जमीमा सायल[2] के पास भेज दी जाए, और ये लिखा जाए के मारफत साहबे दिल्ली के पेश करो। अब सरिश्तेदार को लाज़िम था के मेरे नाम माफिक दस्तूर के ख़त लिखता। ये न हुआ। वो अर्जी हुक्म चढी हुई मेरे पास आ गई। मैंने ख़त साहब कमिश्नर देहली चार्ल्स साण्डर्स को लिखा और वो अर्जी हुक्म चढी हुई उसमे मलफूफ[3] करके भेज दी। साहब कमिश्नर ने साहब कलक्टर के पास ये हुक्म चढ़ाकर भेजी के सायल के पिन्सिन की कैफियत लिखो। अब वो मुकदमा साहब कलक्टर के यहाँ आया है। अभी साहब कलक्टर ने तामील उस हुक्मकी नही की। परसो तो उनके हाँ ये रूबकारी[4] आई है। देखिए कुछ मुझसे पूछते है या अपने दफ्तर से लिख भेजते है। दफ्तर कहाँ रहा है जो उसको देखेगे। बहरहाल, ये खुदा का शुक्र है के बादशाही दफ़्तर मे से मेरा कुछ शुमूल[5] फ़साद मे पाया नही गया, और मै हुक्काम के नज़दीक यहाँ तक पाक हूँ के पिन्सिन की कैफियत तलब हुई है और मेरी कैफियत का जिक्र नही है। याने सब जानते है के इसको लगाव न था। मौलवी कमरुद्दीन खाँ का 'कोल' न जाना और राह से फिर आना मालूम हुआ। हक ताला उनको ज़िन्दा और तन्दुरुस्त रखे। मेरा सलाम कहना और ये ख़त पढ देना। भाई मुंशी नबी बख्श साहब को सलाम और उनके बच्चों को दुआ कहना और ये ख़त ज़रूर जरूर पढा देना और कहना के भाई बिदायत[6] तो अच्छी है, निहायत[7] भी खुदा अच्छी करे। वो इज्जत और वो रब्तो ज़ब्त जो हम रईसज़ादो का था, अब कहाँ। रोटी का टुकडा ही मिल जाए तो गनीमत है। गवर्नरी कलकत्ता और गवर्नरी आगरा और एजण्टी व कमिश्नरी व दीवानी व फौजदारी व कलक्टरी

---

१. अतिरिक्त पत्र। २. प्रार्थी, प्रश्न कर्त्ता। ३. लिफाफ मे रखा हुआ। ४. कार्रवाही (अदालती)। ५. उत्पात मे भाग लेना। ६. आरम्भ। ७. अत।

देहली से जो हुक्म मेरे खत और अर्जी पर हुआ है, मुश्तमिल उस हुक्म पर खत मेरे नाम आया है। हाकिम ने अब भी यही हुक्म दिया था के लिखा जावे के यों करो। अमले ने खत न लिखा। सिर्फ वो अर्जी हुक्म चढ़ी हुई भेज दी। खैर,[1] हर चे अज दोस्त मी रसद नेकोस्त।

सुनो मिर्ज़ा तफ्ता, अब जो मैं अपना हाल तुमको लिखा करूँ, वो तुम मेरे भाई को और मौलवी कमरुद्दीन खाँ को दिखा दिया करो। तीन तीन जगह एक बात को क्यों लिखूँ ?

जुमा, १२ मार्च सन् १८५८ ई०।

३४

(१ अप्रैल १८५८)

साहब, क्यों मुझे याद किया ? क्यों खत लिखने की तकलीफ उठाई। फिर ये कहता हूँ के खुदा तुमको जीता रखे के तुम्हारे खत में मौलवी कमरुद्दीन खाँ का सलाम भी आया और मुंशी नबीबख्श की खैरो आफियत भी मालूम हुई। वो तो पिन्सन के फिक्र में थे। जाहिरा यों मुनासिब देखा होगा के नौकरी की खाहिश को। हक ताला उनकी जो मुराद[2] हो बर[3] लावे। उनको मेरा सलाम कह देना, बल्के ये रुक्का पढ़वा देना। मौलवी कमरुद्दीन खाँ को भी सलाम कहना। तुम अपने कलाम के भेजने में मुझ से पुरसिश क्यों करते हो ? चार जुज्व[4] हो तो, बीस जुज्व है तो, ३० जुज्व हो तो बेतकल्लुफ भेज दो। मैं शायरे[5] सुखन सज अब नहीं रहा। सिर्फ सुखन[6] फहम रह गया हूँ। बूढ़े

---

१ मित्र से जो कुछ मिले वह अच्छा है। २ वान्छा। ३. सफल करे। ४. फर्मा (छापा)। ५. कविता लिखने वाला कवि। ६. कविता समझने वाला।

पहलवान की तरह पेच बताने की गौ हूँ। बनावट न समझना। शेर कहना मुझसे बिल्कुल छूट गया। अपना अगला कलाम देख कर हैरान रह जाता हूँ के ये मैंने क्यो कर कहा था। किस्सा मुख़्तसर वो अजज़ा[1] जल्द भेज दो।

यकशंबा, ११ अप्रैल १८५८ ई०।

ग़ालिब

३४

(२५ अप्रैल १८५८)

मिर्ज़ा तफ़्ता,

अजब इत्तेफाक़[2] हुआ। पंजशंबे के दिन २२ अप्रैल को कल्यान ख़त डाक में डाल कर आया के उसके मुताक़िब[3] पार्सल का हरकारा आया और तुम्हारा भेजा हुआ पाकिट लाया। रसीद लिखनी मैंने ज़ायद समझी और उसका देखना शुरू किया। बेकारे[4] महज़ और तन्हा[5] हूँ, पाँच पहर का दिन, मेरी बडी दिल्लगी हो गई। ख़ूब देखा। सच तो यो है के इन अशार मे मैंने बहुत हज़[6] उठाया। जीते रहो। तुम्हारा दम ग़नीमत है। भाई का हाल मुफस्सिल लिखो। पिन्सन के तालिब हैं या नौकरी के? मुंशी अब्दुललतीफ कहाँ हैं और किस तरह हैं? इलाका बना हुआ है या जाता रहा? साहब लेफ्टेंट गवर्नरी का महकमा बिल्कुल इलाहाबाद को गया या हनोज़ कुछ यहाँ भी है? मुंशी ग़ुलाम गौस साहब कहाँ हैं? नौकर हैं या मुस्ताफी[7]? अदालते दीवानी का महकमा यहीं रहेगा या इलाहाबाद जाएगा? इसका और गवर्नरी के महकमे का साथ है, चाहे ये भी वहीं जावे।

---

१. अंश। २. संयोग। ३. पीछे। ४. सर्वथा निरर्थक। ५. एकाकी। ६. आनन्द। ७. जो त्यागपत्र दे चुका।

आज तुम्हारे अशार का कागज़ पम्फलेट पाकिट इसी खत के साथ डाक में भेजा गया है। यकीन है के ये ख़त कल-परसो और वो पाकिट पाँच-चार दिन में पहुँच जाए।

-ग़ालिब

३६

(३० अप्रैल १८५८ ई०)

साहब,

२५ अप्रैल को एक खत और एक पार्सल डाक मे इरसाल कर चुका हूँ। आज ३० है। यकीन है के खत और पार्सल दोनो पहुँच गए होगे। एक अमरे[1] जरूरी वायस[2] इस तहरीर[3] का है के जो मैं इस वक्त रवाना करता हूँ। एक मेरा दोस्त और तुम्हारा हमदर्द है। उसने अपने हकीकी भतीजे को बेटा कर लिया था। अठारह-उन्नीस बरस की उमर, कौम का खत्री, खूब सूरत, वज़ादार नौ जवान। सन् १२७३ हि० में बीमार पड कर मर गया। अब उसका बाप मुझसे अरज़ करता है के एक 'तारीख' उसके मरने की लिखूँ, ऐसी के वो फक्त 'तारीख' न हो बल्के मर्सिया हो के वो उसको पढ पढ कर रोया करे। सो भाई, उस सायल की खातिर मुझको अजीज़,[4] और फिक्रे[5] शेर मतरूक। माहाज़ा[6] ये वाकआ तुम्हारे हस्बे हाल है, जो खूँ चकाँ शेर तुम निकालोगे, वो मुझसे कहाँ निकलेंगे। बतरीके मसनवी बीस-तीस शेर लिख दो। मिसर-ए-आखिर मे माद्दा तारीख डाल दो। नाम उसका 'बिरजमोहन' था और उसको 'बाबू बाबू' कहते थे। चुनाचे मैं बहरे[7] हज़िजे मुसद्दस मखबून में एक शेर

---

१. आवश्यक कार्य। २. कारण। ३. लेख। ४. प्रिय। ५. कविता लिखना परित्यक्त। ६. अत। ७. एक छन्द।

तुमको लिखता हूँ। चाहो इसको आगाज में रहने दो और आइंदा इसी बहर मे और अशार लिख लो, चाहो कोई और तरह निकालो लेकिन ये खयाल में रहे के सायल को मुतवफ्फ[1] के नाम का दर्ज होना मंजूर है और बाबू बिरज-मोहन। सिवाय इस बहर के या बहरे रमल[2] के और बहर मे नही आ सकता। वो शेर मेरा ये है—

बरम[3] चूँ नामे बाबू बिरज मोहन
चकत खूने दिले रीश अजल बेमन

निगाश्ता रोजे जुमा, सियम अप्रैल १८५८ ई०।

—ग़ालिब

३७

भाई,

वो खत पहला तुमको भेज चुका था के बीमार हो गया। बीमार क्या हुआ तवक्को जीस्त[4] को न रही। कोलज[5] और फिर कैसा शदीद[6] के पाच पहर मुर्गेनीम[7] बिस्मिल की तरह तडपा किया। आखिर उसारा रेवन्द और अरडी का तेल पिया। उस वक्त तो बच गया मगर किस्सा[8] कता न हुआ। मुख्तसिर कहता हूँ मेरी गिजा तुम जानते हो के तन्दुरुस्ती मे क्या है। दस दिन मे दो बार आधी-आधी गिजा खाई। गोया दस दिन मे एक बार गिज़ा तनावुल[9] फरमाई। गुलाब और इमली का पन्ना, आलू बुखारा का अफशुर्दा, इस पर मदार रहा। कल से खौफे मर्ग[10] गया है और सूरत जीस्त की नजर

---

१. मृत। २ एक छन्द। ३. मैं बिरज मोहन का नाम लेता हूँ तो मेरे ओठो से दिल का खून टपकने लगता है। ४ जीवन। ५. पेट का दर्द। ६. अधिक। ७. आधा घायल पक्षी। ८. पूर्ण नही स्वस्थ हुआ। ९. भोजन। १०. मृत्यु का भय।

आई है। आज सुवह को वाद दवा पीने के तुमको ये खत लिखा है। यकीन तं है के आज पेट भर रोटी खा सकूँ।

साहव, वो जो मैंने वाईस शेर मर्सिये के लिखकर तुमको भेजे, उससे मक़सूद ये था के तुम अपने अशार दूसरे मातमजदा को दे दो। किस वास्ते वे तुम्हारी तहरीर से मालूम हुआ था के कोई और भी फलकज़दा[1] है। और यं जो तुमने न लिया इसका हाल ये है के वो शेर सव दस्तो[2] गरेवाँ थे, एक को एक से रब्त। एक या दो शेर उसमे से क्योकर लिए जाते? अशार सव मेरे पसन्द, वे सुक़म,[3] वे ऐव। वो जो तुम लिखते हो के—

"हर्फे[4] वावू विरजमोहन मी ज़नम"

और इसका दूसरा मिसरा मैं भूल गया हूँ। मगर काफिए मे 'मन' है ये शेर गालिव को बुरा मालूम हुआ होगा, वल्लाह विल्लाह! जव तक वे तुमने नही लिखा मेरे खयाल मे भी ये वात न थी। वहरहाल वात वही है जो मैं ऊपर लिख आया हूँ।

वारे, अव कहिए—भाई मुशी नवीवख्श साहव और मौलवी कमरुद्दीन-खाँ साहव, रोजो के मतवाले, होश मे आए या नही? आज दस शव्वाल[5] की है। शशह[6] ईद का भी ज़माना गुजर गया। खुदा के वास्ते उनकी खैरो आफि-यत लिखो और ये इवारत भाई साहव की नज़रे अनवर से गुज़रानो। शायद वो मुझको खत लिखे।

मुहर्रिरा व मुरस्सिलए दो शवा २४ मई सन् १८५८ ई०

—गालिब

---

१. ईश्वरीय विपत्ति का मारा। २. परस्पर सम्वद्ध। ३ निर्दोष। ४. वावू विरजमोहन के अक्षरो को मैं दुहराता हूँ। ५. रमज़ान के पश्चात् आने वाला मास। ६ पैंतीस दिवस रोजा रखने का विधान है। तीस दिन रमज़ान मे रोज़ा रखा जाता है। रमज़ान की मुख्य ईद के पश्चात पांच दिन रोज़ा है और एक छोटी ईद मनाई जाती है। इसी को शशह ईद कहते हैं।

३८

(१९ जून १८५८ ई०)

क्यो साहब,

मुझसे क्यो खफा हो? आज महीना भर हो गया होगा, या बाद दो-चार दिन के हो जाएगा, के आपका खत नही आया। इन्साफ करो कितना कसीरुल-अहबाब आदमी था। कोई वक़्त ऐसा न था के मेरे पास दो-चार दोस्त न होते हो। अब यारो मे एक शिवजी राम बिरहमन और बालमुकुन्द उसका बेटा ये दो शख्स है के गाह गाह आते है। इससे गुजर कर, लखनऊ और कालपी और फ़र्रुख़ाबाद और किस किस जिले से ख़ुतूत आते रहते थे। उन दोस्तो का हाल ही नही मालूम की कहाँ है और किस तरह है? वो आमद ख़ुतूत की मौकूफ, सिर्फ तुम तीन साहबो के खत के आने की तवक्को। उसमे वो दोनो साहब गाह गाह। हाँ, एक तुम, के हर महीने मे एक दो बार मेहरबानी करते हो! सुनो साहब, अपने पर लाज़िम कर लो, हर महीने मे एक खत मुझको लिखना। अगर कुछ काम आ पडा, दो खत, तीन खत, वर्ना सिर्फ खैरो आफियत लिखी और महीने मे एक बार भेज दी।

भाई साहब का भी खत दस-बारह दिन हुए के आया था। उसका जवाब भेज दिया गया। मौलवी कमरुद्दीन खाँ यकीन है के इलाहाबाद गए हो, किस वास्ते के मुझको मई मे लिखा था के अवायले जून मे जाऊँगा। बहरहाल, अगर आप आजुदा[1] नही तो जिस दिन मेरा खत पहुँचे उसके दूसरे दिन उसका जवाब लिखिए, अपनी खैरो आफियत, मुंशी साहब की खैरो आफ़ियत, मौलवी साहब का अहवाल। इसके सिवा गवालियार के फ़ितना व फ़साद का माजरा जो मालूम हुआ हो वो, अल्फ़ाजे मुनासिबे वक्त मे ज़रूर लिखना, राजा जो

---

१. बीमार, उदास।

वहाँ आया हुआ है, उसकी हकीकत, धौलपुर का रंग। साहेबाने आलीशान का इरादा वहां के बन्दोबस्त का, किस तरह पर है? आगरे का हाल क्या है? वहाँ के रहने वाले कुछ खायफ[1] हैं या नहीं?

निगाश्तए शंबा १९ जून सन् १८५८ ई०

—गालिब

३९

(२६ जून १८५८)

जीते रहो और खुश रहो,

'ऐ वक्ते[2] तो खुश के वक्ते मा खुश करदी, ज्यादा खुशी का सबब ये के तुमने तहरीर को तकरीर का परदाज दे दिया था। गरमी, हंगामा इतबा-ए-दीवान वगैरा मैं पहले से जानता हूँ। वक घर का रुपया मसरफ कागज व कापी है। खुदा तुमको सलामत रखे, मुगतेनमात[3] से हो। रज्जब अली बेग 'सुरूर' ने जो 'अफसान-ए-अजायब' लिखा है, आगाजे दास्तान का शेर अब मुझको बहुत मजा देता है—

यादगारे जमाना है हम लोग
याद रखना फसाना है हम लोग

मिसर-ए-सानी कितना गर्म है और 'याद रखना' फसाना के वास्ते कितना मुनासिब।

मुंशी अब्दुल लतीफ के घर मे लडके के पैदा होने की खबर उसको हो चुकी है और तहनियत[4] मे भाई को खत लिखा चुका हूँ। अब जो उनसे मिलो

---

१. भयभीत। २. हे समय, तुम प्रसन्न रहो, तुमने हमें प्रसन्न किया। ३. तुम गनीमत हो। ४. बधाई।

तो मेरा सलाम कह कर उस खत के पहुँचने की इत्तिला ले लेना। मौलवी मानवी जब कानपूर से मावित फरमायें तो मुझको इत्तिला देना। मेरा हाल बदस्तूर।

हमा[1] पहलू हमाँ बिस्तर हमाँ दर्द।
शबा २६ जून १८५८ ई० रोज़े वरूदे नामा[2]।

—ग़ालिब

४०

रखियो 'ग़ालिब' मुझे इस तल्ख़ नवाई में मुआफ
आज कुछ दर्द मेरे दिल में सिवा होता है।

बन्दा परवर,

पहले तुमको ये लिखा जाता है के मेरे दोस्ते कदीम मीर मुकर्रम हुसेन साहब की खिदमत में मेरा सलाम कहना। और ये कहना अब तक जीता हूँ और इससे ज्यादा मेरा हाल मुझको भी मालूम नही। मिर्जा हातिम अली साहब 'मेहर' की जनाब में मेरा सलाम कहना और ये मेरा शेर मेरी ज़ुबान से पढ़ देना—

[3]शर्ते इस्लाम बुवद वर्जिशे ईमाँ बिल ग़ैब
ऐ तो गायब ज नज़र मेहरे तो ईमाने मनस्त।

तुम्हारे पहले खत का जवाब भेज चुका था के उसके दो दिन या तीन दिन के बाद दूसरा खत पहुँचा। सुनो साहब जिस शख़्स को जिस

---

१. वही करवट, वही बिस्तर, वही वेदना। २. जिस दिन पत्र पहुँचा। ३. यद्यपि वह अप्रत्यक्ष हैं, फिर भी उस पर आस्था करना ईमान है। अप्रत्यक्ष (ईश्वर) पर आस्था रखना ही इस्लाम है। हे ईश्वर, तुम दिखाई नही देते किन्तु तुम्हारा प्रेम ही मेरी आस्था है।

के पाकेट खतो की डाक मे क्यो आया। बारे, जब उसकी तहरीर देखी तो तुम्हारे हात का पम्फलेट लिखा हुआ और दो टिकट लगे हुए, मगर उसके आगे काली मुहर और कुछ अंगरेजी लिखा हुआ। हरकारे ने वहा के एक रुपया दस आने दिलवाइये। दिलवा दिए और पार्सल ले लिया। मगर हैरान के ये क्या पेच पडा? कयास ऐसा चाहता है के तुम्हारा आदमी जो डाक घर गया उसको खतो के बक्स मे डाल दिया। डाक के कारपरदाजो ने गौर न की और उसको बैरग खतो की डाक मे भेज दिया। वो साहब जो मेरे उर्फ से आशना और मेरे नाम से बेजार है, याने मुंशी भगवान परशाद, मिस्ले खां, मेरा सलाम कुबूल करे।

--ग़ालिब

४३

(१७ अगस्त १८५८ ई०)

मिर्ज़ा तफ्ता,

तुम्हारे ग्रीराके मसनवी का पम्फलेट पाकिट परसो १५ अगस्त को और जनाब मिर्जा हातिम अली साहब की नस्र शायद आगाजे अगस्त मे रवाना कर चुका हूँ। उस नस्र की रसीद नही पाई और नही मालूम हुआ के मेरो खिदमत मखदूम[1] के मकबूले तबा हुई या नही। नही मालूम भाई नबी बख्शसाहब कहाँ है और किस तरह है और किस खयाल मे है। नही मालूम मौलवी क़मरुद्दीन खाँ इलाहाबाद आ गए या नही अगर नही आये तो वो वहाँ क्यो मुतवक्किफ[2] है? मीर मुंशी कदीम वहाँ पहुँच गए? अपना काम करने लगे? ये क्या कर रहे है? आप को एक बताकीद लिखता हूँ के इन तीनो बातो का

१. सेव्य, सेवित। २. निवास किये हुये।

जवाब अलग अलग लिखिए और जल्द लिखिए इस खत के पहुँचने तक अगलब[1] है के पार्सल पहुँच जाए। उसके पहुंचने की भी इत्तिला दीजिएगा। अब एक अम्र सुनो—मैंने आगाज़े याजदहुम[2] मई सन् १८५७ ई० से सी[3] व एकुम जुलाई सन् १८५८ ई० तक रूदादे[4] शहर और अपनी सरगुजिश्त[5] याने पन्द्रह महीने का हाल नस्र मे लिखा है और इल्तेजाम इसका किया है के "दसातीर" की इबारत याने फारसी कदीम लिखी जाए और कोई लफ्ज अरबी न आये। जो नज्म उस नस्र मे दर्ज़ है वो भी बेआमेजिशे लफ्जे अरबी है। हा, अशखास के नाम नही बदले जाते। वो अरबी, अंग्रेजी, हिन्दी जो है वो लिख दिए है। मसलन तुम्हारा नाम मुंशी हरगोपाल, 'मुंशी' लफ्ज अरबी है, नही लिखा गया। इसकी जगह 'शेवा जवान' लिख दिया है। यही मेरा खत जैसा इस रुक्के मे है न छिदरा न गुंजान, औराके बेमिस्तर[6] पर इस तरह के किसी सफे मे बीस सतर और किसी मे बाईस सतर बल्के किसी मे उन्नीस सतर भी आए, चालीस सफे याने बीस वर्क है। अगर इक्कीस सतर के मिस्तर से कोई गुंजान लिखे तो शायद दो जुज्व मे आ जाए। यहाँ मतबा[7] नही है। सुनता हूँ के एक है, उसमे कापीनिगार[8] खुशनवीस[9] नही है। अगर आगरे मे इसका छापा हो सके तो मुझको इत्तिला करो। इस तिहीदस्ती[10] और बेनवाई मे पच्चीस का मै भी खरीदार हो सकता हूँ। लेकिन साहब[11] मतबा इतने मे क्यो

---

१. सम्भव। २. ग्यारहवी। ३ ३१। ४. नगर का विवरण। ५. जीवनी। ६. पुराने समय मे बिना सतर के कागज पर लिखने के लिये मिस्तर का प्रयोग करते थे। मिस्तर एक तरह का कागज होता था जिसपर सतरे खिची होती थी। मिस्तर को कागज़ के नीचे रख लिया जाता था जिससे पंक्ति सीधी आये। बे मिस्तर-मिस्तर रहित। ७. छापाखाना। ८ लीथो पर छापने के लिए सुलेखक से पहले एक विशेष कागज पर लिखाया जाता है, फिर उस कागज के अक्षर पत्थर पर आ जाते है। इसीलिए लीथो प्रेस मे कापीनिगार की आवश्यकता होती है। ९. सुलेखक। १०. रिक्तहस्तता, गरीबी। ११. छापाखाने के मालिक।

मानेगा और अलबत्ता चाहिए के अगर हजार न हो तो पान सौ जिल्द तो छापी जाए। यकीन है के पान सौ सात सौ जिल्द छापने की सूरत मे तीन आने-चार आने कीमत पडे। कापी तो एक ही होगी, रहा कागज वो भी बहुत न लगेगा। लिखाई मत्न की तो आपको मालूम हो गई, हाशिए पर अलबत्ता लुगात के माने लिखे जाएँगे। बहरहाल, अगर, मुमकिन हो, तो इसका तकमिला करो और हिसाब मालूम कर के मुझको लिखो। मगर मुंशी कमरुद्दीन खाँ आ गए हो तो उनको भी शरीके[1] मसलिहत करलो। इन तीनो बातो का जवाब और पारसल की रसीद और इस मतलबे खास का जवाब ये सब एक खत में पाऊँ जरूर, जरूर, जरूर।

निगाश्ता व खाँदाश्ता से शंबा हफ दहुम अगस्त सन् १८५८ ई०।

जवाबतलब वास्ते ताकीद के बैरंग भेजा गया।

—गालिब

४४

भाई,

तुम्हारा वो खत जिसमें औराके मसनवी[2] मलफूफ[3] थे, पहुँचा। औराके मसनवी औराके 'दस्तम्बू' के साथ पहुँचेंगे। अब तुम्हारे मतालिब का जवाब जुदा-जुदा लिखता हूँ। अलग-अलग समझ लेना।

साहब, तुमने मिर्जा हातिम अली साहब से क्यों कहा? बात इतनी थी के वो मुझको लिख भेजने के नस्र आई और मिर्जा साहब ने पसन्द की। अब उनसे मेरा सलाम कहो और ये कहो के आप के शुक्र बजा लाने का शुक्र

१. मंत्रणा में सम्मिलित। २. कथात्मक काव्य। ३. लिफाफाबन्द।

जा लाता हूँ। छापे के बाब मे जो आपने लिखा वो मालूम हुआ। इस तहरीर
ो जब देखोगे तब जानोगे ! अहतेमाम और उजलत[1] इसके छपवाने मे इस
ास्ते है के इसमे से एक जिल्द नवाब गवर्नर जनरल बहादुर की नज्र[2] भेजूँगा,
ौर एक जिल्द वजरिये उनके जनाब मलिकए[3] मुअज्जमए इग्लिस्तान की
ज्र करूँगा। अब समझ लो तर्जे तहरीर[4] क्या होगी और साहबाने मतबा
ो उसका इन्तबा[5] क्यो न मतबू होगा ? जीते रहो, इस गमजदगी मे मुझको
ँसाया ! वो कौन मुल्ला था जिसने तुमको पढाया—

गर्चे[6] 'अमलकारे' ख़िरदमन्द नीस्त
"अमलकार-अहलकार" ?

ये शेर शेख सादी का बादशाह की नसीहत मे है—

जुज[7] ब ख़िरदमन्द मफरमा अमल।

याने ख़िदमत व आमाल सिवाय उलमा और उकला के और के तफीज न
कर" फिर खुद कहता है—"गर्चे अमलकारे ख़िरदमन्द नीस्त" याने 'अगरचे
ख़िदमात[8] व अशगाले[9] सुलतानी' का कुबूल करना ख़िरदमन्दो[10] का काम
नही, और अक्ल से बईद है के आदमी अपने को खतरे मे डाले। 'अमल' अलग
अलग है और 'कार' मुजाफ है। वतरफ 'ख़िरदमन्द' के वर्ना दुहाई खुदा
की ! 'अमलकार', 'अहलकार' के माने पर नही आता; मगर 'कतील' और
'वाकिफ' या और पूरब के मुल्कियो की फारसी !

४५

(२३ अगस्त १८५८)

साहब,

अजब इत्तेफाक है आज सुबह को एक खत तुमको और एक खत जागीर

---

१. जल्दी। २. भेंट। ३. साम्राज्ञी। ४. लिखने का ढग। ५. मुद्रण।
६. बुद्धिमान आदमी किसी की नौकरी नही करता। ७. बुद्धिमान के अतिरिक्त
किसी को काम न दीजिये। ८. सेवाएँ। ९. राजा का कार्य। १०. बुद्धिमानों का।

के गाँव की तहनियत मे अपने शफीक[1] को डाक मे भेज चुका था के दोपहर को रजीउद्दीन नैशापुरी का कलाम एक शख्स बेचता हुआ लाया। मै तो किताब को देख लेता हूँ, मोल नही लेता। कजारा[2] जब मैंने उसको खोला, उसी वक्त मे ये मतला निकला—

अगर[3] ब गजे गौहर मैलम उफ्तान चे बाक
कफ जवादे तुरा अज बराये ग्राँ दारेम।

चाहता था के तुमको लिखूँ के नागाह तुम्हारा खत आया; मुझको लिखना जरूर हुआ। आज तुम्हे दो खत भेजे है, एक तो सुबह को पोस्ट पेड और एक अब। बारह पर तीन बजे, बैरंग। उस शेर को अब चाहे रहने दो। हाय-हाय! तुम भाई से मिले। 'गयासुल्लुगात' खुलवाई। जव्वाद का लुगद[4] देखा। मगर मेरा जिक्र नही किया के वो तुम्हारा जोयाये हाल है। 'दस्तम्बू' और उसके छापे का जिक्र न किया अलबत्ता अगर तुम जिक्र करते तो वो दोनो बाब मे कुछ फरमाते और मुझको दुआ सलाम कह देते। चूँके तुमने अपने खत मे कुछ नही लिखा इससे मालूम हुआ के भाई ने कुछ नही कहा। अगर उन्होने कुछ नही कहा तो उनका सितम और उनका कहा हुआ तुमने नही लिखा तो तुम्हारा करम। बहरहाल, खूब मिसरा हाफिज का तुमने मुझको याद दिलाया है—

या[5] रब मबाद कसरा मखदूमे बेइनायत।

खाही तुम, खाही मुशी नबी बख्श सल्लमाहुल्लाहो ताला, सल्लमाहुल्लाहो ताला[6] ये याद रहे, ये मिसरा अगर मुझ पर जजीर से बाधोगे तब भी नही

---

१. कृपालु। २. सयोग वश। ३ यदि मोतियो के कोष की तरफ मेरी इच्छा हो तो इसमे कौन सी बात है, आपका उदार हस्त इसीलिए तो हमें उपलब्ध है। ४. शब्द कोष। ५. हे ईश्वर, किसी को कृपाहीन स्वामी न मिले। ६. ईश्वर तुम्हे स्वस्थ रखे।

बँधेगा। अगर 'दस्तम्बू' को सरासर गौर से देखोगे तो अपना नाम पाओगे और ये भी जानोगे के वो तहरीर, तुम्हारी इस तहरीर से सौ बरस पहले की है।

आखिरे रोज़े दोशम्बा, २३ अगस्त १८५८ ई०।

४६

(२८ अगस्त १८५८ ई०)

नूरे नजर व लख्ते जिगर मिर्जा तफ्ता,

तुमको मालूम रहे के रायसाहब मुकर्रम[१] व मुअज्जम[२] राय उम्मीद सिंघ बहादुर ये रुक्का तुमको भेजेंगे। तुम इस रुक्के को देखते ही उनके पास हाजिर होना और जब तक वहाँ रहे तब तक हाजिर हुआ करना और दस्तम्बू के बाब मे जो उनका हुक्म हो बजा लाना। उनको पढ़ा भी देना और फी जिल्द का हिसाब समझा देना। पचास जिल्द की कीमत इनायत करेंगे, ले लेना। जब किताब छप चुके, दस जिल्दे रायसाहब के पास इन्दौर भेज देना और चालीस बमुजिब उनके हुक्म के मेरे पास इरसाल करना, और वो जो मैंने पाँच जिल्द की आराइश[३] के बाब मे तुमको लिखा है, उसका हाल मुझको जरूर लिखना।

हाँ साहब, एक रुबाई मेरे सहव[४] से रह गई है, उस रुबाई को छापा होने से पहले हाशिये पर लिख देना, जहाँ ये फिक्रा है—

"नै नै[५] अख्तरे बख्ते खुसरो दर बलन्दी बजाये रसीद के रुख अज़ खाकियाँ निहुफ़्त।"

---

१. कृपा करने वाले। २ बड़े। ३. सजावट। ४. गल्ती। ५. "नही नही," बादशाह के भाग्य का नक्षत्र इतना ऊपर उठा कि शरीरधारियो से उसने अपना मुँह छिपा लिया। जहाँ नक्षत्र को चंचलता उत्पन्न होती है वहाँ मुकुट बागडोर का स्थान ग्रहण कर लेता है और बारह सिंगा मामूली अन्नकण के समान हो जाता है, तुम देखते नही हो कि सूर्य आकाश मे अपने स्थान के लिए भय से कैसा काँप रहा है।

जाए के सितारा शूख चश्मी वरज़द
अफसर अफसारो गवजन अरजन अरजद
खुरशीद जे अन्देशए जा दर गर्दिश
बर चर्ख न बीनी के चेसाँ मी लरजद

चूँके हाशिया माने लुगात से भरा हुआ है, तो तुम फिक्रे के आगे निशान बना कर ऊपर के हाशिये पर रुबाई लिख देना और हाशिये[1] यमीन पर जहां माने लिखे हुये है वहाँ रुबाई के लुगात के माने खफी[2] कलम से लिख देना—अफ़सर, अफसार, गवजन[3] वहर दो फतह जादर गर्दिश।

निगाश्ता २८ अगस्त सन् १८५८ ई०।

—ग़ालिब

४७

(१ सितम्बर १८५८)

साहब,

अजब तमाशा है। तुम्हारे कहे से मुंशी शीवनरायन साहब को खत लिखा था, सो कल उनका खत आया और उन्होंने दस्तम्बू की रसीद लिखी। डाक का हरकारा तो उनके पास ले न गया होगा, आखिर तुम्ही ने भेजा होगा। ये क्या के तुमने मुझको उसकी रसीद और मेरे खत का जवाब न लिखा? अगर ये गुमान किया जाए के तुमने राय उम्मीदसिंघ की मुलाकात हो लेने पर खत का लिखना मुनहसिर रखा है तो वो भी हो चुकी होगी। मुझे तो सूरत ऐसी नजर आती है के गोया तुम अलग हो गए हो। किताब मतबे में हवाले

---

१. पृष्ठ के दाईं ओर का हाशिया। २ बारीक कलम। ३. दोनों को जबर देकर पढ़ना।

कर दी। अब उसकी तजईन व तसहीह् से कुछ गरज नही। पस, अगर यों है तो मै इस इन्तवा से दर गुजरा। सैकड़ो मतालिब व मकासिद रह जाएँगे। और फिर इस वहशत की वजह क्या ? अगर कहा जाए के वहशत नही है तो उस किताब और मसनवी की रसीद न लिखने की वजह क्या ? बतकल्लुफ कयास चाहता हूँ के तुम मुझसे खफा हो गए हो। खुदा के वास्ते, खफ़गी की वजह लिखो। सुबह को मैंने ये खत रवाना किया हूँ, बुध का दिन सितम्बर की पहली तारीख्। अगर शाम तक तुम्हारा खत आया तो खैर वर्ना तुम्हारी रंजिश का बिल्कुल यकीन हो जाएगा और बसबब वजह न मालूम होने के जी घबराएगा। मै तो अपनें नजदीक कोई सबब ऐसा नही पाता। ख़ुदा के वास्ते ख़त जल्द लिखो। अगर ख़फ़ा हो, तो खफगी का सबब लिखो।

जानता हू के तुम राय उम्मीदसिंघ से भी न मिले होगे। अयाज़न[१] बिल्लाह ! मै उनसे शर्मिन्दा रहा के मैंने कहा था के हाँ मिर्ज़ा तफ़्ता दस्तम्बू तुमको अच्छी तरह पढ़ा देंगे। अगर चे ऐसे हाल मे के मुझको तुम पर अलग होने और पहलूतिही करने का गुमान गुजरा है, कोई मतलब तुमको लिखना न चाहिए, मगर ज़रूरत को क्या करूँ ? नाचार लिखता हूँ। साहबे मतबा ने खत के लिफ़ाफे पर लिखा है—

"मिर्ज़ा नौशा साहब गालिब"

लिल्लाह[२] ! गौर करो के ये कितना बेजोड़ जुमला है। डरता हू के कही सफ़[३] ए अव्वले किताब पर भी न लिख दे। आया फारसी का दीवान या उर्दू या 'पंज आहग' या 'मेहरे नीम रोज' छापे की ये कोई किताब उस शहर मे नही पहुंची, जो वो मेरा नाम लिख देते ? तुमने भी उनको मेरा नाम नहीं बताया, सिर्फ अपनी नफरत उर्फ से, वजह इस वावेला की नही है, वल्के सबब ये है के दिल्ली के हुक्काम को तो उर्फ मालूम है मगर कलकत्ते से विलायत तक

---

१. ईश्वर से शरण माँगता हू। २. ईश्वर के लिए। ३. प्रथम पृष्ठ।

याने वुजरा के महकमे मे और मलिके[1] आलिया के हुजूर मे कोई इस नालायक उर्फ को नही जानता। पस, अगर साहबे मतबा ने 'मिर्जा नौशा साहब गालिब' लिख दिया तो मै गारत हो गया, खोया गया। मेरी मेहनत रायगाँ गई। गोया किताब किसी और की हो गई। लिखता हूँ और फिर सोचता हूँ के देखूँ तुम ये पयाम मतबे मे पहुचा देते हो या नही।

बुध का दिन, सितम्बर की पहली तारीख, १८५८ ई०।

४८

(३ सितम्बर १८६८)

लिल्लाहिशुकर[2]। तुम्हारा खत आया और दिले सौदा जदा[3] ने आराम पाया। तुम मेरा खत अच्छी तरह पढा नही करते। मैने हरगिज नही लिखा के ये इबारत दो जुज्ब मे आ जाए। मैने ये लिखा था के इबारत इस कदर है के दो जुज्ब मे आजाए, लेकिन मै चाहता हूँ के हजम[4] ज्यादा हो। बहरहाल इस नमूने की तक्ती और हाशिया मतबू[5] है। लुगात के माने हाशिए पर चढे, उसकी रविश दिलावेज[6] और तकसीम[7] नजरफरेब[8] हो। रुबाई हाशिए पर लिख दी। अच्छा किया। भाई मुशी नबी बख्श साहब से नस्र के दो फिकरे जिस महल पर के उनको बताए है, जरूर लिखवा देना। मैने जो तुमको 'मिर्जाई' का खिताब दिया है, उन फिकरो मे इसका इजहार किया है।

बहुत जरूरी ये अम्र है, और मै मुशी शीवनरायन साहब को आज सुबह को लिख चुका हूँ। तीसरे सफा के आखिर या चौथे सफे के अव्वल ये जुमला है—

---

१. साम्राज्ञी। २ ईश्वर की कृपा है। ३. दुखी हृदय। ४. मोटाई। ५ मुद्रित। ६. चित्ताकर्षक। ७. विभाजन। ८. दृष्टि रजक।

"अगर[1] दर दमे दीगर ब नहीबे मबाश बहम जनद।"

'नहीब' की जगह 'नवाय' बना देना।

"बनवाए मबाश बहम जनद"

'नहीब' लफ्ज अरबी है, अगर रह जाएगा तो लोग मुझ पर ऐतराज करेंगे। तेज चाकू की नोक से 'नहीब' का लफ़्ज छीला जाए और उसी जगह 'नवाय[2]' लिख दिया जाए।

राय उमीदसिंघ ने मुझ पर इनायत और मतबे की इआनत की। हक ताला उनको इस कारसाजी और फकीर नवाज़ी का अज्र दे। साहब, कभी न कभी मेरा काम तुमसे आ पडा है, और फिर काम वैसा के जिसमें मेरी जान उलझी हुई है और मैंने उसको अपने बहुत से मतालिब के हुसूल का जरिया समझा है। ख़ुदा के वास्ते पहलूतिही न करो और बदिल[3] तवज्जो फरमाओ। कापी की तसीह[4] का जिम्मा भाई का हो गया है। जिल्दों की आरास्तगी का जिम्मा बरखुरदार अब्दुल लतीफ का कर दो। मेरी तरफ से दुआ कहो और कहो के मैं तुम्हारा बूढा और मुफलिस[5] चचा हूं, तसीह भाई करें, और तजई[6] तुम करो। कहता हूँ, मगर नही जानता के तज़ई क्यों कर किया चाहिए। सुनता हूं के छापे की किताब के हर्फो पर स्याही की कलम फेर देते है, ताके हर्फ रौशन हो जाएँ। स्याह कलम से जदवल[7] भी खींची जाती है। फिर जिल्द भी पुरतकल्लुफ[8] बन सकती है। भतीजे की दस्तकारी और सन्नाई[9] और होशियारी उनकी मेरे किस दिन काम आएगी?

---

१. यदि दूसरे अवसर पर ईश्वर के 'मबाश' (बरबाद हो जाओ) कहते ही प्रलय हो जाती है। २. आवाज। ३. हार्दिक। ४. संशोधन (प्रूफ)। ५. दरिद्र। ६. अलंकरण। ७. पुस्तक अथवा चित्र का हाशिया। ८. सुन्दर। ९. कारीगरी।

मिर्ज़ा तफ्ता तुम वडे बेदर्द हो। दिल्ली की तबाही पर तुमको रहम नही आता, वल्के तुम उसको आवाद जानते हो। यहाँ नैचावन्द[1] तो मयस्सर नहीं, सहाफ[3] और नक्काश[4] कहाँ ? शहर आवाद होता तो मै आपको तकलीफ क्यो देता ? यही सव दुरुस्ती मेरी आँखो के सामने हो जाती। किस्सा मुख्तसर, ये इवारद मुशी अव्दुल लतीफ को पढा दो। मै तो उनके वाप को अपना हकीकी भाई जानता हूँ। अगर वो मुझे अपना हकीकी[5] चचा जाने और मेरा काम करे तो क्या अजव है ? दो रुपया फी जिल्द, इससे ज्यादा का मकदूर[6] नही। जव मुझको लिखोगे हुण्डवी भेज दूँगा। छ रुपये, आठ रुपये, दस रुपये, हद वारह रुपये। मियाँ को समझा देना, कमी की तरफ न गिरे। चीज़ अच्छी वने। निहायत[7] ८।१२'। छ जिल्द तैयार हो।

मुशी शीवनरायन को समझा देना के जिन्हार उर्फ न लिखे। नाम और तखल्लुस वस। अज्जाए[8] खितावी लिखना नामुनासिव, वल्के मुजिर है। मगर हाँ, नाम के वाद लफ़्ज 'वहादुर' का और 'वहादुर' के लफ्ज के वाद तखल्लुस——

असदुल्लाह खाँ वहादुर गालिव

भाई, तुमने औराके मसनवी की रसीद न लिखी, कही वो पार्सल में से गिर तो न गए हो ? देखो, किस लुत्फ से मेरे नाम की हकीकत वयान हुई है। औरो के छापने की मुमानियत जरूर है, मगर मै उसकी इवारत क्या वताऊँ ? साहवे मतवा इस अम्र को उर्दू मे आखिरे[10] किताव लिख दे। मुंशी जी से नस्त लिखवा लो (मुशी अव्दुल लतीफ को ये खत पढा दो। 'नहीव' की जगह 'नवा' वना दो। साहवे मतवा को मेरा नाम वता दो। खातमे पर मुमानियत

---

१. हुक्के में नैचा वैठाने वाला। २. उपलब्ध। ३. जिल्दसाज। ४. नक्श करने वाला, चित्रकार। ५. वास्तविक। ६. सामर्थ्य। ७. अधिक से अधिक। ८. उपाधि के अग। ९. हानिकर। १० पुस्तक के अन्त में।

का हुक्म साहबे मतबा से लिखवा दो। बरखुरदार अब्दुल लतीफ से मिकदार रुपए की दरियाफ्त कर के मुझको लिख भेजो। अपनी मसनवी की रसीद लिखो। अपने बजानो दिल मसरूफ होने का इकरार करो। इन सब उमूर की मुझे खबर दो।

जुमा सूअम[1] सितम्बर सन् १८५८ ई० हगामे नीम रोज।

—ग़ालिब

४९

मिर्जा तफ्ता को दुआ पहुँचे।

दोनो फिक्रे जिस महल[2] पर बताये है, हाशिए पर लिख दिए होगे। 'नहीब' के लफ़्ज को छील कर 'नवाए' बना दिया होगा। बरखुरदार मुंशी अब्दुल लतीफ को मेरा खत अपने नाम का लिखा दिया होगा। उनकी सआदतमदी से यकीन है के मेरी इल्तमास[3] कबूल करे और इधर मुतवज्जह हो। कापी लिखी जानी और छापा होना शुरू हो गया होगा। अगर पत्थर बड़ा है तो चाहिए आठ-आठ सफे, बल्के बारह बारह सफे छापे जाएँ और किताब जल्द मुन्तबा हो जाए। भाई, मुंशी साहब की शफक्कत[4] का हाल पूछना जरूर नही, मुझ पर मेहरबान और हुस्ने[5] कलाम के कद्रदाँ है। उसकी तसीह मे बेपरवाई करेगे तो क्या मेरी तफजीह[6] के रवादार होगे। भाई, तुमने भी और मुंशी शीवनरायन साहब ने भी लिखा। मैं एक इबारत लिखता हूँ, अगर पसँद आए तो खातमे किताब मे छाप दो।

नामा निगार[7] गालिबे खाकसार का ये बयान है के ये जो मेरी सर गुजिश्त की दास्तान है, इसको मैने 'मतब[8] ए मुफीद खलायक' मे छपवाया है

---

१ तीसरी। २. समान। ३. अनुरोध। ४. कृपा। ५. काव्य-सौन्दर्य। ६ बदनामी। ७. लेखक। ८ मुफीद खलायक नामक मुद्रणालय।

और मेरी राय मे इसका ये कायदा करार पाया है के और साहवाने मताबे जब तक मुझसे 'तलब्बे रुख़सत' न करे अपने मतवा मे इसके छापने पर जुरत न करे।

इसके सिवा अगर कोई तरह की तहरीर मजूर हो, तो मुशी शीवनरायन साहब को इजाजत है के मेरी तरफ से छाप दे। ये सब बाते पहले भी लिख चुका हूँ। अब दो अमर जरूरी`-उल-इजहार थे, इस वास्ते ये खत लिखा है। एक तो उर्दू इबारत; दूसरे ये के मेरे शफीक मुकरम सैयद मुकर्रम हुसेन साहब का खत मेरे नाम आया है और उन्होने एक बात जवाब तलब लिखी ह, उसका जवाब इसी खत मे लिखता हूँ। तुमको चाहिए के उनसे कह दो बल्के ये इबारत उनको दिखा दो—

"बन्दा परवर, नवाब अताउल्ला खाँ मेरे बड़े दोस्त और शफीक है, उनके फर्जन्दे रशीद पीर गुलामे अब्बास अल३ मुखातिब व सैफुद्दौला। ये दोनो साहब सही व सालिम है। शहर से बाहर दो चार कोस पर कोई गाँव है, वहाँ रहते है। शहर में अहले इस्लाम की आबादी का हुक्म नही और उनके मकानात कुर्क है, न जब्त हो गए है न वागुजाश्त[४] का हुक्म है।

५०

७ सितम्बर १८५८

मुशफिक मेरे, करम फरमा मेरे,

तुम्हारा खत और तीन-दो वर्क छापे के पहुँचे। शायद मेरे दिखाने के वास्ते भेजे गए है, वर्ना रस्म तो यो है के पहले सफे पर किताब का नाम और

---

१ अनुमति प्राप्त। २. प्रकट करना आवश्यक। ३. सैफुद्दौला के नाम से सम्बोधित। ४. मुक्त होना, जारी होना।

मुसन्निफ़[1] का नाम और मतबे का नाम छापते हैं और दूसरे सफे पर लौह[२] स्याह कलम से बनती है और किताब लिखी जाती है। इसका भी छापा इसी तरह होगा। गरज के तक्ती और शुमारे सुतूर और कापी का हुस्ने[३] ख़त और अलफाज़ की सेहत, सब मेरे पसन्द। सेहते अलफाज का क्या कहना है! वल्लाह बेमुबालिगा कहता हूँ अगर भाई मुंशी नबी बख़्श साहब बदिल मुतवज्जे हो तो अगर अहयानन असल नुस्खे में सह्वे कातिब से गलती वाके हुई हो तो उसको भी सही कर देंगे। तुम मेरी तरफ से उनको सलाम कहना बल्के ये खत दिखा देना। खुदा करे अंजाम तक यही कलम और यही खत और यही तर्जे तसीह चली जाए। जदवल भी मतबू है। पहले सफे की लौह भी खुदा चाहे तो दिल पसन्द और नजर फरेब होगी। कागज के बाब मे ये अर्ज है के फ्रेञ्च कागज अच्छा है। जिल्दे जो नज्रे हुक्काम है, वो इस कागज पर हो और बाकी चाहो शिवरामपुरी पर, और चाहो नीले कागज़ पर छापो और ये बात के दो जिल्दे जो विलायत जाने वाली है वो उस कागज़ पर छापे जाएँ और बाकी शिवरामपुरी पर या नीले कागज पर, ये तकल्लुफ महज है। यहाँ के हाकिमो ने क्या किया है के उनकी नज्र की किताबे अच्छे कागज पर न हो। मगर जो ऐसा ही सर्फ और खर्च ज़ायद पडता हो तो खैर दो जिल्दे इस कागज पर और चार जिल्दे शिवराम पुरी पर हो, बाकी जिल्दो मे तुम्हे अख़्तियार है। हाँ साहब, अगर हो सके तो कापी की स्याही जरा और स्याह और रख़्शिन्दा[४] हो और आख़िर तक रग न बदले। आगे इससे मैंने बरख़ुरदार[५] मुंशी अब्दुल लतीफ को लिखा था के उन छ किताबो की कुछ तजई[६] और आराइश की फिक्र करे। मालूम नही तुमने वो पयाम[७] उनको पहुँचाया या नही। आप और मुंशी अब्दुल लतीफ और मिर्ज़ा हातिम अली साहब 'मेहर' बाहम सलाह करे और कोई बात खयाल मे आवे तो बेहतर,

---

१. लेखक। २. सुलेखन। ३ लिखने वाले की असावधानी से। ४ चमकदार। ५. सुपुत्र। ६ अलकरण। ७. सन्देश।

वर्ना उन छ नुस्खो की जिल्दे अँग्रेजी डेढ-डेढ, दो-दो रुपया की लागत की बनवा देना और उसका रुपया तैयारी से पहले मुझसे मँगवा लेना।

"आँ[1] के हमा रा दर यक दम ब नवीदे बिशो पिदीद आ वरद अगर दर दमे दीगर ब नहीवे मवाश वहम जनद इला आखरे ही।'[2]

इसमे 'नहीव' का लफ्ज कुछ मेरी सहल अगारी से और कुछ सह्वे कातिव से रह गया है। इसको तेज चाकू से छील कर 'वनवाय' लिख देना। याने—

वनवाय मवाश वहम जनद

जरूर जरूर इसका इन्तजार न कीजो के जव यहाँ छापा जाएगा तो वना देंगे। न असल किताव गलत रहे और न छापे मे गलत हो। अगर अज्जाए असल मीर अमीर अली साहव कापी नवीस के पास हो, तो उनको या भाई नवी वख्श साहव को ये रुक्का दिखा कर समझा देना और वनवा देना।

रोज़े से शम्वा, हफ्तुम सितम्वर १८५८ ई०।

अज-ग़ालिव

५१

(१६ सितम्वर १८५८)

अच्छा, मेरा भाई, 'नहीव' वाले दो वर्क चार सौ हो, पान सौ हो, मगर वदलवा डालना। कागज का जो नुक्सान वो मुझसे मगवा लेना। इस लफ्ज के रह जाने में सारी किताव निकम्मी हो जाएगी और मेरे कमाल को धब्बा लग जाएगा। ये लफ्ज अरवी है, हरचन्द मसविदे मे वना दिया था लेकिन कातिव की नजर से रह गया।

---

१. जो ईश्वर 'विशो' (हो जाओ) शब्द के उच्चारण के साथ संसार को उत्पन्न करता है और 'मवाश' (नाश हो) कहकर सब कुछ नष्ट कर देता है।
२. हर तरह से।

लिखते हो के मिर्जा साहब दो जिल्दे दुरुस्त करेंगे, ये तो सूरत और है, याने मैंने छ जिल्दे बारह रुपए की लागत मे बकारसाजी[1] व हुनरपरदाजी[2] –ए–बरखुरदार मु शी अब्दुल लतीफ चाही थी, मुन्तजिर[3] था के अब उनका क़ुबूल करना मुझको लिखोग और रुपया मुझसे मँगवाओगे। जाहिरा अब्दुल लतीफ ने पहलूतिही की। मिर्जा साहब अगर कफील हुए थे तो छ जिल्दे बनवाते, न के दो। अलबत्ता इस अेहतमाल की गुंजाइश है के दो पुरतकल्लुफ और चार बनिस्बत[4] उसके कुछ कम। अगर यो है तो ये तो मुद्दआ ए[5] दिली मेरा है, मगर इत्तिला जरूर है।

राय उम्मीद सिंघ के नाम का खत बऐहतियात रहने दो। जब वो आयें उनको दे दो। ये जो तुम लिखते हो के 'नहीब' का लफ्ज लिख दिया गया था, इससे मालूम होता है के छापा शुरू होकर दूर तक पहुँच गया। क्या अजब है के किताबे जल्द मुन्तबा हो जाएँ।

हमारे मु शी शिवनरायन साहब अपने मतब के अखबार मे इस किताब के छापे का इश्तेहार क्यो नही छापते, ताके दरख़ास्ते ख़रीदारो की फराहम हो जाएँ।

मिर्जा तफ्ता सुनो—इन दिनो मे मेरे मुहसिन[6] हकीम अहसनुल्ला खां आफताबे आलमताब के खरीदार हुए है और मैंने बमुजिब उनके कहने के बिरादरे दीनी मौलाना 'मेहर' को लिखा है। हजरत ने ला[7] वो नाम जवाब मे नही लिखा। तुम उनसे कहो के वो सितम्बर सन् १८५८ ई० से खरीदार है। आज १६ सितम्बर की है। दो लम्बर अख़बार के, हकीम साहब के नाम का सरनामा, ख़ानचन्द के कूचे का पता लिख कर रवाना करे। आइन्दा हफ़्ता बहफ्ता भेजे जाएं और हकीम अहसनुल्ला खाँ का नाम ख़रीदारो मे लिख

१. दक्षता। २. कारीगरी। ३ प्रतीक्षा मे ४. अपेक्षाकृत। ५. मनोवाञ्छा। ६. उपकारी। ७. नही और हाँ।

ले। दूसरे अख़बार मजकूर[1] मे एक सफा डेढ सफा 'वादशाहे देहली' के अख़-वार का होता है। जिस दिन से वो अखबार शुरु हुआ है उस दिन से सिर्फ 'अखबारे शाही' का सफा नकल करके इरसाल करे। कातिव की उजरत[2] और कागज की कीमत यहाँ से भेज दी जाएगी। भाई, तुम मिर्जा साहव से इसको कह कर जवाव लो और मुझको इत्तिला दो। 'नहीव' के नहीव से मरा जाता हूँ। उसकी दुरुस्ती की खवर भेजो। वाकी जो छापे के हालात हो उसकी आगही जरूर हे।

पज शवा १६ सितम्वर सन् १८५८ ई०। —ग़ालिब

५२

(१७ सितम्बर १८५८)

भाई,

मुझमें तुममे नामानिगारी[3] काहे को है, मुकालमा[4] है। आज सुवह को एक खत भेज चुका हूँ। अव इस वक्त तुम्हारा खत और आया। सुनो साहव, लफ्जे[5] मुवारक मीम, हे, मीम, दाल इसके हर हर्फ पर मेरी जान निसार है। मगर चूँके यहाँ से विलायत तक हुक्काम के हाँ मे ये लफ्ज याने 'मुहम्मद असदुल्ला खाँ' नही लिखा जाता, मैंने भी मौकूफ कर दिया है। रहा 'मिर्जा' व 'मौलाना' व 'नवाव' इसमें तुमको और भाई को अख्तियार है, जो चाहो सो लिखो। भाई को कहना, उनके खत का जवाव सुवह को रवाना कर चुका हूँ।

मिर्जा तफ्ता अव तजइने[6] जिल्द हाय किताव के वाव में विरादरजादा[7] सआदतमद को तकलीफ न दो। मौलाना मेहर को अख्तियार है, जो चाहे सो करें।

---

१. उपर्युक्त। २ मेहनताना। ३. पत्र लेखन। ४. वार्त्तालाप। ५. शुभ शब्द (हज़रत मुहम्मद)। ६. पूरी पुस्तक का जिल्द की सजावट। ७ अपना भतीजा।

खत तमाम करके खयाल मे आया के वो जो मिर्जा साहब से मुझको मतलूब[1] है, तुम पर भी जाहिर करूँ साहब, वहाँ एक अखबार मौसूम[2] व 'आफताबे आलमताब' निकलता है उसके मुहतमिम[3] ने इल्तेजाम किया है के एक सफा या डेढ सफा बादशाहे देहली के हालात कालिखता है, नही मालूम, आगाज किस महीने से है। सो हकीम अहसनुल्ला खाँ ये चाहते है के साबिक के जो औराक है, जब से हो, वो जो छापेखाने मे मसविदे रहते है, उनकी नकल किसी कातिब[4] से लिखवा कर यहाँ भेजी जाए। उजरत जो लिखी जाएगी वो भेजी जाएगी। और इब्तदाए १८५८ से उनका नाम खरीदारो मे लिखा जाये। दो हफ्ते के दो लबर उनको एक लिफाफे मे भेज दिये जाएँ और फिर हर महीने हफ्ता दर हफ्ता, उनको लिफाफा अखबार का पहुँचा करे। ये मरातिब जनाब मिर्जा हातिमअली साहब को लिख चुका हूँ और अब तक आसारे[5] कुबूल जाहिर नही हुये। न लिफाफे हकीम साहब के पास पहुँचे, न उन सफात[6] की नकल मेरे पास आई। आपको इसमे सई[7] जरूर है। और हाँ 'आफताबे आलमताब' का मतबा तो कश्मीरी बाजार मे है मगर आप मुझको लिखे के 'मुफीदे ख़लायक' का मतबा कहाँ है। अजब है के इन साहबे शफीक ने मेरी तहरीरात[8] का जवाब नही लिखा। फरमाइश हकीम अहसनुल्ला खाँ साहब की बहुत अहम है। अिन्दल मुलाकात मेरा सलाम कह कर उसका जवाब बल्के वो अखबार उनसे भिजवाओ। जुमा, १७ सितम्बर १८५८ ई०।

५३

(२१ सितम्बर १८५८)

भाई,

आज सुबह को बसबब हकीम साहब के तकाजा के शिकवा[9] आमेज खत

---

१ अपेक्षित। २. नामक। ३. प्रबन्धक। ४. लिपिक। ५. स्वीकृति के लक्षण। ६. सफा (पृष्ठ) ब० व०। ७. प्रयत्न। ८. लेख (ब० व०)। ९. उलहना भरा।

जनाब मिर्जा साहब की खिदमत मे लिख कर भेजा। कल्यान खत डाक मे डाल कर आया ही था के डाक का हरकारा एक खत तुम्हारा और एक खत मिर्ज़ा साहब का लाया। अब क्या करूँ। खैर चुप हो रहा। शिकवा मुहब्बत बढाएगा। मिर्ज़ा साहब की इनायत का शुक्र बजा लाता हूँ। यकीन है के जिल्दे मेरे खातिर खा बन जाएँगी किस वास्ते के जो आज के खत मे उन्होने लिखा है वो बेऐनेही मेरा मकनूने[1] जमीर है। खुदा उनको सलामत रखे। मेरा सलाम कह देना। उनके खत का जवाब कल परसो भेजूंगा।

राय उमीद सिंघ बहादुर खूवाने[2] रोजगार मे से है। फकीर का सलामे नियाज उनको कह देना। खुदा करे उनके सामने किताबे छप चुके। बारे, जब वो गवालियार को तशरीफ ले जाएँ, तो मुझको इत्तिला लिखना। 'नहीब' के 'नवाय' बन जाने से खातर जमा हो गई। भाई, मैं फारसी का मुहक्किक[3] हूँ। कातिब उन अजजा का जिनकी रू से कापी लिखी जाती है, फारसी का आलिम है। इल्म उसका गयासुद्दीन रामपुरी और हकीम मुहम्मद हुसैन दक्नी मे ज्यादा है। तसही से गर्ज़ ये है के कापी सरासर मुआफिक उन औराक के हो न ये के फरहगो[4] मे देखा जाए। आगे इससे तुमको भी और भाई को भी लिख चुका हूँ। अब सिर्फ उस तहरीर का इशारा लिखना मजूर था। आज जिस तरह मुझको तुम्हारा और मिर्जा साहब का खत पहुँचा, लाजिम था के हकीम साहब को भी लिफाफ़-ए-अखबार पहुँच जाता। मगर इस वक्त तक नही पहुँचा, और ये दोपहर का वक़्त है। खैर, पहुँच जाएगा। मैने तुम्हारा खत उनके पास भेज दिया था। उन्होने तुम्हारी राय मजूर की। अब तुम वो अखबार, जिस तरह के तुमने लिखा है, उनके पास भेज दो और साहबे मतबा कीमते अखबार और उजरते[5] कातिब उनको लिख भेजे, अपने

१. हृद्गत। २. प्रेमी। ३. शोध करने वाला। ४. शब्द कोषो में। ५ लिपिक का मेहनताना।

नाम और मसकन से उनको इत्तला दे, बस। उसको अपने तौर पर रुपया भेज देंगे। हम तुम वास्ते शिनासाइये हम[1] दिगर हो गए। हाँ, अगर अह्यानन[2] रुपए के भेजने मे देर होगी तो मैं कहकर भिजवा दूंगा। ये अलबत्ता मेरा जिम्मा हैं।

५४

(दिसम्बर १८५८)

साहब,

कसीदे[3] के छापे जाने की बशारत[4] साहबे मतबा ने भी मुझको दी हैं। खुदा उनको सलामत रखे। कल मिर्जा साहब के खत मे उनको एक मिसरा किसी उस्ताद का लिख चुका हूँ, मैं सरासर उनका ममनूने[5] अहसान हू। मेरा सलाम कहना और लिफाफ ए अखबार के पहुचने की इत्तिला देना। मेरे नाम का कोई लिफाफा जाया नही जाता। खुदा जाने इस पर क्या बिजोग पडा? जाहिरा उन्होने पोस्ट पेड भेजा होगा। फिर पोस्ट पेड ही क्यो तलफ[6] हो?

'शीहाह'' बमाने 'सदा ए अस्प[7]' लुगत फारसी है, बशीने[8] मकसूर व याये[9] मारूफ व हाय[10] हव्वज मफतूह व हाय[11] सानी जदा, और अरबी मे उसको 'सहील' कहते हैं। फिर 'सीहा' कोई लुगत नही है, अरबी न फ़ारसी। अगर 'गनीमत' के कलाम मे 'सयह' लिखा है तो कातिब की गलती है, 'गनीमत' का क्या गुनाह?

---

१. पारस्परिक परिचय। २ अब भी। ३ प्रशंसात्मक कविता। ४. शुभ समाचार। ५. कृतज्ञ। ६. नष्ट। ७. घोडे की आवाज़। ८. जेर युक्त 'शीन', (श)। ९ उर्दू का 'ये' नामक अक्षर का एक भेद। १०. जबर के साथ 'ह'। ११ साकिन 'ह'।

'वर[1] खुद ज रुए हिंदसा गाहे शुमार याफ्त'

असल मिसरा यो है। मैंने सह्व से, खुदा जाने क्योंकर लिख दिया है। भाई, 'मेहर खाँ' के दो माने हैं। एक तो खिताब के जो सलातीन[2] उमरा को[3] दे और दूसरे वो नाम जो लड़कों का प्यार से रखें, याने उर्फ। हाशिये पर शौक से लिखवा दो। मगर तुमने देखा होगा के इस इबारत से जो तुम्हारे जिक्र में है, पहले मेहर खाँ के माने हाशिये पर चढ गए हैं। मुकर्रर[4] लिखने की हाजत क्या है ? और अगर लिख भी दो तो कबाहत क्या है ? भाई साहब क्यों मुजायका फरमाये। हाल औराक को तहरीर का मालूम हुआ। साहबाने कौन्सल की राय विलायते आगरा याने मेरे महकमे मे मजूर व मकबल। नाम मेरा जिस तरह चाहो लिख दो।

बनामे[5] आँ के ऊ नामे नदारद
बहर नामे के खानी सर बरारद

शफीके बितहकीक मोलाना 'मेहर' जर्रे ए बेमिकदार का सलाम कुबूल करे। कल आपको खत लिख चुका हूँ। आज या कल पहुँच जाएगा। रात मे एक बात और खयाल मे आई है, मगर चूँ के तहक्कुम व कारफिजाई है, कहते हुए डरता हूँ। डरते डरते अर्ज करता हूँ। बात ये है के दो जिल्दे तिलाई लॉर्ड की विलायत के वास्ते तैयार होगी और वो चार जिल्दे जो यहाँ के हुक्काम के वास्ते दरकार होंगी, उनकी सूरत यही ठहरी है के स्याह कलम और अंगरेजी जिल्द। क्यो भाई साहब करारदाद और तजवीज यही है, और फिर समझना चाहिए के ये चार जिल्दे किस किस की नज्र हैं। नवाब गवर्नर जनरल बहादुर, चीफ कमिश्नर बहादुर, साहब कमिश्नर बहादुर देहली, डिपुटी कमिश्नर बहादुर

---

१ यद्यपि वह सन्ध्या के कारण गिनती मे आया। २. शासक। ३. सामन्त। ४ पुन, दुबारा। ५ मैं उसके नाम से प्रारभ करता हूँ जिसका कोई नाम नहीं है, जिस नाम से उसे पुकारिए वह बोलता है।

देहली। ये क्या मेरी बदवजई है के जनाब एडमिन्स्टेन साहब की नज्र न भेजूँ। आखिर गवर्नमेण्ट की नज्र उन्ही की मार्फत भेजूँगा। ना साहब एक जिल्द उनकी नज्र बहुत जरूरी है। आप गुंजाइश निकाल कर जैसी ये चार जिल्दे बनवाई एक और भी ऐसी ही बनवा ल। यकीन है आप इस राय को पसन्द फरमाएँगे और चार की जगह पाँच बनवाएगे। ये अर्ज मकबूल और ये गुस्ताखी के बार बार आजार[2] देता हूँ, माफ हो।

भाई मिर्जा तफ्ता कल के, मिर्जा साहब के, खत मे से उस माद्दए तारीख[3] का कता लिख लेना। तुमको लिख चुका हूँ। एक कता मिर्जा साहब का, एक कता तुम्हारा बल्के एक कता मौलाना हकीर से भी लिखवाओ।

सुबह पज शबा सियम सितम्बर, सन् १८५८ ई०

५५

(१६ अक्टूबर १८५८)

क्यो साहब,

इसका क्या सबब है के बहुत दिन से हमारी आप की मुलाकात नही हुई! न मिर्जा साहब ही आए न मुंशी साहब ही तशरीफ लाए। हाँ, एक बार मुंशी शीवनरायन साहब ने करम किया था और ख़त में ये रकम[4] किया था के अब एक फरमा बाकी रहा है। इस राह से मै ये तसव्वुर कर रहा हूँ के अगर एक फ़रमा नस्र का बाकी था तो अब कसीदा छापा जाता होगा और अगर फ़रमा कसीदे का था तो अब जिल्दे बननी शुरू हो गई होगी।

तुम समझे? मै तुम्हारे और भाई मुंशी नबीबख्श साहब और जनाब मिर्जा हातिम अली साहब के खुतूत के आने को तुम्हारा और उनका आना

---

१. स्वीकृत। २. कष्ट। ३. तारीख से सम्बन्धित अंग। ४. लेखन।

समझता हूँ। तहरीर गोया वो मुकालमा है जो बाहम हुआ करता है। फिर तुम कहो मुकालमा क्यों मौकूफ है और अब क्या देर है और वहाँ क्या हो रहा है? भाई साहब को कापी की तसही से फरागत[1] हो गई? मिर्जा साहब ने जिल्दे सहहाफ[2] को दे दी? मैं अब उन किताबों का आना कब तक तसव्वुर करूँ? दसेरे मे एक दो दिन की तातील मुकर्रर[3] हुई होगी। कही दिवाली की तातील तक नोवत न पहुँच जाए।

हाँ साहब, तुमने कभी कुछ हाल कमरुद्दीन साहब का न लिखा। आगे इससे तुमने अगस्त सितम्बर में उनका आगरे का आना लिखा। फिर वो अक्तूबर तक क्यों न आए? वहाँ तो मुंशी गुलाम गौस खाँ साहब अपना काम बदस्तूर करते है, फिर ये उस दफ्तर में क्या कर रहे हैं? कही किसी और काम पर मौय्यन[4] हो गए है? इसका हाल जल्द लिखो। मुझको याद पड़ता है के तुमने लिखा था के मुंशी गुलाम गौस खां साहब को एक गाव जागीर मे मिला है। मौलवी कमरुद्दीन खाँ साहब उसके बंदोबस्त को आया चाहते हैं? उसका जहूर[5] क्यों न हुआ? इन सब बातो का जवाब जल्द लिखिए। जनाब मिर्जा साहब को मेरा सलाम कहिए और ये पयाम कहिए के किताब का हुस्न कानो से सुना, दिल को देखने से ज्यादा यकीन आया। मगर आँखों को रश्क है कानो पर और कान चश्मक[6] जनी कर रहे है आँखो पर। ये इर्शाद हो के आँखो का हक आँखो को कब तक मिलेगा?

भाई साहब को बाद अज सलाम कहिएगा के हजरत अपने मतलब की तो मुझको जल्दी नही है, आपकी तकलीफे[7] तसदी चाहता हूँ। याने अगर कापी का किस्सा तमाम हो जाए तो आपको आराम हो जाए।

---

१. निवृत्ति, अवकाश। २. जिल्द बांधने वाला। ३. निश्चित। ४. नियुक्त। ५. प्रकट ६. कानाफूसी। ७. समय की बचत।

मुंशी हरगोपाल तफ्ता के नाम

जनाब मुंशी शीवनरायन साहब की इनायतो का शुक्र मेरी जबानी अदा कीजिएगा। और ये कहिएगा के आपका खत पहुँचा, चू के मेरें खत का जवाब था और महाजा कोई अमर जवाब तलब न था इस वास्ते उसका जवाब नही लिखा। ज्यादा, ज्यादा।

निगाश्ता व रवाँ दाश्ताँ सुबह, शंबा, १६ अक्तूबर सन् १८५८ ई०।

राक़िम-ग़ालिब

५६

(३ नवबर सन् १९५८)

अल्लाह्, अल्लाह् ! हम तो कोल से तुम्हारे ख़त के आने के मुन्तजिर थे। नागाह कल जो ख़त आया, मालूम हुआ के दो दिन कोल मे रह कर सिकन्दराबाद आ गए हो और वहाँ से तुमने ख़त लिखा है। देखिए, अब यहाँ कब तक रहो और आगरे कब जाओ। परसो बरखुरदार शीवनरायन का ख़त आया था। लिखते थे के किताबो की शिराजाबन्दी[1] हो रही है, अब करीब है के भेजी जाएँ। मिर्जा मेहर भी एक हफ्ता बताते है। देखिए, किस दिन किताबे आ जाएँ। खुदा करे सब काम दिलख़ाह[2] बना हो।

हा साहब, मुन्शी बालमुकन्द 'बेसब्र' के एक ख़त का जवाब हम पर कर्ज है। मै क्या करूँ? उस ख़त मे उन्होने अपना सैरो[3] सफर मे मसरूफ[4] होना लिखा था। पस मै उनके ख़त का जवाब कहाँ भेजता। अगर तुम से मिले तो मेरा सलाम कह देना। और मतब-ए-आगरा से किताबो का हाल तो तुम खुद दरयाफ़्त कर ही लोगे। मेरे कहने और लिखने की क्या हाजत ?

चार शम्बा सूअम नवबर सन् १८५८।

---

१. जिल्द बाधने से पहले पृष्ठो को एकत्रित करने का कार्य। २. यथेष्ट। ३. यात्रा। ४. व्यस्त।

५७

(१३ नवंबर १८५८)

क्यो साहब,

क्या ये आईन[1] जारी हुआ है के सिकन्दराबाद के रहने वाले दिल्ली के खाकनशीनो[2] को खत न लिखे ? भला अगर ये हुक्म होता तो यहा भी तो इश्तेहार हो जाता के जिन्हार कोई खत सिकन्दराबाद को यहा की डाक मे न जाए। बहरहाल—

कस बिश्नवद या नश्नवद मन गुफ्तगू ए मी कुनम[3]

कल जुमे के दिन १२ तारीख नवबर को तैंतीस जिल्दे भेजी हुई बर-खुरदार शीवनरायन की पहुँची। कागज, खत, तक्ती, स्याही, छापा सब खूब। दिल खुश हुआ और शीवनरायन को दुआ दी। सात किताबे जो मिर्जा हातिमअली साहब की तहवील[4] मे है, वो भी यकीन है के आजकल पहुँच जाएँ। मालूम नही मुन्शी शीवनरायन ने इन्दोर को वास्ते राय उम्मीदसिंघ के किस तरह भेजी है या अभी नही भेजी।

साहब, तुम इस खत का जवाब जल्द लिखो और अपने कस्द[5] का हाल लिखो। सिकन्दराबाद कब तक रहोगे ? आगरे कब जाओगे ?

शम्बा, १३ नवबर सन् १८५८ ई०।

जवाब तलब।

---

१. नियम। २. अकिञ्चन लोगो को। ३. कोई सुने या न सुने मैं बोले जाता हू। ४. अधिकार। ५. विचार, सकल्प।

५८

(१३ नवंबर १८५८)

भाई साहब,

३३ किताबे भेजी हुई बरखुरदार मुंशी शीवनरायन की कल जुमे के दिन १२ नवबर को पहुँची, कागज और स्याही और खत का हुस्न देखकर मैंने अज रूए यकीन जाना के तिलाई[1] काम पर ये किताबें ताऊसे[2] बहिश्त बन जाएँगी। हूरे इनको देखकर शरमाएँगी। ये तो सब दुरुस्त, मगर देखिये मुझको उनका देखना कब तक मयस्सर हो? आप पर गुमान तसाहुल का गुज़रे, ये तो क्योकर हो? हाँ, सह्हाफ जिल्द के बनाने की निस्बत मेरे हक का जल्लाद न बन जाए, याने मुद्दते[3] मुनासिब से ज्यादा देर न लगाये। और हाँ हजरत, कुछ ऐसी पुख्तगी इरसाल के वक्त कर लीजिएगा के वो पारसल आशोबे तलफ[4] से महफूज़ रहे। बहुत अज़ीज और बहुत काम की चीज है, मुझको वो एक एक मुजल्लद[5] अपनी जान से ज्यादा अजीज़ हैं। या इलाही, ये खत राह मे हो और वो सातो किताबो का पार्सल तेरे हिफ्जो[6] अमान मे मुझ तक पहुँच जाए और ये न हो तो भला ये हो के इस खत का जवाब लिखिये, उसमे ये मरकूम हो के आज हमने किताबो का पार्सल रवाना किया है।

या[7] रब ई आरजू ए मन चे खुशस्त
तू बदी आरजू मरा बे रसाँ
मुरस्सिला शबा, १३ नवबर सन् १८५८ ईस्वी।

---

१. सुनहरा। २. स्वर्ग का सिंहासन। ३. उचित अवधि। ४. विनाश। ५. सजिल्द। ६. सुरक्षा। ७. हे ईश्वर, यह मेरी इच्छा कितनी अच्छी है। तुम मेरी इस इच्छा को पूरा कर दो।

५९

(१८ नवंबर १८५८)

आज पजशवे के दिन १८ नवबर को तुम्हारा खत आया और मैं आज ही जवाब लिखता हूँ। क्या तमाशा है के तुम्हारा खत पहुँचता है और मेरा खत नही पहुँचता। मेरे खत के न पहुँचने की दलील ये के तुमने इसलाही गजल की रसीद नही लिखी। मैंने क़ुतुब[1] का पहुँचना तुमको लिखा था। उसका तुमने ज़िक्र न लिखा। साहब, तैंतीस किताबें पहुँच गई और तकसीम हो गई। सात किताबे मिर्जा मेहर की भेजी हुई मुआफिक उनकी तहरीर के आज शाम तक, और मुताबिक मुंशी शीवनरायन की इत्तिला के कल तक मेरे पास पहुँच जाएँगी और यही मुंशी शीवनरायन ने इन्दौर की किताबो की खानगी की इत्तिला दी है।

मुंशी नवीबख्श साहब तुम्हारे खत न लिखने का बहुत गिला[2] करते है। शायद मैं तुमको लिख भी चुका हूँ। मीर कासिमअली साहब की बदली का हाल मालूम हुआ। ये मेरे बडे दोस्त हैं। दिल्ली इन दिनो में आये थे। मुझ से मिल गये है। इनको एक किताब जरूर भेज देना।

भाई, मैं हरगिज नही जानता के मीर बादशाह देहलवी कौन है और फिर ऐसे के जो कही के मुन्सिफ हो। कुछ उनके खानदान का हाल और उनके वालिद का नाम लिखो, तो मैं गौर करूँ; वर्ना मैं तो इस नाम के आदमी से आशना नही हूँ।

पजशबा, १८ नवंबर सन् १८५८ ई, वक्त दो पहर।

६०

(२० नवंबर १८५८)

बरखुरदार,

तुम्हारा खत पहुँचा। इस्लाही गजलो की रसीद मालूम हुई। मतला अब अच्छा हो गया, रहने दो। यक शंबे के दिन १९ नवबर का मान लिजाये

1. तिनाब (पुस्तक) काय ब। २. शिकायत।

का पार्सल भेजा हुआ मौलाना मेहर का पहुँचा। जबान नही जो तारीफ करूँ। शाहाना[1] आराइश है, आफताब[2] की सी नुमाइश ह। मुझे ये फिक्र के कही इनका रुपया तैयारी मे सर्फ न हुआ हो। अच्छा मेरे भाई, इसका हाल जो तुमको मालूम हो मुझको लिख भेजो।

रुक्कात के छापे जाने मे हमारी खुशी नही है, लडको की सी जिद न करो, और अगर तुम्हारी इसी मे खुशी है, तो साहब, मुझसे न पूछो, तुमको अख्तियार है, ये अम्र मेरे खिलाफे राय है।

मीर बादशाह की और अपनी नाशनासाई आगे तुमको लिख चुका हूँ। अब तुम्हारे इस खत से मालूम हुआ के वो तुम्हारे और उमरावसिंघ के आशना है। कुछ उनके खानदान के नाम व निशान दरियाफ्त हो तो मुझको भी लिख भेजो ताके मैं जानूँ ये किस गिरोह मे से है। मियाँ, वो 'रास्त[3] दरोग बगर्दन रावी" ने मुझको बहुत परेशान किया है। वास्ते खुदा के जो रावी ने रिवायत की है, वो मुझको जरूर लिखो और ताजगज के रहनेवालो की अवतरी की हकीकत से भी इत्तिला दो।हुक्म अफ्वे[4] तकसीर आम हो गया है। लडने वाले आते जाते है और आलाते[5] हर्ब व पैकार देकर तौकीए[6] आज़ादी पाते है। ये दो शख्स कैसे मुजरिम थे जो मुकैयद हुए।

मुहर्रिरा सुबह शबा, २० नवबर सन् १८५८ ई०।

६१

(२७ नवंबर १८५८)

मिर्जा तफ्ता,

तुम्हारा खत आया। फकीर को हकीर का हाल मालूम हुआ। खुदा

---

१. शाही सजावट। २. सूर्य। ३. सच झूठ का पुण्य-पाप बोलने वाले पर। ४. पाप की क्षमा, माफीनामा। ५. युद्ध के शस्त्र। ६. स्वतन्त्रता का फर्मान।

फज़्ल करे । अगर तुम इस राज़ के इज़हार को मना न करते तो भी मेरा शेवा ऐसा लगो नही है के मै उनको लिखता । लिखते हो के मिर्ज़ा मेहर के दो-चार रुपये जायद सर्फ[1] हो गये, तो क्या अदेशा है । हाल ये है के मैंने उनसे इस्तफसार[2] किया था, उन्होने मुझको लिखा के किताबो की दुरुस्ती मे वही बारह रुपया सर्फ हुए हैं । महसूल की एक रक्मे खफीफ[3] अगर मैंने अपने पास से दी, तो इसका क्या मुजायका । मुझको तुम्हारा कौल मुताबिके वाकै नजर आता है । अलबत्ता उनके दो-तीन रुपये उठ गये होगे ।

लाला गगापरशाद 'शाद' तखल्लुस अपने को तुम्हारा शागिद बताते है । मगर रेख्ता[4] कहते है । कई दिन हुए यहाँ आये और बालमुकन्द 'बेसब्र' की गजले इस्लाह को लाये, वो देखकर उनको हवाले कर दे ।

हेनरी स्टुआर्ट रीड साहब मुमालिके[5] मगरिबी के मदरसो के नाज़िम और गवर्नमेन्ट के बड़े मुसाहिब है । अमन के दिनो मे एक मुलाकात मेरी उनकी हुई थी । मैंने अब एक किताब सादा बेजिल्द, उनको भेजी थी । कल उनका खत मुझको उस किताब की रसीद में आया । बहुत तारीफ लिखते थे । और हाँ भाई, एक तमाशा और है । वो मुझको लिखते थे के ये 'दस्तम्बू' पहले इसमे के तुम भेजो, मतब ए मुफीदे खलायक ने हमारे पास भेजी है और हम इसको देख रहे और खुश हो रहे थे के तुम्हारा खत मय किताब के पहुँचा । उनके इस लिखने से ये मालूम हुआ के मतबे मे से गवर्नर की नज़र भी जरूर गई होगी, क्या अच्छी बात है के वहाँ भी मेरे भेजने से पहले मेरा कलाम पहुंच जाएगा ! मै चीफ कमिश्नर पजाब को ये किताब भेज चुका हूँ, और नवाब गवर्नर की नज़र और मलिका की नजर और सेक्रेट्री की नज़र ये शा-अल्लाह तआला आज रवाना हो जाएंगे । देखूँ चीफ कमिश्नर क्या लिखते है और गवर्नर क्या फरमाते है ।

---

१. व्यय । २. पूछताछ । ३. साधारण व्यय ४. खड़ी बोली की विशेष प्रकार की कविता । ५. पश्चिमी सूबा । ६. यदि ईश्वर ने चाहा तो ।

मु शी हरगोपाल तफ्ता के नाम

ता निहाले दोस्ती कै वर देहद
हालिया रफ्तेमो तुख्मे काश्तेम

शवा २७ नवबर सन् १८५८ ई०।

६२

(१८ दिसम्बर १८५८)

साहब,

तुम्हारा खत आया। मैने अपने सब मतालिब का जवाब पाया। उमराव-सिंघ के हाल पर उसके वास्ते मुझको रहम और अपने वास्ते रश्क आता है। अल्लाह अल्लाह ! एक वो है के दो बार उनकी बेड़ियाँ कट चुकी है और एक हम है के एक ऊपर पचास बरस से जो फाँसी का फदा गले मे पडा है, तो न फदा ही टूटता है न दम ही निकलता है। उसको समझाओ के तेरे बच्चो को मै पाल लूँगा। तू क्यो बला मे फँसता है ?

वो जो मिसरा तुमने लिखा है, वो हकीम सनाई का है और वो नक्ल[1] हदीका मे मरकूम है—

[2]पिसरे बा पिदर व ज़ारी गुफ्त
के मरा यार शौ व हमरहे जुफ्त

---

१ कहानी। २. एक पुत्र ने अपने पिता से रोते हुए कहा-पत्नी के सम्बन्ध मे मेरा समर्थन कीजिये। पिता ने कहा-विवाह मत करो, व्यभिचार करो। मुझसे उपदेश मत लो, लोगो को देख कर शिक्षा ग्रहण करो। व्यभिचार करते समय तुम्हे कोतवाल पकडेगा तो छोड भी देगा। उसने तुम जैसे बहुतो को पकडा है और छोड दिया है। यदि तुम विवाह करोगे तो पत्नी कभी न छोडेगी। यदि तुम उसे छोड दोगे तो न जाने वह क्या कर गुज़रे।

गुफ्त वावा ज़िना कुनो जन नै
पन्द अज़ खल्क गीरो अज मन नै
दर जिना गर विगीरदत अससे
वहिलद कू गिरिफ्त चूँ तू वसे
जन कुनी हरगिजत रिहा न कुनद
वर तू वुगुजरियत चिहा न कुनद

वस तो अव तुम सिकन्दरावाद मे रहे। कही और क्यो जाओगे? वक घर का रुपया उठा चुके हो। अव कहाँ से खाओगे? मियाँ, न मेरे समझाने को दखल है न तुम्हारे समझने की जगह है। एक चर्ख है के वो चला जाता है, जो होना है वो हुआ जाता है। अख्तियार हो, तो कुछ किया जाए, कहने की वात हो, तो कुछ किया जाये, कहने की वात हो तो कुछ कहा जाये।

मिर्ज़ा अब्दुल कादर 'वेदिल' खूब कहता है—

[1]रगवते जाह चे वो नफरते असवाव कुदाम
जी हवसा वेगुजर या मगुजर मी गुजरद

मुझको देखो के न आजाद हूँ न मुक्य्यद, न रजूर हूँ न तन्दुरुस्त, न खुश हूँ न नाखुश, न मुर्दा हूँ न जिन्दा जिये जाता हूँ। वाते किये जाता हूँ। रोटी रोज खाता हूँ। शराव गाह गाह पिये जाता हूँ। जव मौत आयेगी मर रहूँगा। न शुकर है न शिकायत है, जो तकरीर है, वसवीले हिकायत[2] है। जहाँ रहो, जिस तरह रहो, हर हफ्ते में एक वार खत लिखा करो।

यक शवा १९ दिसम्वर १८५८ ई०।

६३

(२७ दिसम्बर १८५८)

क्यो साहव,

रूठे ही रहोगे या कभी मनोगे भी? और अगर किसी तरह नहीं मानो

---

१. पद-प्रतिष्ठा की लालसा क्या चीज है? पदार्थों के प्रति घृणा का क्या मतलब है? इन लालसाओं को छोड़ो या न छोड़ो जीवन बीत ही जाना है। २. कहानी।

तो रूठने की वजह तो लिखो। मैं इस तनाही मे सिर्फ खुतूत के भरोसे जीता हूँ। याने जिसका खत आया मैंने जाना के लो शख्स तशरीफ लाया। खुदा का अहसान है के कोई दिन ऐसा नही होता जो अतराफ[1] व जवानिव से दो चार खत नही आ रहते हो, बल्कि ऐसा भी दिन होता है के दो वार डाक का हरकारा खत लाता है, एक-दो सुबह को और एक दो शाम को। मेरी दिललगी हो जाती है। दिन उनके पढने और जवाब लिखने मे गुजर जाता है। ये क्या सबब? दस-दस बारह बारह दिन से तुम्हारा खत नही आया। याने तुम नही आये। खत लिखो साहब! न लिखने की वजह लिखो। आधाने वुक्ल[2] न करो। ऐसा ही है तो बैरग भेजो।

सोमवार २७ दिसम्बर सन् १८५८ ई०।

—ग़ालिब

६४

(३ जनवरी १८५९)

देखो साहब, ये बाते हमको पसन्द नही। सन् १८५८ ई० के खत का जवाब १८५९ ई० मे भेजते हो और मजा ये है के जब तुमसे कहा जायेगा तो ये कहोगे के मैंने दूसरे ही दिन जवाब लिखा है। लुत्फ इसमें है के मैं भी सच्चा और तुम भी सच्चे।

आज तक राय उम्मीद सिंघ यही है और अभी नही जाएंगे। तुम्हारा मुद्दआ हासिल हो गया है। जिस दिन वो आये थे उसी दिन मुझ से कह गये थे। मै भल गया और उस खत मे तुमको न लिखा। साहब, वो फरमाते थे के मैंने कई मुजल्लद मिर्जा तफ्ता के दीवान के और कई नुस्खे 'तजमीने अग़ारे

---

१. आसपास। २. कजूसी।

गुलिस्तान' के उनकी ख़ाहिश के बमुजिब, कोई पारसी है बम्बई मे, उसके पास भेज दिये है। यकीन है के वो ईरान को इरसाल करेगा। उम्मीद सिंघ ने उस पारसी का नाम भी लिया था। मै भूल गया। अब जो तुमको इस खयाल मे मुब्तिला पाया तो उनका बयान मुझको याद आया। जानता हूँ के वो कहाँ रहते है। दो बार उनके घर गया भी हूँ, मगर मुहल्ले का नाम नही जानता। न मेरे आदमियो मे कोई जानता है। अब किसी जानने वाले से पूछकर तुमको लिख भेजूँगा। मीर बादशाह साहब से अिन्दल[1] मुलाकात मेरी दुआ कह देना। लाहोला[2] वला कूवता इल्लाह बिल्लाह। लिखने के काबिल बात फिर भूल गया। कल मीर करामत अली, 'सफा' तख़ल्लुस, के मैने आगे उनको कभी नही देखा था, नागाह मुझसे आकर मिले और तुम्हारा हाल पूछते रहे। मैने कह दिया के बख़ैरो आफियत सिकन्दराबाद मे है। जब मैने उनसे कहा के क्या वो तुम्हारे आशना है? उन्होने कहा—वो साहब बुजुर्ग और उस्ताद है। मै उनका शागिर्द हूँ। कही मदरसे के इलाके मे नौकर है। बसबीले डाक आये थे और आज बसबीले डाक अबाले को गये। अबाला उनका वतन है और नौकर भी वो उसी जिले मे है।

निगाश्ता दोशबा, ३ जनवरी सन् १८५९ ई०।

—गालिब

६५

(२६ जनवरी १८५९)

साहब,

तुम्हारा खत मय काग़ज़ [illegible] फ़ह्म पहुँचा। तुम्हारी खुशामद नहीं करता। सच कहता हूँ के तुम्हारे कलाम की तहसीन करने वाला फिर हकीकत

---

१. भेंट के समय। २. जब तक ईश्वर की शक्ति न हो न मनुष्य पाप से बच सकता है, न भक्ति कर सकता है।

अपने फहम की तारीफ करता हूँ। जवाब मे दिरग इस राह से हुई के मैं मुस्तफाखाँ की मुलाकात को बसबीले डाक मेरठ गया था। तीन दिन वहाँ रहा। कल वहाँ से आया। आज तुमको ये ख़त भिजवाया।

मुहर्रिरा व मुरसला चहार शबा, २६ जनवरी १८५९ ई०।

६६

(३० जनवरी १८५९)

साहब,

मेरठ से आकर तुम को ख़त लिख चुका हूँ। शायद न पहुँचा हो। इस वास्ते अज रू ए अेहतियात लिखता हूँ के नवाब मुस्तफाखाँ के मिलने को बसबीले डाक मेरठ गया और से शम्बे के दिन दिल्ली आ गया और चारशबे के दिन तुमको ख़त भेजा।

कल आखिरे रोज राजा उम्मीद सिंघ बहादुर मेरे घर आये थे, तुम्हारा खत उनके दिखाने को रख छोडा था, वो उनको दिखाया। पढ कर ये फरमाया के किसी और मन्दिर मे कस्दे[1] इकामत नही है, नया एक तकिया[2] बनाया चाहता हूँ। आदमी बिन्द्राबन गये है, कोई मकान मोल लेगे, वहाँ अपनी वजा पर रहूँगा। मेरा सलाम लिखना और ये पयाम लिखना के आपका कलाम बम्बई तक पहुँच गया। अब तेहरान को भी रवाना हो जायेगा।

सवादे[3] हिन्द गिरफ्ती बनज्मे खुद, 'तफ्ता'
बिया के नौबते शीराजो वक्ते तबरेजस्त

सुबह यकशबा सियम जनवरी सन् १८५९ ई०।

१ रहने की इच्छा। २. आश्रम, मठ। ३ हे तफ्ता, तूने अपनी कविता से पूरे हिन्दुस्तान के आस-पास अधिकार कर लिया है। अब शीराज और तबरेज़ की बारी है।

६९

२७ फरवरी १८५९

अजी मिर्जा तपता,

भाई मुन्शी नबीबख्श साहब को तुम्हारे हाल की बड़ी पुरसिश है। तुमने उनको खत लिखना क्यो मौकूफ किया है ? वो मुझको लिखते थे के अगर आप को मिर्जा तपता का हाल मालूम हो तो मुझको जरूर लिखिएगा।

यकशबा २७ फरवरी सन् १८५९।

—गालिब

७०

(२७ फरवरी १८५९)

क्यो मिर्जा तपता, तुम बेवफा या मै गुनहगार ? ये भी तो मुझको मालूम नही के तुम कहाँ हो। अभी एक साहब मेरी मुलाकात को आए थे। तकरीबन तुम्हारा जिक्र दरमियान आया। वो कहने लगे के वो कोल मे है। अब मै हैरान हूँ के खत कोल भेजूँ या सिकन्दराबाद। अगर कोल भेजूँ तो मकान का पता क्या लिखूँ ? बहर हाल सिकन्दराबाद भेजता हूँ। खुदा करे पहुंच जाए। तुम्हारा दीवान बतरीके पार्सल मेरे पास आया। मैने हरकारे को राजा उम्मीदसिंह बहादुर के घर का पता बताकर, वहाँ भिजवा दिया। यकीन है के पहुँच गया होगा। पाँच-चार दिन से सुनता हूँ के वो मथुरा और अकबराबाद की तरफ गए हैं। मुझसे मिलकर नहीं गए। बहरहाल इस खत का जवाब जल्द लिखो और जरूर लिखो। भाई, तुम सैयाह[1] आदमी हो। जहाँ जाया करो मुझको लिख भेजा करो के मै वहाँ जाता हूँ। या जहाँ जाओ वहाँ से खत लिखो।

---

१ घुमक्कड़।

तुम्हारे खत के न आने से मुझे तशवीश रहती है। मेरी तशवीश तुमको क्यो पसन्द है?

मुर्हरिरा यकशबा, २७ मार्च सन् १८५९ ई०।

—ग़ालिब

७१

(५ जून १८५९ ई०)

यकशबा सुअम ज़ीकादा (सन् १२७५ हि०) व पजुम

जून साले हाल (सन् १८५६ ई०)

साहब,

आज तुम्हार खत सुबह को आया। मैं दोपहर को जवाब लिखता हूँ। तुम्हारी नासाजगारी ए[1] तबियत सुनकर दिल कुढ़ा। हक ताला तुम को जिन्दा व तन्दुरुस्त व खुश रखे। औराके[2] मसनवी भेजे हुए बहुत दिन हुए। जिसमे हिकायत तालिबे इल्म और सुनार की थी। वाकआ बुलन्दशहर का और वो औराक मैंने पफलेट पाकिट नही भेजे, खत मे लपेट कर, चूंके खत डबल था, दो टिकट लगा कर इरसाल किए हैं। रसीद मिले तो उसको देखकर तारीख मालूम हो जाए। कयास से ऐसा जानता हूँ के पान-सात दिन हुए होगे। मुन्शी नबी बख्श का खत बहुत दिन से नही आया। घर उनका 'ताजगज', वो खुद मय बाजे मुताल्लकीन आगरे। एक बार ताजगज के पते से खत उनका भेजा था, जवाब न आया। अब नाचार बरखुरदार शीवनरायन से उनका हाल पूछूँगा। तुम बाहमा[3] कमालात खफकानी[4] भी हो। राय उम्मीदसिंघ से खत की उम्मीद क्यो रखते हो? जब आगरे जाओगे और वो वहाँ होगे तो मुलाकात हो जाएगी

१ अस्वस्थता। २ मसनवी के पृष्ठ। ३. बाह्य चमत्कार। ४ पागल।

मैं खुद वाकिफ नही के वो कहाँ है। अज़ रू-ए-क़यास[१] कह सकता हूँ के आगरे या विन्द्रावन। कभी कही से उनका कोई ख़त मुझको आया हो, तो मैं गुनहगार।

—गालिब

७२

(१७ जून १८५९)

साहब,

हम तुम्हारे अख़बार नवीस हैं और तुमको खबर देते हैं के बरखुरदार मीर बादशाह आए। मैं उनको देखकर खुश हुआ। वो अपने भाइयो से मिलकर शाद हुए। तुम्हारा हाल सुनकर मुझको रंज हुआ। क्या करूँ। न अपने रंज का चारा कर सकता हूँ, न अपने अज़ीज़ो की खबर ले सकता हूँ। खैर—

हरचे[२] साकि ए मा रीरत ऐने अल्ताफस्त।

आज चौथा दिन है, याने मगल के दिन कोई पहर भर दिन चढ़ा होगा के राजा उम्मीद सिंघ बहादुर नागाह मेरे घर तशरीफ लाए। पूछा गया के कहाँ से आए हो? फरमाया के आगरे से आता हूँ। 'बिसावन की गली' में जो 'हकीमो की गली' के करीब है, जोन्स साहब की कोठी उन्होने मोल ली है। उसके करीब की ज़मीने[३] उफ़तादा भी खरीदी है और उनको बनवा रहे हैं। तुम्हारा मैंने जिक्र किया के हर खत में तुमको पूछते हैं और लिखते हैं के मैंने कई खत भेजे, जवाब नहीं आया। बोले के एक खत उनका आया था, उसका जवाब लिख चुका हूँ, फिर उनका कोई खत नहीं आया। बहरहाल मेरे फोटे निकल रहे

१ अनुमान के अनुसार। २ साकी ने हमें जो कुछ दिया उसकी दया है। ३ बेकार ज़मीन।

है। मैं बाजदीद[1] को नही गया। शायद वो आज गए हो या जावे। फिर अकबराबाद को जाएँगे। मै आज आदमी उनके पास भेजूँगा। कल मिर्ज़ा हातिम अली 'मेहर' का खत आया था। तुमको बहुत पूछते थे के आया मिर्ज़ा तफ्ता कहाँ है और किस तरह है। भाई, उनको खत लिख भेजो।

मुर्हरिरा १७ जून १८५९ ई०।

७३

(२९ जून १८५९)

साहब,

एक खत परसो तुम्हारा आया। उसमे मुन्दरिज[2] था के मैं मेरठ जाऊँगा। आज सुबह को एक खत तुम्हारा और आया। उसमे मुन्दरिज के पहली जुलाई को जाऊँगा और तुमसे मिलता जाऊँगा। परसो खत मे भी और आज के खत मे भी पार्सल का जिक्र था के बीस जून को हमने भेजा है। २० वी जून को आज दसवाँ दिन है। इस दस दिन मे कोई पार्सल, कोई पफलेट पाकिट मेरे पास नही पहुँचा। आखिरी पफलेट पाकिट दो मसनवियो का वो था के जिसमे एक मसनवी बुलदशहर के वाकये की थी के एक लड़का मर गया, उसकी अर्थी फुकती रही, उसका आशिक सामने खडा जलता रहा। सो उन दोनो मसनवियो को मैंने इस्लाह देकर तुम्हारे पास भेज दिया है। बल्के यो याद पडता है के तुमने उसकी रसीद भी लिख भेजी है। लेकिन मुझको गुमान ये है के ये अम्र बीस जून से आगे का है। बहर तकदीर, बाद इस पार्सल के कोई और पार्सल मेरे पास नही आया। इस्लाही कवागज हर तरफ के उमूमन[3] और तुम्हारे खुसूसन[4] दो दिन से ज्यादा मैं नही रखता जो कागज़

---

१ भेट। २. उल्लिखित। ३ सामान्यतया। ४. विशेपकर।

मुझ तक न पहुँचे, मैं नाचार हूँ, बल्के खुद मेरे एक खत का जवाब तुम पर कर्ज़ है। या तो वो न पहुँचा या तुमने उसका जवाब लिखना जरूर न जाना। वो खत जिसमे मीर बादशाह का दिल्ली आना और उनका मुझसे मिलना और तुम्हारा जिक्र मुझमे और उनमें होना, माहाजा राजा उम्मीदसिंघ का दिल्ली मे आना और बेखबर मेरे घर आ जाना और तुम्हारा उनसे जिक्र होना और उनका ये कहना के उनका कल एक खत मेरे पास आया था, सो मैंने उसका जवाब लिख भेजा था, अब मैं क्या जानूँ के तुमको ये खत पहुँचा या नही पहुँचा ? तुम्हारा वो पार्सल जिसको तुम अब मागते हो, मेरे पास हर्गिज नही आया।

चारशंबा, २९ जून सन् १८५९ ई०, वक्ते नीमरोज।

—गालिब

७४

मियाँ,

तुम्हारे इन्तकालाते[१] ज़हन ने मारा। मैंने कब कहा था के तुम्हारा कलाम अच्छा नही ? मैंने कब कहा था के दुनिया मे कोई सुखन फहम व कद्रदाँ न होगा ? मगर बात ये है के तुम मश्के[२] सुखन कर रहे हो और मैं मश्के[३] फना में मुस्तगर्क[४] हूँ। बूअली[५] सीना के इल्म को और नजीरी के शेर को जाया और बेफायदा और मौहूम जानता हूँ। जीस्त बसर करने को कुछ थोड़ी सी राहत दरकार है और बाकी हिकमत और सल्तनत और शायरी और साहरी[६] सब खुराफात है। हिन्दुओ मे अगर कोई औतार हुआ तो क्या ? और मुसलमानो में नबी बना तो क्या ? दुनिया मे नामावर हुए तो क्या ?

---

१. अस्थिर मस्तिष्क। २. कविता का अभ्यास। ३. अहं के विनाश का अभ्यास। ४. तल्लीन। ५. एक प्रसिद्ध विद्वान। ६. जादूगरी।

और गुमनाम जिये तो क्या ? कुछ वजह माश[1] हो और कुछ सेहते[2] जिस्मानी बाकी सब वहम है। ऐ यारे जानी ! हर चद वो भी वहम है, मगर मैं अभी इसी पाये पर हूँ। शायद आगे बढकर, ये पर्दा भी उठ जाए और वजह मइशत[3] और सेहत व राहत से भी गुजर जाऊँ। आलमे बेरगी मे गुजर पाऊँ। जिस सन्नाटे मे मै हूँ वहा तमाम आलम बल्के दोनो आलम का पता नही। हर किसी का जवाब मुताबिक सवाल के दिये जाता हूँ। और जिससे जो मामला है, उसको वैसा ही बरत रहा हूँ, लेकिन सबको वहम जनता हूँ। ये दरिया नही है, सराब[4] है। हस्ती[5] नही है, पिन्दार[6] है। हम तुम दोनो अच्छे खासे शायर है। माना के सादी व हाफ़िज़ के बराबर मशहूर रहेगे, उनको शोहरत से क्या हासिल हुआ के हमको तुमको होगा? खताते तारीख आगरे क्यो कर भेजूँ। फिर तुम्हारे पास भेजता हूँ।

'खालिके[7] माना' बमाना[8] माना आफरी[9] सही और मुसल्लिम[10] और जायज़। लेकिन जिस तरह अल्लाह मे मुशद्दद[11] लाम को दो लाम के कायम मुकाम करार दिया है, 'इलाह' 'इलाही' मे अलिफ ममदूदा को दूसरा अलिफ क्यो कर समझे? कयास काम नही आता, इत्तेफाके[12] सलफ शर्त्त है। इलाही मे जब और किसी ने दो अलिफ नही माने तो हम क्यो कर माने?

'दोयम' बरवज़ने 'जोयग'। गलत, 'दूअम' है वगैरे तहतानी, बिलफ़र्ज तहतानी भी लिखे तो, 'दुय्यम' पढेगे, अगर चे लिखेगे 'दोयम'। बाब का ऐलान टकसाल बाहर है। हाँ, 'दोमी' दुरुस्त है। अगर ना बहजर्फे तहतानी मिस्ले 'जमी' बहज़फे नून बल्के बतरीके कलबे बाज़ 'दोयम' का 'दोमी' हो गया। कुवे की तारीख को बे ताम्मुल भेज दो, और तारीखे वफात का और माद्दा सोचो, किस वास्ते के जब 'इलाही' मे से एक

---

१. वृत्ति। २. शारिरिक स्वास्थ्य। ३. आर्थिक स्थति। ४. मृग मरीचिका। ५. ६. अस्तित्व नही भ्रम है। ७. ८. अर्थ उत्पन्न करने वाला। ९. प्रामाणिक। ११. द्वित्व युक्त। १२. पूर्वजो की सम्मति।

अलिफ लिया तो एक अदद कम हो जाएगा। वद्दुआ। रोजे वुरूदे नामा, वल्कि वक्ते वुरूदेनामा वादे[1] खाँदन नविश्ता शुद। एक शवा।

अज़—गालिब

७५

(अक्टूबर १८५९)

भाई,

तुम्हारे जहन ने खूब इन्तकाल किया! मैंने जिस वक्त ये शेर पढ़ा—

वहिन्द [2]आमदन्दे जि ईराने दयार

'आमदन्द' की जगह 'आमददे' वसीगा[3] इस्तमरार टकसाल वाहर मालूम हुआ।

रसीदद दर हिंद ज ईराने दयार

उसकी जगह लिख दिया! वाकई पोस्तीन का बेचना राह में वाके हुआ फिर 'रसीदद दरहिंद' वेजा, तुम्हारा तसर्रुफ मुस्तहसन। जिस तरह तुमने लिखा है उसी तरह रहने दो।

साहब, 'सुम्बलिस्तान' से क्यों घबराते हो! मैं तुम्हारे घबराने से घबराता हूँ। 'रुख' को 'गुल', 'जल्फ' को 'सुम्बुल' फर्ज करते हैं। 'सुम्बुलिस्तान' क्या ऐब है? और अगर नहीं पसन्द तो ये किस्सा ही जाने दो। इस वक्त तक कि अक्तूबर की आठवीं, हफ्ते का दिन, तीसरे पहर का वक्त है, मीर कासिम

---

१. पढ़ने के पश्चात्। २. ईरान के शहर से हिन्दुस्तान आये। ३. सिक्का या जारी रहना।

अली साहब तशरीफ नही लाए। हातरस के 'मुन्सिफ' और दिल्ली के नामु-सिफ है।

रोजेशबा, हश्तुम अक्तूबर सन् १८५९ ई० आखिरे रोज।

अज़—ग़ालिब

७६

५ नवम्बर १८५९

साहब,

तुम्हारा खत आया हाल मालूम हुआ।

जहाँ[1] नियाॅ जे तो बरगश्ता अन्द अगर 'गालिब'

तुरा चे बाक खुदा ए के दाश्ती दारी।

खुदा के वास्ते मेरे बाब मे लोगो ने क्या खबर मशहूर की है? बनिस्बत हकीम अहसनुल्ला खाॅ के जो बात मशहूर है, वो महज गलत। हाॅ, मिर्जा इलाही बख्श जो शाहज़ादो मे है, उनको हुक्म कराॅची बन्दर जाने का है और वो इन्कार कर रहे है। देखिए क्या हो। हकीमजी को उन की हवेलियाॅ मिल गई है, अब वो मय कबायल[2] उन मकानो मे जा रहे है। इतना हुक्म उनको है के शहर से बाहर न जाएँ। रहा मै—

तु[3] बेकसीयो गरीबी तुरा के मी पुरसद!

न जजा[4] न सजा, न नफरी[5] न आफरी[6], न अद्लन[7] जुल्म, न लुत्फ न

---

१ गालिब यदि ससार अप्रसन्न हो जाए तो क्या भय है? जिस तरह पहले परमेश्वर तुम्हारा था उसी तरह अब भी है। २ सपरिवार। ३ तुम दरिद्र और विवश हो। तुम्हे पूछता कौन है। ४ दण्ड। ५ घृणा। ६ प्रशसा। ७ न्यायत अत्याचार।

कहर[1]। पन्द्रह दिन पहले तक दिन को रोटी, रात को शराब मिलती थी, अब सिर्फ रोटी मिल जाती है, शराब नही। कपड़ा अय्यामे[2] तनउम का बना हुआ अभी है, उसकी कुछ फिक्र नही है। मगर तुमको मेरे सर की कसम ये लिख भेजो के मेरी खबर तुमने क्या सुनी? मुझे उसके मालूम होने से मजा मिलेगा।

शवा, ५ नवम्बर सन् १८५९ ई०।

—गालिब

७७

२३ दिसम्बर १८५९

मेरी जान,

क्या समझे हो? सब मख़लूकात 'तफ्ता' व 'गालिब' क्यो कर बन जाएँ—

हर[3] यके रा बहरे कारे साख़तन्द।

अन्त मता सो मता। मिसरी मीठी नमक सलोना, कभी किसी शै का मजा न बदलेगा। अब जो मैं उस शख्स को नसीहत करूँ के क्या न समझेगा के गालिब क्या जाने के अब्दुर्रहमान कौन है और मुझसे उससे क्या रस्मो राह[4] है। वे गुवाह[5] जानेगा के तफ्ता ने लिखा होगा, मैं उसकी नजर में मुकद्दर[6] हो जाऊँगा और तुमसे वो और भी सरगिराँ[7] हो जाएगा। और ये जो तुम लिखते हो के तूने उस शख्स को अपने अजीजों में गिना है, बन्दापरवर मैं तो बनी आदम[8]

१ विपत्ति। २ वैभव के दिनों का। ३ मनुष्य को निश्चित काम के लिए उत्पन्न किया गया है। ४ सम्बन्ध। ५ निस्सन्देह। ६ खफा। ७ अप्रसन्न। ८. मानव।

को,—मुसलमान या हिन्दू या नसरानी-अजीज रखता हूँ और अपना भाई गिनता हूँ। दूसरा माने या न माने बाकी रही वो अजीजदारी जिसको अहलेदुनिया[1] करावत[2] कहते हैं, उसको कौम और जात और मजहब और तरीक शर्त्त है—और उसके मरातिब[3] व मदारिज[4] है। नजर इस दस्तूर पर अगर देखो तो मुझको उस शख्स से खस बराबार इलाका अजीजदारी का नही। अज़ राहे हुस्ने[5] अखलाक अगर अजीज लिख दिया या कह दिया, तो क्या होता है? जैनुल आबदीन खाँ 'आरिफ' मेरी साली का बेटा, ये शख्स उसकी साली का बेटा, इसको जो चाहो समझ लो। खुलासा ये के जब उधर से आदमियत न हुई तो अब उसको लिखना लगो और बे फायदा बल्के मुजिर है। तुम्हारा मेरठ जाना और नवाब मुस्तफा खाँ से मिलना हम पहले ही दरियाफ्त कर चुके हैं। अब तुम्हारे खत से मुरादाबाद होकर सिकन्दराबाद आना मालूम हो गया। हक ताला शानहू तुम को खुशो[6] खुर्रम रखे।

मरकूमा[7] जुमा, २३ दिसम्बर सन १८५९ ई०।

७८

२१ जनवरी १८६०

भाई,

मैंने दिल्ली को छोडा और रामपूर को चला। पजशबा १९ को मुरादनगर और जुमा २० को मेरठ पहुँचा। आज शबा २१ को भाई मुस्तफा खाँ के कहने से मुकाम किया। यहा से ये खत तुमको लिख कर भेजा। कल शाहजहाँपुर, परसो गढमुक्तेसर रहूँगा। फिर मुरादाबाद होता हुआ रामपूर जाऊँगा। अब जो मुझको खत भेजो रामपूर भेजना। सरनामे पर रामपूर का नाम और मेरा

१ सासारिक लोग। २ निकटता। ३ पद। ४ स्तर। ५ शिष्टाचार। ६ प्रसन्न। ७ लिखित।

नाम काफी है। अब इसी कदर लिखना काफी था, बाकी जो कुछ लिखना है, वो रामपूर से लिखूँगा ।

मरकूमा चाश्त गाहे शबा, २१ जनवरी सन् १८६० ई०।

राकिम—गालिब

७९

१८६० ई०

साहब,

तुम्हारे ये औराक सिकन्दराबाद से दिल्ली और दिल्ली से रामपूर पहुँचे। यकीन है के रामपूर से मेरे भेजे हुए सिकन्दराबाद पहुँचे होंगे। सिवाय एक मिसरे के मुझे और जगह की इस्लाह याद नही। तुम जो अपने फरजन्द[1] को नाशिनासाए[2] मिजाजे रोजगार कहते हो खुद इसमें उससे क्या कम हो? पहले तो ये बताओ के रामपूर मे मुझे कौन नही जानता? कहाँ मौलवी वजीहुज्जमा साहब, कहाँ मैं! उनका मस्कन मेरे मस्कन से दूर फिर दरे दौलते रईस कहाँ और मैं कहाँ! चार दिन वालीए[3] शहर ने अपनी कोठी मे उतारा। मैंने मकान जुदागाना माँगा। दो-तीन हवेलियाँ बराबर बराबर मुझको अता हुई। अब उसमें रहता हूँ। बहस्बे इत्तेफाक डाकघर मस्कन के पास है। डाक मुंशी आशना हो गया है। बराबर दिल्ली से खत चले आते हैं, सिर्फ रामपूर का नाम और मेरा नाम। मुहल्ले की और उर्फ की[4] हाजत नहीं बल्कि दरे दौलत और मौलवी साहब के निशान से शायद खत तलफ हो जाए। दूसरी बात जो तुमने लिखी है वो भी मुताबिके[5] वाके व मुनासिबे[6] हाल नहीं। अगर इकामत[7] करार पाई तो तुमको बुला लूँगा।

—गालिब

---

१ पुत्र। २. संसार से अनभिज्ञ। ३ नगर के अधिपति। ४ उपनाम। ५ घटना के अनुसार। ६ उचित। ७ निवास करना।

८०

१४ फरवरी १८६०

मेरी जान,

आखिर लडके हो। बात को न समझे। मै और तफ्ता का अपने पास होना गनीमत न जानो। मैने ये लिखा था के बशर्त्ते इकामत बुला लूँगा। और फिर लिखता हूँ के अगर मेरी इकामत यहा की ठहरी, तो बेतुम्हारे[1] न रहूँगा, न रहूँगा। जिन्हार न रहूँगा। मुन्शी बाल मुकुद 'बेसब्र' का खत बुलन्द शहर से दिल्ली और दिल्ली से रामपूर पहुँचा, तलफ नही हुआ। अगर मै यहाँ रह गया तो यहाँ से, और अगर दिल्ली चला गया तो वहाँ से इस्लाह देकर उनके अशार भेज दूँगा। 'बेसब्र' को अबके बार महीना भर सब्र चाहिए। वो लिफाफा बदस्तूर रखा हुआ है। अजबस के यहाँ के हजरात मेहरबानी फरमाते है और हरवक्त आते हैं, फुरसते मुशाहिदा औराक नही मिली। तुम इसी रुक्के को उनके पास भेज देना।

से शबा १४ फरवरी सन् १८६० ई०।

—गालिब

८१

१ मार्च १८६०

बरखुरदार[2] सआदत[3] आसार मुन्शी हर गोपाल सल्लेमुल्लाह[4] ताला।

इससे आगे तुमको हालत मुजमिल लिख चुका हूँ। हनोज कोई रंग करार नही पाया। बिलफैल नवाब लेफ्टेट गवर्नर बहादुर मुरादाबाद और वहाँ से रामपूर आएँगे। बाद उनके जाने के कोई तौर इकामत या अदम[5] इकामत

---

१ 'बेतुम्हारे' शब्द खूब तराशा गया है। २ सुपुत्र। ३ सुशील। ४ ईश्वर तुम्हे सकुशल रखे। ५ न रहना।

का ठहरेगा। मजूर मुझको ये है अगर यहाँ रहना हुआ तो फौरन तुमको बुला लूँगा। जो दिन जिन्दगी के बाकी हैं वो बाहम बसर हो जाएं। बद्दुआ।

यकुम मार्च सन् १८६० ई०।

राकिम—गालिब

८२

(३१ मार्च १८६०)

मिर्जा तफ्ता, इस गमजदगी मे मुझको हँसाना तुम्हारा ही काम है। भाई, 'तजमीने गुलिस्ताँ' छपवा कर क्या फायदा उठाया है जो इन्तवा ए 'सुम्बुलिस्तान' से नफा उठाओगे। रुपया जमा रहने दो, आमद अच्छी चीज है। अगरचे कलील हो और अगर रुपया लेना मजूर है तो हरगिज अँदेशा न करो और दरख्वास्त दे दो। बाद ९ महीने के रुपया तुमको मिल जाएगा।

ये मेरा जिम्मा के इस नौ महीने में कोई इन्कलाब वाके न होगा। अगर अहयानन हुआ भी तो होते होते उसको मुद्दत चाहिए। 'रस्तखेजे बेजा' हो चुका। अब हो तो 'रस्तखेज' हो याने कयामत, और उसका हाल मालूम नहीं के कब होगी। अगर आदाद के हिसाब मे देखो तो भी 'रस्तखेज' के १२७७ होते हैं। इहतमाले[1] कितना साले आइन्दा पर रहा, सो भी मालूम[2]।

मियाँ, मैं तो आखिर जनवरी को रामपुर जाकर आखिर मार्च में यहाँ आ गया हूँ, तो पता नहीं के यहाँ के लोग मेरे हक में क्या क्या कुछ कहते हैं? एक गिरोह का कौल ये है के ये शख्स वाली ए रामपुर का उस्ताद था और वहाँ गया था, अगर नवाब ने कुछ सलूक न किया होगा तो भी पाँच हजार रुपए

---

१ इस्लाम की समाप्ति। २ जाहिर।

से कम न दिया होगा। एक जमात कहती है के नौकरी को गए थे मगर नौकर न रखा। एक फिरका कहता है के नवाब ने नौकर रख लिया था, दो सौ रुपया महीना कर दिया था, लेफ्टेंट गवर्नर इलाहाबाद जो रामपूर आए और उनको 'गालिब' का वहाँ होना मालूम हुआ तो उन्होंने नवाब सहाब से कहा के अगर हमारी खुशनूदी चाहते हो तो इसको जवाब दो। नवाब ने बरतरफ कर दिया। ये तो सब सुन लिया। अब तुम अस्ले हकीकत सुनो, नवाब यूसुफ अली खाँ बहादुर तीस तीस बरस के मेरे दोस्त और पाँच-छ बरस से शार्गिद है। गाह गाह[1] कुछ भेज दिया करते थे। अब जुलाई सन् १८५९ ई० से सौ रुपया महीना माह ब माह भेजते है। बुलाते रहते है, अब मै गया, दो महीने रह कर चला आया। बशर्त्ते[2] हयात बाद बरसात के फिर जाऊँगा। वो सौ रुपया महीना, यहाँ रहूँ, हाँ रहूँ, खुदा के हाँ से मेरा मुकर्रर है।

३१ मार्च १८६० ई०।

—गालिब

८३

१६ अप्रैल १८६०

मिर्जा तफ्ता,

एक अम्रे[3] अजीब तुमको लिखता हूँ और वो अम्र बाद ताज्जुबे[4] मुफरत के मौजिबे[5] निशाते मुफर्रत होगा। मैं इजरा ए पिन्सन से सरकारे अग्रेजी से मायूस था। वारे, वो नक्शा पिन्सनदारो का जो यहाँ से बनकर सदर को गया था, यहाँ के हाकिम ने बनिस्बत मेरे साफ लिख दिया था के ये शख्स पिन्सन पाने का

---

१ समय समय पर। २ यदि जीवन रहा तो। ३ अद्‌भुत कार्य। ४ अत्यधिक आश्चर्य। ५ अधिक प्रसन्नता का कारण।

मुस्तहक नहीं है, गवर्मेण्ट ने बरखिलाफ यहाँ के हाकिम के राय के मेरे पिन्श[illegible] के इजरा का हुक्म दिया और वह हुक्म यहाँ आया और मशहूर हुआ। मैंने भ[illegible] सुना, अब कहते हैं माहे आइन्दा याने मई की पहली को तनखाहो का बटना शुर[illegible] होगा। देखा चाहिए, पिछले रुपए के बाब मे क्या हुक्म होता है।

—गालिब

८४

(६ मई १८६०)

शबा, शशुम मई सन् १८६० ई०, हगामे नीम रोज।

भाई,

आज इस वक्त तुम्हारा ख़त पहुँचा। पढते ही जवाब लिखता हूँ। चरे[1] मे साला मुजतमा हजारो कहाँ से हुए! सात सौ पचास रुपया साल पाता हूँ। तीन बरस के दो हजार दो सौ पचास हुए। सौ रुपए मुझे मदद खर्च मिले थे, वो कट गए। डेढ सौ मुतफर्रिकात[2] में गए। रहे दो हजार रुपए। मेरा मुख्तार-कार एक बनिया है और मैं उसका कर्जदारे[3] कदीम हूँ। अब जो वो दो हजार लाया, उसने अपने पास रख लिए और मुझसे कहा के मेरा हिसाब कीजिए। सात कम पन्द्रह सौ उसके सूद-मूल के हुए। कर्जे[4] मुतफर्रिक का उसी से हिसाब करवाया। ग्यारह सौ कई रुपए वो निकले। पन्द्रह और ग्यारह छब्बीस सौ हुए असल में। याने दो हजार मे छ सौ का घाटा। लो कहता है, पन्द्रह सौ मे[illegible] दो, पाच सौ साल [illegible] बाकी के तुम ले लो। मैं कहता हूँ मुतफर्रिकात ग्यारह सौ [illegible] दे, सौ सो बाकी रहे। आगे तू ने आगे समझा दे। [illegible]

---

1 तीन बरसों का जमा किया रुपया। 2 [illegible], फुटकर। 3 पुराना [illegible]। 4 फुटकर कर्ज।

वो रुपया लाया है, कल तक किस्सा नही चुका। मै जल्दी नही करता। दो-एक महाजन बीच मे है। हफ्ते भर मे झगड़ा फ़ैसल हो जाएगा। ख़ुदा करे ये ख़त तुमको पहुँच जाए। जिस दिन बरात से फिर कर आओ उसी दिन मुझको अपने वुरूदे मसूद की ख़बर देना। वद्दुआ।

—ग़ालिब

८५

(२० जुलाई १८६०)

बरखुरदार मिर्जा तफ्ता,

दूसरा मसविदा भी कल पहुँचा। तुम सच्चे और मै माजूर[१]। अब मेरी कहानी सुनो। आख़िर जून मे सदरे पंजाब से हुक्म आ गया के पिन्सनदाराने[२] कदीम माह बमाह न पाए। साल मे दो बाद बतरीक[३] शशमाह फस्ल बफस्ल पाया करे। नाचार, साहूकार से सूद काट कर रुपया लिया गया, ता रामपूर की आमद मे मिलकर सर्फ हो। ये सूद छ महीन तक इसी तरह कटवाँ देना पडेगा, एक रकम माकूल घाटे मे जाएगी।

रस्म है मुर्दे की छ माही एक
ख़ल्क का है इसी चलन पर मदार
मुझको देखो के हूँ बकैदे हयात
और छमाही हो साल मे दो वार

दस ग्यारह वरस से उस तगना मे रहता था। सात वरस तक माह बमाह चार रुपया दिया किया। अब तीन वरस का किराया कुछ ऊपर सौ रुपया यक मुश्त दिया। मालिक ने मकान वेच डाला। जिसने लिया है, उसने मुझ से पयाम वल्के

---

१ विवश। २. पुराने पिन्सनदार। ३ प्रति छमाही फसल।

इबराम[1] किया के मकान खाली कर दो। मकान कहीं मिले तो मैं उठूँ। बेदर्द ने मुझको आजिज किया और मदद लगा दी। वो सहन वालाखाने का जिसका दो गज का अर्ज[2] और दस गज का तूल[3] उसमे पाड बँध गई। रात को वहीं सोना, गर्मी की शिद्दत, पाड का कुर्ब[4]। गुमान ये गुजरता था के कटघर है और सुबह को मुझको फाँसी मिलेगी। तीन रातें इसी तरह गुजरी। दो शम्बा, ९ जुलाई को दोपहर के वक्त एक मकान हात आ गया, वाँ जा रहा। जान बच गई, ये मकान बनिस्बत उस मकान के बहिश्त है और ये खूबी के मुहल्ला वही 'बल्ली मारो का' अगरचे है यो के मैं अगर और मुहल्ले मे भी जा रहता तो कासिदाने[5] डाक वही पहुँचते। याने अब अक्सर खुतूत 'लाल कुएँ' के पते से आते है और बतकल्लुफ यही पहुँचते है। बहरहाल, तुम वही दिल्ली, बल्लीमारों का मुहल्ला लिख कर खत भेजा करो। दो मसविदे तुम्हारे और एक मसविदा 'बेसब्र' का—ये तीन कागज दरपेश है। दो-एक दिन मे बादे इस्लाह इरसाल किए जाएँगे। खातिरे आतिर जमा रहे।

सुबहे जुमा, २० जुलाई सन् १८६० ई०।

८६

(१९ नवंबर १८६०)

सुबह शंबा, पंजुम जमादिउल अव्वल, १२७७ ई० व नौजदहुम नवंबर साल हाल।

मिर्जा तफ्ता,

[illegible]

---

१ तकरार। २ चौड़ाई। ३ लम्बाई। ४ निकटता। ५ डाक का हरकारा।

हूँ और इसी ख़त के साथ ख़त[1] मौसूमा मीर बादशाह भेजता हूँ। कागज़े अशार कल या परसों रवाना होगा। फ़न्ने तारीख़ को दूने मर्त्तबा[2] शायरी जानता हूँ और तुम्हारी तरह से ये भी मेरा अक़ीदा नहीं है के तारीख़े वफ़ात लिखने से अदा ए हक़्के[3] मुहब्बत होता है। बहरहाल, मैंने मुंशी नबी बख़्श मरहूम की तारीख़े रेहलत में ये किता लिख कर भेजा। मुंशी कमरुद्दीन ख़ाँ साहब ने नापसन्द किया। किता ये है—

शेख़[4] नबीबख़्श के बाहुस्ने ख़ुल्क
दाश्त मज़ाक़े सुख़नो फ़हमे तेज़
मर्गे सितम पेशा अमानश न दाद
कीस्त के बामर्ग बिसीज़द सितेज़
साले वफ़ातश ज पए यादगार
बादिले ज़ारो मिज़ ए दजला रेज
ख़ास्तम अज ग़ालिबे आशुफ़्ता सर
गुफ़्त मदे तूलो बगो रुस्तख़ेज़

एक कायदा ये भी है के कोई लफ़्ज़ जामे आदाद[5] निकाल लिया करते हैं, बल्कि कँद माने दार होने की भी मुर्त्तफ़े है के ये मिसरा—

[6] दरसाले गरस हरां के मानद बीनद

---

१. पीर बादशाह के नाम लिखा हुआ पत्र। २. कवि के महत्व के विरुद्ध। ३, प्रेम का कर्त्तव्य। ४. शेख़ नबी बख़्श बहुत शिष्ट और सभ्य थे। बुद्धिमान और रसज्ञ थे। मृत्यु से कौन लड़ सकता है? उनके मृत्यु वर्ष की स्मृति में अपने दुखी हृदय और अश्रु वाही पलकों से और स्तब्ध मस्तिष्क से 'ग़ालिब' को कहा गया वह बस करे और कह दे 'रुस्तख़ेज़' (१२७७)। ५. संख्या का योग। ६. जो बोने के समय रहेगा वह देख लेगा।

'अनवरी' के कसायद[1] को देखो, दो चार जगह ऐसे अल्फाज कसीदे के आगाज़ मे लिखे है, जिसमें आदाद[2] साले मतलूब निकल आते है और माने कुछ नही होते। लफ्ज रुस्तखेज क्या पाकीजा मानेदार लफ्ज है और फिर वाके के मुनासिव! अगर तारीखे विलादत[4] या तारीखे शादी म ये लफ्ज लिखता तो वेशुवा नामुस्ताहसन[5] था। किस्सा मुख्तसिर, अगर तारीख की फिक्र मूजिवे[6] अदा ए हके मौद्दत है, तो मे हके दोस्ती अदा कर चुका। ज्यादा क्या लिखूँ?

दाद का तालिब—गालिब

८७

(२० जनवरी १८६१)

साहब,

तुम्हारा खत मेरठ से आया। "मिरातुस्सहायफ" का तमाशा देखा। 'सुम्बलिस्तान' का छापा, खुदा तुमको मुवारक करे और खुदा ही तुम्हारी आवरू का निगह वान रहे। वहुत गुज़र गई है, थोड़ी रही। अच्छी गुजरी है, अच्छी गुज़र जाएगी। मै तो ये कहता हूँ के 'उर्फी' के कसायद की शोहरत से उर्फी के क्या हात आया जो मेरे कसायद के इश्तेहार से मुझको नफा होगा? सादी ने वोस्ताँ से क्या फल पाया, जो तुम सुम्वलिस्ताँ से पाओगे? अल्लाह के सिवा जो कुछ है, मौहूम[7], व मादूम[8] है। न सुखन[9] है, न सुख़नवर है, न कसीदा हे न कस्द है। ला मौजूद[10] इल्लल्लाह।

---

१. कसीदे का वहुवचन। २. अभीष्ट वर्ष की सख्या। ३ १२७७। ४. जन्म। ५. अनुचित। ६. मित्रता निभाने का कारण। ७. भ्रान्ति। ८. नश्वर। ९. कविता। १० ईश्वर के अतिरिक्त कुछ भी विद्यमान नहीं है।

जनाब भाई साहब याने नवाब मुस्तफाखाँ बहादुर से मुलाकात हो तो मेरा सलाम कह देना। हमशीरा[1] के पिन्सन का जारी हो जाना बहुत खुशी की बात है; अगर खुशी से ताज्जुब ज्यादा है। क्या अजब है कि इससे भी ज्यादा ताज्जुब की बात ब रू[2] ए कार आवे याने आपका पिन्सन भी वागुजाश्त हो जावे। अल्लाह्, अल्लाह्, अल्लाह् !

सुबह यकशम्बा, २० जनवरी १८६१ ई०।

८८

(६ अप्रेल १८६१)

अजी मिर्जा तफ्ता,

तुमने रुपया भी खोया और अपनी फिक्र को और मेरी इस्लाह को भी डुबोया। हाय, क्या बुरी कापी है! अपने अशार की और इस कापी की मिसाल जब तुम पर खुलती के यहाँ होते और बेगमाते किला को फिरते-चलते देखते। सूरत माह[3] दो हफ्ता की सी और कपडे मैले, पायचे लीर लीर, जूती टूटी। ये मुबालिगा नही, बल्के बे तकल्लुफ! 'सुम्बलिस्ताँ' एक माशूके खूब रू[4] है, बदलिबास[5] है। बहरहाल दोनो लड़को को दोनो जिल्दे दे दी और मुअल्लिम[6] को हुक्म दिया के इसी का सबक दे। चुनाचे आज से शुरू हो गया।

मरकूमा सुबह सेशम्बा, नौ, माहे अप्रेल सन् १८६१ ई०।

—गालिब

---

१. बहन। २. व्यवहार मे आना। ३. पूर्णिमा का चन्द्रमा। ४. सुमुखी। ५. बुरा वेश पहनी हुई। ६. अध्यापक।

७९

(१९ अगस्त १८६१)

मियाँ मिर्जा तफ़्ता,

हजार आफरी ! क्या अच्छा कसीदा लिखा है ! वाह वाह, चश्मेबद्दूर[1]। तसलसुले[2] माने ! सलासते[3] अल्फाज़ एक मिसरे मे तुमको मुहम्मद इसहाक 'शौकत' बुख़ारी से तयासद[4] हुआ। ये भी महले[5] फख़्रो शर्फ है के जहाँ 'शौकत' पहुँचा, वहाँ तुम पहुँचे। वो मिसरा ये है--

चाक [6]गरीदम व अजजेब बदामाँ रज्तम

पहला मिसरा तुम्हारा अगर उसके पहले मिसरे से अच्छा होता तो मेरा दिल और ज्यादा ख़ुश होता। ख़ुदा तुमको इतना जिलाये के एक दीवान बीस जुज्व कसायद का कह लो। मगर खबरदार, कसायद बक़ैद[7] हुरुफे तहज्जी न जमा करना।

साहब, मुझे इस बुजुर्गवार का मामला और ये जो तुमने इसका वतन और पेश अब लिखा है, साबिक का तुम्हारा लिखा हुआ सब याद है। मैंने इसको 'दोस्त' बतरीके तज लिखा है, बहरहाल वो जो मैंने 'ख़ाकानी' का शेर लिखकर उसको भेजा उसकी माँ मरे, अगर मेरे उस खत का जवाब लिखा हो। बडा पुराना किस्सा तुमने याद दिलाया। दागे कुहना हसरत को चमकाया। ये बेकसीदा मुंशी मुहम्मद हसन की मार्फत रौशनद्दौला पास और रोशनद्दौला के तवस्सुत से नसीरुद्दीन हैदर के पास और जिस दिन गुजरा उस दिन पाँच हजार रुपये भेजने का हुक्म हुआ। मुतवस्सत याने मुंशी मुहम्मद हसन ने मुझको इत्तला न दी। मुज़फ़रद्दौला मरहूम लखनऊ मे आये। उन्होंने ये राज

१ बरी दृष्टि से बचाए। २. अर्थ प्रसगबद्ध ३. वाक्य परिमार्जित। ४. साम्य। ५ गौरव का स्थान। ६. मैं फट गया; कण्ठ से लेकर निचले हिस्से मक पहुँच गया। ७. वर्णमाला के अनुसार।

मुझपर जाहिर किया और कहा खुदा के वास्ते मेरा नाम मुंशी मुहम्मद हसन को न लिखना। नाचार मैंने शेख इमाम बख्श नासिक को लिखा के तुम दरियाफ़्त करके लिखो के मेरे कसीदे पर क्या गुज़री। उन्होने जवाब मे लिखा के "पॉच हजार मिले। तीन हज़ार रौशनद्दौला ने खाए, दो हजार मुंशी मुहम्मद हसन को दिए और फरमाया के इसमे से जो मुनासिब जानो गालिब को भेज दो। क्या उसने हनोज तुमको कुछ न भेजा। अगर न भेजा हो तो मुझको लिखो।" मैंने लिख भेजा के "मुझे पॉच रुपए भी नही पहुँचे।" इसके जवाब मे उन्होने लिखा के अब तुम मुझे खत लिखो। उसका मजमून ये हो के मैंने बादशाह की तारीफ मे कसीदा भेजा है, और ये मुझको मालूम हुआ है के वो कसीदा हुजूर मे गुज़रा मगर ये मैंने नही जाना के उसका सिला क्या मरहम्मत हुआ। मै, के 'नासिक' हूँ, अपने नाम का खत बादशाह को पढवाकर उनका खाया हुआ रुपया उनके हलक से निकाल कर तुमको भेज दूँगा। भाई ये खत लिख कर डाक मे रवाना किया। आज खत रवाना हुआ के तीसरे दिन शहर में खबर उड़ी के नसीरुद्दीन हैदर मर गया। अब कहो मैं क्या करूँ और नासिक क्या करे ?

दो शबा १९ अगस्त, सन् १८६१ ई०।

—ग़ालिब

९०

(९ सितम्बर १८६१)

मिर्ज़ा तफ्ता साहब,

इस कसीदे के बाब मे बहुत बाते आपकी खिदमत मे अर्ज़ करनी है। पहले तो ये के 'खजर रा' व 'गौहर रा' को तुमने अज़ किस्मे तनाफुर[1] समझा और उस पर अशारे[2] असातिज़ा सनद लाए। ये खद्शा[3] नही पैदा होता मगर लड़को के और मुब्तदियो[4] के दिल मे। 'सलीम'—

१. घृणा के रूप मे, निरर्थक। २. आचार्यो की कविता। ३. खतरा। ४. सिक्खड़ो।

शराब नुक्ल[1] न ख़ाहद बिगीर सागर रा
के ऐहतियाजे शकर नीस्त शीरे मादर रा

ये गजल शाहजहाँ के अहद की तरही है। 'सायब' व 'कुदसी' व शोरा ए हिन्द ने इस पर गज़ले लिखी है।

दूसरे ये के ममदूह[2] का पूरा नाम बेतकल्लुफ आते हुए खाली क्यो उडा दो? ज़ियाउद्दीन अहमदखाँ नाम है, हिन्दी मे 'रख्शाँ' तख़ल्लुस, फारसी मे 'नय्यर' तख़ल्लुस।

हमाना 'नय्यरे' 'रख्शाँ' ज़ियाउद्दीन अहमदखाँ

देखो तो क्या पाकीजा मिसरा है। ये न कहना के शोरा ममदूह का नाम नगा लिख जाते है। वो बहस्बे जरूरते शेर है। जिस बहर[3] में पूरा नाम न आए उसमें शौक से लिखो। जायज, रवा, मुस्तहसन। जिस बहर मे नाम ममदूह का दुरुस्त आए उसमे फरोगुजाश्त[4] क्यो करो?

दोशबा, नहुम सितम्बर सन १८६१ ई०।

९१

(४ अक्टूबर १८६१ ई०)

साहब,

कसीदे पर कसीदा लिखा और खूब लिखा। आफरी है। फिर उस्ताद के शेर तज़मीन[5] क्यो करते है? न इसकी कुछ हाजत, न इसमे कोई अफजाइश[6]

---

१. सुराके लिए गजक की आवश्यकता नही, माँ के दूध के लिए शर्करा की आवश्यकता नही। २. प्रशस्य, प्रशंसित। ३. छन्द। ४ भूलचूक। ५. अन्य की कविता में अपनी कविता जोडना, क्षेपक। ६ सौन्दर्य की अधिकता।

हुस्न। तुम्हारे एक शेर को एक शेर के बाद रख दिया है ताके मकत ए कलाम हो जाए। पहला कसीदा तुम्हारा 'बर आवरम्' 'दर आवरम' की रदीफ़ का सुस्त है, उसको हमने नामजूर किया मगर नज़रसानी[1] मे जो शेर काबिल रखने के होगे, वो लिख कर तुमको भेज देगे। बिलफैल एक शेर की कबाहत[2] तुम पर जाहिरा करते है ताके आइन्दा इस पालग्ज[3] से अहतराज[4] करो—

नूरे[5] सआदत अज़ जिबहे कासिदम चकद।

ये क्या तरकीब है। जिबह् बर वजने 'चश्मा' है। याने दो हाये हव्वज है। 'ज़ुबह्' कासिद! एक हाय हव्वज कहाँ गई?

हर कुजा चश्मए बुवद[6] शीरी

'चश्मा' की जगह 'चशा' लिखते हो! ये बात हमेशा को याद रहे। इतने बडे मश्शाक[7] से इतनी बडी गलती बहुत ताज्जुब की बात है। मियाँ,

बर्गे[8] दुनिया न साजो नैश बुवद

ये कोई लुगत नही, एक लफ्ज नही, के किसी फरहग में से निकल आए। ये तर्जे तहरीर है। किसको याद है के इसका नजीर कहाँ मौजूद है? इस अमर से कतै नजर कोई शख्स ऐसा कहाँ का फारसीदा और आलिम[9] है के मै लडको की तरह बैत बहसी करूँ? दो जूतिया आप लगा दी, एक जूती तुम से लगवा दी। अब कतै नजर करो और सुकून अख़्तियार फरमाओ। मै 'बुरहान' का खाका उडा रहा हूँ, 'चार शर्बत' और 'गयासुल्लुगात' को हैज़ का लत्ता समझता हूँ। ऐसे गुमनाम छोकरो से क्या मुकाबिला करूँगा? 'बुरहाने क़ाता'

---

१. पुनरावलोकन। २. बुराई। ३. त्रुटि। ४. बचाव। ५. मेरे सन्देशवाहक के भाल पर सौभाग्य और सच्चाई का प्रकाश प्रकट हो रहा है। ६. मीठे पानी का कूप होता है। ७. अभ्यासी। ८. सासारिक पदार्थो की गिनती न पदार्थों में होती है न वृश्चिक के दश में। ९. विद्वान।

के अगलात बहुत निकाले हैं। दस जुज्व का एक रिसाला लिखा है, उसका नाम कात ए बुरहान रखा है। अब इसके छापे की फिक्र है। अगर ये मुद्दआ हासिल हो गया तो एक जिल्द छापे की तुमको भेज दूँगा, वर्ना कातिब से नक्ल करवा के कल्मी एक जिल्द भेज दूँगा। बहुत सूदमन्द[1] नुस्खा है।

इस कसीद[2] ए मुतबर्रिका की मुआफिक इस्लाह के इस कागज़ से और कागज पर नकल करके और जो मतालिब के इस कागज पर मरकूम है, उनको हाफज़े[3] के सुपुर्द करके इस वर्क को फाड़ डालो, और इस कसीदे पर नाज किया करो। ये क़सीदा तुम्हारा हमको बहुत पसन्द आया है।

जुमा १४ अक्तूबर सन् १८६१।

—ग़ालिब

९२

साहब,

ये कसीदा तुमने बहुत खूब लिखा है। हक ताला[4] शान हू इसका तुम्हे सिला दे। नवाब मुस्तफाखा साहब के हा से कसीदे की रसीद आ गई। यकीन है के तुमको भी वो खत लिखें। दर ई[5] वला यहा आया चाहते हैं और मुझको ये लिखा था के कसीदा पहुँचा; क्या कहना है! ऐसा है और ऐसा है। मैं चन्द रोज़ मे वहा आता हूँ। अिन्दल मुलाकात इस कसीदे के बाब में बात होगी।

जियाउद्दीनखा साहब का भी मुकदमा आजकल फैसल हुआ चाहता है। वो क़सीदा, जो मेरे पास अमानत है, उनको दिया जायगा। इशा[6] अल्लाह व अली उल अजीम।

---

१. लाभकर। २. पवित्र कसीदा, श्रेष्ठ कसीदा। ३ स्मृति। ४. ईश्वर प्रभावशाली है। ५. इस युग में। ६ ईश्वर का प्रताप बहुत है, वह चाहे तो।

मुंशी हरगोपाल तफ्ता के नाम

अज़ मने[1] फराग बूद बुरीदम मनज़ फराग़

'बुरीदम मन अज़ फराग' याने कतै नजर करदम अज फ़राग व नौ उम्मीद शुदम अज फराग।

९३

तुमको मालूस रहे के एक ममदूह तुम्हारे यहा है। उनको मैने तुम्हारी फिक्र और तलाश का मद्दाह[2] पाया। जनवरी सन् १८६२ ई० मे कुछ तुम्हारी खिदमत मे भेजेगे। तुमको कुबूल करना होगा। समझे? ये कौन? याने नवाब मुस्तफाखा साहब; और दूसरे ममदूह याने नवाब ज़ियाउद्दीनखां वो आखिर दिसम्बर सन् १८६१ ई० मे या अवायले जनवरी सन् १८६२ ई० मे हाजिर होगे।

९४

भाई,

रेमिया[3] व हेमिया खुराफात है। अगर इनकी कुछ अस्ल होती तो अरस्तू और अफलातून और वअली ये भी कुछ इस वाव में लिखते। कीमिया[4] और सीमिया[5] दो इल्मे शरीफ है। जो अशिया[6] की तासीर[7] से ताल्लुक रखे वो कीमिया और जो अस्मा[8] से मुताल्लिक हो वो सीमिया।

जाँ गमे[9] सीमिया न खुरद गहे
दिल सु ए कीमिया निया वुर्दम

---

१. सुख मेरे कारण से था, मैंने उसे छोड दिया। २. प्रशसक। ३. रासायनिक विद्याएँ। ४. रसायन। ५. भौतिकी। ६. पदार्थ। ७. गुण। ८. पदार्थ। ९. कभी सीमिया के दुख मे मैंने प्राण न खोए और न कीमिया की ओर मेरा मन गया।

शेर बामाने हो गया। ये न समझा करो के अगले जो लिख गये है वो हक है। क्या आगे आदमी अहमक पैदा नही होते थे?

'जमान' व 'जमाना' को मै पागल हूँ जो गलत कहूँगा? हजार जगह मैंने नज्म व नस्र मे जमान व जमाना लिखा होगा।

वो शेर किस वास्ते काटा गया? समझो, पहला मिसरा लगो, दूसरे मिसरे मे 'न बुर्द' का फायल मादूम। 'हल्क ए जा' की जे पर नुक्ता न था, मैंने गुस्से मे लिखा के न हल्कएरा दुरुस्त और न हल्कए-जा दुरुस्त। मगर ये फारसी वे दिलाना है। खैर रहने दो। मरता हूँ, मुझे समझाते हो के "सदजा[1] दर कलामे अहले जबॉ खाहन्दयाफ्त।" मगर मै बानी ए कलामे अहले जबाँ नही। गर्दिशे[2] चर्ख उस्तखां साईद।"

इससे ये बेहतर है—

सूदा[3] शुद उस्तखा ज गर्दिशे चर्ख

बाकी और मिसरे सब अच्छे बनाए है—

—गालिब

९५

(२७ अगस्त १८६२ ई०)

साहब,

दो ज़बानो से मुरक्कब[4] है, ये फारसी मुतर्रिफ एक फारसी एक अरबी। हरचन्द इस मन्तिख मे लुगाते तुर्की भी आ जाते है, मगर कमतर। मै अरबी का आलिम नही मगर निरा जाहिल भी नही। बस इतनी बात है के इस ज़बान

---

१. विद्वानो की भाषा मे यह सौ स्थानो पर पाएँगे। २. ३. आकाश के चक्कर ने हड्डियो को घिस दिया है। ४. यौगिक।

के लुगात का मुहकिक नही हूँ। उलमा से पूछने का मुहताज और सनद का तलबगार रहता हूँ। फारसी मे मब्दए[1] फैयाज से मुझे वो दस्तगाह[2] मिली है के इस जबान के कवायद[3] व जवाबित मेरे जमीर[4] मे इस तरह जा गुजी[5] है जैसे फौलाद मे जौहर। अहले पारस मे और मुझमे दो तरह के तफाउत है—एक तो ये के उनका मुअल्लद ईरान और मेरा मुअल्लद हिन्दुस्तान। दूसरे ये के वो लोग आगे पीछे सौ, दो सौ, चार सौ, आठ सौ बरस पहले पैदा हुए हैं। 'जूद' लुगते अरबी है। बमानी ए-बख्शिश। 'जव्वाद' सेगा है सिफते मुशब्बा का बेतशदीद। इस वजन पर सेगा फायल मेरी समाअत मे जो नही आया तो मै उसको खुद न लिखूँगा। मगर जब के 'नजीरी' शेर मे लाया और वो फारसी का मालिक और अरबी का आलिम था तो मैने माना।

क्या हँसी आती है के तुम मानिन्द और शायरो के मुझको भी ये समझे हो के उस्ताद की गजल या कसीदा सामने रख लिया या उसके कवाफी[6] लिए और उन काफियो पर लफ्ज[7] मिलने लगे। ला हौला वला कूवता इल्लाह बिल्लाह। बचपन मे जब मै रेख्ता लिखने लगा हूँ, लानत है मुझ पर अगर मैंने कोई रेख्ता या उसके कवाफी पेशे नजर रख लिए हो। सिर्फ बहर और रदीफ काफिया देख लिया और उस ज़मीन मे गज़ल—कसीदा लिखने लगा। तुम कहते हो, नजीरी का दीवान वक्ते तहरीरे कसीदा पेशे नज़र होगा और जो उसके काफिए का शेर देखा होगा उस पर लिखा होगा। वल्लाह्! अगर तुम्हारे खत के देखने से पहले मै ये भी जानता हूँ के इस ज़मीन मे नजीरी का कसीदा भी है, चे[7] जाए आ के वो शेर।

भाई, शायरी माने आफरीनी है। 'काफिया पैमाई नही है। 'ज़माँ' लफ्जे अरबी। 'अज़मना' जमॉ दोनो तरह फारसी मे मुस्तामिल ज़माने, एक

---

१ ईश्वर। २. सामर्थ्य। ३. नियम। ४. स्वभाव। ५. आत्मलीन। ६. काफिए का वह य०। ७. उस शेर के अतिरिक्त।

जमा, हर जमा, जमा जमा दरी जमाँ, दरी जमा, दराँ ज़माँ सब सही और फसीह। जो इसको गलत कहे वो गधा, बल्के अहदे फारस ने मिस्ले मौज व मौजा यहाँ भी 'हे' बढा कर ज़माना इस्तेमाल किया है। यक जमाँ को मैंने कभी गलत न कहा होगा। सादी के शेर लिखने की क्या हाजत।

सुनो मियाँ, मेरे हम वतन याने हिन्दी लोग या जो वादी ए फारसीदानी मे दम मारते है वो अपने कयास को दख़ल देकर ज़वाबत ईजाद करते हैं। जैसा वो घावस उल्लू अब्दुल वासे हाँसवी लफ़्ज नामुराद को गलत कहता है। और ये उल्लू का पट्ठा कतील सफवतकदा, शफक कदा व नश्तरकदा को और हमा आलम व हमा जा को गलत कहता है। क्या मैं भी वैसा ही हूँ जो यक-जमाँ तराजू मेरे हात मे है।[1] लिल्लाहुल हम्दो लिल्लाहु-शुक्र। मरकूमा चहार शम्ना, २७ माहे अगस्त सन् १८६२ ई०।

९६

२७ नवम्बर १८६२ ई०

मिर्ज़ा तफ्ता,

जो कुछ तुमने लिखा ये बेदर्दी है और बदगुमानी। माजिल्लाह[2] तुम से आज़ुर्दगी! मुझको इस पर नाज़ है के मैं हिन्दुस्तान मे एक दोस्ते सादिकुल[3] विला रखता हूँ। जिसका हरगोपाल नाम और तफ्ता तखल्लुस है। तुम ऐसी कौन-सी बात लिखोगे के मूजिबे[4] मलाल हो? रहा गम्माज़[5] का कहना उसका हाल ये है के मेरा हकीकी भाई कुल एक था। वो तीस बरस दीवाना रहकर मर गया। मसलन वो जीता होता और होशियार होता और तुम्हारी बुराई कहता तो मैं उसको झिडक देता और उससे आज़ुर्दा[6] होता।

---

१. ईश्वर की स्तुति, ईश्वर का धन्यवाद। २. ईश्वर की शरण। ३. सच्चे प्यार वाला। ४. दुःख। ५. चुगलख़ोर। ६. दुखी।

भाई, मुझमें कुछ अब बाकी नही है। बरसात की मुसीबत गुजर गई लेकिन बुढापे की शिद्दत बढ गई। तमाम दिन पड़ा रहता हूँ। बैठ नही सकता। अक्सर लेटे लेटे लिखता हूँ। माहाज़ा ये भी है के अब मश्क तुम्हारी पुख्ता हो गई, ख़ातिर मेरी जमा है के इस्लाह की हाजत न पाऊँगा। इससे बढ कर ये बात है के कसायद सब आशिकाना है, बकारे आमदनी नही। खैर कभी देख लूँगा, जल्दी क्या है। तीन बात जमा हुई –मेरी काहिली, तुम्हारे कलाम का मुहताज़ बइस्लाह न होना, किसी कसीदे से किसी तरह के नफे का तसव्वुर न होना। नजर इन मरातिब पर कागज़ पड़े रहे। लाला बाल मुकन्द 'बेसब्र' का एक पार्सल है के उसको बहुत दिन हुए, आज तक सरनामा भी नही खोला। नवाब साहब की दस-पन्द्रह गजले पडी हुई है।

ज़ोफ[१] ने 'गालिब' निकम्मा कर दिया
वर्ना हम भी आदमी थे काम के

ये कसीदा तुम्हारा कल आया। आज इस वक्त के सूरज बलन्द नही हुआ, इसको देखा, लिफाफा किया, आदमी के हात डाकघर भिजवाया।

—गालिब

९७

मिर्जा[२] तफ्ता के पैवस्ता बदिल जा दारद
हर कुजा हस्त खुदाया बसलामत दारश

साहब,

कई बार जी चाहा के तुमको खत लिखूँ, मगर मुतहय्यर[३] के कहाँ भेजूँ। अब जो तुम्हारा खत आया तो मालूम हुआ के हज़रत अभी लखनऊ में

---

१. बुढापा। २. मिर्जा तफ्ता मेरे हृदय में इस तरह समा गया है कि, वह जहाँ रहे ईश्वर उसे सकुशल रखे। ३. आश्चर्य चकित।

रौनक अफरोज है। खत न भेजूँ तो गुनहगार। मैंने ये अर्ज किया है के मुझ मे इस्लाह की मशक्कत की ताकत नही रही; माहाजा तुम्हारा कलाम पुख्तगी को पहुँच गया है, इस्लाह तलब नही रहा है। शेर अपने बच्चे को एक मुद्दत तक आइने शिकार सिखाता है। जब वो जवान हो जाता है, तो खुद वे अयानते[1] शेर शिकार किया करता है। ये मैंने नही कहा के तुम मुझे अपने कलाम के देखने से महरूम रखो। जो गजल कसीदा लिखा करो न मसविदा बल्के एक नकल उसकी जरूर मुझको भेजा करो।

९८

४ मार्च १८६८ ई०

साहबे बन्दा,

मैंने बक्स का एक-एक खाना देखा, सिवाय तीन कागजो के कोई कागज तुम्हारा न निकला और इस वक्त बसबब कम फुरसती के मै रदीफ उन तीनो कसीदो की नही बता सकता और वो मुकदमा '५०' का व [२] इक्तेजाए हालाते जमाना सुस्त हो गया है, मिट नही गया। देर आयद दुरुस्त आयद, इंशा अल्ला हो ताला।

अब मेरा हाल सुनो—

दर[३] नौ उमीदी बसे उमीदस्त
पायाने शबे सियाह सुपैदस्त

हमेशा नवाब गवर्नर जनरल की सरकार से दरबार मे उसको सात पारचे और तीन रकम जवाहिर खिलत मिलता था। लार्ड केनिंग साहब मेरा दरबार

---

१. बिना सहायता के। २. समय की स्थिति को दृष्टि मे रखते हुए। ३. निराशा मे भी बहुत सी आशाएँ है, रात जितनी भी अन्धकार पूर्ण हो, उसका प्रातःकाल प्रकाशमान होता है।

व खिलत बन्द कर गये। मैं ना उम्मीद होकर बैठ रहा और मुद्दतुल[1] उम्र को मायूस[2] हो रहा। अब जो यहाँ लेफ्टेंट गवर्नर पंजाब आये हैं, मैं जानता था के ये भी मुझ से न मिलेंगे। कल उन्होंने मुझको बुला भेजा। बहुत सी इनायत फरमाई और फरमाया के लार्ड साहब दिल्ली में दरबार न करेंगे, मेरठ होते हुए और मेरठ में उन अजला[3] के इलाकादारों और माल गुजारों का दरबार करते हुए अम्बाले जाएँगे। दिल्ली के लोगों का दरबार वहाँ होगा, तुम भी अम्बाले जाओ। शरीके दरबार होकर खिलते मामूली[4] ले आओ। भाई क्या कहूँ के क्या मेरे दिल पर गुजरी ? गोया मुर्दा जी उठा ! मगर साथ उस मसर्रत के ये भी सन्नाटा गुजरा के सामने सफरे अंबाला व मसारिफे[5] बेइन्तहा कहाँ से लाऊँ और तुर्रा ये के नज्रे मामूली मेरी कसीदा है ! इधर कसीदे की फिक्र, उधर रुपये की तदबीर, हवास ठिकाने नहीं। शेर काम दिलो दिमाग का है, वो रुपये की फिक्र में परेशान। मेरा खुदा ये मुश्किल भी आसान करेगा। लेकिन इन दिनों में न दिन को चैन है न रात को नींद है। ये कई सतरें तुम्हें और ऐसी ही कई सतरें जनाब नवाब साहब को लिख कर भेज दी हैं। जीता रहा तो अंबाला से आकर खत लिखूँगा।

रोजे चारशंबा, १३ रमजान १२७९ हि०। ४ मार्च १८६२ ई०।

९९

१८६३ ई०

लो साहब, हमने लेफ्टेंट गवर्नर की मुलाजिमत और खिलत पर किनाअत[6] करके अंबाले का जाना मौकूफ किया और बड़े गवर्नर का दरबार और खिलत

१. मृत्यु पर्यंत। २. निराश। ३. जिला (ब० व०)। ४. नियमानुसार। ५. असीम व्यय। ६. सन्तोष।

श्रीर वक़्त पर मौकूफ रखा। बीमार हूँ। हात पर एक ज़ख्म, ज़ख्म क्या, एक गार हो गया है। देखिये श्रंजामे कार क्या होता है ?

—गालिब

१००

हज़रत,

परसो सुबह को तुम्हारे सब कवागज़ एक लिफाफे मे बद करके डाकघर भिजवा दिये। समझा के अब चन्द रोज को जान बची, उसी दिन शाम को एक खत आपका और पहुँचा। उसको भी रवाना करता हूँ। अपना हाल परसो के खत मे मुफस्सिल लिख चुका हूँ। अदना बात यह है के जो कुछ लिखता हूँ वो लेटे-लेटे लिखता हूं। मजे की बात है के मेरा लिखा हुआ मेरा हाल बावर नही। और किसी ने जो कह दिया के गालिब के पाँव का वर्म अच्छा हो गया और अब वो शराब दिन को भी पीता है; तो हुजूर ने इन बातो को यकीन जाना। बीस बरस आगे ये बात थी के अब्रो[१] बारा मे या पेश[२] अज़ तामे चाश्त या करीबे[३] शाम तीन ग्लास पी लेता था और शराबे[४] शवाना मामूली मे मुजरा न लेता था। इस बीस बरस मे बीस बरसातें हुईं, बडे-बडे मेंह बरसे, पीना एक तरफ दिल मे भी ख्याल न गुजरा, बल्के रात की शराब की मिकदार कम हो गई है। पाँव का वर्म हद से ज्यादा गुजर गया। माद्दा[५] तहलील के काबिल न निकला। खोलन शुरू हो गई। हुकमा[६] जो दो तीन यहाँ है उनकी राय के मुताबिक कल से नीब[७] का भुर्ता बँधेगा, वो पका लाएगा तब उसके फूटने की तदबीर की जाएगी। तलवा जख्मी, पिंडली

---

१. बरसात। २ प्रातराश से पहले। ३. सन्ध्या के लगभग। ४. रात्रि की सुरा में। ५. कम होने के योग्य। ६. हकीम (ब० ब०)। ७. नीम।

जख्मी, अगर वो नामर्द बेदर्द झूटा है, तो उस पर हजार लानत; अगर मै झूटा हूँ तो मुझ पर सौ हजार लानत।

१०१

१३ जुलाई १८६८

हजरत,

आपके सब खत पहुँचे। सब कसीदे पहुँचे। बाद इस्लाह भेज दिये गये। सत्तर बरस की उम्र, आलामे[१] रूहानी, न मै कहूँ न कोई बावर करे। अमराज़े ज़िस्मानी[२] मे क्या कलाम है ? बाये पाँव मे महीना भर से वर्म[३] ह। खड़े होने मे रगे फटने लगती है। अफाले[४] दिमाग नाकिस हो गये। हाफिजा[५] गोया कभी था ही नही। किस्सा मुख्तसर, एक कसीदा साबिक[६] का और एक कल का आया हुआ, ये दोनो एक लिफाफे मे आज रवाना करता हूँ।

१०२

१६ जुलाई १८६३

मिर्जा तफ्ता,

ये गलती तुम्हारे कलाम में कभी नही देखी थी के शेर ना मौजू हो। बड़ी कबाहत ये के 'आम' बतशदीद, लफ्ज़े अरबी है।

दीगर[७] न तुआँ गुफ्त अखस राके आ अमस्त
मगर बहर और हो जाती। माना के फारसी[८] नवीसाने अजम ने यो भी

---

१. आत्मिक दुख। २ शारीरिक बाधाएँ। ३. शो । ४. मस्तिष्क का सामर्थ्य। ५. स्मरण शक्ति। ६. पहले का। ७. विशेष साधारण नही हो सकता। ८. ईरान के फारसी लेखक।

दीगर न तुआँ गुफ्त अखस रा के आम्मस्त

इसका वजन कब दुरुस्त है ? क्या फरमाते हो ? गौर करो। बाद गौर के इसकी नामौजूनी का खुद इकरार करोगे।

"शर्फे कजवीनी" के मतले मे 'सागरे गम दर कशीदा अेम, व "दम दर कशीदा अेम" दूसरे शेर मे—

"पैमाना[1] हाये जहरे सितम दर कशीदा एम

'दर कशीदन' को रब्त 'पैमाना' के साथ है या 'जहर' के साथ ? अगर "जहर दर कशीदन" जायज होता तो वो 'सम' के काफिये को क्यो छोड़ता ? तीसरे शेर मे 'कलम दर कशीदन' है, चौथे शेर मे 'आब दर कशीदन' है, पाँचवे मे 'सर दर कशीदन' है। क्या जहर पानी है? अगर बमिस्ल 'जहराब' होता तो रवा[2] था। सुभान अल्लाह, ये इबारत—"जाए के शर्फे कजूयनी सागर व पैमाना व जहर दर कशीद"। ऐ बिरादर, शर्फ जहर कुजा दर कशीद ? बल्के पैमाना जहर दर कशीद, शुमा हम सागरे समदर कशीद ?' 'समदर कशीदन।' कुजा व 'पैमानए गम दर कशीदन कुजा' ! हमने तुमको इजाजत दी है। खैर रहने दो। हिन्द मे इसको कौन समझगा ? चाहोयो कर दो—

दानी[3] मनो दिल ड्चे बहम दर कशीदा अेम

दर यक नफस दो सागरे समदर कशीदा अेम

सुभान अल्लाह, तुम जानते हो के मै अब दो मिसरे मौजूँ करने पर क़ादिर[4] हू, जो मुझसे मतला माँगते हो ?

गुमाने[5] जीस्त बुवद बदतर अज गुमाने तो नीस्त

---

१. अत्याचार के विष के कई प्याले हमने पी लिये है। २. उचित। ३. तुम जानते हो मैंने और मेरे हृदय ने मिलकर क्या पिया है ? एक ही समय मे विष के दो प्याले पिये है। ४. समर्थ। ५ मुझमे तुम जीवन की कल्पना करते हो यह तुम्हारी निष्ठुरता का प्रमाण है। मृत्यु दुःखदायी होती है, किन्तु तुम्हारी यह कल्पना उससे अधिक कष्टप्रद है।

ख़ैर 'शर्फ़े कजूयनी' की सनद पर वो मतला रहने दो ।

—ग़ालिब

मैं ऐसा जानता हूँ के 'दर्रा अ' व तशदीद है और वो 'दर अ' व वजन
जर अ' और लुगत है ।

साहब, ये कसीदा तुमने ऐसा लिखा है के मेरा दिल जानता है, क्या
कहना है । एक खयाल रखा करो के शेरे अख़ीर मे कोई बात ऐसी आजाए के
जिससे अख़्तेताम[1] के माने पैदा हुआ करे ।

एक कसीदा इस्लाह देकर भेज चुका हूँ और उसी वर्क पर फलाने साहब
के जवाब मे तुमको एक नसीहत कर चुका हू । उधर के जवाब का हरगिज़
ख़याल न रखो और इधर से अगर कसीदे के इरसाल मे देर हुआ करे तो
घबराया न करो । अब मेरे पास दो कसीदे हैं, एक 'लश्कर बर आवरम्' और
एक कल आया है—'बर जा मानद' व 'दरिया मानद' । खूब कहे, के मजमून से
पहले ममदूह ढूंढना पड़ता है ? अगर मै तुमको ममदूह बता सकता तो—कसीदा
उसके नाम का तुमसे मँगवा चुका होता, और उस ममदूह तक पहुँचा चुका
होता । भाई, एक दकीका है के लिखने के काबिल नही । हाँ, मुलाकात हुए
पर कह सकता हूँ । अल्लाह्, अल्लाह् !

१०५

(१० सितम्बर १८६३ ई०)

साहब,

'गौहर रा' 'ख़ावर रा', ये कसीदा बहुत इस्लाह तलब था । हमने इस्लाह
देकर तुम्हारे पास भेज दिया है । जब तुम साफ करके भेजोगे हम तुम्हारे

---

१ समाप्ति ।

ममदूह को दे देंगे। कल तुम्हारा ये कसीदा पहुँचा, हमने दोपहर को देखकर दुरुस्त किया। आज पजशबा १० सितम्बर को डाक मे भिजवा दिया।

साहब, आज मीर बादशाह आए। तुम्हारी खैरो आफियत उनकी ज़बानी मालूम हुई। अल्लाह तुम्हे खुश रखे और मुझको तुम्हारे खुश रखने की तौफीक[1] दे। ममदूह का नाम क्या लिखूँ ? बात इसी कदर है के रामपूर मे कोई सूरत किसी तरह बनती नजर नही आती। वर्ना क्या तुम्हारा कसीदा वहाँ न भिजवाता ?

'दुरा आ' को ये न कहो के तशदीद नही है। अस्ले लुगत मुशद्दिद[2] है। शोरा उसको मुखफ़फ भी बाँधते है। 'सादी' के मिसरे से इतना मकसूद हासिल हुआ के 'दुरा आ' वे तशदीद भी जायज है। याद रहे 'जादा' और 'दुरा आ' दोनो अरबी लुगत है। वो दाल की तशदीद से और ये रे की तशदीद से। मगर खैर 'जादा' और 'दुरा आ' भी लिखते है। ये न कहो के दुरा आ हर्गिज नही है। ये कहो के 'दुरा आ' वे तशदीद भी जायज़ है।

—गालिब

१०६

साहब,

'कशीदन' की जगह 'दरकशीदन' व 'वरकशीदन' वल्के 'वरकशीदन' की जगह 'दरकशीदन' न चाहिए। 'वर आमदन' व 'दर आमदन' का इस्तेमाल वाज़ मुताखिरीन ने आम कर दिया है। याने 'दर आयद' से 'वर आयद' वर आयद के माने लिए है, लेकिन 'दर कशीदन' और है, और 'कशीदन' और। मै करीव वमर्ग हूँ। पाँव के वर्म ने और हाथ के फोड़े ने मार डाला है। वावर करना और मेरे सव आदमी वल्के वाज दोस्त जो रोज आते है, वो भी गवाह है के मै सुवह से शाम तक और शाम से सुवह तक पडा रहता हूँ।

---

१. सामर्थ्य। २. द्वित्व के साथ।

ख़ुतूत की तहरीर लेटे लेटे होती है। अशार इस्लाह को बहुत जगह से आते थे। सब को मना कर दिया, एक रईसे रामपूर और एक तुम, इनकी इस्लाह रह गई।

१०७

ला हौला वला कूवता ? किस मलऊन ने बसबबे जौके[1] शेर, अशार की इस्लाह, मजूर रखी ? अगर मैं शेर से बेज़ार न हूँ, तो मेरा ख़ुदा मुझसे बेजार ? मैंने तो बतरीके 'कहर[2] दरवेश बजाने दरवेश' लिखा था। जैसे अच्छी जोरू बुरे ख़ाविन्द के साथ मरना-धरना अख़्तियार करती है, मेरा तुम्हारे साथ वही मामला है।

१०८

(२४ नवम्बर १८६३)

नूरे[3] चश्म गालिबे अज खुद रफ़्ता मिर्जा तफ्ता,

ख़ुदा तुमको ख़ुश व तन्दुरुस्त रखे। न दोस्त बख़ील[4], न मैं काजिब[5] मगर बकौले मीर तकी—

इत्तेफाकात है जमाने के

बहरहाल, कुछ तदबीर की जाएगी और इंशा अल्लाह सूरते[6] वकू जल्द नज़र आएगी। ताज्जुब है के इस सफर मे कुछ फायदा न हुआ।

---

१. कविता की रुचि के कारण। २. सन्त का क्रोध सन्त के प्राणो पर। ३. गालिब के नेत्रो के प्रकाश-तफ्ता। ४. कजूस। ५. असत्यभाषी। ६. परिणाम।

या[1] करम खुद न मुन्द दर आलम
या मगर कस दरी जमाना न कर्द

अगनियाए[2] दहर की मदह सराई मौकूफ करो। अशारे आशकाना व—तरीके गज़ल कहा करो और खुश रहा करो।

सेशवा, २४ नवम्बर सन् १८६३ ई०।

नजात का तालिब
—ग़ालिब

१०९

(६ दिसम्बर १८६४)

सेशवा, ३ रबीउस्सानी (१२८१ हि० व सेशुम सितम्बर १८६४ ई०)
साहब,

कल पार्सल अशार का एक आने का टिकट लगा कर और उस पर लिख करके, 'ये पार्सल है खत नहीं है' डाक मे भेज दिया। डाक मुशी ने कहा के खतो के सदूक मे डाल दो। खिदमतगार नाख़ॉदा[3] आदमी, उसका हुक्म बजा लाया और उसको खतो के सन्दूक में डाल आया। वो लफ्ज़ के 'ये खत नहीं है पार्सल है' दस्तावेजे[4] माकूल है। अगर वहाँ के डाकिए तुमसे खत महसूल माँगे तो तुम उस जुम्ले के जरिए से गुफ्तगू कर लेना।

मकान मेरे घर के करीव, हकीम महमूदखाँ के घर के नजदीक, अत्तार भी पास, वाजार भी करीव। ढाई रुपए किराए को मौजूद, मगर मालिके मकान

---

१. या तो संसार में कृपा का अस्तित्व ही नही रहा अथवा इस युग में किसी ने कृपा नही की। २. धनी लोग, एश्वर्य शाली लोग। ३. निरक्षर' ४. उचित प्रमाण।

से ये वादा है के हफ्ता भर किसी और को न दूँगा। बाद एक हफ्ते के अगर तुम्हारा मुसाफिर न आया तो मुझे और किराएदार को देने का अख्तियार है। रामपूर के बाब मे मुख्तसर कलाम ये है के न मैं वाली ए रामपूर को लिख सकता हूँ, न इस न लिखने की वजह तुमको लिख सकता हूँ। अगर कभी रेल मे बैठकर आ जाओगे तो जबानी कह दूँगा।

—ग़ालिब

११०

(१४ अक्टूबर १८६४)

भाई,

तुम सच कहते हो के बहुत मसविदे इस्लाह के वास्ते फराहम हुए है। मगर ये न समझना के तुम्हारे ही कसायद पडे है। नवाब साहब की गजलें भी उसी तरह धरी हुई है। बरसात का हाल तुम्हे भी मालूम है, और ये भी तुम जानते हो के मेरा मकान घर का नही है, किराए की हवेली मे रहता हूँ। जुलाई से मेह शुरू हुआ। शहर मे सैकडो मकान गिरे, और मेह की नई सूरत-दिन रात मे दो चार बार बरसे और हरबार इस जोर से के नदी-नाले बह निकले। बालाखाने का जो दालान मेरे बैठने-उठने-सोने-जागने—जीने-मरने का महल, अगर चे गिरा नही, लेकिन छत छलनी हो गयी। कही लगन[1], कही चिलमची[2], कही उगालदान रख दिया। कलमदान, किताबे उठा कर तोशाखाने[3] की कोठरी मे रख दिए। मालिक मरम्मत की तरफ मुतवज्जह नही। कश्ती[4] ए-नूह में

---

१ परात। २. हाथ धोने का पात्र। ३. भडार गृह। ४. प्रलय काल मे जिस तरह मत्स्य ने मनु को नौका में बैठा कर हिमालय तक पहुँचाया था उसी प्रकार की कथा इस्लामी ग्रन्थो मे वर्णित है। इन कहानियो मे 'नूह' एक नाव मे बैठ कर प्रलय-उदधि मे बचता है।

तीन महीने रहने का इत्तेफाक हुआ। अब नजात हुई है। नवाब साहब की गजलें और तुम्हारे कसायद देखे जाएँगे। मीर बादशाह मेरे पास आये थे। तुम्हारी खैरो आफियत उनसे मालूम हुई थी। मीर कासिम अली साहब मुझसे नही मिले। परसो से नवाब मुस्तफाखाँ साहब यहाँ आए हुए है, एक मुलाकात उनसे हुई है। अभी यही रहेगे। बीमार है, अहसनुल्लाखाँ मुआलिज है। फस्द हो चुकी है, जोके लग चुकी है। अब मुसहिल की फिक्र है। सिवा इसके सब तरह खैरो आफियत है। मै नातवाँ[१] बहुत हो गया हूँ, गोया साहबे फर्राश[२] हूँ। कोई शख्स नया, तकल्लुफ की मुलाकात का आ जाए, तो उठ बैठता हूँ वर्ना पडा रहता हूँ। लेटे लेटे खत लिखता हूँ, लेटे लेटे मसविदात देखता हूँ। अल्लाह, अल्लाह, अल्लाह।

सुबह जुमा, १४ माहे अक्तूबर सन् १८६४ ई०।

१११

(९ दिसम्बर १८६४ ई०)

मुंशी साहब,

मै साल गुजिश्ता बीमार था। बीमारी मे खिदमते[३] अहबाब से मुकस्सिर[४] नही रहा। अब मुर्दा हूँ, मुर्दा कुछ काम नही कर सकता। कमिश्नर व डिप्टी कमिश्नर वगैरा हुक्कामे शहर से तर्के मुलाकात है, मगर डिप्टी कलेक्टर शहर से के वो मुहतमिमे खजाना है, हर महीने मे एक बार मिलना जरूर है। अगर न मिलूँ तो मुख्तारे कार की तनखा न मिले। डिकरोदर साहब डिप्टी कलेक्टर छ महीने की रुखसत लेकर पहाड पर गए, उनकी जगह रेटिगन साहब

१. निर्बल। २. फर्श पर लेटने वाला। ३. सम्बन्धियों की सेवा। ४. वञ्चित।

मुकर्रर हुए। उनसे लाचार मिलना पडा। वो तज्करा[1] शोरा ए हिन्द का अँगरेजी मे लिखते है। मुझसे भी उन्होने मदद चाही। मने सात किताबे भाई जेयाउद्दीनखाँ साहब से मुस्तार[2] लेकर उनके पास भेज दी, फिर उन्होने मुझ से कहा के जिन शोरा को तू अच्छी तरह जानता है, उनका हाल लिख भेज। मैंने सौलह आदमी लिख भेजे, बकैद[3] इसके के अब जिन्दा मौजूद है, और इस सवाद की सूरत ये है--

नवाब जियाउद्दीन अहमद खाँ बहादुर रईस लोहारू, फारसी और उर्दू दोनो जुबानो मे शेर कहते है। फारसी मे 'नैयर' और उर्दू मे 'रख्शाँ' तखल्लुस करते है।

असदुल्लाहखाँ 'गालिब' के शार्गिद नवाब मुस्तफाखाँ बहादुर इलाकादारे जहाँगीराबाद उर्दू मे 'शेफता' और फारसी मे 'हसरती' तखल्लुस करते है। उर्दू मे मोमिनखाँ को अपना कलाम दिखाते थे।

मुन्शी हरगोपाल मौज्जिज कानूनगो सिकन्दराबाद के, फारसी शेर कहते है। 'तफ्ता' तखल्लुस करते है। असदुल्लाहखाँ गालिब के शार्गिर्द।

जाहिरा, बाद इस फेहरिस्त के भेजने के उन्होने कुछ अपने मुंशी से तुमको लिखवाया होगा, फिर कुछ आप लिखा होगा। मुझको इस हाल से कुछ इत्तिला नही। तुम्हारे खत के रूसे मैने इत्तिला पाई। अब मै मौलवी मज़हरुलहक, उनके मुन्शी, को बुलवाऊँगा और सब हाल मालूम करूँगा। अस्ल ये है के तज्करा अगरेजी जबान में लिखा जाता है। अशारे हिन्दी और फारसी का तर्जुमा शामिल न किया जाएगा। सिर्फ शायर का और उसके उस्ताद का नाम और शायर के मस्कन व मवतन[4] का नाम मयतखल्लुस दर्ज होगा। खुदा करे कुछ तुमको फायदा हो जाए, वर्ना व जाहिर सिवाय दर्ज होने नामके

---

१. हिन्दुस्तान के कवियो का परिचय। २. उधार। ३. शर्त के साथ। ४. जन्म भूमि।

और किसी बात का अहतमाल नही है। रेंटिगन साहब अब अदालते खफीफ
के जज हो गए। डिकरोदर साहब पहाड से आ गए। अपना काम करने लगे
रेंटिगन साहब शहर से बाहर दो कोस के फासले पर जा रहे। माहाजा जा
का मौसम, बुढापे का आलम, वहा तक जाना दुशवार और फिर कोई मतल
निकलता हुआ नजर मे नही। बहरहाल मौलवी मजहरुल हक परसो यक श
के दिन मेरे पास आएँगे। हाल मालूम करके अगर मेरा जाना या लिखन
तुम्हारी फलाह[1] का मूजिब होगा तो जरूर जाऊगा।

रोजे जुमा, ९ दिसम्बर सन १८६४ ई०।

—गालि

११२

आओ मिर्जा तफ्ता, मेरे गले लग जाओ, बैठो और मेरी हकीक
सुनो।

यक शबे को मौलवी मजहरुल हक आए थे। उनसे सब हाल मालम हुआ
पहला खत तुमको उनके भाई मौलवी अनवारुल हक ने बमूजिब हुक्मे रेंटिग
साहब के लिखा था। फिर एक खत साहब ने आप मसविदा करके अपनी
तरफ से तुमको लिखा। दोनो दीवान तुम्हारे और 'नश्तरे इश्क' और ए
तज्किरा और ये चार किताबे तुम्हारी भेजी हुई, उनको पहुँची। साहब तुमसे
बहुत खुश और तुम्हारे बहुत मौतकिद है। कहते हैं के हम जानते हैं, इतना
बडा शायर कोई और हिन्दुस्तान मे न होगा के जो पचास हजार बैत का
मालिक हो। फायदा इस इल्तफात[2] का ये के तुम्हारा जिक्र बहुत अच्छी
तरह से लिखेंगे। बाकी मा[3] वखैर शमा बसलामत। हाँ इनके तहत में पन्द्रह

---

१ कल्याण। २ प्रेम, कृपा। ३. हम सकुशल हैं, ईश्वर आपको स्वस्थ रखे।

बीस रुपए मशाहिरेइ[1] के लाके है। अगर तुम्हारी इजाजत हो तो इस अम्र में उनसे कलाम करूँ?

मेरा अजब हाल है। हैरान हूँ के तुम्हे मेरा कलाम क्यों बावर नहीं आता?

गुमाने जीस्त बुवद बरमनत जे बेदर्दी
बदस्त मर्ग, वले बदतर अज गुमाने तो नीस्त

सामिआ[2] मर गया था, अब बासरा[3] भी जईफ[4] हो गया। जितनी कुव्वते इन्सान में होती है, सब मुजमहिल[5] है। हवास सरासर मखतल[6] है। हाफिजा गोया कभी न था। शेर के फन से गोया कभी मुनासिबत न थी। रईसे रामपुर सौ रुपया महीना देते है। साले गुज़िश्ता उनको लिख भेजा के इस्लाहे नज्म हवास का काम है और मै अपने मे हवास नहीं पाता। मुतवक्कअ[7] हूँ के इस खिदमत से माफ रहूँ। जो कुछ मुझे अपनी सरकार से मिलता है, एवज[8] खिदमते साबिका मे शुमार कीजिये, तो मै सिक्का लवर सही, वर्ना खैरातख़ार[9] सही। और अगर ये अतिया[10] बशर्ते खिदमत[11] है, तो जो आपकी मर्जी है वही मेरी किस्मत है। बरस दिन से उनका कलाम नहीं आता। फतूहे[12] मुकर्ररी नवबर तक आई। अब देखिये आगे क्या होता है? आज तक नवाब साहब अजराहे[13] जवाँ मर्दी दिये जाते है। और भाई तुम्हारी मश्क चश्मे बद्दूर साफ हो गई। रत्ब[14] व याबिस तुम्हारे कलाम मे नहीं रहा। और खाही न खाही तुम्हारा अकीदा यही है के इस्लाह जरूर है, तो

---

१. वेतन, वृत्ति। २. श्रवण शक्ति। ३. नेत्र ज्योति। ४. वृद्ध। ५ निर्बल। ६. निष्क्रिय। ७. आशा करता हूँ। ८. पुरानी सेवा के प्रतिफल। ९. दान भोगी। १०. दान। ११. सेवा करने के लिए। १२ निश्चित वृत्ति। १३. वीरता पूर्वक। १४. दोष।

मेरी जान, मेरे बाद क्या करोगे ? मै तो चरागे[1] दमे सुबह व आफताब[2] नरे कोह हूँ । इन्नालिल्लाहे, व इन्ना इलहे राजऊन ।

१४ रज्जब १२८१ हि० ।

नजात का का तालिब
—गालिब

११३

(१२ फरवरी १८६५)

मु शीसाहब सआदत व इकबाले निशान मु शी हरगोपाल साहब सल्ल-मुहल्लाहा ताला गालिब की दुआ ए दरवशाना[3] कुबूल करे ।

हम तो आपको सिकन्दराबाद 'कानून गोयो' के मुहल्ले में समझे हुए है और आप लखनऊ राजा मानसिंघ की हवेली मतब ए अवध अखवार मे बैठे हुए मदारिया हुक्का लखनऊ का पी रहे है और मु शी नवलकिशोर से बाते कर रहे है। भला मु शी साहब को सलाम कहना । आज यकशंबा है, अखबार का लिफाफा अभी तक नही पहुँचा । हर हफ्ते तो पजशबे, हद जुमे को पहुँचता था ।

मिर्जा तफ्ता क्या फरमाते हो ? कैसे रेटिंगन साहब ! कहाँ रेटिगन साहब ? पजशबे के दिन १९ जनवरी सने हाल को वो पजाब को गये । मुलतान या पेशावर के जिले मे कही के हाकिम हुए हैं । मैं अपनी नातवानी[4] के सबब उनकी मुलाकात तवदी[5] को नही गया । अनवारुल हक घाट पर नौकर है । पन्द्रह रुपये मशाहिरा[6] पाते है । ज्यादा ज्यादा ।

१. प्रभात का दीपक । २. अस्ताचल गामी सूर्य । ३. साध की । ४. निर्बलता के कारण । ५. दर्शन करना । ६. वेतन ।

सुबह यकशबा, १२ फरवरी सन् १८६५ ई०।

नजात का तालिब,
—ग़ालिब

११४

साहब,

वाकई "सदाब" का जिक्र 'कुतबे तिब्बी' मे भी है और 'उर्फी' के हाँ भी है। तुम्हारे हाँ अच्छा नही बधा था इस वास्ते काट दिया। 'किराव' कौन सा लफ्जे[1] गरीब है, जिसको इस तरह पूछते हो ? 'खाकानी' के कलाम मे और असातिज़ा[2] के कलाम मे हजार जगह आया है। 'किराव' और 'सदाव' दोनो लुगत अरबी उल[3] अस्ल, सही है।

-ग़ालिब

११५

हजरत

इस गजल मे 'परवाना' व 'पमाना' व 'बुतखाना' तीन काफिये असली है। 'दीवान' चूँके अलम करार पाकर एक लुगत जुदागाना मुशक्खस[4] हो गया है, इसको भी काफिये असली समझ लीजिये। बाकी 'गुलामाना' व 'मस्ताना' व 'मर्दाना' व 'तुर्काना' व 'दिलेराना' व 'शुकराना' सब नाजायज व ना मुस्ताहसन, ईना और ईता भी कबीह। मुझे बहुत ताज्जुब है के इन्ही काफियो मे ईता का हाल तुम्हे लिख चुका हूँ और फिर तुमने गजल मबनी[5] इन्ही कवाफी पर रखी। 'काशाना' व 'शाना' व 'अफसाना' व 'जानाना' व

---

१. बेचारा शब्द। २. उस्ताद(आचार्य)का ब व। ३. विशुद्ध अरबी। ४. निर्णीत। ५. आधारित।

'फर्ज़ाना' ये काफिये क्यो तर्क किये, याद रहे, सारी ग़जल मे मर्दाना या मस्ताना या इनके नजायर[1] मे से एक जगह आवे। दूसरी बैत मे जिन्हार न आवे। ये गजल नजरी हो गई और गज़ल लिखकर के भेजो ता इस्लाह दी जाए।

अफो का तालिब,
—ग़ालिब

११६

(१४ मई १८६५)

मिर्ज़ा तफ्ता पीरशो[2] व वियामोज,

तुम खुशगो और ज़ूदगो[3] मुकर्रर हो, लेकिन जिसको तुम तहकीकात कहते हो वो महज[4] तहमात और तखय्युलात[5] है कयास दौडाते हो; वो कयास[6] कही मुताबिक[7] वाकै होता है, कही खिलाफ। उर्फी कहता है—

रूह[8] रा नाश्ता फिरस्तादी

याने रूह को तूने भूका भेजा! 'नाश्ता' उसको कहते है जिसने कुछ खाया न हो, हिन्दी उसकी निहार मु ह। तुम लिखते हो, अजव नाश्ता फिरस्तादी।

याने गिजा ए सुवह जैसा के हिन्दी मे मशहूर है—'उसने नाश्ता भी किया है या नही ?'

'वाकिफ' कहता है—

'न[9] मुहर्रमे कफस न वदाम आशना शुदेम नफरी कुनेम साअते परवाज

---

१. उदाहरण। २. मधुरभाषी। ३. तत्काल उत्तर देने वाला।४ भ्रमपूर्ण। ५. काल्पनिक। ६. अनुमान। ७. घटना के अनुकूल। ८. आत्मा को तुमने भूखा भेजा। ९. न हम पिंजरे से परिचित है और न जाल मे स्नेह रखते है। जिस क्षण हम लोग उडे थे, उस क्षणसे हमे घृणा है।

ख़ीशरा' ये भी हिन्दी की फारसी है। 'बुरी घडी' और 'सुभ घडी', अहले ज़बान ऐसे मौके पर 'ताले[1]' लिखते है—

'नफरी कुनेम ताल ए परवाजे ख़ीशरा' 'कतील' कहता है—

यक[2] वजब जाए बकूए तो ज खूँ पाक न बूद।
कुश्ता बर कुश्ता तपाँ बूद दिगर खाक न बूद।

यहाँ 'हे च न बुवद' का महल[3] है। हिन्दी मे 'कुछ नही' की जगह 'ख़ाक नही' बोलते हैं और फिर साहब 'बुरहाने काते' का क्या जिक्र करते हो। वो तो हर लुगत को तीनो हरक्कतो से लिखता है—जेर, जबर, पेश का तफर्का[4] मजूर नही रखता है। लिखता है के यो भी आया है और यो भी देखा है। जिस लुगत को काफे अरबी से लिखेगा, काफे फारसी से भी बयान करेगा। जिस लफ़्ज को ताए[5] हुत्ती से लाएगा ताए[6] कुरेशत से भी जरूर लिखेगा। फुजला[7] ए कलकत्ता के हाशिये देखो के वो उसकी क्या तहमीक[8] करते है। 'नबिया' 'नबूवत' के मुश्तेकात[9] मे से हर्गिज नही। 'इमामन' 'इमाम' के मुश्तेकात मे से जिन्हार नही। नबीबख़्श का मुखफ्फफ़' 'नबिया', 'इमाम' का मुताल्लिक अगर मुजक्कर[10] है तै इमामी, और अगर मुअन्नस[11] है तो 'इमामन'। 'तुगरा' ने हिन्दी लुगत के लाने का इल्तेजाम किया है—

वक्त[12] आँ आमद के मीना रागे हिन्दी सर कुनद।

---

१. भाग्य। २. तेरी गली मे वित्ता भर जमीन भी खून से पवित्र न थी। लोथ पर लोथ तडप रही थी, धूल नही थी। ३ स्थान। ४. अन्तर। ५. तोय (ط)। ६. ते (ت)। ७. कलकत्ता के विद्वान। ८. मूर्खता। ९ निकलना, बनना। १० पुल्लिग। ११ स्त्री लिग। १२. अब वह समय आ गया कि शीशी हिन्दी राग गाने लगी।

और असातिज़ा को इसका इल्तेजाम मजूर नही। मगर क्या कहे? 'गुड़गाँवा' नाम है एक गाँव का। इसको क्यो कर बदले? हाँ, गुर, वराए कुरेशत[1] कहेगे। 'लखनऊ' नाम है एक शहर का, वो 'लकनऊ' वगैर 'हाय मकलूता के कहेगे। फी जमानेना 'छापे' को 'चाप' बोलते है। 'उर्फी' झक्कड़ को जक्कर बोलता है—

आँ[2] वाद के दर हिन्द गर आयद जक्कर आयद।

राय[3] सकीला, हाय[4] मकलूता, तशदीद[5] ये तीनो सिकालतें[6] मिटा दी। साहब, बुरहाने काता इस लफ्ज को फारसी बताता है और जबानेइल्मी अहले हिन्द मे भी इसको मुश्तरक जानता है। अपने को रुसवा[7] और खल्क को गुमराह करता है—

हर्जा[8] मशिताब व पये जादा शनासाँ बरदार
आँ के दर राहे सुखन चूँ तो हज़ार आमदो रफ़्त

अहले हिन्द मे सिवाय 'खुसरो' देहलवी के कोई मुसल्लिमुल[9] सबूत नहीं। मियाँ फैज़ी की भी कही कही ठीक निकल जाती है। फरहग लिखने वालो का मदार कयास पर है, जो अपने नजदीक सही समझा वो लिख दिया। 'निजामी' व 'सादी' वगैरा की लिखी हुई फरहग हो; तो हम उसको माने। हिन्दियो को क्यो कर मुसल्लिमुल सुबूत जाने? गाय का बच्चा बजोरे[10] सेहर आदमी की तरह कलाम करने लगा, बनी इसराईल[11] उसको खुदा समझे। ये झगडे-किस्से जाने दो। दो बाते सुनो—

---

१. रकार से। २. जो हवा भारत में आती है वह जक्कर होती है। ३. ऐसा रकार जिसका उच्चारण कोमल न हो। ४ महाप्राणत्व। ५ द्वित्व। ६. कठोरता। ७. बदनाम। ८. मूर्खता के कारण तेज मत दौड। विज्ञो का अनुसरण कर। कविता के क्षेत्र में तुझ जैसे सहस्रो व्यक्ति आये और चले गये। ९. पूर्णतया प्रामाणिक। १० जादू के बल पर। ११. यहूदी।

एक तो ये के—'अर्गनून' को बगैने मजमूम मैंने सह्व[1] से लिखा। र अस्ल 'अर्गनून' ब गैन मफ्तूह और मुख़फ़्फ़िफ़ इसका 'अर्गन' और मुबद्दल[2] ने 'अर्गन' है।

दूसरे ये के जब मूसवीख़ाँ ने 'ऐवाये' को 'अैवा' लिखा तो इस लफ़्ज की- ोहत मे कुछ ताम्मुल न रहा।

रामपूर से अप्रेल महीने का रुपया और ताजियत[3] व तहनियत[4] के ख़त का जवाव आ गया। आइन्दा जो ख़ुदा चाहे।

यकशवा, १४ मई सन् १८६५ ई०।

नजात का तालिव,
—ग़ालिब

११७

साहव,

तुमने 'तनतन' का ज़िक्र क्यो किया? मैंने इस वाव मे कुछ लिखा न था। 'तनतन' और 'तनना' असवात[5] है तार के। हिन्दी व फारसी मे मुश्तरिक[6]। 'नविया' ओर 'इमामन' के लिखने को मैंने मना हर्गिज नही किया। शौक से लिखो। ये तुमको समझाया था के 'नविया' मुखफ्फफ 'नवी वख़्श' और 'इमामन' मुताल्लिक व 'इमाम' है। मुश्तक्कात मे से इसको तसव्वुर न करो। कायदादानाने इश्तक्काक[7] तुम पर हँसेगे।

'अैवाये' के जितने शेर तुमने लिखे है सव माने[8] है अैवा के और सनद 'अैवाये' की। मूसवीखाँ ने वहस्वे जरूरत शेर 'अैवा' लिखा है। 'तोहमतन' वरवजन 'कलमजन' है। 'फिरदौसी' ने सौ जगह शाहनामे मे तोहमतन वसुकून हाय हव्वज लिखा है। पस क्या इस लुगत की दो सूरते करार पा गई? लाहौलावला कूवता, लुगत वही, वहर कते हाय हव्वज़ है।

---

१. भूल। २ वदलने पर। ३. शोक प्रदर्शन। ४ ववाई। ५. ध्वनि। ६. समान सयुक्त। ७. निरुक्ति। ८. वाधक।

मैंने किस कद्र कलाम को तूल दिया ? 'सायब' के शेर की हकीकत शर व बस्त से लिखी, तुमने हर्गिज अैतना[1] न किया। 'अैवा' को अलग समझे 'मुसीबताह' को जुदा समझे। भला मेरे कौल को 'गौजे शुतर'[2] समझते हो ! निरा 'मुसीबताह' या 'हसरताह' बुरहाने काता मे या 'बहारे अज्म' मे हमको दिखा दो। वही बाय है के जब इसके बाद 'मुसीबता' या 'हसरता' या 'वेला आता है, तो तहतानी को हजफ[3] करके 'वावेला' वगैरा लिखते है। चाहे 'अै वावेला' लिखो, चाहो 'वावेला' लिखो, चाहो आखिर मे हाय हव्वज लिखे जैसा के वा 'मुसीबताह' चाहो बे हाय हव्वज 'वा मुसीबता' और यही हाल है 'हसरत' व 'दर्द' व 'असफ' व 'दरेग' का। जहाँ 'अै' के साथ 'वा मुसीबता पाओ वहाँ 'अै' को हर्फेनिदा[4] और मनादा माने 'हमनशी' और हमदम को मुकद्दर समझो। फरहग लिखने वालो ने अशारे[5] कुदमा मे तरकीबें देखी अपना कयास दौडा कर उसकी हकीकत ठहराली, कही उनका कयास गलत कही सही। सो उनमे ये 'दकनी' ऐसा कजफहम[6] है के इसका कयास सौ लुगत में शायद दस जगह सही हो। मैंने साफ लिख दिया था के मूसवीखाँ के शेर की सनद पर 'अैवा' को रहने दो। मगर 'सायब' के शेर मे 'अैवा' को अलग और 'मुसीबताह' को जुदा न समझो। तुम्हारे कयास ने फिर तुम्हें कही का कही फेंका और तुमने भी कहा के 'सायब' ने 'अैवा' लिखा है।

नजात का तालिब

—गालिब

११८

दिल[7] बसे दागदार बूदो न मुद

दर नजर हा बहार बूदो न मुद

---

१. ध्यान। २. ऊँट का पाद। ३. लोप। ४. सम्बोधन वाचक अव्यय। ५. प्राचीन कवियो की कविता। ६. निर्बुद्धि। ७ हृदय बहुत दुखी हो गया था, वह नही रहा। दृष्टि मे बसन्त था, वह न रहा।

अगर 'वुवद' के आगे के वाव को मौकूफ और महज़्फ[1] कर दोगे, तो हमारे नजदीक कलाम सरासर बलीग[2] हो जायगा।

मेरी जान, जो खिजालत[3] के मुझको तुम से है, शायद बसवब इबादत न करने के कियामत में ख़ुदा से भी न होगी और बसबब खिलाफे[4] शरा करने के पयबर[5] से भी न होगी, मगर ख़ुदा ही जानता है जो मेरा हाल है।

मर्गे नागाह का तालिब—

—ग़ालिब

११९

मियाँ सुनो,

इस कसीदे का ममदूह शेर के फन से ऐसा वेगाना है, जैसे हम तुम अपने अपने मसायले[6] दीनी से। बल्के हम तुम, बावजूद अदम[7] वाकफियते उमूर, दीन से नफूर[8] नही और वो शख्स इस फन से बेज़ार है। अलावा इसके वो अतालीक[9] कहाँ? वहाँ से निकाले गये, दिल्ली में अपने घर बैठे हुए है। जब से आये है, एक बार मेरे पास नही आये, न मैं उनके पास गया। ये लोग इस लायक भी नही के इनका नाम लीजिये, चे जाये आँ के मदह कीजिये। 'हाय अनवरी—

अै[10] दरेगा नीस्त ममदूहे सजावारे मदीह
अै दरेगा नीस्त माशूके सजावारे गजल

—गालिब

---

१. लुप्त। २. परिष्कृत। ३. लज्जा। ४. धर्म शास्त्र के विरुद्ध। ५. हजरत मुहम्मद। ६ धार्मिक विषय। ७. विषय की अनभिज्ञता के कारण। ८. घृणा करने वाला। ९. शिक्षक। १०. दुख है अब कोई प्रशसनीय नही है जिसकी प्रशसा की जावे। शोक है कोई प्रेमिका नही जिसके लिए गजल कही जाये।

१२०

(२८ नवंबर १८६५)
मेरे मेहरवान, मेरी जान, मिर्जा तफ्ता सुखन्दान,

तुम्हारा सिकन्दरावाद और मेरे खत का तुम्हारे पास पहुँचना तुम्हारी तहरीर से मालूम हुआ। जिन्दा रहो और खुश रहो। मैं नस्र की दाद और नज्म का सिला[1] माँगने नही आया। भीक माँगने आया हूँ। रोटी अपनी गिरह से नही खाता, सरकार से मिलती है। वक्ते रुखसत मेरी किस्मत और मुनीम[2] की हिम्मत। नवाब साहब अज्र रूए सूरत[3] रूहे मुजस्सम और ब ऐतबारे[4] अखलाक आयते[5] रहमत है। खजान[6] ए फैज के तहदीलदार[7] है। जो शख्स दफ्तरे[8] अजल से जो कुछ लिखवा लाया है, उसके पटने मे देर नही लगती। एक लाख कई हजार रुपये साल गल्ले का महसूल माफ कर दिया। एक अहलेकार पर साठ हजार का महासिवा माफ़ कर दिया और बीस हजार नक्द दिया। मुशी नवलकिशोर साहब की अर्जी पेश हुई। खुलासा अर्जी का सुन लिया। वास्ते मुशी साहब के अतिया वतकरीवे[9] शादी सबिया तजवीज हो रहा है। मिकदार मुझ पर नही खुली। भाई मुस्तफाखाँ साहब वतकरीवे तहनियते मसनद[10] नशीनी व शुमूले जश्न[11] आनेवाले है। इस वक्त तक नही आये। जश्न[12] यकुम दिसम्बर से शुरू, ५जुम दिसम्बर को खिलत का आना मसमू[13]! —

दोशवा, २८ नववर सन् १८६५ ई०, वक्ते चाश्त।

नजात का तालिब
—गालिब

---

१. प्रतिफल। २. दाता। ३. शरीरधारी। ४. शिष्टता की दृष्टि से। ५. दयालू। ६. ईश्वर प्रदत्त कोष। ७. रक्षक। ८ सृष्टि के आरम्भ के कार्यालय से। ९. लडकी के विवाह के अवसर पर। १० राज्याभिषेक। ११ उत्सव में सम्मिलित होने के लिए। १२. उत्सव। १३. सुना जाता है।

१२१

तो साहब,

खिचडी खाई दिन बहलाये,
कपडे फाटे घर को आये ।

८ जनवरी माह व साले हाल दोशबे के दिन गजबे[१] इलाही की तरह अपने घर पर नाजिल[२] हुआ । तुम्हारा खत मजामीने[३] दर्दनाक से भरा हुआ रामपूर मे मैने पाया । जवाव लिखने की फुर्सत न मिली । वाद रवानगी के मुरादावाद मे पहुँचकर बीमार हो गया, पाँच दिन सदरुलसुदूर साहव के हाँ पडा रहा । उन्होने बीमारदारी और गमखारी वहुत की ।

क्यो तर्क[४] लिबास करते हो ? पहनने को तुम्हारे पास है क्या जिसको उतार फेकोगे ? तर्क लिबास से कैदे हस्ती[५] मिट न जायेगी । वगैर खाये पिये गुज़ारा न होगा । सख़्ती व सुस्ती, रजो आराम को हमवार कर[६] दो । जिस तरह हो इसी सूरत से, बहर सूरत, गुजरने दो ।

ताब लाये ही वनेगी 'गालिब'
वाकआ सख्त है और अजीज

इस खत की रसीद का तालिव
—ग़ालिव

१२२

मिर्जा तफ्ता साहब,

परसो तुम्हारा दूसरा खत पहुँचा । तुमसे पर्दा क्या है ? एक फुतूह[७] का मुन्तज़िर[८] हूँ । उसमे मैने अपने ज़मीर[९] मे तुमको शरीक कर रखा है । जमाना

१. ईश्वरी कोप । २. अवतरित । ३. दुखदायक विषय । ४. वस्त्र त्याग । ५. वन्धन । ६. अनुकूल । ७. ऊपरी आमदनी । ८. प्रतीक्षा में । ९. अन्त करण ।

फ़ुतूह के आने का करीब आ गया है। इन्शा[1] अल्लाह, खत मेरा मय हिस्
फ़ुतूह जल्द पहुँचेगा। पण्डित बद्रीनाथ या बद्रीदास, डाक मुंशी करनाल, वा[2] अ
के मुझसे उससे मुलाकात जाहिरी नही है, मगर मैं जब जीता था तो वो अप
कलाम मेरे पास इस्लाह के वास्ते भेजता था। बाद अपने मरने के मैंने उस
लिख भेजा के अब तुम अपना कलाम मुंशी हरगोपाल 'तफ्ता' के नाम भे
दिया करो। अब तुमको भी लिखता हूँ के तुम मेरे इस लिखने की उन
इत्तला लिखो।

मैं जिन्दा हूँ। ऊपर के लम्बर मे जो अपने को मुर्दा लिखा है, वो ब ए
बार तर्के इस्लाहे नज्म लिखा है, वर्ना जिन्दा हूँ, मुर्दा नही, बीमार भी नही
बूढा नातवाँ, मुफलिस कर्ज़दार, कानो का बहरा, किस्मत का बेवहरा, जीस
से बेजार, मर्ग का उम्मीदवार।

—गालि

१२३

हजरत,

इस कसीदे की जितनी तारीफ करूँ कम है। क्या क्या शेर निकाले हैं
लेकिन अफसोस के वे महल और बेजा है। इस मदह और ममदूह का वे अनेह
वह हाल है के एक मुजबले पर सेब का या बिही[3] का दरख्त उग जाए
खुदा तुमको सलामत रक्खे।

दूकाने बेरौनक के खरीदार हो।

१२४

मिर्जा तफ्ता, क्या कहना है! न 'जहीर' का पता, न 'गालिब' का
मद्दाह[4] शाइस्ता सद[5] हजार आफरी। और ममदूह सजावार सद नफरी[6]

---

१. ईश्वर ने चाहा तो। २. यद्यपि। ३. एक तरह का सेब। ४ प्रशंसक
५. हजार प्रशंसाएँ। ६. घृणा।

मुंशी जवाहर सिंघ 'जौहर' के नाम

१

बरखुरदार मुंशी जवाहर सिंघ को बाद दुआए[1] दवाम उम्रो दौलत मालूम हो—

खत तुम्हारा पहुँचा। खैरो आफियत तुम्हारी मालूम हुई। जो तुमको मतलूब थे, उसके हुसूल[2] मे जो कोशिश हीरासिंघ ने की है, मैं तुमसे कह नही सकता। निरी कोशिश नही, रुपया सर्फ किया। १५ रुपये जो तुमने भेजे थे वो, और पच्चीस तीस रुपये और सर्फ किये। पाँच पाँच और चार चार रुपये और दो दो रुपये को कते मोल लिये और बनवाये। खरीद मे रुपये जुदा दिये और बनवाने मे रुपये जुदा लगाये। दौड़ता फिरा। हकीम साहब पास कई बार जाकर हुजूरे वाला का कता लाया। अब दौड़ रहा है, [3] वली अहद बहादुर के दस्तखती कते के वास्ते। यकीन है के दो-चार दिन में वो भी हात आवे और बाद उस कते के आनेके वो सब को यकजा[4] करके तुम्हारे पास भेज देगा। मदद मैं भी उसकी कर रहा हूँ, लेकिन उसने बडी मशक्कत की। आफरी सद आफरी।

पन्द्रह रुपये मे से एक रुपया अपने सर्फ मे नही लाया और मा को आजिज[5] करके उससे बहुत रुपये लिये। जब सब कते तुम्हारे पास पहुँचेगे तब उसका हुस्ने[6] खिदमत तुम पर जाहिर होगा।

---

१. दीर्घायु और समृद्धि का आशीर्वाद। २. प्राप्ति। ३. युवराज। ४. एक स्थान पर। ५. दुखी। ६. सुसेवा।

क्यों साहब, वो हमारी लुंगी अब तक क्यो नही आई ? बहुत दिन हुए जब तुमने लिखा था के इसी हफ़्ते मे भेजूँगा। वद्दुआ।

असदुल्लाह

२

(९ अप्रेल १८५६)

बरख़ुरदार,

तुम्हारे खतो से तुम्हारा पहुँचना और छापे के कसीदे का पहुँचना और हीरा-सिंघ का इधर रवाना होना मालूम हुआ। हाँ, लाला छजमल अक्सर बीमार रहते है। इन दिनो मे ख़ुसूसन[1] इस शिद्दत से नजला[2] छाती पर गिरा के वो घबरा गये और जीस्त की तवक्को[3] जाती रही। बारे, कुछ फुरसत हो गई है। भाई, ये आफताबे[4] सरेकोह है, 'हीरा' का उनके पास रहना अच्छा है। तुमसे जो हो सकेगा तुम उसके मसारिफ के वास्ते मुकर्रर कर दोगे।

गजल तुम्हारी हमको पसद आई। इस्लाह देकर भेज दी गई। इसका तुम खयाल रखा करो के किस लफ्ज को किस माने के साथ पैवद है।

चरा[5] न यास बजाने उम्मीदवार उफ्तद

यहाँ 'उफ़्तद' मोहमल है, 'यास बदिल उफ्तादन' व 'यास बजान उफ्तादन' रोज़मर्रा नही। और भी कई 'उफ्तद' ऐसे ही है।

सियाह[6] बख़्तम अगर बर सरम गुजार उफ्तद
बसाने साया हुमा नीस्त सोगवार उफ्तद

---

१. विशेष रूप से। २ जुकाम। ३. आशा। ४. अस्ताचलगामी सूर्य। ५. आशान्वित प्राण निराश क्यो न हो ? ६ मै ऐसा अभागा हूँ कि मेरे मस्तक पर से हुमा भी उडे तो वह भी दुखी हो जाएगा।

सोगवार होना साये का बएतबार स्याही रंग है। अब यहाँ दोनों 'उफ्तद' ठीक है। 'गुजार उफ्तादन' रोजमर्रा और दूसरा 'उफ्तद' बमानी वाकए शवद।

शनीदा[1] अम ब जफाए तो मुब्तलास्त अदू
चरा न शोर ब जाने उम्मीदवार उफ्तद

'शोर उफ्तादन' रोजमर्रा है और 'यास उफ्तादन' गलत।

बहैरतम[2] के जे दोजख कसाने दोजख रा
कुजा बरद चो आहम शरारा बार उफ्तद

"उफ्तद" बमानी है वाकै शवद, ठीक है—

न गबरमो[3] न मुसलमाँ व हैरतम के मरा
सिवाय दोजखो मीनो कुजा गुजार उफ्तद

ये शेर तुम्हारा बहुत खूब है। आफरी।

करार[4] दर वतन अफ्सुर्दा मी कुनद दिलरा
खुशा गरीब के दूर अज दयारे यार उफ्तद

यहाँ भी 'उफ्तद' सही और बामानी।

नयम[5] रकीब के रुस्वाइयम खजिल न कुनद
खुशस्त पेगम अगर यार पर्दादार उफ्तद

---

१. सुनने मे आया है शत्रु तेरे अत्याचार मे ग्रस्त हो गया है। आशान्वित प्राण शोर क्यो न मचाये ? २ मुझे आश्चर्य है, नरकवासियो को कहाँ ले जाया जाएगा, जब कि मेरी अग्निवर्षी साँसे उन पर पडेगी। ३. न मै पारसी हूँ न मुसलमान, मुझे नरक और स्वर्ग के अतिरिक्त कहाँ जाना पडेगा ? ४. अपने देश मे रहना मन को दुखी कर देता है, वह दरिद्र अच्छा जो प्रिय के नगर से दूर रहे। ५ मै ऐसा रकीब नही कि बदनामी से लज्जित न होऊँ। बहुत अच्छी बात है यदि मेरा प्रिय अवगुण्ठन मे आये।

यहाँ भी उफ़्तद बमानी 'वाक़ए शवद'।

तुरा[1] के शेव दिगर गूँ कुनी व रग्मे बुताँ
खुशस्त अगर जे जफा बर वफा करार उफ्तद

उफ्तद यहाँ भी ठीक है। बात इतनी ही थी के 'बुवद' गदला लफ़्ज़ था। 'कुनी' साफ है।

खते[2] रुखे तो बदिल दादा खत्ते आजादी
खुशम के दर शिकने जुल्फे ताबदार उफ्तद

वो सूरत अच्छी न थी। ये तर्ज खूब हो गई, माने का अयार कामिल हो गया।

चकद[3] ज़े खामये जौहर सुखन चुनाके मगर
ब जोरे मौज दूर अज बहर बर किनार उफ्तद

दौलतो इकबाले रोज अफ्जूँ रोजी बाद।

निशाश्ता शबा, नहुम अप्रैल सन् १८५३ ई०।

—अज असदुल्लाह

३

(२ फरवरी १८६४ ई०)

बरखुरदार, कामगार, सआदत व इकबाल निशाँ मुंशी जवाहरसिंघ जौहर को बल्लभगढ की तहसीलदारी मुबारक हो। 'पीपली' से 'नूह' आये। 'नूह'

१. यदि तू प्रेमिका की विरुद्ध-इच्छा के लिए अपना ढग बदल दे तो अच्छा है। यदि अत्याचार के कारण तुझ में प्रेम उत्पन्न हो रहा है तो अच्छा है। २. (युवक प्रेमीसे) तुम्हारे चेहरे के बालो ने मुझे आजादी का खत लिख दिया है। (जब कुमार के चेहरे पर बाल आ गये तो प्रेमी को स्वतन्त्रता मिल गई) अब मैं तेरी चमकदार अलको मे नहीं फसूँगा। ३. जौहर की लेखनी से शेर इस तरह निकल रहे हैं जैसे लहर की शक्ति से समुद्र के मोती किनारे पर आजाते हैं।

से वल्लभगढ गये। अब वल्लभगढ से दिल्ली आओगे। इंशा अल्लाह्। सुनो साहब, हकीम मिर्जा जान खल्कुस्सिद्क हकीम आगा जान साहब के तुम्हारे इलाके तहसीलदारी में वसीगे[1] तिबाबत मुलाजिमे सरकारे अंगरेजी हैं। इनके वालिदे माजिद मेरे पचास बरस के दोस्त हैं। उनको अपने भाई के बराबर जानता हूं। इस सूरत में हकीम मिर्जा जान मेरे भतीजे और तुम्हारे भाई हुए। लाजिम है के उनसे यक दिल व यक रंग रहो और उनके मददगार बने रहो। सरकार से ये ओहदा वसीगे[2] दवाम है, तुमको कोई नई बात पेश करनी न होगी। सिर्फ इसी अम्र में कोशिश रहे के सूरत अच्छी बनी रहे; सरकार के खातिर निशाँ रहे के हकीम मिर्जा जान होशियार और कार गुज़ार आदमी है।

—ग़ालिब

---

१. चिकित्सा सम्बन्धी विभाग। २. स्थायी।

सफर की वो हालत नासाजगारी ए मिजाज का वो रग। इन सब बातो के अलावा ये कितनी बड़ी मुसीबत है के जवान दामाद मर जावे और बेटी बेवा हो जावे। मर्गो[1] जीस्त का सरिश्ता खुदा के हात है। आदमी क्या करे? दिल पर मेरे जो गुजरी है वो मेरा दिल जानता है। हा, बहस्बे जाहिर ताजियतनामा लिखना चाहिए। हैरान हूँ के अगर खत लिखूँ तो किस पते से लिखूँ? लाचार अभी ताम्मुल[2] है। जब वो भरतपूर आ जाएँ तो आप उनके आने की मुझको इत्तला दीजिएगा, कुछ लिख भेजूँगा।

नवाब अली नकी खाँ साहब के खत के जवाब मे जो आपने मुझको लिखा वो मुझको याद रहेगा। जब नवाब साहब आ जाएँगे, मैं उनको समझा दूँगा। आप हिन्दी और फारसी गजले मगाते है। फारसी गजल तो शायद एक भी नही कही। हाँ, हिन्दी गजले किले के मुशाइरे मे दो चार लिखी थी। सो वो या तुम्हारे दोस्त हुसेन मिर्ज़ा साहब के पास होगी या जियाउद्दीन खाँ साहब के पास। मेरे पास कहाँ? आदमी को यहाँ इतना तवक्कुफ नही के वहाँ से दीवान मगवाकर नकल उतरवा कर भेज दूँ।

सैयद मुहम्मद साहब को और उनके दोनो भाइयो को मेरी दुआ पहुँचे।

निगाश्त ए चार शबा, १३रवी उस्सानी सन् १२७१ हि० मुताबिक ३ जनवरी सन् १८५५ ई०।

—असदुल्लाह

३

(२४ मई १८६३ ई०)

हजरत,

आपके खत का जवाब लिखने मे दिरग इस राह से हुई के मै मुन्तज़िर रहा मियाँ के आने का, अब जो वो मुझसे मिल गए और उनकी जबानी साग

१. मृत्यु-जीवन। २. सोच विचार।

हाल सुन लिया तो जवाब लिखने बैठा। सुनो साहब—एक मुन्शी मुहम्मद तकी ही तो नहीं, यहाँ तो साला रोहन है। मुहम्मद तकी एक, उसकी दो बहनें-तीन, मुंशी आगा जान की तीन बेटियाँ और एक बेटा-चार, ये सात मुद्दई। एक इनमें से सैयद की बीवी भी सही। न वो हुक्काम हैं जिनको मैं जानता था न वो अमला है जिससे मेरी मुलाकात थी न वो अदालत के कवायद हैं जिनको पचास बरस मैंने देखा है। एक कोने में बैठा हुआ, नैरंगे[1] रोजगार का तमाशा देख रहा हूँ। 'या[2] हाफिज' 'या हफीज' विरदे ज़बान[3] है।

तुम्हारे भाई गुलाम हुसेनखाँ मरहूम[4] का बेटा हैदरहसनखाँ खुदा ही है जो बचे। तेरहवाँ दिन है के न तपे[5] मुफारिकत[6] करती है न दस्त बन्द होते हैं, न कैं मौकूफ होती हैं। चारपाई काट दी है, हवास ज़ायल[7] हो गए हैं। अंजाम[8] अच्छा नजर नहीं आता। काम तमाम है। वस्सलाम वल अिकराम।

मरकूमा २४ जिकादा १२७९ हि०।

आफियत का तालिब
—गालिब

४

(२५ मई १८६३ ई०)

सैयद साहब जमीलुल[9] मुनाकिब आली खानदान सआदत[10] व इकबाल तवामान,

मुझको अपनी याद से गाफिल और सैयद अहमद की खिदमत से फारिग न समझें। पर क्या करूँ? सूरते मुकद्दमा अजीबो गरीब है। ये बहनें और इनका भाई बाहम माफिक रहेंगे तो कोई सूरत निकल आएगी। सामित[11] व

१. काल परिवर्त्तन। २. हे रक्षक। ३. रटन। ४. स्वर्गीय। ५. ज्वर। ६. दूर होना। ७. नष्ट। ८. फल। ९. सुप्रशसनीय। १०. भलाई और प्रलय दोनो जिनके बन्धु हैं। ११. मौनी और बोलने वाला।

नातिक, सीमोजर,[1] रुपया-अशरफी, सुनता हूँ के कुछ नही। हाँ जायदाद, सो सैयद के इजहार से मालूम हुआ के वो तकसीम न होगी। किराया उसका तकसीम हो जाएगा। मै राय क्या दूँ और समझाऊँ क्या ? कई दिन हुए के मै हुसेन मिर्जा साहब के हाँ गया था। वहाँ 'मियाँ' भी बैठा था। बाहम उन दोनो साहबो मे यही बाते हो रही थीं। वो भी मेरे मानिंद हैरतजदा[2] थे। कजा[3] व कदर पर छोड़ो। नैरगे[4] तकदीर के तमाशाई रहो। घाटा नही, टोटा नही, नक्द माल का पता नही। इमलाक[5] का किराया बँट रहेगा। घबराते क्यो हो ? ये दिल्ली वालो की खफकानियत[6] के हालात हैं।

तुम्हारा भतीजा याने हैदर हुसेनखाँ बच गया। अवारिज[7] की आँधी दफा हो गई। तवक्को जीस्त की कवी[8] है। सिर्फ ताकत का आना बाकी है। सदमा बड़ा उठाया है। महीना भर मे जैसे थे वैसे हो जावेगे। इंशा अल्लाह, अली उल अज़ीम।

सुबह दोशबा, २५ मई सन् १८६३ ई०।

५

(सितम्बर १८३६ ई०)

पीरो मुर्शद,

आज नवाँ दिन है, हुसेन मिर्ज़ा साहब को अलवर गए। अगर होते तो उनसे पूछता के हजरत मेरा दीवान किस मतबे मे तबा हुआ और हाशिए उस पर किसने चढाये ! खुदा जाने हुसेन मिर्जा ने क्या कहा था और हजरत क्या समझे ? अब ये हकीकत मुझसे सुनिए--सन् १८६२ ईस्वी याने साले गुजिश्ता में 'काते बुरहान' छपी। पचास जिल्दे मैने मोल ली और ये वो जमाना है के

१. चाँदी-सोना। २, आश्चर्य चकित। ३. भाग्य। ४. भाग्य चक्र। ५. स्थावर सम्पत्ति। ६. पागलपन, उन्माद। ७ बीमारी। ८ शक्तिशाली।

आप दिल्ली आए हैं, मैंने ये समझ कर के ये तुम्हारे किस काम की है तुम्हे न दी। तुम माँगते और मै न देता तो गुनहगार था। अब कोई जिल्द बाकी नही है। रहा दीवान, अगर रेख़्ता का मुन्तखब[1] कहते हो तो वो इस अर्से मे दिल्ली और कानपूर दो जगह छापा गया और तीसरी जगह आगरे मे छप रहा है। फारसी का दीवान बीस पच्चीस बरस का अर्सा हुआ जब छपा था। फिर नही छपा। मगर हाँ साले गुजिश्ता मे मुंशी नवल किशोर ने शाहबुद्दीनखाँ को लिखकर 'कुल्लियाते फारसी' जो जियाउद्दीनखाँ ने गदर के बाद बडी मेहनत से जमा किया था वो मँगा लिया और छापना शुरू किया। वो पचास जुज्व है याने कोई मिसरा मेरा उससे खारिज़ नही। अब सुना है के वो छपकर तमाम हो गया है। रुपए की फिक्र मे हूँ। हात आ जाए तो '६५' भेज कर बीस जिल्दे भिजवाऊँ। जब आ जाएँगी एक आपको भेज दूँगा। नवाब मुहिउद्दीनखाँ साहब का हाल सुनकर जी बहुत खुश हुआ। मेरी तरफ से सलामो नियाज[2] के-बाद मुबारकबाद[3] देना।

---

१. सकलित। २. अभिवादन। ३ बधाई।

क़ाज़ी अब्दुल जमील 'जुनून' के नाम

१

(१८५४ ई०)

मख़दूम मुकर्रम व मुअज्जम[1] जनाब मौलवी अब्दुल जमील साहब की खिदमत मे वाद[2] इबलाग़े सलामे मसनून अस्सलाम।

अर्ज किया जाता है के आपकी इरादत[3] मुझको जरिये[4] फख्र व सआदत है। दो इनायत नामे आपके औकाते मुख्तलिफ[5] मे पहुँचे। पहले खत के हाशिए और पुश्त पर अशार लिखे हुए है। स्याही इस तरह की फीकी के हुरूफ अच्छी तरह पढे नही जाते। अगरचे बीनाई[6] मेरी अच्छी है, और मै ऐनक का मुह-ताज नही लेकिन वई हमा[7] उसके पढने मे बहुत तकल्लुफ करना पडता है। अलावा इसके जगह इस्लाह की बाकी नही। चुनाचे उस खत को आपकी खिदमत मे वापिस भेजता हूँ ताके आप ये न समझे के मेरा खत फाड कर फेक दिया होगा और माहाजा मेरा अँदेशा आपको बदीही[8] हो जाए।

आप खुद देख ले के इसमे इस्लाह कहाँ दी जावे। वास्ते इस्लाह के जो गजल भेजिए उसमे बैनुल अफराद[9] व बैनुल[10] मिसरेन फासला ज्यादा छोडिए। अब के खत में जो कागज अशार का है हुरूफ उसके रोशन है, मगर बैनुल[11] सुतूर मफकूद और इस्लाह की जगह मादूम। आपकी खातिर

१. महान। २. इस्लाम में अभिवादन की जो प्रथा है उसे पहुँचाने के पश्चात् प्रणाम। ३. इच्छा। ४. गौरवास्पद। ५. विभिन्न समय। ६. दृष्टि। ७. इतना होने पर भी। ८. वास्तविक। ९ फर्द के बीच में। १०. शेर की दो पक्तियो के मध्य मे। ११. पक्तियां नही है।

से रजे[1] किताबत उठाता हूँ और इन दोनो गज़लो को इस वर्क पर बाद इस्लाह लिखता जाता हूँ । मसविदा तो आपके पास होगा । उससे मुकाबिला कर कर मालूम कर लीजिएगा के किस शेर पर इस्लाह हुई और क्या इस्लाह हुई और कौन-सी बैत मौकूफ हुई ।

मुशाइरा यहा शहर मे कही नही होता, किले मे शहजादगाने[2] तैमूरिया जमा होकर कुछ गजलखानी कर लेते है । वहा के मिसर[3] ए तरही को क्या कीजिएगा । और उस पर गजल लिखकर कहाँ पढिएगा । मै कभी उस महफिल मे जाता हूँ और कभी नही जाता । और ये सोहबत खुद चन्द रोजा[4] है । इसको दवाम[5] कहा ? क्या मालूम है—अब ही न हो; अब के हो तो आइन्दा न हो ।

वस्सलाम माउल अिकराम ।

—असदुल्लाह

२

(२० नवम्बर १८५५ ई०)

किब्ला,

आपको खत के पहुँचने मे तरद्दुद क्यो होता है ? हर रोज दो-चार खत अतराफ व जवानिब से आते है, गाह गाह अगरेजी भी और डाक के हरकारे मेरा घर जानते है, पोस्ट मास्टर मेरा आशना[6] है । मुझको जो दोस्त खत भेजता है वो सिर्फ शहर का नाम और मेरा नाम लिखता है, मुहल्ला भी जरूर नही । आप ही इन्साफ करे के आप 'लाल कुआ' लिखते रहे और मुझको 'बल्लीमारो' मे खत पहुँचता रहा । ये अबके आपने 'हकीम काले' का नाम कैसा लिखा है ? इस गरीब को तो शहर मे कोई जानता भी नही ।

---

१ लिखने का कष्ट । २. तैमूर वश के राजकुमार । ३. समस्या पूर्ति । ४. अल्पकालीन । ५. स्थायित्व । ६.परिचित ।

खुलासा ये के खत आपका कोई तलफ न हुआ, जो आपने भेजा वो मुझको पहुँचा। जवाब लिखने मे जो मेरी तरफ से कुसूर वाके होता है उसके दो सबब हैं। एक तो ये के हजरत महीना भर मे नौ पते लिखते हैं। मैं कहाँ तक याद रखा करूँ? एक मकान हो तो उसको लिख रखूँ। दूसरा सबब ये के शौकिया खुतूत का जवाब कहाँ तक लिखूँ और क्या लिखूँ? मैंने आईने[1] नामा निगारी छोड कर मतलब नवीसी पर मदार[2] रखा है। जब मतलब ज़रूरी[3] उल तहरीर न हो तो क्या लिखूँ? अब के आपके खत मे तीन मतलब जवाब लिखने के काबिल थे—एक तो वो रुबाई जो आपने इस नगें[4] आफरीनश की मदह मे लिखी है, उसका जवाब बन्दगी है, और कोरनिश और आदाब। दूसरा मुद्दआ खत के न पहुँचने का वसवसा[5], सो उसका जवाब लिख चुका। तीसरा अमर जनाब मौलवी अल्लायारखाँ साहब का मेरे हाँ आना और मेरा उस वक्त मकान पर मौजूद न होना, वल्लाह मुझको बडा रंज हुआ। अगर आपसे मिले तो मेरा सलाम कहिएगा और मेरा मलाल उनसे बयान कीजिएगा। सुबह को मैं हर रोज़ किले को जाता हूँ। ज़ाहिरा मौलवी साहब अव्वल रोज़ आए होंगे। जब मैं सवार हो जाता हूँ तब भी दो-चार आदमी मकान पर होते हैं; मौलवी साहब बैठते, हुक्का पीते। मैं अगर किले जाता हूँ तो पहर दिन चढे आता हूँ। ज्यादा इससे क्या लिखूँ?

निगाश्तए से शबा, नहुम रबीउल अव्वल सन् १२७२ हि० मुताबिक २० नवम्बर १८५५ ई०।

—असद

३

(२८ अप्रेल १८५६)

प्यारे मुशंद,

फकीर हमेशा आपकी खिदमत गुजारी मे हाजिर और गैर[6] कासर रहा

---

१ पत्र लेखन का नियम। २. आधार। ३ लिखने की आवश्यकता। ४. अपमानित। ५. दुःख, दुविधा। ६ निरपराध।

है । जो हुक्म आपका होता है बजा लाता है, मगर मादूम को मौजूद करना मेरी वसे[1] कुदरत से बाहर है। इस ज़मीन मे के जिसका आपने काफिया व रदीफ लिखा है, मैने कभी गजल नही लिखो। खुदा जाने मौलवी दरवेश हसन साहब ने किससे उस जमीन का शेर सुनकर मेरा कलाम गुमान किया है। हरचद मैने खयाल किया, इस जमीन मे मेरी कोई गजल नही। दीवाने रेख्ता छापे का, यहाँ कही कही है। अपने हाफिज़े पर ऐतमाद न कर कर उसको भी देखा, वो गजल न निकली। सुनिये, अक्सर ऐसा होता है के और की गजल मेरे नाम पर लोग पढ देते है। चुनाचे इन्ही दिनो मे एक साहब ने मुझे आगरे से लिखा के ये गज़ल भेज दीजिये—

"असद" और लेने के देने पडे है

मैने कहा के लाहौला वला कूवता अगर ये कलाम मेरा हो तो मुझ पर लानत है। इसी तरह जमाने [2]साबिक मे एक साहब ने मेरे सामने ये मतला पढ़ा—

"असद" इस जफा पर बुतो से वफा की
मेरे शेर, शाबाश रहमत खुदा की

मैने सुनकर अर्ज़ किया के साहब जिस बुज़ुर्ग का ये मतला है उस पर बकौल[3] उसके ख़ुदा की रहमत[4] और अगर मेरा हो तो मुझ पर लानत। 'असद' और 'शेर' और 'बुत[5]' और 'ख़ुदा' और 'जफ़ा' और 'वफा' ये मेरी तर्जेगुफ्तार नही है। भला इन दो शेरो मे तो 'असद' का लफ्ज भी है। वो शेर मेरा क्यो कर समझा गया? वल्लाह, बिल्लाह, वो शेर 'ख़िदग' 'रग' के काफिये का मेरा नही है। वस्सलाम ।

---

१. सामर्थ्य । २. कुछ दिन पहले । ३. उसके कथनानुसार । ४. कृपा । ५. मूर्ति ।

मुरसिले जुमा २५ माहे सियाम १२७५ हि० व १९ अप्रेल साले हा
१८५९ ई० ।

—गालि

४ (१)

(२८ अगस्त १८५९)

हजरत,

क्या इरशाद होता है? आगे इससे जो आपके अशार आये थे वो दो दि
के बाद इस्लाह देकर भेज दिये। खत डाक मे तलफ हो जाए तो मेरा क
गुनाह ? आज आपका ये खत सुबह को आया। मैने आज ही दोपहर व
देखकर लिफाफा काट कर डाक मे भिजवा दिया, अब पहुँचे या न पहुँचे
दो बाते सुनिये। 'तरह' व सुकूने राय कुरेशत बमानी 'फरेब' है। लेकिन उ
में ये लफ्ज मुस्तामिल नही। वो दूसरा लुगत है—'तरह' बहरकते राय करश
बरवजने 'फरह' उसको बसकूने राय (मोहमिला) बोलना अवाम का मन्त
है। माजिल्ला, अगर तकरीर मे इस तरह याने बसुकून बोलूँ तो (जबा
अपनी) काट डालूँ।

चे जाए[२] आँ के, नज्म मैं लाऊँ।

हाँ, "गजल तरह की," जमीन त (रह की ये बमुकूब है, और,) बमान
'रविश' व 'तर्ज' 'तरह' है, बफतहतीन[३]।

---

१. यह पत्र बहुत जीर्णावस्था मे है। इस पत्र में किसी अन्य व्यक्ति ने भ
फारसी-उर्दू की कुछ गजलें लिखी हैं। मौलवी महेशप्रसाद ने इस पत्र को उद्धृ
करते हुए कोष्ठकों में संभावित शब्द लिख दिये हैं, जिन्हे इस पत्र मे यथा
स्थान दिखाने का प्रयत्न किया गया है। २ अतिरिक्त उसके। ३ जबर
पढने योग्य।

द (स्ताँ ···) 'अफसाना' नही। 'दस्ताँ' के तीन माने-एक तो रुस्तुम (के बा) प (का नाम और वो आ, म (हैं' दूसरे····तीसरे) 'आवाजे खुश'। और ये जो बुलबुल को 'हजार दास्तान' कहते है। 'सूकी' और फरोमाया (लोग कहते) है। सही 'हजार दस्ताँ' है, याने बहुत तरह की आवाजे बोलता है।

जनाब मौलवी अहमद हसन साहब "अर्शी" को मेरा सलाम पहुँचे।

यक शंबा, २८ अगस्त १८५९ ई०।

५

(८ सितंबर १८५९)

साहब,

वो खत जिसमे अशार सैयद मजलूम के थे मुझको पहुँचा और मैंने उस खत का जवाब तुमको भेजा और जिक्रे अशार कलमन्दाज[1] किया ? फारसी क्या लिखूँ ? यहाँ तुर्की[2] तमाम है ! इख़वान[3] व अहबाब[4] या मकतूल[5] या मफकूदुल[6] ख़बर ! हजार आदमी का मातमदार हूँ। आप गमजदा और आप गमगुसार हूँ। इससे कते नजर के तबाह और खराब हूँ मरना सिर पर खड़ा है। पा[7] व रकाब हूँ।

'तरह' बिलफतह बमानी है नमूना। और बमानी फरेब सच, लेकिन 'तरह' बफतहतीन और चीज है। गयासुद्दीन रायपूर मे एक मुल्ला ए[8] मकतबी था, नाकिले[9] ना आकिल। जिसका माख़िज[10] और मुस्तनद[11] अलै 'कतील' का कलाम होगा, उसका फने लुगत मे क्या फरजाम होगा ?

१. छोड दिया। २. घमण्ड जाता रहा। ३. ४. बन्धुगण। ५. मारा हुआ। ६. गुमशुदा। ७. पाँव रकाब पर। ८. बालको के अध्यापक। ९. बुद्धिपूर्वक नक्ल भी नही कर सकता। १०. उद्धरण। ११. प्रामाणिक।

कीस्तम्[1] मन के ता अबद विज़ियम्

ला हौला वला कूवता ! ये मिसरा मेरा नही। 'ता अबद[2] विज़ियम' ये फ़रसी लाला 'कतील' की है, मेरा क़ता ये है—

कीस्तम्[3] मन के जाविदाँ बाशम
चूँ 'नज़ीरी' न मुदो 'तालिब' मुर्द
वर बुगोयन्द दर कुदामी साल
मुर्द गालिब बुगो के 'गालिब' मुर्द

ये माद्दए तरीखे वफात अज[4] रु ए नुजूम नही, बल्के अज[5] रु ए कश्फ है।

इनालिल्लाहे व इना इलहे राजऊन।
पज शबा ८ सितम्बर सन् १८५६ ई०।

—ग़ालिब

६

(२२ फरवरी १८६१)

हज़रत,

बहुत दिनो मे आपने मुझको याद किया। साले गुजिश्ता इन दिनो में मैं रामपूर था। मार्च सन १८६० ई० मे यहाँ आ गया हूँ। अब यही मैंने आपका खत पाया है। आपने सरनामे पर रामपूर का नाम नाहक लिखा।

---

१. ऐसी कौन सी शक्ति मुझ मे है कि मै अनन्तकाल तक जीवित रहूँगा। २. प्रलय पर्यन्त। ३ मुझमें ऐसी शक्ति नहीं कि मै अमर रहूँगा जब कि 'नजीरी' मर गया और 'तालिब' जीवित न रहा। यदि कोई पूछे कि गालिब कब मरा तो कहना गालिब 'मुर्द' (१२७७ हि० में)। ४. ज्योतिष के अनुसार। ५. अन्तर्वाणी के अनुसार।

काजी अब्दुल जमील 'जुनून' के नाम

हक ताला वाली ए रामपूर को सदो[1] सी साल सलामत रखे। उनका अतिया माह ब माह मुझको पहुँचता है। करम[2] गुस्तरी व उस्ताद[3] परवरी कर रहे हैं। मेरे रजे सफर उठाने की और रामपूर जाने की हाजत नहीं।

मौलवी अहमद हसन 'अर्शी' के फिराक[4] को मैं नहीं समझा के क्यों वाके हुआ। बल्के ये भी नहीं मालूम के आप और वो यक जा कहाँ थे और कब थे? खलीफा हुसेन अली साहब रामपूर में मुझसे मिले होंगे मगर वल्लाह मुझको याद नहीं। निसियान[5] का मर्ज़ लाहक है। हाफिज़ा गोया न रहा। शाम्मा[6] जईफ व सामेआ[7] बातिल, बासरा में नुक्सान नहीं। अलबत्ता हिद्दत[8] कुछ कम हो गई है।

पीरी[9] व सद ऐब चुनी गुफ्ता अन्द

बहरहाल, चूँके मैं दिल्ली हूँ और वो रामपूर गये हैं तो अलबत्ता वो आपके पयाम जो उनकी ज़बान के मुहव्वल थे बदस्तूर उनकी तहवील में रहे और मुझ तक न पहुचे।

ये शहर बहुत गारतज़दा है। न अशखास बाकी न अमकना। किताब-फ़रोशो से कह दूँगा, अगर मेरी नज्मो नसर के रिसालो मे से कोई रिसाला आ जाएगा तो वो मोल लेकर खिदमते आली मे भज दिया जाएगा।

"दिल ही तो है न सगो खिश्त" इला[10] आखिर ही "वकीय[11] तुल नहीव वलगारत" एक दोस्त के पास कुछ मेरा कलाम मौजूद है, उससे ये गजल लिखधा कर भेज दूँगा। दिल्ली में एक हकीम थे, उनका नसरुल्ला खाँ नाम था, वो मर गये। इस नाम का वकीले अदालते दीवानी कभी मेने दिल्ली में नहीं सुना।

---

१. १३० वर्ष। २. दयाशीलता। ३. गुरु का पालन। ४. वियोग। ५. विस्मृति। ६. घ्राणशक्ति। ७ श्रवण शक्ति लुप्त। ८. गर्मी। ९. इसीलिए कहा गया—बुढापा सौ ऐब! १०. इत्यादि। ११ नष्ट होने से शेष।

कैसा डेरापूर, कैसा कानपूर ? अब मैं किससे पूछता फिरूँ के नसरुल्ला खाँ के तुम आशना हो या नही ? जब हजरत को उनका मस्कन मय ओहदा मालूम है तो फिर उनके अहबाब को क्यो ढूँढते हो ? गजल बाद इस्लाह के पहुंचती है।

नजात का तालिब
—गालिब

'नगे पावँ' बाब के जम्मे[1] को इशब कैसा ? ये तो तर्जुमा 'या बम' का है और फिर पावँ की ये इमला गलत, 'पांव' 'गाँव' 'छाँव'। 'घँसीटेगा' नून कैसा ? 'घसीटेगा' इमला यो है।

७

(३० जून १८६१ ई०)

जनाब काजी साहब को बन्दगी पहुँचे।

इनायत नामे के वुरूद ने शादमाँ किया, मगर उमूर मुबहमाँ[2] जो निगारिश[3] पिज़ीर थे उन्होंने हैरान किया। इबहाम की तौजीह और इजमाल[4] की तफसील का मुश्ताक[5] हूँ। आमो के बाब मे जो कुछ लिखा ये क्यो लिखा ? इहदा[6] को दवाम क्या जरूर है, खुसूसन जब के बजाते खुद हादिस[7] हो। हजरत, अब के साल हरजगह आम कम है और जो कुछ है वो खुश्क और बेमजा है। आम कहाँ से हो ? न महावट न बरसात, दरिया पायाब[8] हो गये, कुएँ सूख गये, असमार[9] में तरावत कहाँ से हो ? जनाब इसका खयाल न

---

१ पैर का सन्देह। २ सदिग्ध। ३ लिखित। ४ सक्षिप्त। ५. उत्सुक। ६. उपदेश। ७ नाशमान। ८. सूख गये। ९. फल (समर ब० ब०)।

फरमावे। अपने कश्फ[1] को गलत कर दूँगा। बर[2] शिगाले आइंदा तक जीऊँगा, आपके मोहव्वती[3] आम खाऊँगा।

सियम जून सन् १८६१।

जवाब का तालिब

—ग़ालिब

८

... सलामत्,

ये ओहदा आपको मुबारक हो और मुझको इसी तरह सदरुल[4] सुदूरी के मनसव[5] की मुबारक बाद लिखनी नसीब हो। गज़ले देख कर भेजता हूँ। अब के इस्लाह की हाजत कम पडी।

'बुर्दाई' 'रफ़्ताई' मे जितने अल्फाज़ हैं इनमे याये तहतानी नही लिखते। बस वही हाय इन वाये हरकत रहती है। पस अगर वो साकिन है तो 'रफ्ता' 'बुर्दा' इस सूरत पर रहेगी और अगर उसको हरकत लाजिम आये तो अलामते हरकत हम्ज़ा लिख दिया जाएगा—'रफ्तई' 'आमदई' और इन मफऊल के सब सीगो का यही हाल है। 'पान' का शेर काट डाला, वजह ये के पहले तो मै 'पान' का नून बेऐलान बरवजन 'आँ' पसद नही करता। ...[6]

९

(२९ सितम्बर १८६१ ई०)

जनाव मखदूम मुकर्रम को मेरी वन्दगी।

तफक्कुद[7] नामा मरकूमे २१ सितम्बर मैने पाया। हज़रत के सलामते हाल पर खुदा का शुक्र बजा लाया। कोई महकमा तखफीफ मे आए, कोई गाँव

१ अन्तर्वाणी। २. वर्षाऋतु। ३ प्रेम भरे। ४. धर्माध्यक्ष। ५ प्रतिष्ठा। ६. मूल पत्र इतना ही उपलब्ध है। ७ स्नेह पत्र।

मसलन लुट जाए, आपका ओहदा आपको मुबारक, आपका दौलतखाना सलामत। हाँ, वो जो अपने इब्नुलखाल[1] का इस महकमे मे वकील होने का आपको खटका है, अलबत्ता बजा है। जब आप जाहिर कर चुके है तो अब उसका अन्देशा क्या है ? हाकिम समझ लेगा। वो वकील है, महकमे मुन्सफी में न रहेंगे, महकमे सदर अमीन व सेशन जज मे काम करेंगे।

मै न तन्दुरुस्त हूँ न रजूर हूँ। ज़िन्दा बदस्तूर हूँ। देखिए कब बुलाते हैं और जब तक जीता रहूँ और क्या दिखाते है। वस्सलाम। बालूफुल[2] अहतराम।

यकशबा २९ सितम्बर सन १८६१ ई०।

नजात[3] का तालिब
—ग़ालिब

१०

अज असद बन्दगी व रसद[4]।

हज़रत ये गज़ल कताबन्द है, पस खिताब मतला मे चाहिए। मतले दो दो लिखने ये ईजाद[5] रेख्तावालो का है।

जनाब मौलवी असासुद्दीन की खिदमत में सलामे नियाज।

११

ऐ मुशफिके[6] मन, 'ना मरबूत' और 'कबीह', टकसाल बाहर है। इस शेर को दूर करो। अगर कोई और शेर हात न आए और इसीको रखना चाहो तो यो रखो—

"गालियाँ देते हो क्यो मुशफिके[6] मन खैर तो है ?"

—ग़ालिब

---

१. खाल का पुत्र, दुष्ट। २. सहस्र अभिवादनो द्वारा मैं आपका आदर करता हूँ। ३. मुक्ति का अभिलाषी। ४ असद का अभिवादन पहुँचे। ५. आविष्कार। ६. प्रेमी।

१२

आदाब अर्ज करता हूँ और चारो गज़लें देखकर जा बजा हक व इस्लाह करके भेजता हूँ।

—असद

१३

'खुस्ता काम' व 'अन्देशाकाम' दोनो लफ्ज टकसाल बाहर हैं। हा, 'नाकाम' और 'दुश्मनकाम' व 'दोस्तकाम' लिखते हैं और 'तिश्नाकाम' और तरकीब हैं; 'काम' बमाने 'तालू' के हैं; न बमानी 'मकसद' व मुद्दआ।

कागज लिफाफे मे इस तरह लपेटा कीजिए के खुलने की जगह बाकी रहे।

१४

'तडफना' तर्जुमा 'तपीदन' का इमला यो है—न 'तडपना'; वाए फारसी और नून के दरमियान हाय मकलूतुल[1] तलफ्फुज़ जरूर है।

माशूक को 'साहब' लिखना चाहिए न के 'हजरत' और जो एक दो जगह इस्लाह है, उसकी तौजी की हाजत नही। फारसी गजल खैर आपका जी चाहे तो रहने दीजिए। जिस तरह उसमे कही सुक्म नही उसी तरह लुत्फ भी नही।

नजात का तालिब
—गालिब

---

१. स्पर्श ध्वनि।

१५

'ज बेरूने खाना' का लफ्ज खिलाफे रोज़मर्रा। अलावा इससे ये अहतमा होता है के मगर खुद उस शख्स के घर मे दख़ले गैर है।

१६

(१९ जून १८६३ ई०)

जनाव मौलवी साहव,

आपके दोनो खत पहुचे। मै जिन्दा हूं, लेकिन नीममुर्दा[1]। आठ पह पड़ा रहता हू, अस्ल साहवे फराश मै हू। वीस वीस दिन से पाँव पर वर्म है गया है। कफे पा[2] व पुश्ते पा[3] से नौवत गुज़र कर पिंडली तक आमास[4] है जूते मे पाँव समाता नही। वौलो[5] वराज के वास्ते उठना दुश्वार। ये स वातें एक तरफ, दर्द मुहल्लिले रूह[6] है। सन् १२७७ हि० मे मेरा न मरन सिर्फ मेरी तकज़ीव[7] के वास्ते था। मगर इस तीन वरस में मै हर रोज मर्गे[8] न का मज़ा चखता रहा हूँ। हैरान हूँ के कोई सूरत जीस्त की नही। फिर मै क्य जीता हूँ। रूह मेरी अव जिस्म मे इस तरह घवराती है जिस तरह तायर[9] कफस[10] में। कोई शग्ल,[11] कोई अख्तलात[12], कोई जलसा, कोई मजमा पसन्द नही। किताव से नफ़रत, शेर से नफरत, जिस्म से नफरत, रूह से नफरत। जो कुछ लिखा है, वेमुवालिगा और वयाने[13] वाके है।

खिर्रमा[14] रोज़ेकज़ी मज़िले वीरां वरवम

---

१. अर्द्धमृत। २. पांव के पंजे का निचला हिस्सा। ३. पांव के पंजे का ऊपरी हिस्सा। ४. शोथ। ५. मूत्र-शौच। ६. प्राण घातक। ७. असत्यता। ८. नई मृत्यु। ९. पक्षी। १०. पिंजरा। ११. चस्का। १२. प्रेम। १३. यथार्थ वर्णन। १४. मुझे उस दिन प्रसन्नता होगी जब मैं सुनसान जगह में चला जाऊँगा।

ऐसे मखमसे[1] मे अगर तहरीरे जवाब मे कासिर रहूँ तो माफ हूँ।

सुबह जुमा यकुम मुहर्रम सन १२८० हि० मुताबिक १९ जून १८६३ ई०।

नजात का तालिब
—ग़ालिब

१७

(३० नवम्बर १८६३ ई०)

जनाब काजी साहब को मेरी वन्दगी पहुँचे। मुकर्रमी मौलवी गुलाम गौसखाँ बहादुर मीर मुंशी का कौल सच है। अब मै तन्दुरुस्त हूँ। फोडा-फुन्सी, जख्म, जराहत कही नही, मगर ज़ोफ[2] की वो शिद्दत है के ख़ुदा की पनाह। जोफ क्यो कर न हो। बरस दिन साहबे फर्राश रहा हूँ। सत्तर बरस की उम्र, जितना खून बदन में था वे मुबालिगा आधा उसमें से पीप होकर निकल गया। सिने नमू[3] कहाँ, जो अब फिर तौलीदे[4] दम सालेह हो ? बहर हाल, जिन्दा हूँ और नातवाँ और आपकी पुरसिश[5] हाय दोस्ताना का ममनूने अहसान। वस्लाम माउल अिकराम।

दो शबा १८ जमादिस्सानी सन् १२८० हि० मुताबिक सियम नवम्बर सन १८६३ ई०।

नजात का तालिब
—ग़ालिब

---

१. सघर्ष। २. निर्बलता। ३. बढने की आयु (युवावस्था)। ४. अच्छे रक्त की उत्पत्ति। ५. मित्रो की पूछताछ।

१८

(१५ दिसंबर १८६३)

किब्ला,

मुझे क्यो शर्मिन्दा किया ? मैं इस सना व[1] दुआ के काबिल नही। मग अच्छो का शेवा[2] है, बुरो को अच्छा कहना। इस मदह गुस्तरी[3] के ऐवज आदाव वजा लाता हूँ।

सेशवा १५ दिसबर सन् १८६३ ई०।

नजात का तालि
—गालि

१९

(७ जनवरी १८६४ ई०)

जनाव काजी साहव को सलाम और कसीदे की वन्दगी। अगर मु कव्वते[4] नाजिमा पर तसर्रुफ बाकी रहा होता तो कसीदे की तारीफ मे ए कता और हजरत की मदह मे एक कसीदा लिखता। बात ये है के जो शाइस्त ए[5] मदह नही तो ये सिताइशे[6] राजे आपकी तरफ होगी। गो ये कसीदा आप ही की मदह मे है। मैं अब रजूर[7] नही, तन्दुरुस्त हूँ, मग बूढा हूँ। जो कुछ ताकत बाकी थी वो इस इख्तिला[8] मे जायल[9] हो गई अब एक जिस्मे[10] वेरूह मुतहरिक हूँ।

---

१. प्रशसा। २ रीति। ३. प्रशसा-कथन। ४. कवित्व शक्ति ५. प्रशसनीय। ६. आप की प्रशसा के योग्य। ७. दुखी। ८ सघर्ष। ९. नाश १०. निर्जीव किन्तु चलता फिरता शरीर।

काज़ी अब्दुल जमील 'जुनून' के नाम

यके[1] मुर्दा शख़्सम बमुर्दी रवाँ

इस महीने याने रज्जब सन १२८० से सत्तरवाँ बरस शुरू और असकाम[2] व आलाम[3] का शुरू है। लामौजूद[4] इल्लिल्लाह वला मौअस्सिर फिल उजूद इल्लिल्लाह।

बिस्त[5] हफ्तुम रज्जब व हफ्तुम जनवरी।

नजात का तालिब

—ग़ालिब

२०

(७ फरवरी १८६४ ई०)

महे शवाल को क्या देखे 'जुनूने' गमगी
खजरे नाज़ नही अब्रू ए खमदार नही

पीरो मुर्शद,

माहे शव्वाल[6] को खजरो शमसीर से क्या इलाका ? हिलाले[7] रमज़ान देखकर तलवार को देखते है और हिलाले[8] शव्वाल देखकर सब्ज कपड़ा मुशाहिदा[9] करते है।

अशार वहुत है। उनमें से किसी शेर को मकता[10] कर दीजिये।

हफ्तुम फरवरी सन् १८६४ ई०।

—ग़ालिब

१ निर्जीव हूँ किन्तु साहस से चलता फिरता हूँ। २. निर्वलता। ३. विपत्तियाँ।४. ईश्वर के अतिरिक्त किसी का अस्तित्व नही, ईश्वर के अतिरिक्त कोई शेष नही रहेगा। ५ २७। ६. रमजान के पश्चात् शव्वाल का चांद। ७. रमजान का प्रथम दिवसीय चन्द्र। ८. रमजान के पश्चात आने वाला महीना। ९. देखना। १० गजल का अँतिम शेर जिसमे कवि का काव्य-नाम रहता है।

२१

(१९ मार्च १८६४)

हजरत,

गजल सरासर हमवार[1] व जौक अंगेज है। एक शेर में एक लफ्ज बनाया गया, एक शेर का पहला मिसरा बदल दिया गया।

मोमिनखाँ के इस मिसरे मे तरद्दुद क्या है?

तुमसे दुश्मन की मुबारक बाद क्या ?

'से' बमाने 'अज' नही है, बल्के बमाने 'मिस्ल'[2] व 'मानिन्द' है।

याने[3] चूँ तो दुश्मन अगर तहनियत देहद वरॉ चे ऐतबार

"वस्ल के वादे से हो दिल शाद क्या

तुम से दुश्मन की मुबारकबाद क्या ?"

याने अगर तुमने कहा के लो मुबारक हो, कल हम आएँगे या तुम्हे बुलाएँगे, हम ऐसे वादे से क्या खुश हो ? तुम जैसे दुश्मन के मुबारकबाद देने से क्या होता है ?

—गालिब

२२

(४ अप्रैल १८६४)

महरबान मेरे साहब अगर 'काते बुरहान' का जवाब लिखते हैं, खुदा उनको ये तौफीक दे के इबारत के माने समझ ले, तब जवाब लिखें। वस्सलाम।

चहारुम अप्रैल सन् १८६४ ई०।

---

१ सुरुचिपूर्ण। २. समान। ३. यदि तुम जैसा शत्रु बधाई दे तो उसका क्या विश्वास ?

२३

(८ मई १८६४)

हजरत सलामत,

मियाँ कुदरुतुल्लाह साहब का तरद्दद बजा[१]। 'पेश अज सुबह सादिक' नमाज कैसी ? ये कातिबे अव्वल खूबी और नकल करने वालो की गफलत है। अस्ल फिक्रा यो है—

खुद[२] बदौलत पेश अज़ सुबहे सादिक बरखास्ता बादे बाँगे सलात बाजमाते फुजला नमाजे सुबह अदा कर्दा बझरोकए दर्शन तशरीफ मी आवुर्दन्द।

हज़रात ने 'बनफ्से नफीस' बढा दिया और बरखास्ता को बजब्र[३] उठा दिया। सुबह सादिक से पहले याने दो तीन घडी रात रहे उठते और जरूरियात से फरागत करते। वजू[४] के मरासिम[५] बजा लाते। जब मौज्जन[६] अजाँ देता, जमात की नमाज पढते। रफ[७]ए हवायज जरूरी को 'बरखास्ता' के बाद मुकद्दर छोड जाना बलागत[८] है। याने उस वक़्त के अफाल वालो[९] बराज है, इनका जिक्र मकरूहे तबा[१०] है उमूमन और बनिस्बते[११] बादशाह से सूए[१२] अदब है खुसूसन। और ये जो फकीर 'बनफ्से नफीस' को गलत कहता है, यहाँ एक दकीका है। याने बहुत काम ऐसे है के आदमी आप भी कर सकता है और खादिम से ले सकता है। मसलन चिलम पर आग धरना या

---

१. उचित। २. उष काल में उठकर अजाँ के पश्चात् योग्य व्यक्तियों के साथ प्रात काल की नमाज़ पढ कर दर्शन देने के लिए झरोखे मे आते थे। ३. हठपूर्वक। ४. नमाज से पूर्व अगन्यास और करन्यास जैसी क्रिया। ५. रस्में। ६. मस्जिद मे नमाज पढने वाला। ७. दैनिक कृत्य। ८. अच्छाई। ९. मल-शौच। १०. अरुचिपूर्ण। ११. बादशाह के लिए। १२. अशिष्टता।

पायखाने मे लोटा ले जाना। और बहुत काम ऐसे हैं के हर शख्स की जात से ताल्लुक रखते हैं। दूसरा नयाबतन[1] नही कर सकता, मसलन हुक्का पीना या पायखाने जाना। सोना, जागना, उठना, बैठना भी इसी कबील[2] से है। पस अफाले[3] मुश्तरिका में 'बनफ्से नफीस' लिख सकते हैं और अफाले[4] मखसूसा मे 'बनफ़्से नफीस' की कैद लगो और पोच और मोहमल है। मैं करूँ क्या? फिलहाल दूदमाने[5] मानी का वो हाल है जो हिन्दुस्तान का गदर के बाद हो गया। जोहला[6] जानते नही। उल्मा[7] अैतना[8] नही करते। छापे को तौकी[9] ए इलाही समझते हैं। नुस्खए-मतबूआ मे गलती का अहतमाल जायज नही रखते। कापी नवीस के जुर्म में मुसन्निफ[10] बेचारा माखूज[11] होता है।

दाद का तालिब
—गालिब

२४

(२८ जून १८६४)

मिरजा,

१२० आम पहुँचे। खुदा हजरत को सलामत रखे। १० कलमे और छटांक भर स्याही कहार के हवाले कर दी है। खुदा करे बहिफाजत आपके पास पहुँचे। मैं मरीज नही हूँ, बूढा हूँ और नातवाँ। गोया नीम जान रह गया हूँ।

---

१. प्रतिनिधि के रूप में। २. ढंग। ३. संयुक्त कार्य। ४ व्यक्तिगत कार्य। ५. परिवार, नस्ल। ६. निरक्षर। ७ विद्वान। ८. ध्यान। ९. ईश्वरादेश। १०. लेखक। ११. अपमानित।

काजी अब्दुल जमील 'जुनून' के नाम

एक कम सत्तर बरस दुनिया मे रहा, कोई काम दीन का नही किया। अफ़सोस, हज़ार अफसोस।

सेशबा २८ जून सन् १८६४ ई०।

नजात का तालिब
—ग़ालिब

२५

(२४ अगस्त १८६४ ई०)

जनाबे आली,

वो गजल जो कहार लाया था वहाँ पहुँची जहाँ अब मै जाने वाला हूँ याने अदम। मुद्दआ ये के गुम हो गई।

घात मे मुद्दआ बर[1] आरी को
हमने गैर की गम गुसारी की

तकदीम[2] व ताख़ीरे[3] मिसरतैन[4] करके रहने दो; इसमें कोई सुक्म नही। 'मुद्दआ बरारी' कायथो का लफ़्ज है। मै इस तरह के अलफाज से अहतराज़ करता हूँ, मगर चूँके 'मिन हैसुल माना' ये लफ़्ज सही है, मुजायका नही।

कतर ए मय बस के हैरत से नफस परवर हुआ
खत्ते जामे मय सरासर रिश्त ए गौहर हुआ

इस मतले मे खयाल है दकीक मगर कोह[5] कदन व काह[6] बर आवुर्दन याने लुत्फ ज्यादा नही। कतरा टपकने मे वे अख्तियार है, वकदरे यक[7] मिज़ा

१ सफलता। २. आगे। ३ पीछे। ४. दो चरण। ५ पहाड खोदना। ६ घास मिलना। ७ एक पलक।

बरहम[1] ज़दन सिवातो[2] करार है, हैरत इज़ालए[3] हरकत करती है, कतर ए[4] मय इफराते हैरत से टपकना भूल गया। बराबर बराबर बूंदे जो थमकर रह गईं तो प्याली का खत बसूरत उस तागे के बन गया जिसमे मोती पिरोये हो।

लेता न अगर दिल तुम्हें देता कोई दम चैन
करता जो न मरता कोई दिन आहो[5] फुगाँ और

ये बहुत लतीफ तकरीर है। 'लेता' कोरब्त 'चैन' से, 'करता' मरबूत[6] है 'आहो फुगाँ' से। अरबी मे ताकीदे लफ्जी[7] व मानवी[8] दोनो मायूब[9] है। फारसी मे ताकीदे मानवी ऐब और ताकीदे लफ्जी जायज है बल्के फसीह[10] और मलीह[11] रेख्ता तकलीद[12] है फारसी की। हासिले[13] मानी ए मिसरैन ये के अगर दिल तुम्हे न देता तो कोई दम चैन लेता, अगर न मरता तो कोई दिन और आहो फुगाँ करता।

मिलना नही तेरा आसाँ तो सहल है
दुश्वार तो यही है के दुश्वार भी नहीं

याने अगर तेरा मिलना आसान नही तो ये अम्र मुझ पर आसान है। और तेरा मिलना आसान नहीं, न सही, न हम मिल सकेंगे न कोई और मिल सकेगा, मुश्किल तो ये है के नही तेरा मिलना दुश्वार भी नहीं। जिससे तू चाहता है मिल भी सकता है। हिज्रो[14] को तो हमने सहल समझ लिया था मगर रश्क

---

१. पलक बन्द करना। २. दूसरा मोड़ पेंच। ३. गतिहीनता। ४. बूंद बिन्दु। ५. निश्वास रुदन। ६. मजबूत। ७. शाब्दिक। ८. अर्थ सम्बन्धी। ९. दोषपूर्ण। १०. परिमार्जित। ११. सलोना। १२. अनुसरण। १३. दो मिसरों से निकलने वाला अर्थ। १४. वियोग।

मगर रश्क[1] वो अपने ऊपर आसान नही कर सकते।

हुस्न और उस पै हुस्ने ज़न, रह गई बुल हविश की शर्म
अपने पै ऐतमाद है गैर को आज़माए क्यो ?

मौलवी साहब, क्या लतीफ माने है ? दाद देना। हुस्न[2] आरिस और हुस्ने[3] ज़न, दो सनते महबूब[4] मे जमा है। याने सूरत अच्छी है और गुमान उसका सही है, कभी खता नही करता, और ये गुमान उसको बनिस्बत अपने है के मेरा मारा कभी नही बचता। और मेरा तीरे गम्जा[5] खता नही करता। पस, जब उसको अपने ऊपर ऐसा भरोसा है तो रकीब[6] का इम्तेहान क्यो करे ? और हुस्ने जन ने रकीब की शर्म रख ली वर्ना यहाँ माशूक ने मुगालिता खाया था। रकीब आशिके[7] सादिक न था। हवसनाक आदमी था। अगर पाए—इम्तिहान दरमियान आता तो हकीकत खुल जाती।

तुझ से तो कुछ कलाम नही लेकिन ऐ नदीम
मेरा सलाम कहियो अगर नामावर मिले

ये मजमून कुछ आगाज़ चाहता है। याने शायर को एक कासिद[8] की ज़रूरत हुई। मगर खटका ये के कासिद कही माशूक पर आशिक न हो जाए। एक दोस्त इस आशिक का, एक शख्स को लाया और उसने आशिक से कहा के आदमी वजादार और मौतमद अलै[9] है, मै जामिन हूँ के ये ऐसी हरकत न करेगा। खैर, उसके हात खत भेजा गया। कज़ारा आशिक का गुमान सच हुआ। क़ासिद मकतूब अलै[10] को देख कर वाला[11] वो शैफ़्ता हो गया। कैसा

---

१. ईर्ष्या। २. नववधू का सौन्दर्य। ३. नारी का सौन्दर्य। ४. प्रिय। ५. हावभाव का तीर। ६. प्रतिप्रेमी (एक ही प्रेमिका के दो प्रेमियों मे एक दूसरे के लिए रकीब शब्द का प्रयोग करते है)। ७ सच्चा प्रेमी। ८. सन्देश वाहक। ९ विश्वसनीय। १०. जिसे पत्र लिखा गया था। ११. दीवाना-परेशान।

ख़त, कैसा जवाब। दीवाना बन, कपडे फाड जगल को चल दिया। अब आशिक इस वाके के वक़्त के बाद नदीम[1] से कहता है के गबदाँ[2] तो ख़ुदा है, किसी के बातिन की[3] किसी को क्या ख़बर। ऐ नदीम, तुझ से कुछ कलाम नही, लेकिन अगर नामाबर[4] कही मिल जाए तो उसको मेरा सलाम कहियो के क्यो साहब तुम क्या क्या दावे आशिक न होने के कर गए थे और अजामे[5] कार क्या हुआ ?

कोई दिन गर जिन्दगानी और है
अपने जी मे हमने ठानी और है

इसमें कोई इश्काल[6] नही। जो लफ्ज है वही माने है। शायर अपना क़स्द क्यो बताए के मैं क्या करूँगा ? मुबहम कहता है के कुछ करूँगा। ख़ुदा जाने शहर में या नवाहे[7] शहर में तकिया बना कर फ़कीर होकर बैठ रहे या देस छोड परदेस चला जाए।

२४ अगस्त सन् १८६४ ई०।

२६

(७ नवम्बर १८६५ ई०)

पीरो मुर्शिद,

[illegible] [illegible] का [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] का [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] के वास्ते रामपुर आया। मैं यहाँ और [illegible]

---

१. मित्र, मुसाहिब। २. पर्दे का जानने वाला। ३. गुप्त बात।
४. पत्रवाहक। ५. परिणाम। ६. [illegible]। ७. शहर के चारों ओर।

कहाँ ! १६ अक्तूबर को यहाँ पहुँचा। बशर्ते[1] हयात आखिरे दिसम्बर देहली को जाऊँगा। नुमायशगाहे बरेली की सैर कहाँ और मैं कहाँ ! खुद इस नुमायशगाह की सैर से जिसको दुनिया कहते हैं, दिल भर गया। अब आलमे[2] बेरङ्गी का मुश्ताक[3] हूँ।

ला इलाहा इल्लिल्लाह, ला मौजूद इल्लिल्लाह,
ला मौसिर फिलवजूद इल्लिल्लाह

सेशबा ७ नवम्बर सन् १८६५ ई०।

नजात का तालिब
--ग़ालिब

२७

आदाब बजा लाता हूँ।

आपका नवाज़िश[4] नामा पहुँचा, गजले देखी गई। फकीर का कायदा ये है के अगर कलाम मे असखाम[5] व अगलात देखता हूँ तो रफा कर देता हूँ और अगर सुक्म[6] से खाली पाता हूँ तो तसर्रुफ नही करता। पस, कसम खाकर कहता हूँ के इन गजलो मे कही इस्लाह की जगह नही।

२८

(१८६६ ई०)

सुभान अल्लाह् !

सरे[7] आगाजे फस्ल मे ऐसे समर[8] हाए पेश रस का पहुँचना नवीदे[9] हज़ार गुना मैमनत व शादमानी है। ये समर ख्वुल[10] नू ए अस्मार है। इसकी तारीफ

१. यदि जीवन रहा। २ परोक्ष जगत। ३. इच्छुक। ४. कृपा पत्र। ५. त्रुटियाँ और अशुद्धियाँ। ६. दोष। ७ मौसम शुरू होते ही। ८. रसदार फल। ९. हजार गुना प्रसन्नता और आनन्द। १०. सब फलो का सत्व।

हुए थे वो मिर्ज़ा विकारअली बेग के कौन थे। मैंने इन साहबान को देखा नहीं। मुहम्मद अली बेग को देखा है। वो मॉमूँ मिर्ज़ा अली जान बेग मरहूम के नवासे और मेरे भानजे होते थे। पस, अगर ऍक्स्ट्रा असिस्टेण्ट बहादुर मुहम्मद अली बेग के भाई हैं तो वो भी मेरे भानजे हैं।

चारशंबा सिव[2] एकुम अक्टूबर सन् १८६६ ई०।

—ग़ालिब

---

१. "—३१।

नवाब अनवरुद्दौला सादुद्दीनख़ाँ बहादुर 'शफ़क़' के नाम

१

(४ अक्टूबर १८५५)

क्यों कर कहूँ, के मैं दीवाना नहीं हूँ। हाँ, इतने होश बाक़ी हैं के अपने को दीवाना समझता हूँ। वाह, क्या होशमन्दी है किब्लए[1] अरबाबे होश को ख़त लिखता हूँ, न अल्काब,[2] न आदाब, न बन्दगी, न तसलीम। सुन ग़ालिब, हम तुझसे कहते हैं, बहुत मुसाहिब न बना। ऐ अयाज,[4] हद्दे[5] खुद ब शनास। माना के तूने कई बरस के बाद रात को ९ बैत की गजल लिखी है और आप अपने कलाम पर वज्द[6] कर रहा है, मगर ये तहरीर की क्या रविश है? पहले अल्काब लिख, फिर बन्दगी अर्ज कर, फिर हात जोड़ कर मिजाजे मुबारक की ख़बर पूछ, फिर इनायतनामे के आने का शुक्र अदा कर और ये कह के जो मैं तसव्वुर कर रहा था वो हुआ, याने जिस दिन सुबह को मैंने ख़त भेजा उसी दिन आख़िरे रोज हुज़ूर का फ़रमान पहुँचा। मालूम हुआ के हरारत हनोज़ तारी है। इंशा अल्लाह ताला रफ़ा हो जाएगी। मौसम अच्छा आ गया है—

[illegible]

[illegible]

१. [illegible]। २. उपाधि। ३. प्रणाम। ४. महमूद गजनवी के एक [illegible] का नाम। ५. अपने पद को [illegible] पहचान। ६. [illegible]। ७. [illegible]

नवाब अनवरद्दौला सादुद्दीनखाँ बहादुर 'शफक' के नाम

अगर सिर्फ तबरीद व तादील[1] से काम निकल जाए तो क्या कहना, वर्ना बहस्बें[2] राय तबीब, तनकिया कर डालिये। मुझको भी आज दसवाँ मुजिज है, पाँच-सात दिन के बाद मुस्हिल होगा। शब को नागाह एक नई जमीन खयाल मे आई। तबियत ने राह दी। गजल तमाम की। उसी वक्त से ये खयाल मे था के कब सुबह हो और कब ये गजल नवाब साहब को भेजू। खुदा करे आप पसद करे और मेरे किब्ला जनाब मीर वाजिदअली साहब को सुनावे और मेरे शफीक मुशी नादिर हुसेनखाँ साहब और उनके भाई साहब उसको पढे। परवर दिगार इस मजमे को सलामत रखें।

ग़ज़ल

ऐ[3] जौके नवा सजी बाज़म बखरोशावर
गौगा ए शबे खूनी बर बुगहे होशावर

---

१ ठडाई आदि शीतल पेय। २ चिकित्सक के परामर्श के अनुसार। ३. हे कवित्व के स्नेह, तुम मुझे फिर उत्साह दो। रात्रि के वध के कोलाहल को मेरी चेतना के स्थान पर स्थापित करो, यदि वह मस्तिष्क से निकल आये तो मै उसे आखो से बहाऊँगा, मेरे हृदय को रक्तमय बना दो और उसे मेरे वक्ष-स्थल मे प्रवाहित करो। इस जगल का पानी कटु है, यदि तुम उदार हो तो नगर से मेरे लिए मधुर स्रोत लाओ। मुझे ज्ञात है, तुम्हारे पास द्रव्य है, मुझे ज्ञात है तुम्हारे पास स्वर्ण है, तुम सभी स्थलो पर जाने हो. यदि बादशाह शराब न दे तो शराब बेचने वाले मे लाओ। यदि कलाल का बेटा सुरा को कमण्डल मे डाल दे तो उसे हथेली पर लो और रास्ते पर चल दो। यदि बादशाह घडे मे भर दे तो उठा लो और कधे पर रखकर लाओ। शीशे मे से गन्ध आ रही है, सुरा की कलकल ध्वनि से गायन प्रकट हो रहा है।

गर खुद विजिहद अज़ सर अज दीदा फिरो बारम
दिल खूँ कुनो आँ खू रा दर सीना व जोशावर
हाँ हमदमे फ़रजाना दानी रहे वीराना
शमें के नखाहद शुद अज बार खमोशावर
शोरा व एई वादी तलखस्त, अगर रादी
अज शहर बसू ए मन सर चश्म ए नौशावर
दानम के ज़रेदारी हर जा गुजरे दारी
मै गर न देहद सुलताँ अज़ बादा फरोशावर
गर मुग बकदूरीजद बर कफ 'नहो' राही शो
'बर शह बसुबू बख्शद बरदारो बदूशावर
रेहाँ दमदज मीना रामश चकदज़ कुलकुल
आँ दर रह चश्म अफगन वी अज़ पये गोशावर
गाहे व सुबुकदस्ती जाँ बादा ज सागम् बुर
गाहे व सियह मस्ती अज नग्मा बहोशावर
'गालिब' के बक़ावश बाद हम पाए तो गर नायद
वारे गजले फर्दे जाँ मोज़ेना पोशावर

[illegible] २१ मुहर्रम १२७[illegible] हि० व १८ माहे [illegible] सन् १८५५ ई०।

[illegible] कि [illegible] ने [illegible] 'गालिब' [illegible] है [illegible]

नवाब अनवरुद्दौला सादुद्दीनख़ाँ बहादुर 'शफ़क़' के नाम

२

(८ अक्टूबर)

लिल्लाह[१] अल शुक्र के पीरो[२] मुर्शद का मिजाज़े[३] अकदस बखैरो आफियत है। पहले नवाजिशनामे का जवाब बाआँ[४] के वो मुश्तमिल एक सवाल पर था, हनोज नही लिखने पाया के कल एक मुकर्रमतनामा[५] और आया। बन्दा अर्ज कर चुका है के मुस्हिल[६] मे हूँ। चुनाचे कल तीसरा मुस्हिल होगा। इस सबब से तौकी[७] का पासखनिगार[८] न हो सका था, और लिखता भी तो यही लिखता जो आपने लिखा है।

'अरनी' की 'रे' की हरकत व सुकून के बाब मे कौले फैसल यही है जो हजरत ने लिखा है। अगर तक्ती ए शेरे[९] मुसादत कर जाए और 'अरनी' बरवजने 'चमनी' गु जाइश पाय तो नामुल इत्तेफाक[१०] वर्ना कायद ए तसर्रुफ मुक्तजी[११] जवाज है।

मिर्जा अब्दुल कादर 'बेदिल'—

[१२] चोरसी ब तूर हिम्मत अरेनी मगो व बुगुजर
के नय्यरज़द ईं तमन्ना बजवाबे लन्तरानी

—असदुल्लाह् बेग 'ग़ालिब'

---

१. ईश्वर की दया। २. पूज्य गुरु। ३. स्वास्थ्य। ४. यद्यपि। ५. द्वितीय पत्र। ६. जुल्लाब। ७. आदेश। ८. उत्तरदाता। ९. शेर के छद की अनुकूलता। १०. सयोग। ११. जिसका तकाजा हो। १२. यदि तुम साहस के तूर (तूर-पर्वत पर हजरत मूसा को ईश्वर का साक्षात्कार हुआ था) पर पहुँच जाओ तो वहाँ 'अरेनी' (ईश्वर तुम्हे देखना चाहता हूँ) कहने की अवश्यकता नही। चुपचाप चले जाओ। इस लालसा का उत्तर लन्तरानी नही होगा।

[1] रफ़्त आँ के मा ज़े हुस्न मुदारा तलब कुनेम
सर रिश्ता दर कफ़े अरेनी गोए तूर बूद

जवायद[2] से फारिग होकर अर्ज़ करता हूँ के हाय क्या गजल लिखी है। किब्ला, आप फारसी क्यों नही कहा करते ? क्या पाकीजा जबान है और क्या तर्ज़े बयां ! क्या मैं सुखन नाशनास और ना इन्साफ़ हूँ के ऐसे कलाम के हक व इस्लाह पर जुरत करूँ ?

चे[3] हाजतस्त बमश्शाता रूए जेबा रा

हाँ, एक जगह आप तहरीर में सहव कर गये हैं—

"ऐ[4] मुतरिबे जादू फन वाजम रहे होशम जन"

दो मीम आ पड़े हैं। एक मीम महज बेकार है। दीगर की जगह आप 'वाजम' लिख गये हैं।

ऐ[4] मुतरिबे जादू फन दीगर रहे होशम जन

अब देखिये और साहबों की गजलें कब आती हैं। इतनी इनायत फरमाइये के हर साहब के तखल्लुस के साथ उनका इस्म मुबारक और कुछ हाल रकम कीजिएगा। ज्यादा हद्दे अदब।

निगारिशे पंजशंबा, सेयुम सफर सन १२७० हि० व हज़[5] दहुम अक्तूबर सन् १८५४ ई०।

अज—असदुल्लाह

---

१. वह समय चला गया जब हम सौन्दर्य में मस्त रहते थे। [illegible] उन सब [illegible] में थे जिन्होंने तूर पर ईश्वर का साक्षात्कार करना चाहा था। २. व्याकरण। ३. जो स्वयं सुन्दर है उसे सजाने सँवारने की आवश्यकता नहीं। ४. हे जादूगर गायक क्यों गाना फिर सुना [illegible] जानो। ५. १८ वीं।

३

पीरो मुर्शद,

हुजूर का तौकीए[1] ख़ास और आपका नवाजिशनामा ये दोनो हर्ज़े[2] वाजू एक दिन और एक वक्त पहुँचे। तौकी का जवाव दो चार दिन मे लिखूँगा। ना साजी ए[3] मिज़ाजे मुबारक मूजिबे तशबीश व मलाल हुई। अगर चे हजरत की तहरीर से मालूम हुआ के मरज़ वाकी नही मगर जोफ बाकी है, लेकिन तस्कीने[4] ख़ातिर मुनहसिर इसमे है के आप बाद इस तहरीर के मुलाहिजा फ़रमाने के अपने मिजाज का हाल फिर लिखे। '३७' की हुण्डवी पहुँची। इसका भी हाल साबिक की हुण्डवी का सा है, याने साहूकार कहता है के अभी हमको कालपी के साहूकार की इजाज़त नही आई जो हम रुपया दे। अगर सरकार के कार-परदाज[5] वहाँ के साहूकार से कह कर इजाजत लिखवा भेजे तो मुनासिव है। 'सहबाई' के तजकरे की एक जिल्द मेरी मिल्क[6] मे से मेरे पास थी, वो मै अपनी तरफ से वसवीले अरमुगाँ[7] आपको भेजता हूँ; नज्र[8] कुवूल हो। अव मै हजरत से बाते कर चुका। खत को सरनामा कर कर कहार को देता हूँ के डाक मे दे आवे। वारह पर दो वजे किताव का पार्सल वतरीके वैरग रवाना करूँगा। पेशगाहे[9] विजारत मे मेरी वन्दगी पहुँचे। अर्जदाश्त वाद उसके पहुँचेगी। जनाव मीर साहव किब्ला मीर अमजद अली साहव को सलाम, नियाज और जनाव मुशी नादिर हुसेन खाँ साहव को सलाम।

४

पीरो मुर्शद,

अगर मैने 'उम्मीदकाह' वकाफे अरवी अजराहे शिकवा लिखा तो क्या गुनाह? न खत का जवाव न कसीदे की रसीद।

---

१ विशेप आदेश। २ तावीज। ३ आपके शुभ स्वास्थ्य की अस्वस्थता। ४ सन्तोष। ५ कर्मचारी। ६ सम्पत्ति। ७ भेट। ८ भेंट। ९. आपकी सेवा मे।

दरी[1] ख़स्तगी पोजिश अज़ मन मजूये
बुवद बन्द ए ख़स्ता गुस्ताख़ गूए

और ये जो आप फरमाते है के इन सवाने के सबब से मै कसीदे की तहसीन[2] नहीं लिख सका, बन्दा बे अदब नही, तहसीने तलब नहीं, ऐसे मजमे में मशहूर[3] हूँ के सिवाय अहतरामद्दौला के कोई सुख़न्दाँ नही। मैं जो अपना कलाम आपके पास भेजता हूँ गोया आप अपने पर अहसान करता हूँ।

बाये[4] बरजाने सुख़ने गर बसुख़न्दाँ न रसद

अफ़सोस के मेरा हाल और लैलो नहार[5] आपकी नजर में नही, वरना आप क्या जानें के इस बुझे हुए दिल और मरे हुए दिल पर क्या कर रहा हूँ। नवाब साहब, अब न दिल में वो ताकत न कलम मे वो जोर गुहर गुस्तरी का। एक मलेका[6] बाकी है, बेतास्सुल और बेफिक्र जो खयाल में आ जावे वो लिख लूँ, वरना फिक्र की मऊनत[7] का मुतहमिल[8] नहीं हो सकता। बकौल मिर्ज़ा अब्दुल कादर 'बेदिल'—

जेहदहा[9] दर सुरे नवानायीस्त
जोफ़ यकसर फ़राग मी ख़ाहद

मुहर का हाल मालूम हुआ। पहले आप लिख भेजिए के क्या [illegible]? मेहदी [illegible], मेहदी हुसेनखाँ बहादुर लिख रहा हूँ। सिर्फ़ [illegible] लिख रहा हूँ वरना [illegible] ने [illegible] दिया है। याद पड़ता है के नगीना वहाँ से भेजने को आपने लिखा है। सो [illegible] में [illegible] मालूम हो [illegible] नगीना

---

१. इस अकिञ्चनता में मुझ से [illegible] की आशा मत कर। जो मनुष्य [illegible] हो जाता है उससे [illegible] नहीं [illegible]। २. प्रशंसा। ३. जो लोग [illegible] [illegible]। ४. [illegible]। ५. [illegible]। ६. [illegible]। ७. [illegible]। ८. [illegible]। ९. [illegible]।

भेजिएगा या यहाँ खरीदा जाएगा और नक्शे नगी क्या होगा ताके शुमार[1] हुरूफ का मुझको मालूम रहे। अब जब आप मुझको लिखेंगे तब मैं इसका जवाब लिखूंगा। हाफिज साहब का पहुंचना तकरीबन मालूम हुआ। याने उनकी तरफसे आपने मुझको सलाम लिखा है। सो मैं भी उनकी खिदमत में बन्दगी और जनाब मुन्शी नादिर हुसेन खाँ साहब की जनाब मे सलाम अर्ज करता हू।

ज्यादा हद्दे अदब।

५

(२९ जून १८५६)

पीरो मुर्शद,

ये खत लिखना नही है वल्के वाते करनी है। और यही सवव है के मै अलकाव व आदाव नही लिखता। खुलासा अर्ज ये है के आज शहर मे वदरुद्दीन अलीखाँ का नजीर नही, पस मुहर कौन खोद सकेगा ? लाचार मैंने आपका नवाजिशनामा जो मेरे नाम था, वो उनके पास भेज दिया। उन्होंने रुक्का मेरे नाम आज भेजा, सो वो रुक्का हजरत की खिदमत मे भेजता हूँ। मै नही समझता के किस्मे दूअम पुरवराज की क्या है। आप इसको समझ ले और नगीना व अहतियात हर साल फरमावे। रुपये के भेजने की अभी जरूरत नही है। जव मै अर्ज करूँ तव भेजिएगा। ताज्जुव है के जनाव मीर अमजद अली साहव 'कलक' का इस खत में सलाम न था। मुतवक्के हूँ के छापे के कसीदे उनको सुनाये जावे और मेरी वन्दगी कही जाय। जनाव मुंशी नादर हुसेनखाँ साहव को मेरा सलाम व सद हजार इश्तियाक पहुँचे।

मरकूमा यकशवा, २९ जून सन् १८५६ ई०।

अज्ञ—ग़ालिब

---

१. अक्षरो की गिनती।

६

(१८५६ ई०)

क़िब्ल ए हाजात,

कसीदा बुवारा पहुँचा। चूँके पेशानी पर दस्तखत की जगह न थी नाचार उसको एक और दो वर्क पर लिखवाया और हुजूर मे गुजराना और तमन्ना ए[1] देरीना हासिल की याने दस्तखते खास मुश्तमिले इजहारे खुशनूदी ए तर्ज अकदस हो गये। अहतरामद्दौला बहादुर मेरे हम जबान और आपके सनासां[2] रहे, गोया इस अम्रे खास में वो शरीके गालिब है, हम बतरीके[3] कसरए इजाफी और हम बतरीके कसरए[4] तौसीफी। परवर दिगार इस बुजुर्गवार को सलामत रखे, के कद्रेदाने कमाल बरके हक़ तो यो है के सैरे[5] महज है।

'गयासुल्लुगात' एक नाम मवक्कर[6] व मौजिज, जैसे अलफना नामगा मर्द आदमी। आप जानते है के ये कौन है? एक मुअल्लिमे फरोमाया[7] रामपुर का रहनेवाला फारसी मे ना आशनाए महज और सर्फो नहव मे नातमाम 'इन्शाए खलीफा' व 'मुन्शियाते माधोराम' का पढानेवाला, चुनाचे दीबाचे में अपना माखज[8] भी उसने खलीफा शाह मुहम्मद व माधोराम व 'कतील' व 'वाकिफ' के कलाम को लिखा है। ये लोग राहे सुखन के गोल [illegible] हैं, आदमी के [illegible] करने वाले। वे फारसी को क्या जानें? हाँ, [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] थे।

---

१. चिरकालीन अभिलाषा। २. अनुसार। ३. गद्य का सजानेवाला [illegible]। ४. [illegible] [illegible] का गुजरा [illegible]। ५ [illegible] [illegible]। ६. प्रतिष्ठित और सम्मानित। ७. कमीना। ८. उद्धरण। ९. [illegible], [illegible] [illegible]।

नवाब अनवरद्दौला सादुद्दीनख़ाँ बहादुर 'शफ़क' के नाम

हरजा मशताबो पै जादा शानसाँ बरदार
अँ के दर राहे सखुन चूँ तो हज़ार आमदो रफ्त

मेरा दिल जानता है के आपके देखने का किस कदर आरजूमन्द हूँ। मेरा एक भाई मामूँ का बेटा के वो नवाब जुल्फेकार बहादुर की हकीकी ख़ाला का बेटा होता था और मसनद नशीने हाल का चचा था और वो मेरा हमशीर भी था याने मैंने अपनी मुमानी का और उसने अपनी फूफी का दूध पिया था, वो बायस हुआ था मेरे बाँदा बुन्देलखड आने का। मैंने सब सामाने सफर कर लिया डाक में। रुपया डाक का दे दिया। क़स्द ये था के फ़तहपूर तक डाक मे जाऊँगा, वहाँ से नवाब अली बहादुर के यहाँ की सवारी मे बाँदे जाकर हफ़्ता भर रह कर कालपी होता हुआ आपके क़दम देखता हुआ बसवीले डाक दिल्ली चला जाऊँगा। नागाह हुजूरे वाला बीमार हो गये और मर्ज ने तूल खींचा वो इरादा कुव्वत से फेल[1] मे न आया और फिर मिर्जा औरगख़ाँ मेरा भाई मर गया।

अँ बसा[2] आरजू के ख़ाक शुदा

वल्लाह, वो सफर अगर चे भाई की इस्तेदुआ से था मगर मैं नतीजा उस शक्ल का आपके दीदार को समझा हुआ था। हरजा[3] सराई का जुर्म माफ कीजिएगा। मेरा जी आपके साथ बातें करने को चाहा, इस वास्ते जो दिल मे था वो उसी इबारत से जबान पर लाया।

७

(१० नवंबर १८५६ ई०)

क़िब्ला व काबा,

वो इनायतनामा जिसमे हज़रत ने मिज़ाज की शिकायत लिखी थी पढ कर बेचैन हो गया हूँ, अर्ज़ कर चुका हूँ के मिजाज का हाल मुफस्सल लिखिये।

१. आचरण। २. कितनी उमगे थी जो पूरी नही हुई। ३. अशिष्ट बकवास।

चूँके आपने कुछ नहीं लिखा तो और ज्यादा मुशव्विस[1] हूँ। नुस्खए[2] रफे तश-वीस याने ग्रफक्कननामा जल्द भेजिय। जनाब मुंशी नादिर हुसेखाँ साहब का कुछ हाल मालूम नहीं। हजरत मीर अमजद अली साहब का कुछ हाल मालूम नहीं। मुतवक्के हूँ के इन दोनों साहबों की खिदमत मे मेरा सलाम पहुँचे और आप इनकी खैरो आफियत लिखे। कबूतरों का नुस्खा, जैसा के मेरे पास आया, ब[3] जिन्से ही इरसाल करता हूँ। आपको मालूम होगा के मीरन साहब ने इन्तकाल किया। ये छोटे भाई थे, मुजतहदुल अस्र लखनऊ के; नाम उनका सैयद हुसेन और खिताब सैयदुल[4] उलमा, नक्शेनगी मीर हुसेन इब्ने अली। मैंने उनकी रेहलत[5] की एक तारीख पाई। उसमे पाँच बढते थे, याने १२७८ होते थे। तखरजा[6] नई रविश का मेरे खयाल मे आया। मैं तो जानता हूँ के अच्छा है। देखूँ आप पसन्द फरमाते है या नहीं। कता।

हुसेन[7] इब्ने अली आबरू ए इल्मो अमल
के सैयदुल उलमा नक्शे खातमश बूदे
न मुर्दोमुर्दे अगर जिन्दा पज गाते दिगर
गमे हुसेन अली मारो मातमश बूदः

[illegible] अदब।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

---

१. [illegible] २. [illegible] ३. [illegible] ४. [illegible]

[illegible]

८

(अक्टूबर १८५८)

हज़रत पीरो मुर्शद,

अगर आज मेरे सब दोस्त व अजीज यहाँ फराहम होते, और हम और वो बाहम होते तो मैं कहता के आओ और रस्मे तहनियत[1] बजा लाओ। ख़ुदा ने फिर वो दिन दिखाया के डाक का हरकारा अनवरद्दौला का खत लाया।

ई[2] के मी बीनम व बेदारीस्त या रब या बखाव

मुँह पीटता हूँ और सर पटकता हूँ। जो कुछ लिखा चाहता हूँ नही लिख सकता हूँ। इलाही हयाते[3] जावदानी नही माँगता। पहले अनवरद्दौला से मिल कर सरगुजिश्त बयान करूँ फिर उसके बाद मरूँ। रुपये का नुक्सान अगरचे जाँकाह[4] व जाँगुजा है, पर बमूजिबें "तलफुलमाल[5] खलफुल उम्र" मुफजा है। जो रुपया हात से निकल गया है, उसको उम्र की कीमत जानिये और सिबाते जात व बकाए[6] अिर्जोनामूस को गनीम न जानिये। अल्लाह् ताला हजरत वजीरे आजम को सलामत रखे और इस खानदान के नामो निशान व इज्जो शान को बरकरार ता कयामत रखे। मैने ११ वी मई सन् १८५७ ई० से ३१ वी जुलाई १८५८ तक की रूदाद नस्र मे व इबारते फारसी न आमेख्ता[7] व अरबी और वो १५ सरत के मिस्तर[8] से चार जुज्व की किताब आगरे को मतबए मुफीदुल खलायक़ मे छपने को गई है। 'दस्तम्बू' उसका नाम रखा है और उसमे सिर्फ अपनी सरगुजिश्त और अपने मशाहिदे के बयान से काम रखा

---

१ आनन्द-बधाई। २. जो कुछ देख रहा हूँ वह जागते हुए देख रहा हूँ अथवा स्वप्न मे। ३. प्रलयपर्यंत जीवन। ४. पैसे का खर्च उम्र को बढाता है। ५. व्यक्तित्व की स्थिरता। २. प्रतिष्ठा का अस्तित्व। ७. अरबी शब्द रहित। ८ रेखांकित पत्र।

हैं। वाद छप जाने के वो नुस्खा हज़रत की नज़र से गुज़रानूँगा और उसको हमसुखनी और हम जबानी जानूँगा। जनाब मीर अमजद अली साहब का जो आपके खत मे जिक्र नही आया है तो इससे खैरखाहे[1] अहबाब का दिल घबराया है; अब के जो खत लिखिये तो उनकी खैरो आफियत ब[2] हर नमत लिखिये। उनको बन्दगी और जनाब मुंशी नादिर हुसेन को सलाम पहुँचे।

९

(५ नवंबर १८५८)

पीरो मुर्शद,

एक नवाज़िशनामा आया और 'दस्तम्बू' के पहुँचने का मुजदा[3] पाया। उसका जवाब यही के कार परदाजाने डाक का अहसान मानूँ और अपनी मेहनत का रायगाँ[4] न जाना यकीन जानूँ। चद रोज के वाद एक इनायतनामा और पहुँचा; गोया सागरे[5] इल्तफात का दूसरा दौर पहुँचा। अब जरूर आ पड़ा के कुछ हाल इस सितारे दुमदार का लिखूँ, चुनाचे जिस वक्त से वो ख़त पढा है, सोच रहा हूँ के क्या लिखूँ? चूँ के व सवव फुकदाने[6] असवाव याने अदम रसदो किताव कुछ नही कहा जाता है, नाचार मिर्जा साहव का मिसरा जवान पर आ जाता है।

अजी[7] सितार ए दुम्वालादार मी तरसम

ये मतला है और पहला ये मिसरा है—

ज़े[8] खाले गो शए अब्रू ए यार मी तरसम

१. शुभेच्छा सम्वन्धी। २. स्पष्ट रूप से। ३. शुभ समाचार। ४. व्यर्थ। ५. प्रेम का प्याला। ६. सामग्री की कमी। ७. इस पुच्छल तारे से मैं घवराता हूँ। ८. प्रेमिका की भृकुटि के कोने में जो तिल है उससे मैं घवराता हूँ।

नवाब अनवरुद्दौला सादुद्दीनखाँ बहादुर 'शफक' के नाम

क्या आप मुझको बे हुनरी और बे ख़बरी में साहबे कमाल नही जानते। और इस इबारते फारसी को मेरा मिसदाके[1] हाल नही जानते--

पेशे[2] मुल्ला तबीब व पेशे तबीब मुल्ला
पेशे हेच हर दो वो पेशे हर दो हेच

आरायशे मजामीने शेर के वास्ते कुछ तसव्वुफ, कुछ नजूम लगा रखा है; वरना सिवाय मौजूनिये तबा के यहां और क्या रखा है ? बहरहाल इल्मे नजूम के क़ायदे के मुआफिक जब जमाने के मिजाज मे फसाद की सूरतें पैदा होती हैं तब सतहे फलक पर ये शक्ले दिखाई देती है, जिस बुर्ज मे ये नजर आये उसका दर्जा व दकीका देखते है, फिर ज् जनाबा का ममर और तरीका देखते हैं। हजार तरह के जाल डालते है। तब एक हुक्म निकालते हैं। शाहजहाँबाद मे बादे गुरूबे आफताब उफक् गरबी[3] ए शहर पर नजर आता था और चूँके उन दिनो मे आफताब अव्वल मीजान[4] मे था तो ये समझा जाता था के ये सूरते अकरब[5] मे है, दर्जा व दकीका की हकीकत ना मालूम रही। बहुत दिन शहर मे इस सितारे की धूम रही। अब दस-बारह दिन से नजर नही आता। वहाँ शायद अब नजर आया है जो आपसे उसका हाल पूछा है। बस, मै इतना जानता हूँ के ये सूरते कहरे[6] इलाही की है, और दलीले मुल्क की तबाही की है। किरातुल[7] नहसैन फिर कुसूफ[8] फिर खुसूफ,[9] फिर ये सूरत पुर कुदूरत,

---

१. स्थिति के अनुकूल। २. जहाँ मुल्ला होता है वहाँ अपने को चिकित्सक बताता हूँ, जहाँ चिकित्सक होता है वहाँ अपने आप को मुल्ला कहता हूँ। जहाँ ये दोनो नही होते वहाँ मै ही मुल्ला बनता हूँ और मै ही चिकित्सक और जहाँ ये दोनो रहत है मै मौन रहता हूँ। ३. नगर के पश्चिम मे। ४. तुला राशि। ५. वृश्चिक राशि। ६. ईश्वर का प्रकोप। ७. अनिष्ट योग। ८. सूर्य ग्रहण। ९. चन्द्र ग्रहण।

अयाजन[1] बिल्लाह, वपनाह बखुदा। यहाँ पहली[2] नववर को बुध के दिन हस-बुल हुक्म हुक्काम कूचे व बाजार मे रोशनी हुई और सब को कम्पनी का टूट जाना और कलम रू हिन्द का बादशाही अमल मे आना सुनाया गया। नवाब गवर्नर जनरल लार्ड केनिग बहादुर को मलिके मौज्जमे इगलिस्तान ने 'फर्ज़न्दे अर्जु मन्द'[3] खिताब दिया और अपनी तरफ से 'नायब' और हिन्दुस्तान का हाकिम किया। मै तो कसीदा इस तहनियत मे पहले ही लिख चुका हूँ, चुनाचे बशुमूल 'दस्तम्बू' नज्रे अनवर से गुजरा होगा—

तानिहाल दोस्ती के बरदहद
हालिया रफ्ती व तुख्मे काश्तेम
अल्लाह्, अल्लाह्, अल्लाह्।

जुमा पजुम नवबर सन १८५८ ई०।

[4]चरा गोयम के नामा अज़ कीस्त खुद मी दानन्द के नामनिगार कीस्त।

१०

(९ मार्च १८५९)

पीरो मुर्शद,

क्या हुक्म होता है? अहमक बनकर चुप हो रहूँ या जो अजरू ए कश्फ यकीनी मुझ पर हाली हुआ है वो कहूँ। अव्वल रज्जब मे नवाजिशनामा आपने कब भेजा। आखिर मेरे पास पहुँच ही गया। ये जो अब भेजा अगर रवाना हुआ होता तो वो भी पहुँच गया होता। बहरहाल मुहब्बत की गरमी ए हगामा है। ये जुमला महज आरायशे उनवाने नामा[5] है—

---

१. ईश्वर की शरण। २. १ नवबर १८५८ ई० को वुद्धवार न होकर सोमवार था—मौलवी महेश प्रसाद। ३. सुपुत्र। ४. मै कैसे कहूँ कि पत्र किसका है। आप इसके लेखक को स्वय जानते है। ५ सरनामा।

नवाब अनवरुद्दौला सादुद्दीनखाँ बहादुर 'शफक' के नाम

उमरत[1] दराज के ईं हम गनीमत अस्त

पिन्सनदारो का इजरा ए पिन्सन और अहले शहर की आबादी ए मस्कन यहाँ उस सूरत पर नही है जैसी और कही है। और जगह सियासत[2] है, के मिन्जुमल ए जरूरियाते रियासत है, यहाँ कहरे इलाही है के मशा ए तबाही है। खास मेरे पिन्सन के बाब मे गवर्मेण्ट से रिपोट तलब हुई है। इब्नाए[3] रोजगार हैरान है के ये भी एक बात अजब हुई है। रिपोट की रवानगी की देर है। चन्द रोज और भी किस्मत का फेर है। दिल्ली इलाकए लेफ्टेट गवर्नर से इनकता[4] पा गई और इहात ए पजाब के तहत हुकूमत आ गई। रिपोट हमारे यहा से लाहौर से कलकत्ते जाएगी। और इसी तरह फेर खाकर नवीदे हुक्म मजूरी आएगी।

फेले लाजिमी[5] को जब मुताद्दी[6] किया चाहिए, तो पहले मजारे मे से मसदर बना लेना चाहिए। 'कुश्तन' मसदर असली 'गर्दद' मजारअ 'गर्दीदन' मजदर, मजारइ, 'गर्दान्दन' व 'गर्दानीदन' मसदरे मुताद्दी। माफिक कायदे के कर्दन का मुताद्दी 'कुनान्दन' व कनानीदन' है, न के 'करान्दन'। 'करान्दन' तो 'कराने' की फारसी है। जैसे 'चलने' की फारसी 'चलीदन' है और ये शूखी ए तबा व जराफत है। न इसमे सेहत है और न लताफत है। 'करान्दन' गलत और 'कनानीदन' सही। 'गुश्तन' को 'गुश्तान्दन' और 'रुस्तन' को 'रस्तान्दन' न कहेगे बल्के 'गरदीदन' व 'रूईदन' बनाकर 'गर्दान्दन व 'रुयान्दन' लिखेगे। बलगा के कलाम मे 'करदन' का मुताद्दी शायद कही न आया हो। अगर आया होगा तो 'कनानीदन' आया होगा। 'करान्दन' टकसाल

---

१ आप दीर्घायु हो, यह भी ग़नीमत है। २. प्रवन्ध, दण्ड, राजनीति। ३ सभी लोग। ४ पार्थक्य। ५ अकर्मक क्रिया। ६ सकर्मक क्रिया।

बाहर है। तजकीरो[1] तानीस का दायरा बहुत वसी[2] है, 'दही', बाज कहते हैं—'दही अच्छा', बाज कहते हैं 'दही अच्छी', 'कलम'—कोई कहता है 'कलम' टूट गया—कोई 'कलम टूट गई'। फकीर दही को मुजक्कर बोलता है, और 'कलम' को भी मुजक्कर जानता है। अला हाजल[3] कयास, 'शिगरफ' भी मुजबजब[4] है। कोई मुजक्कर और कोई मुअन्नस कहता है। मैं तो शिगरफ को मुअन्नस कहूँगा। खुलासा ये के इस हेच[5] मदा के नजदीक 'करदन' का मुताद्दी 'कनानीदन' है और 'शिगरफ' मुअन्नस।

खुदावन्द, आइनेबन्दा परवरी भूल न जाओ। गाह गाह नामा व पयाम भेजते रहो। क्या मैं ये नही लिख सकता के मैंने इस अर्से मे दो खत भेजे और आपने एक का जवाब नही लिखा। हाँ, ये अर्ज करता हूँ के आज सुबह को आपका खत आया। इधर पढा, उधर जवाब लिखा। सच यो है के डाक मे अक्सर खुतूत तलफ होते हैं। "बैरंग" पर जाया होने का गुमान कम है। इस दस्तूर का बादी[6] और बानी मैं होता हूँ, ये खत बैरंग भेजता हूँ। आप भी अब जब कभी वफर्जे[7] मुहाल खत भेजिये तो बैरंग भेजिये। ज्यादा हद्दे अदब।

निगाश्तए चार शबा सोअम

शाहबान १२७५ हि० व नहुम मार्च

साले हाल

अर्जदाश्त—ग़ालिब

---

१. पुल्लिग और स्त्रीलिग। २ विस्तृत। ३. सब इसी से कल्पना करते है। ४. सन्दिग्ध। ५ अकिंचन। ६. आरम्भ कर्ता। ७. यदाकदा।

११

(१८६० ई०)

पीरो मुर्शद,

१२ बजे थे। मै नगा अपने पलग पर लेटा हुआ हुक्का पी रहा था के आदमी ने आकर खत दिया। मैंने खोला, पढा। भले को, अगरखा या कुर्ता गले मे अगर होता तो मै गरीबाँ फाड़ डालता। हजरत का क्या जाता? मेरा नुक़्सान होता। सिरे से सुनिये—आपका कसीदा वादे इस्लाह भेजा। उसकी रसीद आई। कई कटे हुए शेर उल्टे आये, उनकी कवाहत पूछी गई; कबाहत बताई गई, अल्फाजे कबीह की जगह ने ऐब अल्फाज लिख दिये गये। लो साहब, ये अशार भी कसीदे मे लिख लो। इस निगारिश का जवाव आज तक नही आया। शाह असरारुल हक के नाम का कागज उनको दिया। जवाब मे जो कुछ उन्होने जबानी फरमाया आपको लिखा गया, हजरत की तरफ से इस तहरीर का भी जवाब न मिला।

पुर हूँ मै शिकवे से यो राग से जैसे वाजा
इक जरा छेड़िये फिर देखिये क्या होता है

सोचता हूँ के दोनो खत वैरग गये थे। तलफ होना किसी तरह मुतसव्विर[1] नही। खैर, अब वहुत दिन के वाद शिकवा[2] क्या लिखा जाये, वासी कढी मे उवाल क्यो आये? वन्दगी वेचारगी।

पॉच लश्कर का हमला पैदर पै इस शहर पर हुआ। पहला वागियो का लश्कर, उसमे अहले शहर का ऐतवार लुटा। दूसरा लश्कर खाकियो का, उसमे जानो माल व नामूस व मकानो मकी व आसमानो जमी व आसारे[3] हस्ती

---

१ अनुमानित। २ शिकायत। ३ जीवनोपयोगी सामग्री।

सरासर लुट गये। तीसरा लश्कर काल का उसमे हजारहा आदमी भूके मरे चौथा लश्कर हैजे का, उसमे बहुत से पेट भरे मरे। पाँचवाँ लश्कर तप उसमे तावो[1] ताकत उमूमन लुट गई। मरे आदमी कम लेकिन जिसको आई उसने फिर आजा मे ताकत न पाई। अब तक इस लश्कर ने शहर कूच न किया। मेरे घर मे दो आदमी तप में मुब्तिला है—एक बडा लड़ और एक मेरा दारोगा। खुदा इन दोनो को जल्द सेहत दे। बरसात य भी अच्छी हुई है, लेकिन न ऐसी के जैसी कालपी और बनारस मे। जमीद खुश, खत्तियाँ तैयार है। खरीफ का बेडा पार है। रबी के वास्ते पौह–म मे दरकार है, किताब का पार्सल परसो इरसाल किया जायगा।

अहा हा हा! जनाब हाफिज मुहम्मद बख्श साहब मेरी बन्दगी।

मुगल अली खाँ गदर से कुछ दिन पहले मुस्तस्की[2] होकर मर गये है, है! क्यो कर लिखूँ! हकीम रजी उद्दीन खाँ को कत्ले आम मे एक खा ने गोली मार दी और अहमद हुसेन खाँ उनके छोटे भाई उसी दिन मारे गए ताले यार खाँ के दोनो बेटे टाँक से रुखसत लेकर आये थे, गदर के सबब जा सके, यही रहे। बादे फतहे देहली दोनो बेगुनाहो को फाँसी मिली। ता यारखाँ टाँक मे है, जिन्दा है पर यकीन है के मुर्दे से बदतर होगे। मीर छोट ने भी फाँसी पाई। हाल साहबजादा मियाँ निजामुद्दीन का ये है के जहाँ स अकाबिर[3] शहर के भागे थे वहाँ वो भी भाग गये थे। बरोदे मे रहे, औरग बाद मे रहे, हैदराबाद मे रहे। साले गुजिश्ता[4] याने जाडो मे यहाँ आये सरकार से उनकी सफाई हो गई, लेकिन सिर्फ जाँ[5] बख्शी। रौशनद्दौला मदरसा अकबे[6] कोतवाली चबूतरा हे वो और खाजा कासिम की हवेल जिसमे मुगल अलीखाँ मरहूम रहते थे वो और खाजा साहब की हवेली,

---

१. शक्ति। २. प्यास की बीमारी। ३ बडे लोग। ४. गतवर्ष ५. प्राण दान। ६. निकट।

अमलाके खास हजरत काले साहब की और काले साहब के बाद मियाँ निजामुद्दीन की करार पाकर जब्त हुई और नीलाम होकर रुपया सरकार मे दाखिल हो गया। हाँ, कासिम जान की हवेली जिसके कागज मियाँ निजामुद्दीन की वालिदा के नाम के है वो उनको याने निजामुद्दीन की वालिदा को मिल गई है। फिलहाल मियाँ निजामुद्दीन पाक पटन गए है। शायद भावलपूर भी जाएँगे।

१२

(१९ जुलाई १८६०)

यौमुल[1] खमीस, २९ जिलहज्जा (१२७६ हि०)।

पीरो मुर्शद माफ कीजिएगा
मैने जमना का कुछ न लिक्खा हाल

यहाँ कभी किसी ने इस दरिया की कोई हिकायत ऐसी नही की के जिससे इस्तेबाद[2] और इस्ते[3] अजाब पाया जाए। पुरसिश के बाद भी कोई नई बात नही सुनी। सुनिए तो सही, मौसम क्या है—गरमी, जाडा, बरसात, तीन फसले इकट्ठी तगर्ग बारी[4] अलावा। अगर एक बहरे खाँ की हकीकत मुतगय्यर हो जाए तो महल इस्तेअजाब क्यो हो? और ये बात के दिल्ली में तगय्युर न हो और पूरब मे हो, इसकी वजह ये है के यहाँ जमना ब इन्फराद[5] बह रही है और वहाँ कही 'केन' कही और नदी, कही गगा बाहम मिल गई है, नजमउल[6] बहार है।

---

१ गुरुवार। २, ३ आश्चर्य। ४. ओलो की वर्षा। ५. एकाकी। ६ नदियो का सगम।

हजरत ने खूब वकालत की। मौला कलक से तकसीर मेरो माफ न करवाई। कह दो के गुनाह माफ हो गया। मै वगैर सर्टिफिकेट के कब मानूँगा ?

ये दिन मुझ पर गुजरते है। गर्मी मे मेरा हाल वेऐनेही वो होता है, जैसा जवान से पानी पीने वाले जानवरो का। खुसूसन इस तमवुज मे के गमो[1] हम का हुजूम है।

अतिशे दोजख मे ये गर्मी कहाँ
सोज़े गम हाय निहानी और है

मर्ग का तालिव
—गालिव

१३

(जुलाई १८६०)

पीरो मुर्शद,

शवे रफ़्ता[5] को मेह्न खूव बरसा। हवा मे फर्त्ते वुरूदत से गजन्द पैदा हो गया। अव सुवह का वक्त है। हवा ठडी वेगज़न्द चल रही है। अब्रे तुनक मुहीत है। आफताव निकला है, पर नजर नही आता है। मै आलमे तसव्वुर में आपको मसनेद इज्जो जाह पर जाँनशीन और मुन्शी नादिर हुसेनखाँ साहव को आपका जलीसे मुशाहिदा करके आपकी जनाव में कोर्निश वजा लाता है और मुशी साहव को सलाम करता हूँ। काफिरे नेमत ही हो जाऊँ अगर ये मजारिज वजा न लाऊँ। हजरत और मुशी साहव ने मेरी खातिर से क्या

१. दुख-चिन्ता। २ ठड की अधिकता। ३ कोमल मेघ खड। ४. प्रतिष्ठा। ५. गत रात्रि।

जहमत उठाई है। भाई साहव बहुत खुशनूद[1] हुए। मिन्नत[2] पिजीरी मे मेरे शरीके गालिव है। फिलहाल वतवस्सुत[3] मेरे सलामे नियाज अर्ज़ करते है, अगलब है के नामा जुदागाना भी इरसाल करें। हज़रत आप गालिव की शरारतें देखते हैं। सब कुछ कहे जाता है और उस अस्ल का के जिस पर ये मरातिब मुतफर्रे हों, जिक्र नही करता, फकीर को ये तर्ज़ पसद न आई। मतलबे असली को मुकद्दर छोड़ जाना क्या शेवा है? यो लिखना था के आपका इनायत नामा और उसके साथ नसबनामा[4] खानदाने मजदो[5] अला का पार्सल पहुँचा। मैं ममनून[6] हुआ। नवाव ज़िया उद्दीनखाँ वहादुर बहुत ममनून व शाकिर[7] हुए। जनावे आली मैं तो 'गालिव' हरज़ा सराका मौत किद न रहा। आपने उसको मुसाहिव वना रखा है, इससे उसका दिमाग़ चल गया है।

किब्ला व कावा, क्या जनावे मौलाना 'कलक' में हज़रते 'शफ़क़' ने जो गालिव की शफाअत की थी, वो मकबूल न हुई? अब जनाव 'हाशमी' को अपना हम ज़वान और अपना मददगार वनाकर फिर कहते है आपकी वात इस वाव मे न मानूँगा, जब तक सैयद साहव का खुशनूदीनामा न भिजवाइएगा। इस सर्टिफिकेट के हुसूल मे रिश्वत देने को भी मौजूद हूँ! वस्सलाम।

१४

(जुलाई १८७०)

पीरो मुर्शद, कोनिश। मिज़ाजे अकदस? अलहम्दुलिल्लाह्। तू अच्छा है। हजरत हुआ करता हूँ।

---

१. प्रसन्न। २. अनुनय विनय। ३. द्वारा। ४. वंश परम्परा। ५ निरर्थक वकने वाला। ६ कृतज्ञ। ७. धन्य।

परसो आपका खत मय सर्टिफिकेट के पहुँचा। आपको मब्द[1] ए फैयाज से अशरूफुल[2] विकला खिताब मिला, मेहनतानए मुहब्बताना[3]।

एक लतीफा निशात[4] अँगेज सुनिए। डाक का हरकारा जो बल्लीमारो के मुहल्ले के खुतूत पहुँचाता है, इन दिनो मे एक बनिया पढा लिखा, हुरूफ[5] शनास कोई फलाँ नाथ, ढमकदास, है। मै बालाखाने पर रहता हूँ। हवेली मे आकर उसने दारोगा को खत दिया, और उसने खत देकर मुझ से कहा के डाक का हरकारा बन्दगी अर्ज करता है और कहता है के मुबारक हो, आपको जैसा के दिल्ली के बादशाह ने नवाबी खिताब दिया था, अब कालपी से खिताब कप्तानी का मिला। हैरान के ये क्या कहता है? सरनामे को गौर से देखा। कही कब्ल अज इस्म मखदूम नियाजे कैशाँ[6] लिखा था, उस कुर्रम साक[7] ने और अलफाज से कता नजर करके कैशाँ 'कप्तान' पढा।

भाई जियाउद्दीनखाँ साहब शिमले गये हुये है। शायद आखिरे माहे हाल याने जुलाई या अव्वल माहे आइन्दा, याने अगस्त मे यहाँ आ जाएँ। आपको नवीदे[8] तखफीफ तसदी देता हूँ, आप नवाब साहब से किताब क्यो माँगे और जहमत क्यो उठाएँ? जिस कदर के इल्म उनको इस खानदाने मुहब्बत निशान के हाल पर हासिल हो गया है, काफी है। मौलाना 'कलक' के नाम की अर्जी उनको पहुँचा दीजिएगा और जनाब नादिर हुसेन साहब को मेरा सलाम फरमा दीजिएगा।

---

१ ईश्वर की ओर से। २ श्रेष्ठ वकील। ३. प्रेम पूर्वक पारिश्रमिक। ४ आनन्द दायक। ५. साक्षर। ६ सब का दास। ७ एक गाली। ८ समय नष्ट होने का सुसमाचार।

१५

(२४ अगस्त १८७०)

ख़ुदावन्दे नेमत,

शर्फ अफ़ज़ा नामा पहुँचा। शाह इसरारुल हक के नाम का मकतूब[1] उनकी खेदमत मे भेज दिया गया। जनाब शाहसाहब सालिके[2] मज्जूब या मज्जूबे[3] सालिक है, अगर जवाब भिजवा देगे तो जनाब मे इरसाल किया जायगा। क़सीदे को बारहा देखा और गौर की। जिस तर्ज पर है उसमे गु जाइश इस्लाह की न पाई, याने लफ्ज की जगह लफ्जे मुरादिफ[4] बिलमाने लाना सिर्फ अपनी दस्तगाह[5] का इजहार है, वर्ना कोई लफ्ज बेमहल और बे मौका नही। कोई तरकीब फारसी टकसाल बाहर नही है, मगर हाँ तर्जे गुफ्तार का बदलना उसके वास्ते चाहिए दूसरा कसीदा, इस जमीन मे एक और लिखना और वो तकल्लुफे बारद है। बल्के शायद, हजरत को ये मजूर भी न हो। पस शर्मे कम खिदमती से दिलरीश[6] और फर्ते[7] खिजलत से सरे दरपेश[8] होकर क़सीदे को इस लिफाफे मे भेजता हूँ। खुदा करे मौरिदे[9] अिताब न हूँ।

हजरत, इन्हेदा[10] मे मसाकिन व मसाजिद का हाल क्या गुजारिश करूँ? बानी ए शहर को वो अहतमाम मकानात के बनाने मे न होगा जो अब वालियाने मुल्क को ढाने मे है। अल्लाह् अल्लाह्! किले मे अक्सर और शहर मे बाज बाज वो शाहजहानी इमारते ढाई गई है के कुदाल टूट-टूट गए

---

१ पत्र। २. चेतना युक्त मस्त। ३ मस्ती मे चेतना युक्त। ४ पर्यायवाची शब्द। ५ सामर्थ्य। ६. व्यथित हृदय। ७ लज्जा की अधिकता से। ८. मस्तक आगे झुकाकर। ९. क्रोध की उत्पत्ति। १० गिरना, भग्न होना।

है, बल्के किले मे तो इन आलात से काम न निकला, सुरगे खोदी गई और बारूद बिछाई गई और मकानाते सगी उडा दिए गए।

गल्ले की गिरानी, आफते आसमानी, अमराज़े दमवी[1] बला ए जानी, अनवावो[2] अकसाम के औराम[3] व बुसूर शाया[4]। चारा नासूद[5] मन्द और सई[6] जाया। मैं नही जानता के ११ मई सन १८५७ को पहर दिन चढे वो फौजे[7] बागी मेरठ से दिल्ली आई थी या जूनूद[8] कहरे इलाही का पै दर[9] पै नुजुल[10] हुआ था। बकद्र खुसूसियते[11] साबिक दिल्ली मुमताज है वर्ना सर ता[12] सर कमल रू हिन्द मे फितना व बला का दरवाजा बाज है। इन्ना लिल्लाहे व इन्ना इलहे राजऊन।

जनाब मीर अमजद अली साहब को वन्दगी। जनाब मु शी नादिर हुसेनखाँ साहब को सलाम।

मरकूमा सहरगाहे[13] आदीना, २४ माहे अगस्त सन १८६० ई०।

नजात का तालिब

—ग़ालिब

१६

(२ जून १८६१)

पीरो मुर्शद,

मैं आपका बन्दा फरमा पिजीर और आपका हुक्म बतीबे[14] खाति वजा लाने वाला हूँ, मगर समझ तो लूँ के क्या लिखूँ। वो मकतूब क...

---

१ रक्त सम्बन्धी रोग। २. विविध प्रकार के। ३ शोथ और फो... फुन्सी। ४ व्यापक। ५ उपाय निरर्थक। ६ प्रयत्न। ७ विद्रोही सेना ८ ईश्वरीय प्रकोप की सेना। ९ लगातार। १०. अवतरण। ११ पिछ... विशेषताओ के कारण। १२ हिन्दुस्तान में प्रत्येक उत्पात होता है १३. मध्याह्न। १४ प्रसन्नता पूर्वक।

भेजूँ ? आपके पास भेज दूँ या उन्ही मुन्शी साहब के पास भेज दूँ ? और रहीमुद्दीन व अमीरुद्दीन को मुन्शी, मीर, शेख, खाजा क्या करके लिखूँ ? दो हाकिम की राय की[1] शुमूल का कदी और उस जमाने मे दरिया[2] ए शोर को भेजा जाता है जिस जमाने मे सैकडो जजीरा नशी रिहाई पाकर अपने अपने घर आ गए। वई हमा, मुन्शी को क्या अख्तियार है के वो छोड दे। आया अमीरुद्दीन ने जिए महक्मे का वो मुन्शी है, उस महक्मे मे ये मुकदमा बतरीके मुराफा पेश किया है, जो मुन्शी को कार परदाजी व कार-साज़ी की गु जाइश हो ? ये आपकी तहरीर से मालूम नही हुआ के अपील हो गया है और मुक़दमा दायर है, बल्के ये भी तर्जे तहरीर से नही मालूम होता के अब सई मुनहसिर इसमे है के कैदी दरिया ए शोर को न जाए और यही महबूस[3] रहे, या ये मजूर है के जजीरें को भी न जाए और यहॉ की कैद से भी रिहाई पाये। खाहिश क्या है और कार परदाज से किस तरह की इआनत[4] चाहूँ। पहले तो ये सोचता हूँ के क्या लिखूँ, फिर जो कुछ लिखूँ उसको कहाँ भेजूँ ? तरीका तो ये है के मिया अमीरुद्दीन वो निगारिश[5] लेकर मुन्शी साहब के पास जाएँ और वजरिये उस खत के रूशनास[6] हो। मै क्या जानूँ के अमीरुद्दीन का मस्कन कहाँ है। मुन्शी साहब को खत भेज दूँ। उनके नजदीक अहमक बनूँ के किस अम्र मौहूमे मजहूल मे मुझको लिखा है। क्यो कर हो सकता है के वो उस खत को पढकर तफहहुस करे के अमीरुद्दीन कौन है और कहाँ है और क्या चाहता है। बहरहाल इसी खत के साथ एक और लिफाफा आपके नाम का रवाना करता हूँ, उसमे सिर्फ एक खत मौनूम[7] ए मुन्शी साहब है खुला हुआ, उसको पढ कर मियां अमीरुद्दीन के पास भेज दीजिएगा गोद लगा कर। और अगर ये मजूर न हो तो मेरी तरफ से

---

१. सम्मिलित सम्मति। २ काला पानी। ३. बन्दी। ४. कृपा। ५ प्रार्थना पत्र। ६ परिचित। ७ मुन्शी साह के नाम का।

मुन्शीसाहब के नाम के खत का मसविदा लिख कर मेरे पास भेजिए और लिख भेजिए के उस मसविदे को साफ करके कहाँ भेजूँ।

. सुबह यक शबा २ जून सन् १८६१।

१७

(२२ अक्टूबर १८६१ ई०)

किब्ला व काबा,

क्या लिखूँ! उमूरे नफसानी मे अजदाद का जमा होना मुहालाते[१] आदिया मे से है, क्यो कर हो सके के एक वक़्ते खास मे एक अम्रे खास मूजिबे इन्शेरा[२] का भी और बायसे[३] इन्कबास का भी हो। ये बात मैंने आपके इस खत मे पाई के उसको पढ कर खुश भी हुआ और गमगीन भी हुआ। सुभान अल्लाह। अक्सर उमूर मे तुमको अपना हमताला[४] और हमदर्द पाता हूँ—अज़ीजो की सितमकशी[५] और रिस्तेदारो से नाखुशी। मेरा हम कौम[६] तो सरासर कलम[७] रूए हिन्द में नही, समरकन्द के दो चार या दश्ते खनचाक सौ दो सौ होगे, मगर हाँ, अकुरबा[८] ए सबबी। पाँच बरस की उम्र से उनके दाम[९] मे असीर[१०] हूँ। ६१ बरस सितम उठाये है।

गर देहम शरह सितम हाय अज़ीज़ाँ गालिब
रस्मे उम्मीद हमाना ज़े जहाँ बरख़ीज़द

---

१. जिन बातो की आदत पड़ गई है, उनमें न होसकने वाली बात। २. हृदय की प्रफुल्लता। ३. दुख का कारण। ४. समान भाग्य वाला। ५. अत्याचार। ६. सजातीय। ७. भारत भर मे। ८. कारणिक बन्धु। ९ जाला। १०. बन्दी।

नवाब अनवरुद्दौला सादुद्दीनख़ाँ बहादुर 'शफ़क' के नाम

न तुम मेरी ख़बर ले सकते हो, न मैं तुमको मदद दे सकता हूँ। अल्लाह्, अल्लाह्, दरिया सारा तैर चुक हूँ।[1] साहल नजदीक है, दो हाथ लगाये और बेड़ा पार है।

उम्र भर देखा किया मरने की राह
मर गये पर देखिये दिखलाएँ क्या ?

ये भी तो पूछो के आप के खत का जवाब इतना जल्द क्यो लिखा ? यान कमो बेश महीना भर के बाद। क्या करूँ ? शाह असरारुल हक को आपका और हाफिज निजामुद्दीन साहब का खत भिजवा दिया। हफ़्ता भर के बाद जवाब माँगा, जवाब दिया के अब भेजता हूँ। दस-बारह दिन हुए के हजरत खुद तशरीफ लाए। जवाब आपके और हाफिज जी के खत का माँगा। कहा के कल भेज दूँगा। इस वाके को आज करीब दो हफ्ते के अर्सा हुआ। लाचार उनके जवाब से कते नजर करके आप को ये चन्द सतरे लिखी।

अज[2] खूने दिल नविश्तम् नजदीके दोस्त नामा
इन्नीह राय तो दहरन मिन हिजरेक ल कयामा

हाफिज जी साहब को मेरी बन्दगी कहियेगा और ये खत उनको पढवा दीजिएगा। जनाब मुंशी नादिर हुसेन खाँ साहब को मेरा सलाम पहुँचे। अगर चे आप मुब्तिलाए रजो अलम है मगर ये शरफ क्या कम है के अनवरुद्दौला के हमदर्द हो।[3] मौरिदे सितम हाय रोजगार होना शराफते जाती की दलील है सातै और बुरहान[4] है कातै।

हाँ हजरत बहुत दिन से जनाब मीर अमजद अली साहब का कुछ हाल मालूम नही। उसके तखल्लुस ने मुझको हैरान कर रखा है। याने कन्नक

---

१. तट, किनारा। २. मैने अपने हृदय के रक्त से अपने मित्र को पत्र लिखा है। मै देखता हूँ तुम्हारे वियोग मे संसार में प्रलय मच रही है। ३ संसार के अत्याचारो का लक्ष्य। ४ अकाट्य तर्क।

म मुब्तिला हूँ। आप उनका हाल लिखिये, ख़ाजा इस्माईलखाँ साहब कहाँ हैं और किस तरह हैं। सुनिये किब्ला, मैं तो आप से शाह अनवारुल हक के ख़त के जवाब का तालिब नही हूँ के आप उनके खत के हासिल होने के इन्तजार मे मुझको खत न लिख सके। मुतरस्सिद[1] हूँ के इस अपने खत का जवाब जल्द पाऊँ।

सुबह सेशम्बा २२ अक्तूबर १८६१।

जवाब का तालिब
—ग़ालिब

१८

(१९ जून १८६२)

नावके[2] बेदाद का हदफ पीरे[3] खरफ याने गालिब आदाब बजा लाता है।

नवाजिशनामे को देख कर जाना के मैंने 'कमरे चन्द' के शर पर खते[4] बुतलान खीच दिया। ये तो कोई गुमान न करेगा के मै 'कमर' को 'कमर-बन्द' नही जानता। माहाजा वहाँ पहले मिसरे मे अगर 'कमर' बमानी 'कमर' फर्ज़ कीजिये, तो भी शेर काट डालने के काबिल नही। कस्द करके बैठा था के इस शेर पर साद[5] करूँगा। खुदा जाने, कलम खत क्यो कर खीच गया? अब हवास बजा नहीं, हाफिजा रहा नही। अक्सर अल्फाज बेकस्द लिख जाता हूँ। ७० बरस की उम्र हुई, कहाँ तक खराफत[6] आये। उस शेर का गुनहगार और हजरत से शर्मसार हूँ। मेरी खता माफ कीजिये। ज्यादा हद्दे अदब।

पज शबा १९ जिलहज्जा, साले गफर।

---

१. प्रतीक्षा करता हूँ। २. अत्याचार के तीर का लक्ष्य। ३. बुद्धिहीन वृद्ध ४. गल्ती को अंकित करना। ५. स्वीकृति का चिह्न। ६. वुद्धि।

१९

(११ अगस्त १८६२)

सुबह दो शबा, १३ सफर व ११ माहे अगस्त सन् १८६२ ई०।

पीरो मुर्शद,

आदाब[1] ततिम्मए, गलत नामए 'काते बुरहान' को भेजे हुए तीन दिन और आप की खैरो आफियत मौलवी हाफिज आजीजुद्दीन की जबानी सुने हुए दो दिन हुए थे के कल आप का नवाजिशनामा पहुँचा। 'कातै बुरहान' के पहुँचने से इत्तिला पाई। मौतकिदाने 'बुरहान कातै' बराछियाँ और तलवारे पकड पकड कर उठ खडे हुए है। हनोज दो ऐतराज मुझ तक पहुँचे है। एक तो ये के 'काते बुरहान' गलत है याने तरकीब खिलाफे कायदा है, कलाम कता[2] किया जाता है, बुरहान कता नही हो सकती है। लो साहब, 'बुरहाने कातै' सही और 'कातै बुरहान' गलत, मगर 'बुरहान' 'काता' की फाइल हो सकती है, 'कता' का फेल आप नही कुबूल करती। 'काता बुरहान' मे जो 'बुरहान' का लफ्ज है, ये मुखफ्फिफे 'बुरहान कातै' है। फिर 'बुरहान काते' के रद को 'कता' समझकर 'काते' नाम रखा तो क्या गुनाह हुआ? दूसरा ईराद ये है के बुरहान बा[3] इग्लिसियान सितेज बेजा, इग्लिस का नून तलफ्फुज मे नही आता। मै पूछता हूँ के खुदा के वास्ते 'इग्लिस' और 'अँगरेज' का नून बऐलान कहाँ है? और अगर है भी तो जरूरते शेर के वास्ते। लुगाते अरबी मे सुकून[4] व हरकत को बदल डालते है। अगर 'इग्लिस' के नून को गुन्ना कर दिया तो क्या गुनाह किया?

---

१ 'कातै बुरहान' पुस्तक का शुद्धिपत्र। २. काटा जाता है। ३ अँगरेजों से लडना निरर्थक है। ४. विराम और गति।

ये कायदे[1] कुल्लियात दिल्ली का समझ लो, खालिक[2] की कुदरत मुक्तजी इसकी है के जो इस शहर पनाह के अन्दर पैदा हो, मर्द या औरत खफकान व मिराफ उसकी खिल्कत व फितरत मे हो। आठ दस बरस के बाद सॉवन के अखीर मेह खूब बरसा लेकिन न दरिया जारी हुए न तूफान आये। हाँ, शहर के बाहर एक दिन बिजली गिरी, दो एक आदमी कुछ जानवर तलफ हुए। मकान गिरे, दस बीस आदमी दब कर मरे, दो-तीन शख्स कोठे पर से गिर कर मरे। मिराँकियो[3] ने गुल मचाना शुरू किया। अपने अपने अजीजाने[4] बेसफर रफ्ता को लिखा। जाबजा अखबार नवीसो ने उनसे सुनकर दर्जे अखबार किया। लो, अब दस-बारह दिन से मेह का नाम नही, धूप आग से ज्यादातर तेज है। वही खफकाएनी साहब अब रोते फिरते है के खेतियाँ जली जाती है। अगर मेह न बरसेगा तो फिर काल पड़ेगा।

मकानात के गिरने का हाल ये है के चार-पाँच बरस जब्त रहे, यगमाई[5] लोग कडी, तख्ता, किवाड, चौखट, बाज मकानात की छत का मसाला सब ले गये। अब उन गुरबा[6] को वो मकान मिले तो उनमे मरम्मत का मकदूर कहाँ। फरमाइए, मकानात क्यो कर न गिरे ?

२०

पीरो मुर्शद,

आदाब। मिजाजे मुकद्दस। मेरा जो हाल आपने पूछा, इस पुरसिश का शुक्र बजा लाता हूँ और अर्ज करता हूँ के आपका बन्दए[7] बेदिरम खरीदा अच्छी तरह है। एक फस्द[8], बाईस मुजिज,[9] चार मुस्हिल, कहाँ तक आदमी को जईफ

---

१ स्वीकृत तथ्य। २ ईश्वर का सामर्थ्य। ३ अफवाह उडाने वाले। ४. बिना यात्रा की इच्छा से बाहर गये हुए। ५ चोर उचक्के। ६. गरीब (ब० ब०)। ७ बिना मूल्य का दास। ८. विकृत रक्त निकालने का एक तरीका। ९. दोषो को पकाने के लिए यूनानी चिकित्सा के अन्तर्गत एक उपाय।

न करे। बारे, आफताब अकरब[1] मे आ गया, पानी बरफाब हो गया है, काबुल वा काश्मीर का सेब बिकने लगा है। ये ज़ोफ, ज़ोफे क़िस्मत तो नही के ऐसे ऐसे उमूर उसको जायल न कर सके।

गजलो को परसो से पढ रहा हूँ और वज्द कर रहा हूँ। खुशामद मेरा शेवा नही है। जो इन गजलो की हकीकत मेरी नज़र मे है, वो मुझसे सुन लीजिये और मेरी दाद देने की दाद दीजिये । मौलाना 'कलक' ने मुतकदे-मीन,[2] याने अमीर खुसरो व सादी व जामी की रविश को सरहदे कमाल को पहुँचाया है, और मेरे किब्ला व काबा मौलाना शफक और मौलाना हागमी और मौलाना असकरी मुताकरीन[3] याने सायब व कलीम व कुदसी के अन्दाज को आसमान पर ले गये है। अगर तकल्लुफ और तमल्लुक से कहता हूँ तो ईमान नसीब न हो। ये जो आप अपने कलाम के हको इस्लाह के वास्ते मुझसे फरमाते है, ये आप मेरी आबरू बढाते है। कोई बात बेजा हो, कोई लफ़्ज नारवा हो, तो मै हुक्म बजा लाऊँ। ज्यादा हद्दे अदब ।

२१

(१५ फ़रवरी १८६४)

हरगिज[4] न मीरद आँ के दिलश जिन्दा शुद ब इश्क
सब्तस्त बर जरीदए आलम दवामे मा

खुदावन्दे नेमत,

आज दोशबा, ६ रमजान की और १५ फरवरी की है, इस वक्त, के, बारह पर तीन बजे है। उतूफत नामा पहुँचा। उधर पढा इधर जवाब

---

१ वृश्चिक राशि। २ प्राचीन। ३. आधुनिक, पश्चात् कालीन। ४ जिस व्यक्ति का हृदय प्रेम में जीवित है, वह कभी नहीं मरता। रहती दुनिया तक उसका नाम ससार मे रहता है।

लिखा। डाक का वक़्त न रहा। खत को मानून[1] कर रखा हूँ। कल शबा १६ फरवरी को डाक मे भिजवा दूँगा। साले गुजिश्ता मुझ पर बहुत सख्त गुजरा। १२, १३ महीन साहबे फराश रहा, उठना दुश्वार था। चलना फिरना कैसा ? न तप न खाँसी, न इसहाल, न फालिज न लकवा। इन सब से बद्तर एक सूरते[2] पुर कुदूरत याने अहतराक[3] का मर्ज। मुख्तसर ये के सर से पाँव तक बारह फोडे, हर फोडा एक जख्म, हर जख्म एक गार, हर रोज वे मुबालिगा, बारह-तेरह फाये और पाव भर मरहम दरकार। नौ-दस महीने वे खौरो[4] खाब रहा हूँ और शबो रोज[5] बेताब। राते यो गुजरी है के अगर कभी आँख लग गई, दो घडी गाफिल रहा हूँगा, के एक-आध फोडे मे टीस उठी, जाग उठा, तडपा किया, फिर सो गया, फिर होशियार हो गया, साल भर मे से तीन हिस्से दिन यो गुजरे, फिर तखफीफ[6] होने लगी। दो-तीन महीने मे लौट पौट कर अच्छा हो गया। नये सिर से रूह कालिब[7] मे आई। अजल ने मेरी सख्त जानी की कसम खाई। अब अगरचे तन्दुरुस्त हूँ, लेकिन नातवाँ और सुस्त हूँ। हवास खो बैठा। हाफिजे को रो बैठा। अगर उठता हूँ तो इतनी देर मे उठता हूँ के जितनी देर मे कदे आदम[8] दीवार उठे। आपकी पुरसिश के क्यो न कुरबान जाऊँ के जब तक मेरा मरना न सुना मेरी खबर न ली। मेरे मर्ग के मुखबिर[9] की तकरीर और मिसलहु[10] मेरी ये तहरीर, आधी सच आधी झूट, दर सूरते[11] मर्ग नीम मुर्दा और दर हालते हयात[12] नीम-जिन्दा[13] हूँ।

---

१. पूर्ण रूप से तैयार। २. अत्यन्त कष्टदायक। ३. जलन। ४. बिना भोजन और नीद। ५. रात दिन। ६. कमी। ७. शरीर। ८. मनुष्य के शरीर के बराबर। ९. समाचार देने वाला। १० हूबहू। ११. मृत्यु की दृष्टि से। १२. जीवन की दृष्टि से। १३. अर्ध जीवित।

नवाब अनवरुद्दौला सादुद्दीनखाँ बहादुर 'शफक' के नाम

दर कशाकशे[1] जोफम न गसलत रवाँ अस्तन
ईं के मन नमी मीरम हम जे नातवानी हास्त

अगर इन सुतूर की नक्ल मेरे मखदूम मौलवी गुलाम गौस खाँ बहादुर साहब मीर मुशी लेफ्टेंट गवर्नरी गर्बो शुमाल[2] के पास भेज दीजिएगा तो उनको खुश और मुझको ममनून[3] कीजियेगा।

---

१. निर्बलता के संघर्ष मे मेरी आत्मा शरीर से निकल ही नही सकती। मै निर्बलता के कारण मरता भी नही हूँ। २ पश्चिमोत्तर प्रदेश। ३. आभारी।

सैयद यूसुफ़ मिर्ज़ा के नाम

१

(सन् १८५६)

कोई है ? जरा यूसुफ मिर्जा को बुलाइयो। लो साहब वो आये। मियाँ मैंने कल खत तुमको भेजा है, मगर तुम्हारे एक सवाल का जवाब रह गया है। अब सुन लो—तफज्जुल हुसेनख़ाँ अपने मामूँ मोइदुद्दीन ख़ाँ के पास मेरठ है। शायद दिल्ली आया हो, मगर मेरे पास नही आया। वालिद उनके गुलाम अलीख़ाँ अकबराबाद मे हैं। मकतबदारी[१] करते है। लड़के पढाते हैं, रोटी खाते हैं।

तुम लिखते हो के पचास महल[२] महल वाजिद अली शाह के कलकत्ते गये। तुम्हारे मामूँ मुहम्मद कुलीख़ाँ के ख़त मे लिख़ते है के शाहे अवध बनारस आ गये। इस ख़बर का उस ख़बर के साथ मुनाफात[३] नही है—उधर से आप बनारस को चले हो, इधर से बेगमात को वहाँ बुलाया हो। मगर मेरी जान हमको क्या !

आलम[४] पसे मर्ग मा चे दरिया चे सराब !

---

१. शिक्षक का काम। २. पत्नी। ३ विरोध। ४ हमारे मरने के पश्चात् दुनिया में समुद्र रहे अथवा मृग मरीचिका।

२

(जून १८५९)

ऐ मेरी जान, ऐ मेरी आँखे,

जे[1] हिजराने तिफ्ले के दरखाक रफ्त
चे नाली, के पाक आमदो पाक रफ़्त

वो खुदा का मकबूल[2] बन्दा था। वो अच्छी रूह[3] और अच्छी किस्मत लेकर आया था। यहाँ रह कर क्या करता! हरगिज गम न करो। ऐसी ही औलाद की खुशी है तो अभी तुम खुद बच्चे हो। खुदा तुमको जीता रखे, औलाद बहुत। नाना-नानी के मरने का जिक्र क्यो करते हो! वो अपनी अजल से मरे है। बुजुर्गों का मरना बनी आदम[4] की मीरास[5] है। क्या तुम ये चाहते थे के वो इस अहद मे होते और अपनी आबरू खोते! हा, मुजफ्फरद्दौला का गम मिन्जुमला[6] वाकआते कर्बलाए मुअल्ला है। ये दागे मातम जीते जी न मिटेगा। वालिद की ख़िदमत बजा न लाने का हर्गिज अफसोस न चाहिए। कुछ हो सकता हो और न किया हो तो मुस्तहक[7] मलामत होते। कुछ हो भी न सके तो क्या करो! अब तो फिक्र ये पडी हुई है कि रहिये कहाँ और खाइए क्या!

मौलाना का हाल कुछ तुमसे मुझको मालूम हुआ। कुछ तुम मुझसे मालूम करो। मुराफे मे हुक्मे[8] दवामे हब्स बहाल रहा। बल्के ताकीद हुई के जल्द दरिया[9]

---

१. उस लडके के मरने से उनके वियोग मे क्यो रोता है? वे पवित्रावस्था मे आए थे और पवित्रावस्था मे चले गए। २ प्रिय। ३ आत्मा। ४. मानव-कुल। ५. दाय भाग। ६. सब मिला कर कर्बला की दुर्घटना के समान। ७. पछतावे के अधिकारी। ८ आजीवन कारावास की आज्ञा। ९. काला पानी।

ए शोर की तरफ रवाना करो। चुनाचे तुमको मालूम हो जाएगा। उनका बेटा विलायत मे अपील किया चाहता है। क्या होता है, जो होना था सो हो लिया। इन्नालिल्लाहे व इन्नाइलहे राजऊन।

नाजिरजी को सलाम कहना और कहना के हाल अपना मुफस्सिल तुमको लिख चुका हूँ। वो 'देहली उर्दू अखबार' का परचा अगर मिल जाए तो बहुत मुफीदे मतलब है, वर्ना खैर कुछ महले[१] खौफ व खतर नही है। हुक्कामे सदर ऐसी बातो पर नजर न करेंगे। मैने 'सिक्का' कहा नही और अगर कहा तो अपनी जान और—हुरमत बचा लेने को कहा। ये गुनाह नही, और अगर गुनाह भी है, तो क्या ऐसा सगीन है के मलिके[२] मौज्जिमा का इश्तेहार भी उसको न मिटा सके! सुभान अल्लाह! गोलादाज का बारूद बनाना और तोपे लगानी और बक घर और मैगजीन का लूटना, माफ हो जाए और शायर के दो मिसरे माफ न हो? हाँ साहब, गोलादाज का बहनोई मददगार है और शायर का साला भी जानिबदार[३] नही।

लो हजरत, मीर इनायत हुसेन साहब कल आए। मीर इरतजा हुसेन का खत दे दिया। ऐनक लगाकर खूब पढा, कह गए है के इसका जवाब कल लाऊँगा। मै तो सुबह को ये खत रवाना करता हूँ। वो, आज या कल, जब खत लावेगे, उसको जुदागाना लिफाफे मे रवाना कर दूँगा। मुजफ्फर मिर्जा देखिए कब तक आवे और मुझसे क्यो कर मिले। एक लतीफा परसो का सुनो। हाफिज मम्मू बेगुनाह साबित हो चुके। रिहाई पा चुके। हाकिम के सामने हाजिर हुआ करते है। अमलाक[४] अपनी माँगते है। कब्जो तसर्रुफ[५] उनका साबित हो चुका है। सिर्फ हुक्म की देर। परसो, वो हाजिर है, मिस्ल पेश हुई। हाकिम ने पूछा—हाफिज मुहम्मद बख्श कौन! अर्ज किया के मै।

---

१. भय का स्थान। २. साम्राज्ञी-विक्टोरिया। ३ पक्षपाती। ४ सम्पत्ति। ५. अधिकार और उपयोग।

फिर पूछा के हाफिज मम्मू कौन ! अर्ज किया के मैं, अस्ल नाम मेरा मुहम्मद वख्श है, मम्मू—मम्मू मशहूर हूँ। फरमाया—ये कुछ बात नही। हाफिज़ मुहम्मद वख्श भी तुम, हाफिज मम्मू भी तुम, सारा जहाँ भी तुम, जो कुछ दुनिया मे है वो भी तुम, हम मकान किसको दे ! मिस्ल दाखिल दफ्तर हुई। मियाँ मम्मू अपने घर चले आये।

हाँ साहव, ख़ाजा वख्श दर्जी कल सेपहर वो मेरे पास आया। मैंने जाना एक हाथी कोठे पर चढ आया, कहता था के आगा साहव को मेरी वन्दगी लिख भेजना। मीरन साहव आजकल पानीपत को जाया चाहते है। मीर काजिम अली इब्न मीर कलन्दर अली अलवर से आए हुए सुलतानजी मे उतरे हुए है, दिन पन्द्रहेक हुए मुहम्मद कुलीखाँ मेरी मुलाकात को आए थे, 'अलीजी' मे रहते है। रज़ाशाह पटौदी गए हुए है। मीर अशरफ अली इब्न मीर असद अली मरहूम ने रिहाई पाई। अभी अमलाक की दरख़ास्त नही दी। हमारी भाभी साहिवा याने जोजए[1] मीर अहमद अली खाँ मगफूर[2] अपनी हवेली में चैन कर रही हैं। एकाध दिन मे जाऊँगा। खुदा जाने जुमे के दिन नाज़िर जी की दरख़ास्त पर क्या गुजरी। इस वक्त तक उनका कोई ख़त नही आया, ध्यान लगा हुआ है। ज्यादा क्या लिखूँ।

३

(१५ जुलाई १८५९)

मेरी जान, ख़ुदा तेरा निगाहवान[3],

मैंने 'गडफक' को दाम मे फसाया फिर कफस मे बन्द करके ये रुक्का लिखवाया। मीर इरतजा हुसेन को फक़त उनके नाम की जो इबारत है वो पढा देना ताके उनकी खातिर जमा हो जाए। मसनवी कभी इस तरह न पाएगी,

---

१ पत्नी। २. स्वर्गीय। ३ ईश्वर तेरा रक्षक।

जब तक सब न आएगी; लाख बातें बनाओ, मुझको गीरत[1] दिलवाओ। गजल जब तक पूरी न हो, कसीदा जब तक पूरा न हो, मसनवी जब तक सब न लिखी हो क्यो कर इस्लाह दी जाए? अपने छोटे मामूं साहब को मेरा सलाम बऐतबार[2] मुहब्बत के, और बन्दगी बऐतबार[3] सियादत के, और दुआ बऐतबारे यगानगी[4] और उस्तादी के, कहना। और कहना के भाई और क्या लिखूं। जिस हुक्म की नक्ल के वास्ते तुम लिखते हो वो अस्ल कहा है के जिसकी नक्ल लू! हाँ, जबान[5] जदे खल्क है के कदीम नौकरो से बाज[6] पुरस नही। मुशाहिदा इसके खिलाफ है। ये लो, कई दिन उसके हमीदखाँ गिरफ्तार आया है, पाँवो मे बेडिया, हाथो मे हतकडियाँ। हवालात मे है। देखिए हुक्म अखीर क्या हो। सिर्फ नवँदराय की मुख्तारकारी पर किनाअत की गई। जो कुछ होना है, वो हो रहेगा, हर शख्स की सर[7] नविश्त के माफिक हुक्म हो रहे है। न कोई कानून है, न कायदा है, न नजीर काम आये, न तकरीर पेश जाए। इर्त्तजाखाँ इब्न मुर्त्तजाखाँ की पूरी दो सौ रुपए की पिन्सन की मजूरी की रिपोट गई, और उनकी दो बहने सौ-सौ रुपए महीना पाने वालियो को हुक्म हुआ के चूं के तुम्हारे भाई मुजरिम थे, तुम्हारी पिन्सन बतरीके तरह्हुम[8] दस-दस रुपया महीना तुमको मिलेगा। तरह्हुम ये है तो तगाफुल[9] क्या कहर होगा! मै खुद मौजूद हूँ और हुक्कामे सदर का रु शनास; पश्म[10] नही उखेड सकता। ५३ बरस का पिन्सन, तकर्रुर उसका बतजवीजे लार्ड लेक व मजूरी ए गवर्मेण्ट और फिर न मिला है और न मिलेगा। खैर, अेहतमाल है मिलने का। जानते हो के अली का बन्दा हूँ। उसकी कसम कभी झूट नही खाता। इस वक्त कल्लू के पास एक रुपया सात आने बाकी

---

१. लज्जा। २ प्रेम की दृष्टि मे। ३. सैयद होने के कारण। ४. एकता और गुरुत्व के कारण। ५ प्रत्येक व्यक्ति की जीभ पर। ६. पूछ ताछ। ७. भाग्य मे लिखा हुआ। ८ दया स्वरूप। ९. उपेक्षा। १०. बाल।

है। बाद उसके न कही से कर्ज़ की उम्मीद है न कोई जिन्स रहन[1] व बै के क़ाबिल। अगर रामपूर से कुछ आया तो खैर वर्ना—इन्नालिल्लाहे व इन्ना इलहे राजऊन। बाज लोग ये भी गुमान करते है के इस महीने मे पिन्सन की तक़सीम का हुक्म आ जाएगा। देखिए, आता है या नही! अगर आता है तो मै मकबूलो[2] मे हूँ या मरदूदो[3] मे! मुज़फ्फर मिर्ज़ा का खत अलवर से आ गया। बखैरो आफियत पहुँचे। मीर कासिम अली का काफिला भी वही है। मीर कासिम अली की बीबी अलवर की तनखाह मे से बमूजिबे सहामे[4] शरअिया दो सुल्स मुज़फ़्फ़र[5] मिर्ज़ा को और एक सुल्स[6] अपने को तजवीज करती है। जाहिरा बमूजिब तालीमे मीर कासिम अली के है।

मुर्हररे जुमा, १३ ज़िलहज्जा १२७५ हि० व १५ जुलाई साले हाल।

—ग़ालिब

४

(२८ जुलाई १८५९)

मियाँ,

परसो करीबे शाम मिर्जा आगा जानी साहब आए। वो और उनके मुताल्लिक सब अच्छी तरह है। हस्सूबेग हाँसी गये। कल तुम्हारा खत आया। भाई, तुम्हे खारिश क्यो हुई? हुसेन मिर्ज़ा साहब क्यो बीमार हुए? खुदा या, इन आवागाने[7] दश्ते गुरबत को जमीयत[8], जब तू चाहे, इनायत कर, मगर तसद्दुक[9] मुर्तजा अली का, तन्दुरुस्त रख। अल्लाह, अल्लाह! हुसेन मिर्जा की डाढी सफेद हो गई। ये शिद्दते गमो रंज की खूबिया है।

---

१. रहन रखने और विक्रय के लिए। २. प्रिय। ३. अप्रिय, परित्यक्त। ४. शरा के अनुसार जो दाय भाग निश्चित है। ५. दो तिहाई। ६. एक तिहाई। ७. इन विपत्ति ग्रस्तो को। ८. सन्तोष। ९. हज़रत अली की न्योछावर में।

इस खत के पहुँचते ही अपनी और उनकी खैरो आफियत लिखना। जहाँ तुमने अपने नाम का खत पढ़ा वहाँ का हाल ये है—

बुगुफ्त[1] अहवाले मा बर्के जिहानस्त
दमे पैदा व दीगर दम निहानस्त
गहे बर तारमे आला नशीनम
गहे बर पुश्ते पाये खुद नवीनम

हमारे खुदावन्द हैं, किब्ला व कावा है। खुदा उनको सलामत रखे। अगर बाकिर का इमाम बाडा इससे अलावा के खुदावन्द का आजारखाना[2] है, एक बिनाए[3] कदीम रफी[4] मशहूर। इसके इनहदाम[5] का गम किसको न होगा। यहाँ दो सडके दौडती फिरती हैं—एक ठडी सडक और एक आहनी सडक, महल इनका अलग अलग। इससे बढकर ये बात है के गोरो का बारक भी शहर मे बनेगा; और किले के आगे जहाँ लाल डिग्गी है, एक मैदान निकाला जाएगा। महबूब की दूकानें, बहेलियो के घर, फीलखाना, बुलाकी बेगम के के कूचे से 'खास बाजार' तक ये सब मैदान हो जायगा। यो समझो के अम्मू जान के दरवाजे से किले की खन्दक तक, सिवाय लाल डिग्गी और दो—चार कुओ के आसारे[6] इमारात बाकी न रहेंगे। आज जानिसार खाँ के छत्ते के मकान ढहने शुरू हो गए हैं। क्यो मैं दिल्ली की वीरानी से खुश न हूँ? जब अहले शहर ही न रहे, शहर को लेके क्या चूल्हे में डालूँ? हुसेन मिर्जा साहब को मेरा सलाम कहना, ये रुक्का पढा देना। उनका खत मौसूमा मुहम्मद कुलीखा आया। कल्लू के हात उनके घर भिजवाया। उनका घर कहाँ? वो तो मीर

---

१. बिजली की तरह चचल हमारी स्थिति है। एक क्षण मे उत्पन्न होती है, दूसरे क्षण लुप्त हो जाती है। कभी कभी मैं बहुत ऊँचे स्थान पर बैठता हू, कभी मुझे अपने पाँव के तलवे का भी ज्ञान नहीं होता। २ रोने की जगह, शियो का एक प्रकार का प्रार्थना-गृह। ३ प्राचीन। ४. ऊचाई मे प्रसिद्ध। ५ गिराना। ६ मकान के चिह्न।

अहमद अलीखाँ मरहूम की बीबी के हाँ रहते हैं। वो न थे, जब भाभी साहब को मालूम हुआ के मेरे देवर का आदमी है, उन्होंने मुद्दआ दरियाफ्त करके खत रख लिया और कल्लू से कहा के भाई को सलाम कहना। और कहना के मुहम्मद कुलीखाँ 'अलीजी' गए हुए हैं, खत उनके पास भिजवा दूँगी। कल रजाशाह आये थे, मैंने उनको कहा था के तुम मीर अहमद अलीखाँ की बीवी को ताकीद कर देना के खत ज़रूर का है। उसको ब अहतियात पहुँचा देना। साहब, तुम्हारी अन्ना को मैं क्या जानूँ ? किस पते से ढूँढूँ ! दद्दा से मैंने पूछा। अमीरुन्निसा को वो न समझी, वाजिदअली की माँ करके पहचाना। सो वो कहती थी के वाजिद अली मय अपनी मा के पहाडगज है। हमशीरा की अर्जी के रवाना होने का हाल मालूम हुआ। तुम समझो, अगर वो अर्जी फिल हकीकत कमिश्नर ने भेज दी है, तो बेशक मुद्दआ[1] ए सायिला कुबूल करके भेजी है। अगर खुद न मंजूर करता तो कभी न भेजता। बाकर अली और हुसेन अली अपनी दादी के साथ जिया उद्दीनखाँ की वालिदा[2] के पास 'कुतुबसाहब' गए हुए हैं। अयाज और नियाज अली उनके साथ हैं। दो बन्दगियाँ और एक दुआ और दो आदाब मुल्तवी। दद्दा और कल्लू और कल्यान की बन्दगियाँ पहुँचे। कमरुद्दीनखाँ परसो आया था। अब आएगा तो दुआ तुम्हारी उसको कह दूँगा।

—ग़ालिब

५

(१८ अगस्त १८५९ ई०)

हके ताला तुम्हे उम्रो दौलत व इकबाले इज्जत दे।

खत मुर्हरिरा दोअम मुहर्रम मे कोई मतलब जवाब तलब न था। मिर्जा हैदर साहब की रेहलत की खबर थी, और बस। कल बुध का दिन, दोनो

१. प्रार्थी की इच्छा। २. माँ।

महीनो की १७ तारीख़ थी। सुबह के वक़्त मिर्जा आगा जानी साहब आए और उन्होने फरमाया के हुसेन मिर्जा की हरम[1] लखनऊ से आई थी। बीफत्तन के यहाँ उतरी थी। अब वो पाटौदी को अपने बेटे के पास गई। कहती थी के नसीबे[2] आदा नाजिरजी बहुत बीमार है। ख़ुदा ख़ैर करे! यूसुफ मिर्जा मेरी जान निकल गई। क्या करूँ, क्योकर खबर मगाऊँ? या अली, या अली, या अली! दस बारह बार दिल मे कहा होगा के मदारी का बेटा दौडा हुआ आया और तीन खत लाया। याने के वो नीचे हवेली में था, डाक के हरकारे ने खत लाकर दिये। नियाज अली ऊपर ले आया। एक खत यारे अज़ीज़ का और एक खत हरगोपाल तफ्ता का और एक ख़त ज़ुल्फेकारुद्दीन हैदर मौलवी का। मियाँ करीब था के ख़ुशी के मारे रोना आ जाए। बारे छ उस खत को मैने आखो से लगा लिया, मरियाँ ली। अब तुम तमाशा देखो—१३ मुहर्रम का खत १७ को मुझे पहुँचा। उसमें मुन्दर्ज के जुमे के दिन १९ को बसबीले डाक कलकत्ते जाऊँगा, और फिर हज़रत मुझसे मतालिब का जवाब माँगते है! हाँ जब कलकत्ते पहुँच लेंगे और वहाँ से मुझसे खत भेजेगे और अपने मस्कन का पता लिखेगे, तब जो कुछ मुझको लिखना होगा, लिखूँगा। आगा साहब को सब खत सुना दिया और उनको उसी वक्त काशीनाथ के पास भेजा है ताके वो उसको गरमाएँ और शर्माएँ और कुछ सज्जाद मिर्ज़ा के वास्ते भिजवाए। जिया उद्दीनख़ाँ दो हफ्ते से यहाँ है। अपने बाग मे उतरे हुए है। दो बार मेरे पास भी दो-दो घडी के वास्ते आए थे। कुछ उनको मजूर है रिआयते इखलास और मुहब्बते कदीम। ख़ुदा चाहे तो कुछ सज्जाद मिर्ज़ा को और कलकत्ते से उनके खत के आने के बाद कुछ नाज़िर जी को उनसे भिजवाऊँ। मेरा वही हाल है। भूका नहीं हूँ मगर किसी की खिदमत गुजारी की तौफीक[3] नही है। बुरे-भले हाल मे

---

१. पत्नी। २. शत्रु का भाग्य। ३. सामर्थ्य।

गुजरे जाती है, अफसोस। हजार अफसोस! जो तुमसे और नाज़िर जी से मेरे दिल का हाल है, अगर कहूँ तो कौन बावर करे। और वो बात खुद कहने की नही, करने की है, सो करने का मकदूर नही। तफज्जुल हुसेन ख़ा इब्न[1] गुलाम अली खाॅ मेरठ मे अपने मामूँ के पास है। शहर मे आया था। मेरे पास भी आया था, तुम्हारा सलाम कह दिया। परसो फिर वो मेरठ गया। भाई फजलू अरबसरा मे रहते है। परसों से आए हुए है। यही उतरे हुए है। दौडते है, अर्जियाँ देते फिरते है। कोई सुनता नही। तुमको सलाम कहते है। आमदो रफ्त का टिकट मौकूफ हो गया। फकीर, और हथियार जिस पास हो वो, न आयें। और बाकी हिन्दू-मुसलमान, औरत-मर्द, सवार-प्यादा जो चाहे चला आए, चला जाए। मगर बगैर आबादी के टिकट के रात को शहर मे रहने न पाए। वो शोरोगुल था के सडके निकलेगी और गोरो की छावनी शहर मे बनेगी, कुछ भी न हुआ। मर पट कर एक जान निसाखाॅ के छत्ते की सडक निकली है। दिल्ली वालो ने लखनऊ का ख़ाका उडा रखा है। सब कहते है के लाखो मकान ढा दिए और साफ मैदान कर दिया। मै जानता हूँ ऐसा न होगा। बात इतनी ही है के जो तुमने लिखी है। बहरहाल अब जो कुछ हो लिखो, और नाजिरजी के रवाना हो जाने की खबर और सज्जाद और अकबर उनकी माँ की खैरियत और अपने बाप का हाल लिखो।

पजशबा १८ मुहर्रमुल हराम।

६

५ नवम्बर १८५९

मेरी जान शिकवा करना सीखो। ये बाब मैंने तुमको अभी पढाया नही। कोई खत तुम्हारा नही आया के मैंने उसी दिन या दूसरे दिन जवाब न लिखा

---

१ पुत्र।

हो, बल्के मैं ऐसा जानता हूँ के ये जो तुमने मुझको शिकायत नामा भेजा है, इसके बाद एक ख़त मेरा भी तुमको पहुँचा होगा। ये ख़त कल आया, आज मैं इसका जवाब लिखता हूँ। सुनो साहब, तुम जानते हो के मैं १४ पार्चे का खलत एक बार, और मलबूमे[1] ख़ास शाली रुमाल दुशाला एक बार, पेशगाहे हजरत सुलताने आलम[2] से पा चुका हूँ, मगर ये भी जानते हो के वो ख़लत मुझको दो बार किसके जरिये से मिला है, याने जनाब किब्ला व काबा हजरत मुज्तहदुल अस्र मद्‌जिल्लइलआली। अब आदमिय्यत इसकी मुक्तजी नही है के मैं वे उनके तवस्सुत के मद्ह गुस्तरी का कस्द करूँ। चुनाचे कसीदा लिख कर और जैसा के मेरा दस्तूर है कागज को बनवा कर हज़रत पीरो मुर्शद की ख़िदमत मे भेज दिया है। यकीन है के हजरत ने वहाँ भेज दिया होगा और मैं तुमको भी लिख चुका हूँ के मैंने कसीदा लखनऊ को भेज दिया है। उसी ख़त में ये भी तुमको लिखा है के हजरत जुब्दतुल उलमा सैयद नकी साहब अगर कलकत्ते पहुँच गए हो तो मुझको इत्तला दो। दारोगगी ए अमलात के बाब मे जो मुनासिब और माकूल और वाकई है वो मैं बेपरदा आलीशान मुजफ्फर हुसेन खाँ के ख़त मे लिखता हूँ। ये वरक पढकर उनकी ख़िदमत में गुजरान दो और जो वो इर्शाद करे मुझको लिखो। तुम्हारे इस ख़त के मतालिब[3] मुन्दरजा का जवाब हो चुका। इससे ज्यादा मेरे पास कोई बात इस वक्त लिखने को नही है, मगर ये के एक ख़त तुम्हारे मामूँ साहब के नाम का भेज चुका हूँ, अगर वो पहुँचेगा, और ख़ुदा करे पहुँचे, तो उससे तुमको एक हाल मालूम होगा।

शबा, ५ नवम्बर सन् १८५९।

—ग़ालिब

---

१ विशेष पोशाक। २. दिल्ली के अन्तिम बादशाह बहादुरशाह। ३. उपर्युक्त विषय।

७

(२८ नवंबर १८५९)

यूसुफ मिर्जा,

मेरा हाल सिवाय मेरे खुदा और खुदावन्द के कोई नही जानता। आदमी कसरते गम से सौदाई[1] हो जाते है, अक्ल जाती रहती है। अगर इस हुजूमे गम मे मेरी कुव्वते[2] मुतफिक्करा मे फर्क आ गया हो तो क्या अजब है ? बल्के इसका बावर न करना गजब है। पूछो के गम क्या है ? गमे[3] मर्ग, गमे फिराक[4], गमे रिज्क[5] गमे इज्जत ? गमे मर्ग मे, किले[6] ना मुबारक से कते नजर करके अहले[7] शहर को गिनता हूँ—मुजफ्फरुद्दौला मीर नासिरुद्दीन, मिर्जा अशूर बेग मेरा भानजा, उसका बेटा अहमद मिर्जा उन्नीस बरस का बच्चा, मुस्तफाखाँ इब्न आजमुद्दौला, उसके दो बेटे इर्तिजाखाँ और मुर्तजा खाँ, क़ाजी फजुल्ला। क्या मै इनको अपने अजीजो के बराबर नही जानता था ? अे लो, भूल गया—हकीम रजीउद्दीनखाँ, मीर अहमद हुसेन 'मैकश', अल्लाह, अल्लाह ! इनको कहाँ से लाऊँ ?

गमे फिराक—हुसेन मिर्जा, यूसुफ मिर्जा, मीर मेहदी, मीर सरफराज हुसेन, मीरन साहब खुदा इनको जीता रखे। काश ये होता के जहाँ होते, वहाँ खुश होते। घर उनके बेचिराग, वो खुद आवारा। सज्जाद और अकबर के हाल का जब तसव्वुर करता हूँ, कलेजा टुकड़े टुकडे होता है। कहने को हर कोई ऐसा कहता है, मगर मै अली को गवाह करके कहता हूँ के उन अमवात[8] के गम मे और जिन्दो के फिराक मे आलम मेरी नजर मे तीरह व तार[9] है। हकीकी मेरा एक भाई दीवाना मर गया। उसकी बेटी, उसके चार बच्चे,

---

१. पागल। २. चिन्तन शक्ति। ३. मृत्यु का दुख। ४. वियोग का दुख। ५. भरण पोषण का दुख। ६. अशुभ लाल किला। ७ नगर निवासी। ८. मौत (ब० व०)। ९. अन्धकार पूर्ण।

उनकी माँ यानें मेरी भावज, जैपुर मे पडे है। इस तीन बरस मे एक रुपया उनको नही भेजा। भतीजी क्या कहती होगी के मेरा भी कोई चचा है ! यहां अगनिया[1] और उमरा के अजवाज[2] व औलाद भीक माँगते फिरे और मैं देखूं ! इस मुसीबत की ताब लाने को जिगर चाहिए।

अब खास अपना दुख रोता हूं। एक बीवी, दो बच्चे, तीन चार आदमी घर के, कल्लू, कल्यान, अयाज ये बाहर, मदारी के जोरु बच्चे बदस्तूर, गोया मदारी मौजूद है। मियाँ घम्मन गये गये महीना भर से आ गये के भूका मरता हूँ। अच्छा भाई, तुम भी रहो, एक पैसे की आमद नही; बीस आदमी रोटी खाने वाले मौजूद। मुकामे मालूम से कुछ आये जाता है, वो बकद्रे सद्दे[3] रमक है। मेहनत वो है के दिन-रात में फुर्सत काम से कम होती है। हमेशा एक फिक्र बराबर चली जाती है। आदमी हूं, देव नही, भूत नही। इन रजों का तहम्मुल[4] क्योकर करूँ ? बुढापा, जोफे[5] कुआ; अब मुझे देखो तो जानो के मेरा क्या रग है। शायद कोई दो-चार घडी बैठता हूँ, वर्ना पडा रहता हूँ, गोया साहबेफर्राश हूँ, न कही जाने का ठिकाना, न कोई मेरे पास आनेवाला। वो अर्क[6] जो, बकद्रे ताकत बनाये रखता था, अब मयस्सर नही। सबसे बढकर आमद आमदे गवर्मेण्ट का हगामा है। दरबार मे जाता था, खलते फाखिरा[7] पाता था, वो सूरत अब नजर नही आती। न मकबूल हूँ न मुरदूद हूँ, न बेगुनाह हूँ, न गुनहगार हूँ, न मुखबिर, न मुफसिद,[8] भला अब तुम ही कहो के अगर यहाँ दरबार हुआ और मैं बुलाया जाऊँ तो नजर कहाँ से लाऊँ। दो महीने दिन रात खूने जिगर खाया और एक कसीदा ६४ बैत का लिखा। मुहम्मद फजल मुसव्विर को दे दिया। वो पहली दिसबर को मुझको देगा। उसका मतला है—

---

१. सम्पन्न व्यक्ति। २. पत्नियाँ। ३. केवल पेट भराई। ४. सन्तोष। ५. शरीर की निर्बलता। ६. शराब। ७. प्रतिष्ठित वेश। ८. उत्पाती।

जे साले[1] नौ दिगर आबे वरू ए कारामद
हजारो हस्त सदो शस्त दर शुमारामद।

इसमे इल्तजाम[2] अपनी तमाम सरगुजिश्त के लिखने का क्या है ? इसकी नक़ल तुमको भेजूँगा। मेरे आका[3] जाद ए रोशन गुहर जनाव मुफ्ती मीर अब्बास साहब को दिखाना। इस बुझे हुए बल्के मरे हुए दिल पर कलाम का ये असलोब[4] है ! जहाँ पनाह की मदह का फिक्र न कर सका। ये कसीदा ममदूह की नजर से गुजरा न था, मैंने इसी मे अमजद अली शाह की जगह वाजिद अली शाह को विठा दिया। खुदा ने भी तो यही किया था। अनवरी ने बारहा ऐसा किया है के एक का कसीदा दूसरे के नाम पर कर दिया। मैंने अगर बाप का कसीदा बेटे के नाम पर कर दिया तो क्या गजब हुआ ? और फिर कैसी हालत और कैसी मुसीबत मे के जिसका ज़िक्र बतरीके अेख्तसार ऊपर लिख आया हूँ। इस कसीदे से मुझको अर्जे दस्तगाहे[5] सुखन मजूर नही, गदाई मजूर है। बहरहाल ये तो कहो कसीदा पहुँचा या नही पहुँचा। परसो तुम्हारे मामूँ का खत आया। वो कसीदे का पहुँचना लिखते है, कल तुम्हारा खत आया, उसमे कसीदे के पहुँचने का जिक्र नही। इस तफर्के[6] को मिटाओ और साफ लिखो के कसीदा पहुँचा या नही ? अगर पहुँचा तो हुजूर मे गुजरा या नही ? अगर गुजरा तो किसकी मारफत गुजरा और क्या हुक्म हुआ ? ये उमूर जल्द लिखो और हाँ, ये भी लिखो के अमलाक वाके शहर देहली के वाव मे क्या हुआ ? मै तुमको इत्तिला देता हूँ के कल मैंने फर्दे फेहरिस्ते देहात व वागात व अमलाक

---

१. नये वर्ष के कारण काम मे एक नई प्रकार की शोभा उत्पन्न हो गई है। यह साल है १८६० ई०। २. आवश्यकता। ३. मालिक का पुत्र मोती की तरह दमकने वाला। ४. ढग। ५. कवित्व की शक्ति प्रदर्शित करना अभीष्ट नही। ६. अन्तर।

मय हासिले हर बागो देह[1] व मिल्क नाजिरजी को भेज दी है। इस खत से एक दिन पहले वो फर्द पहुँचेगी। ये फर्द कलक्टरी के दफ्तर से ली है, मगर इतना ही मालूम है के शहर की इमारत, जो सडक मे नही आई और वरसात मे डह नही गई वो सब खाली पडी है। किरायेदार का नाम नही। मुझको यहाँ की अमलाक का इलाका हुसेन मिर्जा साहब के वास्ते मतलूब है। मै तो पिन्सन के बाब में हुक्मे अखीर सुन लूँ फिर रामपूर चला जाऊँगा। जमादिअलअव्वल से जिलहज्जा तक आठ महीने और फिर मुहर्रम से, सन् १२७७ हिजरी से साल शुरू होगा। इस साल के दो-चार, हद दस-ग्यारह महीने, गरज के १९-२० महीने हर तरह वसर करने है। इसमे रजो राहत व जिल्लत व इज्जत जो मकसूम मे है वो पहुँच जाए, और फिर अली-अली कहता हुआ मुल्के अदम को चला जाऊ। जिस्म रामपूर मे और रूह आलमे नूर मे, या अली—या अली-या अली !

मियाँ, हम तुम्हे एक और खबर लिखते है। वरह्मा का पुत्तर दो दिन बीमार पडा, तीसरे दिन मर गया। है, है ! क्या नेकवख्त गरीब लडका था। बाप उसका शिवजीराम उसके गम मे मुर्दे से वदतर है। ये दो मुसाहिब मेरे यो गए एक मुर्दा, एक दिल अपसुर्दा। कौन है जिसको तुम्हारा सलाम कहूँ। ये खत अपने मामूँ साहब को पढा देना और फर्द उनसे लेकर पढ लेना और जिस तरह उनकी राय मे आये उस पर हुम्ले मतलब की विना उठाना, और इन सब मदारिज का जवाब शिताब[2] लिखना। जियाउद्दीनखाँ रोहतक चले गए और वो कत्ल न कर गए, देखिए आकर क्या कहते है। या रात को आ गए हो या शाम तक आ जाए। क्या करूँ ? किसके दिल मे अपना दिल डालूँ।

---

१ गाँव। २ शीघ्र।

व मुर्त्तजाअली ! पहले से नीयत में ये है के जो शाहे अवध से हात आए हिस्सए[1] बिरादराना करू । निस्फ[2] हुसेन मिर्जा और तुम और सज्जाद, निस्फ मैं गुफलिसो[3] का मदार। हयात खयालात पर है, मगर उसी खयालात से उनका हुस्ने तबियत मालूम हो जाता है।

वस्सलाम खैर खत्ताम।

दो शबा, दोअम जमादिल अव्वल सन् १२७६ हि० मुताबिक २८ नवम्बर सन् १८५९ ई० वक्ते सुबह।

८

(२९ नवम्बर १८५९)

मियाँ,

कल सुबह को तुम्हारे नाम का खत रवाना किया। शाम को तुम्हारा एक खत और आया। हजरत जुब्दतुल उलमा का अब तक वहाँ न पहुचना ताज्जुब की बात है। हक ताला उनको, जहाँ रहे, अपने हिफ्जो[4] अमान मे रखे। जब चाहे वहाँ पहुचे। मेरा मकसूद तो इतना ही है के कसीदा गुजरे और कुछ हमारे-तुम्हारे हात आए, लेकिन कल के खत की पुश्त पर जो सतरे नाजिरजी के हात की लिखी हुई थी, उसके देखने से आस टूट गई। कुछ हात आता नजर नही आता।

अमलाक वाकए शहरे देहली के सवाल का जवाब अबके बार कलमन्दाज हुआ। मुकर्रर[5] अगर कहा जाएगा तो बेशक ये जवाब आएगा के हमने तुमको एवज उन मकानात के ये मकानात दिए, मावजा हो गया। भाई, मैं पहले ही जानता था के ये अमलाक कत्ल हुई और वो सवा लाख रुपया

१. भाई बन्धु का हिस्सा। २ आधा। ३ दरिद्रों का केन्द्र। ४ रक्षा। ५ पुन।

जो अलावा जरे मुकर्ररा मिला है, वो दिल्ली की अमलाक का खूँ बहा है। परसो नाजिरजी के नाम के सरनामे मे फर्दे फेहरिस्त मजमू अमलाक भेज चुका हू। खैर, ये वार भी खाली गया। मौलाना गालिब अलिइर्रहमा[१] खूब फरमाते है--

मुनहस्सिर मरने पै हो जिसकी उमीद
ना उमीदी उसकी देखा चाहिए

तुम्हारे मामू साहब की दस्तखती तहरीर ने जो मेरा हाल किया है, वो किस जवान से अदा करू! है, है! हुसेन मिर्जा और ये कहे के मै कहाँ जाऊ, और क्या करू! और मुझ कमबख्त से उसका जवाब सरे अजाम न हो सके। बहुत बडा आसरा था उस सरकार का। खिदमत न सही, ओहदा न सही, इलाका न सही, सौ डेढ सौ रुपये दरमाह मुकर्रर हो जाना क्या मुश्किल था! दिल्ली के आदमी खुसूसन उमराएशाही हर शहर मे बदनाम इतने है के लोग उनके साये से भागते है। मुर्शदाबाद भी एक सरकार थी, हैदराबाद बहुत बडा घर है, मगर वे ज़रिया व वास्ता क्यो कर जाए! और जाए तो किससे मिले? क्या कहे? नाचार वही रहो। किसी तरह शाहे अवध का सामना हो जाए, और मै कहाँ की सलाह बताऊ? वो साहब रोहतक गए है। कल यकीन है के आ गए होगे। मुझको अभी खबर नही आई। अगर मशियते[२] इलाही मे है, तो दिसम्बर महीने मे कुछ जरूर में आ जाएगा। नवाब गवर्नर जनरल बहादुर, यकीन है आज आगरे में रौनक अफरोज हो। अलवर, जैपूर, धौलपूर, गवालियर, टोक, जावरा, छ रईसो की वहाँ मुलाजिमत की खबर है। खैर हमको क्या? लैसद्दौला हुसेन अलीखाँ बहादुर की खिदमत में मेरा सलामो नियाज़ और शुक्रे यादावरी।

मरकूमे सुबह से शबा २९ नवम्बर, ३ जमादिउल अव्वल हिसावे जन्त्री।

---

१ स्वर्गीय। २. भाग्य।

सैयद यूसुफ मिर्जा के नाम

९

(२३ अप्रेल, १८६० ई०)

मियाँ,

तुम्हारा ख़त रामपूर पहुँचा और रामपूर से दिल्ली आया। मै २३ शाबान को रामपूर से चला और ३० शाबान को दिल्ली पहुँचा, उसी दिन चाँद हुआ। यकशबा रमजान की पहली, आज दो शबा ९ रमजान की है, सो नवाँ दिन मुझे यहाँ आये हुए है। मैंने हुसेन मिर्जा साहब को रामपूर से लिखा था के यूसुफ मिर्जा को मेरे आने तक अलवर न जाने देना। अब उनकी जबानी मालूम हुआ के वो मेरा खत उनको तुम्हारी रवानगी के बाद पहुँचा। जो मुझको अपने मामूँ के मुकदमे मे लिखते हो, क्या मुझको उनके हाल से गाफिल और उनकी फिक्र से फारिग जानते हो? कुछ बिना[१] डाल आया हूँ। अगर खुदा चाहे तो कोई सूरत निकल आये। अब तुम कहो के कब तक आओगे? सिर्फ तुम्हारे देखने को नही कहता। शायद तुम्हारे आने पर कुछ काम भी किया जाए। मुजफ्फर मिर्ज़ा का और हमशीरा साहिबा का आना तो कुछ जरूर नही, शायद आगे बढ कर कुछ हाजत पड़े। बहर हाल, जो होगा वो समझ लिया जाएगा। तुम चले आओ। हमशीरा अज़ीज़ा को मेरी दुआ कह देना। मुजफ्फर मिर्जा को दुआ पहुँचे। भाई, तुम्हारा खत रामपूर पहुँचा। इधर के चलने की फिक्र मे जवाब न लिख सका। बख्शी साहबो का हाल ये है के आगा सुलतान पजाब को गये, जगरावँ मे मुशी रज्जब अली के मेहमान है। सफदर सुलतान और यूसुफ सुलतान वहाँ है। नवाब मेहदी अली खाँ बकद्रे कलील[२] बल्के अक्ल कुछ उनकी खबर लेते है। मीर जलालुद्दीन खुश-नवीस[३] और वो दोनो भाई बाहम रहते है। मै वही था के सफदर सुलतान

---

१. कार्य प्रारम्भ कर आया हूँ। २. थोडा, अपितु थोड़े से थोडा। ३. सुलेखक।

दिल्ली को आये थे। अब जो मैं वहाँ आया तो सुना के वो मेरठ गये, खुदा जाने, रामपुर जाएँ या किसी और तरफ का कस्द करे। तबाही है, कहरे इलाही है। मुझको लडको ने बहुत तग किया, वर्ना चद रोज और रामपुर मे रहता। ज्यादा क्या लिखूँ ?

मरकूमे दो शबा ९ रमजान व २ अप्रेल।

राकिम—

गालिब

१०

(२९ अप्रेल १८६०)

आओ साहब, मेरे पास बैठ जाओ।

आज यकशबे का दिन है। सातवी तारीख शव्वाल की और २९ वी अप्रेल की। सुबह को भाई फजलू, जिनको मीर काजिमअली भी कहते हैं और हमने अहतालमद्दौला खिताब दिया है, वो तीन पाव खजूरे और एक टीन का लोटा और दो सूत की रस्सियाँ लेकर भटियारे के टट्टू पर सवार होकर, अलवर को रवाना हुए। पहर दिन चढे डाक का हरकारा तुम्हारा खत मेरे नाम का, और एक हुक्म नामा महकमे लाहौर मौसूमा मीर काजिम अली लाया। यहाँ तक लिख चुका था के तुम्हारे मामूँ साहब मय[१] सज्जाद मिर्जा तशरीफ लाये। तुम्हारा खत उनको दे दिया वो उसको पढ रहे हैं और मैं ये खत तुमको लिख रहा हूँ। पहले तो ये लिखता हूँ के हुक्मनामा मीर काजिम-अली को दे देना और मेरी तरफ से ताजियत करना के खैर भाई सब्र करो और चुप हो रहो।

---

१ साथ।

सैयद यूसुफ मिर्जा के नाम

तारीख के दो कतो मे एक कता रहा। 'महरुखे[1] खुश खिराम' जगह 'महेरुख खुश खिराम' बना दिया है। कता अच्छा है, बशर्ते आँ के मुतवफ्फिया[2] का शौहर ये अलफाज अपनी जोजा के वास्ते गवारा करे।

ख्वाजा जान झूट बोलता है। वाली ए रामपूर को इस पिन्सन के इजरा मे कुछ दखल नही। ये काम खुदासाज[3] है, बअली[4] इब्ने अली तालिब अले सलाम। नाजिर जी ने तुम्हारे कौल की तसदीक की और कहा के हाँ मसविदा अर्जी का मेरे पास आ गया, मै तुमको दिखा दूँगा। खैर तुमने जो लिखा होगा वो मुनासिब होगा। खुदा रास लाये और काम बन जाये।

अलेक्जेडर हैडरली साहब मेरे दोस्त के फर्जन्द है और नेकबख्त और आदत मन्द है। मीर काजिम अली वगैरा की तनखाह मे मेरी सिफारिश को दखल नही है। तुम मीर काजिम अली से दरियाफ्त कर लो, हाँ दो मुकदमो मे मैने उनको दो खत लिखे, मगर उन्होने एक का भी जवाब नही लिखा और उन मुकदमो मे कोशिश भी नही की, अब इसको समझकर जो कुछ तुम लिखो उसके माफिक अमल मे लाऊँ।

नाजिर जी साहब और सज्जाद मिर्जा अपने घर गये। वो तुमको दुआ और सज्जाद को बन्दगी कह गया है। अपने आने मे जल्दी न करो। माँ की रजाजोई को सब उमूर पर मुकदम जानो। मै अभी रामपूर नही जाता। बरसात बाद, बशर्ते हयात जाऊँगा, याने अवाखिर अक्तूबर या अवायल नवबर मे कस्द है। यकीन है के ये खत दो दिन मीर काजिम अली के पहुँचने से पहले तुम्हारे पास पहुँचे। उनके नाम का हुक्मनामा बहुत अेहतियात मे अपने पास रहने देना। खबरदार! जाना न रहे। जब वो पहुँचें तब उनको हवाले करना।

---

१. चन्द्रमुख, अच्छी चाल वाला। २. स्वर्गीय। ३. ईश्वर कृत। ४. हजरत अली कृपा करे।

साहब, न खुम्स[1] न नज्र, ये बातें गैरियत की हैं। जिस तरह अपने और बच्चों को दूँगा मुजफ्फर मिर्जा को और तुमको भी उसी तरह भिजवा दूँगा। हमशीरा अजीजा को याने अपनी वालिदा को मेरी दुआ कहना।

मरकूमा यकशबा, वक़्ते नीमरोज, हफ्तुम शव्वाल व २९ अप्रेल।

—ग़ालिब

११

(९ मई १८६०)

यूसुफ मिर्जा को बाद दुआ के मालूम हो के तुम्हारा खत कल मगल को पहुँचा। आज बुध १७ शव्वाल और ९ मई को, उसका जवाब भेजता हूँ। खुदा की कसम! तामस हैडरली साहब से मेरी मुलाकात नही है। हाँ, अलख साहब से है, सो उनके नाम का खत लिखा हुआ तुमको भेजता हूँ, पढ़ कर, बन्द कर उनको दो और उनसे मिलो और जो कुछ वो कहे मुझको लिखो।

अहतलामद्दौला[2] भाई फजलू मीर काजिम अली बहादुर क्या जाने किताब किसको कहते है, और आगरा किस हथियार का नाम और सिकदरशाह कौन से दरख्त का फल है? मेरा उर्दू का दीवान मेरठ को गया। सिकन्दरशाह ले गये, मुस्तफा खाँ को दे आये। डाक मे उसकी रसीद आ गई। न 'बुरहाने कातै' न 'कातै बुरहान'।

कल जिस वक्त तुम्हारा ख़त आया उस वक्त मुंशी मीर अहमद हुसेन मेरे पास बैठे थे और इस वक्त सालिक मज्जूब बैठा हुआ है। ये दोनो साहब

१. पचमाश (शरा के अनुसार जजिया) और न भेट २. एक व्यंगपूर्ण उपाधि।

तुमको और भाई फजलू को सलाम कहते हैं। और भाई फजलू से ये कह देना के बइत्तफाक़े राय मुंशी मीर अहमद हुसेन, अब बाग की दरख्वास्त की अर्जी बेफायदा बल्के मुजिर[1] है। तुम्हारा कागज कीमती एक रुपये का मुंशी-जी के पास मौजूद है। वो उसको बेच कर रुपया तुमको भिजवा देंगे।

—ग़ालिब

१२

(१९ मई १८६०)

यूसुफ मिर्ज़ा,

क्यों कर तुझको लिखूँ के तेरा बाप मर गया। और अगर लिखूँ, तो फिर आगे क्या लिखूँ के अब क्या करो, मगर सब्र, ये एक शेवए[2] फरसूदा अब्नाए रोजगार का है। ताजियत यों ही किया करते हैं और यही कहा करते हैं के सब्र करो। हाय! एक का कलेजा कट गया है और लोग उसे कहते हैं के तू न तड़प। भला क्यों कर न तड़पेगा? सलाह इस अम्र में नहीं बताई जाती, दुआ को दखल नहीं, दवा का लगाव नहीं। पहले बेटा मरा, फिर बाप मरा, मुझसे अगर कोई पूछे के बे[3] सरोपा किसको कहते हैं, तो मैं कहूँगा यूसुफ मिर्ज़ा को।

तुम्हारी दादी लिखती हैं के रिहाई का हुक्म हो चुका था, ये बात सच है? अगर सच है तो जवाँमर्द एक बार दोनों कैदों से छूट गया न कैदे[4] हयात रही, न कैदे[5] फरंग। हाँ साहब, वो लिखती हैं के पिन्सन का रुपया

---

१. हानिकर। २. संसार का यह ढंग पुराना है। ३. सर्वथा निस्सहाय। ४. जीवन का बन्धन। ५. अंग्रेजों की जेल।

'फक' फारसी लुगत नही हो सकता, अरबी भी नही, रोजमर्रा उर्दू है, जैसा के मीर हसन लिखता है—

के रुस्तुम जिसे देख रह जाए फक

शोराए हाल के कलाम मे नजर नही आता।

'तकिया' लफ्ज अरबी उल अस्ल है। फारसी व उर्दू मे मुस्तमिल, दोनो जबानो मे हम बमानी 'बालिश' और हम बमानी 'मकाने फकीर' आता है, ईरान मे 'तकिया मिर्जा सायब' मशहूर है। 'गुले तकिया' लफ्ज मुरक्कब है। हिन्दी और फारसी से 'गुल' मुखफ्फफ 'गाल' का और 'तक़िया' बमाने 'बालिश' व छोटा गोल तकिया जो रुखसार के तले रखे 'गुले तकिया' कहलाता है। 'गल' बमानी फारसी अँगरेज़ी लुगत है। अँगरेज़ी जबान ने बगाले में सौ बरस से और दिल्ली-अकबराबाद मे साठ बरस से रिवाज पाया है, गुले तकिया। वजा किया हुआ नूरजहाँ बेगम का है। जहाँगीर के अहद मे अहले हिंद क्या जानते थे के गुल क्या चीज है ?

'माने[1] मुफर्रद वलफ्जे जमा' इस जुमले को मैं अच्छी तरह नही समझा, 'मानी' मुफर्रद 'मआनी' जमा। और ये जो उर्दू के मुहावरे मे तकरीर करते हैं के 'इस शेर के माने क्या है' या 'इस शेर के माने क्या खूब हैं' इसमे दखल नही किया जाता। खासो आम की जबान पर यो ही है। 'मआनी' की जगह 'मानी' बोलते हैं। 'रत' लफ्ज हिन्दी उल अस्ल 'रथ' है, बहाये[2] मुज़मिरा। बाज़ मुजक्कर बोलते हैं, बाज़ मुअन्नस शेर बहुत अच्छा है, साफ व हम वार।

राक़िम—ग़ालिब

२

मियाँ,

कल ज़ैनुल आबदीन 'फौक' का खत मय अशार के, टिकटदार लिफाफे के अन्दर रख कर बमबीले डाक भिजवा दिया है। आज सुबह को तुम्हारा खत

१. एकवचन के लिए जो शब्द आता है वही बहुवचन के लिए भी।

२. जिसमें हकार लुप्त है।

आया। दोपहर को मैंने जवाब लिखा। तीसरे पहर को रवाना किया। 'मोतियो का फुनका' अलबत्ता बहुत मुनासिब है। खैर 'मोतियो का निवाला' भी सही।

हाफिज के शेर की हकीकत जब समझोगे के कवायदे मुकर्ररा अहले सुख़न दरयाफ्त कर लोगे। कायदा ये है के अगर मतले मे या और अशार मे काफिये की ऐहतयाज आ पडे और उसकी इत्तला एक शेर मे कर दे तो वो ऐब जाता रहता है। जैसा के उस्ताद का कता है, उसमे 'रेव' वा 'गरेव' व 'कालेव' काफिया है और शेर अखीर कते का ये है—

गलत[1] कर्दम दरी माना के गुफ्तम
जनखदाने निगारे खीशरा 'सीव'

हालाँ के सही 'सेब' है, 'व' वाये मुद्देहा ? शायर ने इत्तला दी के मैंने गलत किया जो 'सीव' लिखा। इसी तरह हाफिज़ फरमाता है—

विवी, तफाउते राह अज कुजास्त ता बकुज़ा !

हासिल इसका ये के 'देख कितना तफाउत[2] है! एक हरफे रवी साकिन और एक जगह मुतहर्रिक। मगर यहाँ अभी मौतरिज[3] को गुजाइश है के वो ये कहे के हाँ, तफाउत को हम भी जानते है। सवाल ये है के ये तफाउत तुमने क्यो रखा ? इसका जवाव पहला मिसरा है—

सलाहेकार कुजा व मने खराव कुजा !

याने हाफिज फरमाता है के मै आशिके[4] ज़ार दीवाना हूँ। सलाहेकार से मुझको क्या काम ? पूरव के मुल्क मे जहाँ तक चले जाओगे तज़कीरो तानीस का झगड़ा वहुत पाओगे। 'साँस' मेरे नजदीक मुजक्कर है, लेकिन अगर कोई मुअन्नस वोलेगा तो मै उसको मना नही कर सकता, खुद साँस को मुअनस न कहूँगा।

---

१. एक नुक्ते वाला। २. अन्तर। ३. आक्षेप कर्त्ता। ४. अत्यधिक प्रेमी।

मीर अहमद हुसेन 'मयकश' के नाम

१

(१८५६ ई०)

मियाँ,

अजब इत्तेफाक है। न मैं तुम्हारे देखने को आ सकता हूँ और न तुम मेरे देखने को कदमरंजा फरमा सकते हो। वो कदमरजा कहाँ से करो? सरापा रजा हो। लाहौलावला कूव्वता। ये तातील के दिन क्या नाखुश गुजरे। यूसुफ मिर्ज़ा मे, मीर सरफराज हुसेन से तुम्हारा हाल सुन लेता हूँ और रज खाता हूँ। खुदा तुम्हारे हाल पर रहम करे और तुमको शफा[1] दे। खाहिश ये है के नातवानी का उज्र न करो और अपना हाल अपने हात से लिखो, वद्दुआ।

—असद

२

(१८५६ ई०)

भाई मयकश,

आफरी, हजार आफरी! तारीख ने मजा दिया। खुदा जाने वो खुर्मे[2] किस मजे के होंगे जिनकी तारीख ऐसी है। देखो साहब—

कलन्दर[3] हर चे गोयद दीदा गोयद

---

१. स्वास्थ्य। २. खजूर। ३. कलन्दर जो कुछ कहता है आँखो देखा कहता है।

तारीख देखी। उसकी तारीफ के खुर्मे खाएँगे। उसकी तारीफ करेंगे। कही ये तुम्हारे खयाल मे न आवे के ये हुस्ने[1] तलब है के नाहक तुम दीन मुहम्मद गरीब को दुबारा तकलीफ दो। अभी रुक्का लेकर आया है। अभी खुर्मे लेकर आवे। लाहौलावला कुवता इल्लहा बिल्लाहि अली उल अजीम। अगर बफजे मुहाल तुम यो ही अमल मे लाओगे और मियाँ दीन मुहम्मद साहब के हात खुर्मे भिजवाओगे तो हम भी कहेगे—

ताजा[2] शै बेहतर, बारह सै बहत्तर

१. किसी वस्तु को स्पष्ट रूप से न माँगकर उसकी प्रशसा करना।
१. ताजा चीज अच्छी होती है। सन् १२७२ (हि०)।

सैयद गुलाम हुसनैन 'क़द्र' बिलगिरामी

१

(२३ फरवरी १८५७)

वन्दापरवर,

आप के इनायत नामे के आने से तीन तरह की खुशी मुझको हासि हुई। एक तो ये के आपने मुझको याद किया, दूसरे आपकी तर्ज़[1] इबार मुझको पसद आई, तीसरे आप हजरत अल्लामा अब्दुल जलील और 'आजा मगफूर की यादगार है और मैं उनके हुस्ने[2] कलाम का मौतकद[3]। खाहि आपकी क्या मुमकिन है के मकबूल न हो? जब मिजाज मे आये, आप नज नस्र भेज दे, मै देखकर भेज दिया करूँगा और आराइशे[4] गुफ्तार याने हक्क इस्लाह मे कोशिश दरेग न होगी।

बारह बरस की उम्र से कागज नज्मो नस्र मे मानिन्द अपने नाम ए आलाम के स्याह कर रहा हूँ। ६२ बरस की उम्र हुई। ५० बरस इस शेवे की वरजिश[6] मे गुजरे, अब जिस्मो[7] जान मे तावो[8] तवाँ नही। नस्र फारसी लिखनी यककलम[9] मौकूफ, उर्दू सो उसमे भी इबारत आराई[10] मतरूक, जा ज़बान पर आवे वो कलम से निकले। पाँव रकाब मे है, और हात बाग पर, क्या लिखूँ और क्या करूँ? ये शेर अपना पढा करता हूँ—

---

१. लेखन शैली। २. काव्य सौन्दर्य। ३. भक्त। ४. वाणी की सजावट। ५. सशोधन। ६. अभ्यास। ७ शरीर और प्राण। ८ सामर्थ्य। ९. सर्वथा। १०. अलकृत भाषा।

सैयद गुलाम हुसनेन 'कद्र' बिलगिरामी

उम्र भर देखा किए मरने की राह
मर गए पर, देखिए, दिखलाएँ क्या ?

आप मुलाहिजा फरमाएँ, हम आप किस जमाने मे पैदा हुए है ! और की फैजरसानी और कद्रदानी को क्या रोये ? अपनी तकमील ही की फुरसत नही। तवाही रियासते अवध ने वाओं के वेगाना महज हूँ, मुझको और भी अफसुर्दा दिल कर दिया। बल्के मै कहता हूँ के सख्त नाइन्साफ होगे वो अहले हिन्द जो अफसुर्दा दिल न हुए होगे। अल्लाह् ही अल्लाह् है ?

कल आपका खत आया। आज मैने जवाव लिखा, ताके इन्तजारे जवाव मे आपको मलाल न हो। वस्सलाम माउल अकराम।

निगाश्तए विस्तो[1] सुअम फरवरी सन् १८५७ ई०।

२

(१८५७ ई०)

हजरत,

मैने चाहा के हुक्म वजा लाऊँ और इवारत को इस्लाह दू, मगर मै क्या करूं ? आप गौर करे के इस्लाह की जगह कहाँ है ! अगर वमिस्ल आप खुद नजरे[2] सानी मे कोई लफ्ज वदलना चाहे तो हर्गिज् जगह न पायें। जिस कागज पर इस्लाह मजूर होती है, तो वैनुल[3] सुतूर ज्यादा छोडते है। जव इस इवारत को और कागज पर नक्ल करूँ तव हवको इस्लाह का तौर वने। मेरा काम इस्लाहे इवारत है, न कितावत।

---

१. २३। २ पुनर्निरीक्षण। ३. पक्तियो का अन्तर।

[1]ज़रदश्ते आतिश कदा इलाआखिर ही,

ज़रदश्त को आतिशकदे से वो निस्बत नही, जो साकी को मयखाने से। ज़रदश्त ब ऐतकादे[2] मजूस पैगम्बर था, आतिशकदे के पुजारी को 'मोबद' और 'हेरवद' कहते है।

'आबे हरामे इश्तियाक'। 'आबे हराम' 'शराब' को महले मुनासिब पर कहे तो कहे वर्ना 'नबीज' और 'वादा' और 'रहीक' और मय और 'करकफ़' और 'काविक' की तरह इस्म नही। नाचार 'शरावे शौक' या 'वादए शौक' लिखना चाहिए। 'इश्तियाक' से 'शौक' बेहतर है।

'मा हम्दो सह जायगी अली उलतवातरज़दाबूदम'

'मा ज़दा बूदम' तुम्हारा दिल इस तरकीब को कुबूल करता है? 'मनज़दा बूदम' या 'मा ज़दा बूदम'। इसके अलावा 'दो सेह जामगी व काफे फारसी याने चे? "जाम" 'मालूम' काफे तस्गीर[3] का 'जामक' चाहिए 'जामत' क्या! मगर ये पैरवी 'कतील' की है, के वो ईरानियो की तकरीर के माफिक तहरीर अपनी बनाना चाहता है। ज़हूरी, जलाल, जहीर, ताहीरे वहीद किसके हाँ जाम को जामक नही लिखा। 'दो सह जामगी' की जगह 'दो सह सागर' या 'दो सह कदह' लिखो।

'पा चनारी गुलिस्ताँ वर वागवान अस्त व तीमारी वो वरकद्रदाँ' मैं इस फिक्रे को नही समझा याने 'वरवागवाँ' क्या है! 'तीमारी' क्या है? 'तीमार' बमाने 'बीमारदारी' व गमखारी है। लफ़्ज खुद फादए माने मस्दरी करता है, तो याये मस्दरी कैसी?

---

१. अग्निपूजक जरदश्त इत्यादि। २. अग्निपूजक पारसियो के विश्वास के अनसार। ३. छोटा, लघु 'क'।

सैयद गुलाम हुसनेन 'कद्र' बिलगिरामी

'तीरा शबे हा बसर आमद'

'तीरा शबीहा बसर आमद'

खैर, "तीरा शबी हा बसर आमद", याने चे ?

'लैलाए दीदम के बा हजार तुर्रे ए तर्रार'। 'तुर्रा' जुल्फ को कहते है, वो
ो होती है, न के हजार दर हजार।

'जामगी' मुकर्रर देखा गया। मालूम हुआ के हज़रत ने जो कही 'जामगी-
ख़ार' देखा है, तो उसको 'जामखार' बमाने शराबखार समझा है। ये गल्त है।
जामगीखार उस नौकर को कहते हैं के जिसकी तनखा कुछ न हो। रोटी
कपड़े पर उससे काम लेते हैं। 'निज़ामी' नौकर हज़रत खिज्र के कितना
रोजीनाए सुखन पाते हैं, जो खिज्र फरमाते है के—

ऐ जामगी खारे तदबीरे मन।
ज जामे सुखन चाशनीगीरे मन ?

'दरे तोबा बाज अस्त व बाब रहमत फराज।' माने इसके ये के 'तोबा
का दर खुला है, और दरवाजा रहमत का बन्द।' 'फराज़' अजदाद मे से नही
है। 'बाज़' खुला, 'फराज' बन्द। 'कद्र जाफरान जार रा बूए गुल कर्द।'
इसका लुत्फ कुछ मेरी समझ मे नही आया। 'कद्रे जाफरान जार' क्या ? और
फिर उसको किसने 'बूए गुल' कर दिया ?

'सिकर्रर' कुदाम जबानस्त अरबी या फारसी ?

'हस्बे लियाकते खुद' काफी अस्त। 'खूदम' चे महल दाहरद ? मगर
हमां शेवए 'कतील'। 'बन्दा मजबूरम' 'हमा सिक्कए कतील'। साहबे बन्दा,
तहरीर मे असातिजा का ततब्बो करो, न मुगल के लहजे का। लहजे का
ततब्बो[1] भांडो का काम है, न दबीरो[2] और शायरी का। ऐसी तकलीद[3] को
मेरा सलाम। फक्त। ज्यादा ज्यादा !

---

१. अनुकरण। २. लेखक। ३. अनुकरण।

जनाब नौरोज अली साहब की खिदमत में मेरा सलामे नियाज अर्ज कीजिएगा। और ये कहिएगा के बैरग खत का एक आना देना पड़ेगा। हर महीने मे आठ खत तक बल्के सोलह खत तक मैं न घबराऊँगा, भेजिए। रहा जवाब का लिखना, काश, आप यहाँ होते औरा मेरा हाल देखते तो जानते। हर रोज सुबह को किले जाना, दोपहर को आना। बाद खाना खाने के हज्रत के मस्विदो का दुरुस्त करना। अहबाब के खत लिखने की फुरसत बहुत कम हात आती है। वस्सलाम।

३

यार से छेड चली जाए 'असद'
गर नही वस्ल तो हसरत ही सही

नासिक—

रहन रखवा कर तेरा अम्मामा[1] दिलवा दूँ शराब
ज़ाहिदा तुमको करूँ मरहूने[2] अहसाँ तो सही

इस 'सही' और 'तो सही' का तर्जुमा फारसी लुगत मे क्या आया है ?

—कद्र।

जवाब—

अस्मा[3] के या लुगात के वास्ते ये बात है के अरबी मे ये कहते हैं और फारसी मे ये और हिन्दी मे ये। तर्जे गुफ्तार हिन्दी का फारसी, और फारसी का हिन्दी कभी नही हो सकता, मसलन 'चोरी का गुड मीठा' इसकी फारसी न पूछेगा मगर नादान, 'सही' और 'तो सही' की फारसी क्योंकर बने ? ये रोज़मर्रा उर्दू है—

'गर नही वस्ल तो हसरत ही सही।'

---

१. साफा। २. कृतज्ञ। ३ संज्ञाएँ।

इसी मतलब के मुताबिक फारसी इबारत यो हो सकती है—

वस्ल[1] अगर नीस्त हसरत नीज आलमे दारद
जाहिदा तुझको करूँ मरहूने अहसाँ तो सही

एक नौह[2] की तवीह, एक किस्म का दावा है। नामर्द बाशम अगर "फलाकार 'न कुनम' ता फलाकार न कुनम निया सायेम।" अहले हिन्द की फारसी इसी तरह 'खाम' और ना तमाम रही के उसूल मे उन्होने फारसी के कवायद की ततवीख[3] अरबी से चाही और उर्दू के खास रोजमर्रा की फारसी बनाई कैसी ? हिन्दी में 'कुछ नही' की जगह 'खाक नही' बोलते हैं। फारसी मे 'हे च नीस्त' की जगह 'खाक नीस्त' कोई न कहेगा। 'कतील' चारो शाने चित्त गिरा है—

'कुश्ता बरकुश्ता तपा बूद दिगर खाक न बूद याने 'हे च न बूद' ला हौला वला कुव्वता ! एक जगह से मुझको खत आया, २ चूँ के मैं बल्लीमारो के मुहल्ले मे रहता हूँ, उसने पता लिखाके 'दर[4] मुहल्ला गुर्बा कुशाँ', वाह फारसी !

गालिब—

मर्दुम[5] अजमन दास्ता रानदो अज दौराने चर्ख
गश्त सर्फे तोमए जागो जगन अनकाय मन

---

१. यदि मिलन नही हुआ है तो उसकी आकाक्षा ही सही। २. प्रकार। ३ पुष्टि। ४. बिल्ली मानने वालो का मुहल्ला। ५. लोग आकाश के चक्कर और मेरी दुरवस्था की कहानी कहा करेंगे। मेरे अनके (एक काल्पनिक पक्षी) को कव्वे और चील खा गये।

४

(१८५७)

कद्र—

काट कर गैरो का सद लाये जो मेरी नज्र को
डाल दूँ सोने का आँडूँ पाव मे जल्लाद के

'आँडू' बदाले हिन्दी या बदाले अरबी : भाई, वल्लाह ! ये लफ्ज कभी मेरी ज़वान पर नही आया। मैं इसकी हकीकत से आगाह नही। हाँ सुना है, के फलाना सरदार ऐसा वहादुर सावित कदम था के मारके कारज़ार[1] मे हाथी के पावो मे 'आँडू' डलवा दिए। ज़ाहिरा कोई चीज होगी, के हाथी को माने[2] रफ्तार हो। इससे ये मालूम होता है के वो एक वदे खास है। इस्तेमाल इस लफ़्ज का महल इनाम मे न चाहिए।

'आवस्तन' और 'आवस्त' के वाव में क़ौल मौतरिज का गलत है के 'आवस्त' को वजाए 'आवस्तन' जायज़ समझता है। 'आवस्त' कोई लफ्ज़ नही। अस्ल लफ़्ज़ और 'आवस्तनी' मजीद[3] अलैं, ये दोनो सही, वल्के आवस्तनी ज्यादा फसीह। अगर मौतरिज 'फैज़ी' को नही मानता, तो आप मौतरिज को क्यो मानते है ? 'फैज़ी' की सनद मकवूल और मसमू। 'अरमुगा' और 'अरमुगानी' 'आवस्तन' और 'आवस्तनी' ये तो फारसी लुगत है। फारसी-गोयो ने हुजूर को हुजूरी और फुजूल को फुजूली, और नुक्सान को नुक़्सानी लिखा है।

आज तक सुना नही के 'रब्बे किब्रिया' किसी ने लिखा हो। हाँ 'किब्रिया ए-इलाही' याने खुदा की वुज़ुर्गी, इस नज़र पर रब्बे कवीर लिखेंगे, न 'रब्बे

---

१. लड़ाई के मैदान में। २. गति में वाधक। ३. अधिक।

किब्रिया।' 'किब्रिया' सिफते वाकई है, लेकिन अगर सिफत से मौसूफ मुराद रखे तो मुमकिन है, जैसा के 'जैद-अद्ल' बजाय 'जैदे आदिल।' 'जनाबे किब्रिया' बजाये 'जनाबे इलाही' जायज। एक नुक्ता दकीक है। याने मजहब[1] हक्के इमामिया मे मजमूए[2] सिफात अैनेज़ात है। पस, अगर खुदा को महज कुदरत का महज अजमत कहा तो माफिक हिदायते नबी और अईमा[3] के हमारा कौल दुरुस्त है।

'हाल' की जगह 'हालात' या 'अहवाल' लिखना कबीह नही है। खुसूसन 'अहवाल' के ये बमानी वाहद मुस्तमिल है। और ये इस्तेमाल यहाँ तक पहुँचा है के 'अहवाल' बमानी जमा मुस्तमिल नही होता। जैसे हूर के बमानी हूरा के। अहले फारस इसको सीगावाहिद करार देकर अलिफ, नून के साथ इसका जवाब लाते है। 'सादी' कहता है—

हूराने[4] बहिश्ती रा दोजख बुवद आहराफ। अज़[5] दोजखियाने पुर्स के अहराफ बहिश्त अस्त"।

बल्के हूर को हूरी कह कर जमा हूरियाँ लाते हैं। हाफिज लिखता है

शुक्रे[6] ईजद के मियाने मनो ऊ सुलह फेताद
हूरियाँ रक्स कुना सागरे शुकराना ज दन्द

---

१ शिया सम्प्रदाय। २. सब विशेषताओ का तत्व। ३. इमाम का बहुवचन। ४ स्वर्ग की हूरी के लिए 'आहराफ' (स्वर्ग और नरक के बीच का एक स्थान) नरक के तुल्य है। ५ यदि नरकवासियो से आहराफ के सम्बन्ध मे पूछा जाय तो वे कहेगे यह हमारे लिए स्वर्ग है। ६. मुझमे और उसमे जो समझौता हुआ वह ईश्वर की कृपा है। हूरे नांचती हुई धन्यवाद के प्याले पर प्याले पी गई।

मैंने एक मक्ते मे हाल की जगह अहवाल लिखा है—

जाने[1] गालिब तावे गुफ्तारी गुमांदारी हनोज
सख्त वेदर्दी के मी पुरसी ज मा अहवाले मा

आखिर मुझको और फैजी को मौतरिज से ज्यादा असातिजे[2] अजम के कलाम पर इत्तिला है। वो आवस्तनी[3] क्यो लिखता और मै अहवाल क्यो लिखता ? 'सायव' की एक गजल है के जिसका एक मिसराय है—

हर[4] लहजा दारम नीयते चूँ क़ुर्रं ए रम्माल हा

इसी गजल में उसी ने एक जगह 'अहवाले हा' लिखा है।

दाद का तालिब
—गालिब

'मुल्के मगरिब, बल्दए देहली, कटरा सौदगरा ये क्या लिखा करते हो ? शहर का नाम और मेरा नाम काफी है। 'महल्ला' गलत, 'मुल्क' जायद, हिन्दुस्तान में दिल्ली को सब जानते हैं और दिल्ली मे मुझको सब पहचानते हैं।

५

'तईं' का लफ्ज़ मतरूक व और मरदूद, कबीह, और गैर फसीह। ये पजाब की बोली है। मुझे याद है के मेरे लडकपन में एक असील[5] हमारे हां नौकर

---

१ हे गालिब के प्राण, तुम समझते हो मै अब भी बातचीत कर सकता हूँ। यह धारणा ठीक नही। तुम निर्दय हो जो मुझसे मेरा हाल पूछते हो। २ ईरान के आचार्य। ३. गर्भवती। ४. जिस तरह ज्योतिषी जब जन पासे डालता है, भविष्यवाणी में परिवर्तन होता है, इसी तरह मेरी भी धारणा बदलती रहती है। ५. सेविका।

रही थी। वो तई, बोलती थी तो बीवियाँ और लौंडियाँ सब उस पर हँसती थी।

खरूशे[१] रादे गर्रा मी शवद पा दर रिकाब अज़ बीम
अँनाँ बर सीना चूँ पेचद कुरगे बर्क जौलानश

ये शेर 'नातिक' का है और नातिक कौम का बलूच, सिन्ध का रहने वाला। उसका मन्तिख़ क्या और उसकी जबान क्या ? 'या दर रकाब होना' इबारत है सैरो सफर के आमादा व मुस्तैद होने से, खाही मशाए अज़ीमत[२] ख़ौफ हो, खाही कोई और सबब। 'अँनाँ बर सीना पेचीदन' मोहमल व महज मोहमल, न रोजमर्रा न मुहावरा न इस्तला, न मुफीदे माने दिरग, न मुफीदे मान ए शताब।

—ग़ालिब

'तय्यार' सीगा मुबालिगे का है। लुगते अरबी इमला इसकी तायें[३] हुत्ती से। 'तैर' सलासी मुजर्रद[४]। 'तायर' फायल, 'तियूर' जमा। बाजदारो में इस लफ्ज ने जनम लिया। हकीकत बदल गई। तोय ते बन गई। याने जब कोई शिकारी जानवर शिकार करने लगा, बाजदारो ने बादशाह से अर्ज़ की के "फलाँ बाज, फलाँ शकरा, तैयार शुदा अस्त व सैद[५] मी गीरद"। बहरहाल अब तायें[६] कुरेशत से ये लफ्ज नया निकल आया। इस लफ्ज को मुस्तहृदिस[७] और दरअस्ल उर्दू और ब ताए कुरेशत बमानी आमादा अगख़ास और अशिया पर आम तसव्वुर करना चाहिए और इबारते फारसी में इस्तेमाल इसका कभी जायज़ न होगा।

—गालिब

---

१ जब विद्युत-रूपी घोडा सजकर तैयार होता है तो भय के मारे गर्जन भी भागने के लिए प्रस्तुत हो जाता है। २. इच्छा। ३. तोय ط। ४ एकाकी। ५ शिकार पकडा। ६ ते ت। ७ नागशील।

फकीर के नज़दीक नकाब और कलम और 'दही तर्जुम ए जुगरात[१]' ये तीनो इस्म मुज़क्कर हैं। मुनकिर[२] से मुझे वहस नही, मुजीब[३] का मैं अहसानमन्द नही। लुगते फारसी और रोजमर्रा फारसी हो तो अहले जबान के कलाम से सनद करें। मन्तिके फारसी मे तस्कीरो तानीस कहा? इस अमर के मालिक और अहले ज़बान हम है और ये हम सीगे मुत्कल्लिम माउल गैर है, याने हम और तुम मजमू[४] ए शुरफा और शोअरा ए देहली व लखनऊ। ऐसे दस आदमी का इत्तेफाक सनद है। ज्यादा झगडा वे फायदा।

—गालिब

बनाई 'कद्र' की गजलें जनाब 'गालिब' ने
तमाम जौहरे तेगे ज़वाँ उभर आए

गजल की जे यहाँ साकिन है। लेकिन ये सुकून ज़ायज़ है। 'कदम मुफ-र्रद'[५], कदमो जमा है।

"खो रहा हूँ" मुनाद्दी है। पूरवी इसको लाज़मी जानते है। 'लाजमी सो गया हूँ।' हम कहेगे जागते है, अह्ले पूरब कहेगे—जगते है। जानो दिल, दिलो जिगर ये सही। जानो जिगर टकसाल बाहर। फरियाद मोअन्नस है। 'फरियाद करनी चाहिए।' फरियाद करना अँग्रेजी बोली है। फिकर मुअन्नस है। माशूक को हमज़ाद[६] बनाना, जुरफा को अपने ऊपर हँसाना है।

ले राकमे[७] अँदेशए[८] बलन्दसे ला मकाँ नवर्द
चूँ खास्त वाये जाहे तुरा नर्द वाँ निहाद

---

१ दही। २ अस्वीकार करने वाला। ३ समर्थक। ४ प्रतिष्ठित लोग। ५ एक वचन। ६ अपने जैसा बनाना। ७ लेखक। ८ जो चिन्तन उच्चतम ईश्वर के निवास स्थान तक पहुँचा उसी ने जब तुम्हारी प्रतिष्ठा का स्थान देखना चाहा तो सीढ़ी लगाई। पहाड़ पर चढ़ने के बाद भी आकाश अपने ही स्थान पर दिखाई देता है, उसी सहस्रों सीढ़ियाँ फर्कदान नक्षत्र पर रखीं किन्तु वह तुम्हारे रहस्य को न समझ सका।

सैयद गुलाम हुसनेन 'कद्र' विलगिरामी

दीदश हमा वजा चूँ सिप्हेर अज फरागे कोह
वादज हजार पाया के बर फर्कदाँ निहाद

पहले मिसरे मे अँदेशा फायल[1] है। 'खास्त' का जो मिसर ए सानी मे, 'निहाद' बमानें मस्दरी है। दूसरे शेर मे 'दीद' का और 'निहाद' का फायल वही अदेशा है। अब एक बात समझो जब पहाड़ के पास से आसमान को देखोगे, तो ये मालूम होगा के हम पहाड़ पर चढ जाएँ, तो आसमान को छू लें। मगर जब चोटी पर पहुँचोगे तो आसमान को उतना ही दूर पाओगे, जितना जमीन से नजर आता था। 'फ़र्कदाँ' एक सूरत है या एक कौकब[2] है आठवे आसमान पर। हमारे कयास मे आया के फ़र्कदाँ पर से बाम जाहे ममदूह नजर आवेगा बहुत करीब। हम फर्कदाँ पर गये, वहाँ भी करीब न पाया। फर्कदाँ पर हजार पाई रखी, उस पर चढ कर देखा, तो बामे ममदूह मे और उस मुकाम मे उतना ही वोद है जितना पहाड मे और आसमान मे। ये मुवालिगा हदे[3] तवलीग व गलो से गुजर गया।

'लगा देते हो' और 'उठा देते हो' खिताबे जमे हाजिर है[4] और ताज़ीमन मुफरद पर आता है याने तुम। माशूके मजाजी वो तुम और तू दोनो तरह याद करते हैं खुदा को या 'तू' कहते हैं या सीगा[5] जमा गायब। याने सीगा जमा गायब का नजर वकरीना इफादा कजा व कद्र का रखता है। तुम्हारी गजल मे दो चार जगह 'देते हो' इस तरह आया है के महवूवे मजाजी उससे मुराद कभी नही हो सकता।

'लाके दुनिया मे हमे जहरे फना देते हो
हाय इस भूल भुलैया मे दगा देते हो'

---

१. कर्म। २. एक नक्षत्र। ३. अत्युक्ति की सीमा। ४. आदर में भी एक के लिए बहुवचन आता है। ५. अन्य पुरुष बहुवचन।

कहो किससे कहते हो ? सिवार्य कजा व कद्र के कोई रडी, कोई लौडा इसका मुखातिव नही हो सकता। और अलाहाज़ल कयास दो-एक शेर और भी। नाचार सीगा जमा रख दिया ताके 'खूबाँ' और 'वुताँ' की तरफ जमीर[२] राजे हो या शख्से वाहिद की तरफ 'आप' के लफ्ज़ के साथ, या कजा व कद्र की तरफ। अव खिताव माशूकाने मजाजी[१] और कजा व कद्र मे मुश्तरिक रहा।—गालिव।

'वुअ्रदा' और 'वाशिद' के दोनो सीगे मुजारे के है, वमाने 'हस्त' आते है या नही ?—कद्र।

अलवत्ता आते है।—गालिव।

(सवाल) नज़्मो नस्र, माज़ीमुतलक[२] को माज़ी इस्तमरारी[२] के माने पर लिखना कैसा है ?—कद्र

वेजा है। जव तक अलामते इस्तमरार न हो, मानी इस्तमरारी क्यो कर लिये जाएँगे।—गालिव

(सवाल) फारसी मे मसदर मुक्तजव और गैर मुक्तजव की क्या शनाख्त है ?—कद्र

(जवाव) खुद अरवी में मसदर की सिफत मुक्तजव नही आई, फारसी मे कहाँ से होगी ? मुक्तजव सिफ़त वहर की है, न सिफत मसदर की।—गालिव

(सवाल) किस किस्म के मसदर लाजमी से मसदर मुताद्दी वनता है और किन तौर के मसदर मे नही वनता है ?—कद्र

(जवाव) जव लाजमी को मुताद्दी करना चाहें, तो मुजारअ में से मसदर वनाएं और उसमें फक्त अलिफ, नून या अलिफ-नून और तहतानी वढ़ाएँ, मसलन 'गुज़्तन' को 'गुज़ुतान्दन' न लिखेंगे। 'गर्दद' से मसदर वनाएँगे गर्दांदन

---

१. सांसारिक प्रेमिका। २. पूर्णभूत।

और उसको 'गर्दन्दिन' और 'गर्दानीदन' कहेगे। जिस मसदर के साथ मुजारअ न होगा वो मुताद्दी न बनेगा, जैसे—'बरश्तन' और 'खस्तन'।—गालिब

(सवाल) 'पनाह' का तर्जुमा लुगाते उर्दू मे क्या आया है?—कद्र

(जवाब) उर्दू मुरक्कब है फारसी और हिन्दी से याने 'पनाह' का लफ्ज़ मुश्तरिक है उर्दू मे और फ़ारसी मे। 'पनाह' का तर्जुमा उर्दू मे पूछना नादानी है। हाँ, पनाह की हिन्दी आसरा है।—गालिब।

'बर न आना' फ़सीह, 'न बर आना' टकसाल बाहर, काफिया हाय असली अलिफिया सैकडो है। उनको छोड कर 'नुस्खा' और 'नामा' और अफसाना इन अल्फाज को काफिया कहना तुम्हारे नजदीक नामुनासिब नही? ऐसा काफिया गजल भर मे एक जगह लिखो।

—ग़ालिब

६

हजरत,

आप के खत का कागज बारीक और एक तरफ से सरासर सियाह। दूसरी तरफ अगर कुछ लिखा जाए तो मेरी तहरीर एक तरफ, तुम खुद अपनी इवारत को दुरस्त न पढ सकोगे। नाचार जुदागाना वरक पर सवालात का जवाब लिखता हूँ।

'रग' व वजने 'सग', तर्जुमा 'लौन' और लफ्ज फारसी उल अस्ल है। जब इसको उर्दू मे मुन्सरिफ या बकौले बाज़े मत्सर्रिफ करेगे, तो नून का तलफ्फुज मौहूम सा रह जाएगा।

'रँगना' बवजने 'चद जा' न कहेगे। बल्के वो लहजा और है, जैसा के इस मिसरे मे—'हमने कपडे रँगे है शगरफी'—ये सही और फसीह है।

हमने रँगे है कपडे शंगरफी बऐलान नून गँवारी बोली और गैर नहीं और कबीह है।

'खिराम' को कौन मुअन्नस बोलेगा, मगर वो के दावाए फसाहत से हात धो लेगा। 'रफ्तार' मुअन्नस और 'खिराम' मुजक्कर है। 'रफ्तार' की तानीस को 'खिराम' की तानीस की सनद ठहराना कयास माउल फारिक है।

हरफे[1] मसरूरी, जिसको सनाई भी कहते हैं मौहेदा[2] से जाए[3] मौजमा तक अलिफ की जगह तहतानी[4] भी कुबूल करते हैं। मौलवी आले नबी सहारनपुरी और मौलवी इमाम बख्श देहलवी में इस बात पर बड़ा झगड़ा हुआ। मौलवी इमाम बख्श बा को बे कहना जायज नही रखते थे। आखिर मौलवी आले नबी ने अइम्म ए फन्ने कलाम के कलाम से उसका जवाज[5] साबित कर दिया मगर सिर्फ अजरूए तलफ्फुज और उसकी इजाजत का कोई कायदा खास इसके वास्ते नही। उर्दू में ता को तोय और जा को जोय कहते हैं और बाकी हुरूफ के आखिर में तहतानी बोलते है। लिसाने[6] अरब व अजम में मुस्हदा से जाए मौजमा तक अवाखिरे हुरूफ में अलिफ भी लाते हैं और तहतानी भी। 'ता' 'जा' को 'ता' 'जा' ही कहेंगे, न 'तोय,जोय' न 'ते, जे' अलाहाजल[7] कयास हुरूफ बाकया।

राक़िम—असदुल्ला खॉं

अनवरी—

> बअहदे[8] जूद तो दायम बयक शिकम जायद
> जे गायते करम अन्दर करामे तो बे नेस्त

---

१ उर्दू-वर्णमाला के दो नुक्ते वाले अक्षर। २ एक नुक्ते वाले अक्षर से लेकर। ३. 'ज़े' तक। ४. नीचे नुक्ता रखने वाले अक्षर। ५. प्रमाण। ६ अरबी और अन्य भाषाएँ। ७. अन्य अक्षरों के सम्बन्ध में भी यही समझा जावे। ८ तेरी उदारता की यह बात है कि अपने सामने काम में [illegible] के लिए आप 'न' का शब्द नहीं बोलते। प्रश्न और स्वीकार दो भिन्न शब्द नहीं है। यदि 'नकार' सुनाई देता है तो केवल 'नै' (वंशी) शब्द में ही।

सैयद गुलाम हुसनेन 'कद्र' बिलगिरामी

जमाना सौते सवालो सदाए आरे रा
व अैतकादे तो सद जूस्त नून मगर नैरा

७

(१८५८ ई०)

हजरत,

क्या फरमाते हो ? 'हवा भी हो', 'कजा भी हो' इस रदीफ के साथ काफिया मामूली आ नही सकता, 'बेताबी हो' 'महताबी हो' क्योकर दुरुस्त होगा ? वहाँ मौहद्दा के माबाद हाय हव्वज है, यहाँ मौहद्दा के आगे। 'चापी' के वाए फारसी और या ए हत्ती है, 'चापी' और 'कापी' और 'रापी' और 'वापी' ये काफिए हम्दगर हो सकते हैं। 'चापी' लुगते अँगरेजी है। इस जमाने मे इस इस्म का शेर मे लाना जायज है, बल्के मजा देता है। तार-बिजली और दुखानी[1] जहाज के मजामीन मैंने अपने यारो को दिए हैं, औरो ने भी बाँधे है। 'रूबकारी' और 'तलबी' और 'फौजदारी' और 'सरिश्तेदारी' खुद ये अल्फाज मैंने बाँधे हैं। 'चाबी' बमाने 'कलीद' शौक से लिखो, न 'चाभी'। नासिक़ लिखता है, मेम साहब के आगे अल्फाज भूल गया हूँ, आखिर मिसरा ये है—

····मिस के नाज बेजा उठाऊँ किस्म किसके

इलाही बख्श खाँ 'मारूफ लिखते हैं—

नगीने दिल सिवा खोदें तो घर नीलाम हो जाए

वस्सलाम।

—गालिब

---

१ धूम्रयुक्त।

साहब, तुमने मसनवी खूब लिखी है ! कही इमला मे, कही इशा[1] मे जो अगलात थे, दूर किए और हर इस्लाह की हकीकत उसके तहत मे लिख दी। फिक्रे तारीख़ मसनवी से मुद्दतुल[2] उम्र माफ रहूँ।

—ग़ालिब

८

(१८६० ई०)

मुशफिक मेरे,

मैं बाद आपके जाने के दिल्ली मे रामपूर आया और यहाँ मैंने आपका दूसरा ख़त पाया। पहला खत मुझे दिल्ली मे पहुँचा था मगर चूँके उस खत मे आपने मस्कन का पता नही लिखा था मैं तहरीरे जवाब मे कासिर रहा। अब जो ये खत रामपूर मे पहुँचा उसमे पता मरकूम था, मैं पासिग निगार हुआ। आप के मसविदात एक बक्स मे थे। वो बक्स वही रहा। अब जब तक दिल्ली न जाऊँगा, उनको न पाऊँगा। और एक आपको इत्तला देता हूँ के जब मैं दिल्ली मे था तो एक ख़त मियाँ नौरोज अलीख़ाँ का तुम्हारे नाम बनिशान मेरे मुकाम के आया था। चूँके उन दिनो मे मुझको आपका मस्कन मालूम न था मैंने उस पर लिख दिया के वो बिलगिराम गए। खुदा जाने तुम्हारे पास वो खत पहुँचा या नही ?

बरखुरदार मिर्ज़ा अब्बास को दुबारा तहरीर की हाजत नही। अगर वो सआदतमन्द है तो वही एक खत काफी है अब आप जो मुझको खत भेजिए तो रामपूर भेजिए। पता मुकाम का कुछ जरूर नही। रामपुर का नाम और मेरा नाम किफायत करता है।

खुशनूदी का तालिब—ग़ालिब

---

१. गद्य। २. आयुपर्यन्त।

९

(१३ मार्च १८६०)

सैयद साहब,

तुम्हारा मेहरबानी नामा मय दो गजलो के पहुँचा। जवाब के लिखने मे अगर दिरग हुई तो आजुर्दा न होना। अब गजलो को देखा, कही हक्को इस्लाह की हाजत न पाई। मुद्दआए खास का जवाब ये है के अज्जाए[१] खिताबी यहाँ शामिले[२] इस्म नही है. सिर्फ इस्मे मुवारक खुतूत व अरायज़[३] पर लिखा जाता है। रहा कसीदे का भेजना जायदे महज और वे फ़ायदा। अगर मै यहाँ रहता और तुम भी तकलीफे रहरवी उठाते और यहाँ आते और कसीदा गुज-रानते, तो वतरीके सिला कुछ मिलने का अहतमाल था। ये तर्ज़ के तुम भेजो और मै गुजरानू इससे कते नजर के अहतमाले नफा भी नही रखती वतवस्सुत मेरे खिलाफे वजा है। मुझको माफ रखिए और अव जो खत भेजिये दिल्ली को भजिएगा के मै इस महीने मे उधर को जाऊँगा। रूयते[४] हिलाले माहे सयाम अगलब है के दिल्ली ही मे हो।

वस्सलाम माउल अिकराम से शम्वा १३ मार्च सन् १८६० ई०।

—गालिब

१०

(१८६१ ई०)

सआदतो इकवाले निशान मीर गुलाम हुसनेन को गालिबे गोशांनशी[५] की दुआ पहुँचे।

---

१. उपाधि के अश। २ नाम से युक्त। ३. प्रार्थना पत्र। ४ रमज़ान के चाँद का देखना। ५ एकान्तवासी।

हज़रत 'कश्फी' के दीवान के इन्तवा की तारीख अच्छी है। कही इस्लाह की हाजत नही। मगर दूसरी तारीख मेरी समझ में नही आई। इस फन के वायदे के माफिक मिसरए तारीख मे से 'तकल्लुफ' के अदद निकालने चाहिएँ याने पान सौ तीस।

कलोखन्दाज़ रा पादाश सग अस्त

इस मिसरे के आदाद[1] में इतनी गु जायश कहाँ के पान सौ तीस निकल जाएँ और १२७८ बच रहे। साहब, तुम बहुत दिन से बेकार हो। एक जगह मसादते[2] रोज़गार की सूरत है। तुम बेतकल्लुफ मेरा ये रुक्का मुहरी लेकर लखनऊ चले जाओ। मतबए अवध अखबार मे मेरे शफीके[3] दिली याने मुशी नवल किशोर साहब से मिलो और रुक्का उनको पढवा दो। अपनी नज्मो नस्र उनको दिखाओ और अपना मबलगे[4] इल्म उन पर ज़ाहर करो। अगर वो अपनी मर्ज़ी के माफिक तुमको कारगुज़ार समझेंगे तो मतबे का काम तुम्हारे सुपुर्द कर देंगे, मशाहिदा खातिरखाह तुमको मुकर्रर हो जाएगा, मौज्जिज़[5] व मुकर्रम रहोगे। ज़िन्दगी का लुत्फ उठाओगे लेकिन शर्त ये है के जल्द चले जाओ। लखनऊ तुमसे नज़दीक है। इतनी राह का[6] कता करना कुछ दुश्वार नही। अगर नौकर न हो जाओगे, फिर चले आना, बख्त[7] आजमाई है।

११

१८६१ ई०

बन्दा परवर,

आपका खत लखनऊ से आया। हालात मालूम हुए। ये न मालूम हुआ के क्या काम आपके सुपुर्द हुआ है। ये भी लिखिये। चंद रोज सब्र करो। अगर

---

१ संख्या। २. काम। ३. सुहृद्। ४ योग्यता। ५ प्रिय और समादृत। ६. राह काटना। ७ भाग्य की परीक्षा।

वतन मे होते तो इस बेकारी मे घर की खबर क्या लेते ? जिस तरह जब गुजरती अब भी गुजर जाएगी, बल्के तुम्हारा खर्च कम हो गया। बहरहाल अभी इजाफे के वास्ते न तुम कहो, न मै लिखूँ। दो चार महीने काम करो, इसमे अगर बिलगिराम में छापेखाना जारी हो गया, तो इस्तेफा[1] देकर चले जाइये। यहाँ बाद चंद रोज के इजाफा होना भी तौहय्यजे[2] इमकान से बाहर नही।

१२

(५ मई १८६२ ई०)

सैयद साहब सआदत व इकबाले निशान मीर गुलाम हुसनेन साहब को गालिब की दुआ पहुँचे।

आपका खत आया और मैने उसका जवाब भिजवाया। इस रुक्के की तहरीर से मुराद ये है के जनाब मुंशी साहब से मेरा सलाम कहिए और ये रुक्का उनको पढा कर अर्ज कीजिये के गालिब पूछता है के फारसी की कुल्लियात का छापा मुल्तवी है या जारी है ? मुल्तवी है तो कब तक खुलेगा ? जारी है तो तसही किस तौर पर है ? कसीदे और तारीखे कुल्लियात का मतबे मे पता लगा है या नही ? अगर वो दोनो कागज़ गुम हो गए हैं तो मुसन्ना[3] भेज दूँ।

यूसुफ मिर्जा साहब बजरिये मेरे खत के आप से मिल गए या नही ? कातै बुरहान' के अज्जा की जिल्दे बँध गई या नही ? अगर बँध गई हो तो जनाब मुशी साहब से कहकर वो जो पचास जिल्दे मैने ली है, उनमे से एक जिल्द लेकर जनाब फैजमाब[4] खुदावन्दनेमतेआयए रहमत किब्ला व काबा जनाब मुज्तहिदुल अस्र की खिदमत मे हाज़िर हो और मेरी तरफ से कोर्निश[5] अर्ज

---

१. त्याग पत्र। २. आशाप्रद। ३. प्रतिलिपि। ४. माननीय। ५. अभिवादन।

करो और किताब नज़र करो और कहो के गुलाम ने बहुत खूने जिगर खाकर फारसी तहकीक को उस पाए पर पहुँचाया है के उससे बढकर मुत्सव्विर नही। ये मजाल कहाँ के दाद का तलबगार हूँ। सिर्फ इज्जे[1] कुबूल का उम्मीदवार हूँ।

समझे सैयद साहब? मुंशी साहब से चारो सवालो का जवाब और जो किब्ला व काबा फरमाएँ उस तकरीर मे तगय्युर[2] बिलमरादिफ भी न हो। जो अल्फाज हजरत की जबान से सुनो, हूबहू लिख भेजो। हाँ, मौलवी हादी अली साहब का जो हाल मालूम हो वो भी जरूर लिखना और इस खत का जवाब बहुत जल्द भेजना। भाई, मैं अजराहे ऐहतियात तलफ होने के डर से इस खत को बैरंग भेजता हूँ।

दो शबा पंजुम ज़ीक़ादा व मई साले रस्ताखीज।

१३

(२४ मई १८६२)

सैयद साहब,

आपका खत, जिसमें किब्ला व काबा का मुहरी व दस्तखती तौकी मलफूफ था, पहुँचा। मैं तुमसे बहुत राजी हुआ के तुमने तकलीफ उठाई और मेरी नज्र वहा पहुँचाई। अब एक तकलीफ और देता हूँ के जनाब मुंशी साहब से मेरा सलाम कहकर उनके हुक्म से एक नुस्खा 'कातै बुरहान' का मतबे मे से लो और मकान मालूम करके जनाब मुफ्ती मीर अब्बास साहब के पास जाओ और मेरा सलाम कहो और किताब दो और अर्ज़ करो के जो खूने जिगर मैंने इस तालीफ मे खाया है, यकीन है के उसकी दाद[3] तुम्हारे सिवा और से न पाऊँगा।

---

१ स्वीकृति का आदर। २. परस्पर अविरोधी। ३ प्रशंसा।

हाँ साहब, जनाब मुंशी साहब से ये कह देना के पचास मे तीन जिल्द मैंन पाईं। अब कीमत का रुपया भेजकर 'सैतालीस' और मँगाए लेता हूँ। 'कुल्लियात' के इन्तबा की तारीख मैं क्यों लिखूँ? अहले मतबा को खुदा मुंशी साहब के साये[1] उतूफत मे सलामत रखे, कह लेगे। छापा ७८ मे शुरू हुआ, ७९ मे तमाम होगा। मौलवी हादी अली साहब के मतबे मे आने का हाल तुम लिखो और 'कुल्लियात' के कापीनिगार के आने का भी हाल मालूम करके लिखो।

जवाव का तालिब।

—ग़ालिब

१४

(जून १८६२)

सैयद साहब,

आपने खूब किया के मुफ्ती मीर अब्बास का हदिया[2] गैर को न दिया। अपने पास अमानत रखिए। जव मुफ्ती साहव आये उनको पहुँचा दीजिए।

तुम्हारा कस्द यकुम जून को बिलगिराम जाने का था। वहाँ के में कुछ सुस्ती पाई जो फस्खे[3] अजीमत किया? इसकी कैफियत ज़रूर लिखिए और जो कुछ तुमने सिफारिश के वाव मे लिखा है, मैं इस ख़ाहिश को क्यो कर कुबूल करूँ? वो शख्स मेरा शागिर्द नही, मुरीद नहीं, सूरत आशना भी तो नही। क्योकर लिखूँ? माहाजा तुम्हारे वास्ते मेरा लिखना मुज़िर है। याने वो साहव समझेंगे के हज़रत ने कुछ मेरी शिकायत व हिकायत लिखी होगी जव गालिव ने मुझको ये लिखा है। इस वक्त आपकी वहशत[4] अंगेज़

१. छनछाया। २. भेट। ३. विचार स्थगित। ४. घातक पूर्ण।

तहरीर पहुँची। उधर उसको पढा और इधर ये ख़त तुम्हे और एक मिर्ज़ा अब्बास को और एक ख़त तहनियत का मुंशी साहब को लिखा लेकिन चूँके बलादे[1] शर्किया को डाक नौ-दस बजे रवाना होती है, नाचार ये तीनो ख़त बन्द करके तुम्हारा और मिर्ज़ा अब्बास का ख़त बैरंग और मुंशी जी का ख़त पेड रख छोडता हूँ। कल सुबह को बाद[2] अज तुलूए आफताब डाक मे भिजवा दूँगा। खातिर जमा रखो, मैंने बरखुरदार को ऐसा कुछ लिखा होगा के मुफीदे[3] मतलब होगा। इंशा अल्लाहुल अली अल अज़ीम।

चहारशबा, १२ पर ३ बजे।

खुशनूदी[4] ए अहबाब का तालिब
—ग़ालिब

१५

साहब,

वल्लाह! सिवाय इस ख़त के तुम्हारा कोई ख़त नही आया। कैसे चार ख़त तुमने भेजे? क्यो बाते बनाते हो? यहाँ भी टिकट पर तहरीर की मुमानियत है। बहतर यही है के तरफ़ैन[5] मे ख़ुतूत बैरंग भेजे जाएँ के ये किस्सा मिट जाए। बरखुरदार मिर्ज़ा अब्बास की बदली की ख़बर मैंने पहले ही से सुनी है, मगर ये नही मालूम था के वो कहाँ गए। अब दरियाफ्त हुआ के तुम्हारे हमसाए[6] मे आए है। अब उनसे मिलिए, खुदा उनको मुरव्वत की तौफ़ीक़[7] दे। मतले में नाम अपना लिखना रस्म नही है, 'मीर' का

---

१. पूरब के शहर। २. सूर्योदय के पश्चात्। ३. लाभदायक। ४. यारों का शुभेच्छु। ५. दोनो ओर से। ६. आश्रय। ७. उपदेश।

तख़ल्लुस और सूरत रखता है 'मीरजी' और 'मीर साहव' करके वो अपने को लिख जाता है। और को इस विदत का ततव्बो न चाहिए।

—ग़ालिब

१६

(२२ फरवरी १८६३)

साहब, तुमसे पहले ये पूछा जाता है के जब तुम जानते हो के मिर्जा अब्बास मेरी हकीकी बहन का बेटा है तो फिर मैं मिर्जा की औलाद का नाना क्यो कर बना? मिर्जा की बीवी मेरी बहू है, बेटी नही। तुमने जो लिखा है के मेरे नवासे की शादी है क्या समझ के लिखा? मैं मिर्जा की औलाद का नाना क्यो कर बना? भानजे की औलाद पोता-पोती है, न नवासा-नवासी। मुझको उसकी औलाद का जिद्दे[1] फासिद लिखना टकसाल बाहर बात है।

ख़ैर, ये तो जराफत[2] थी। तुम ये तो बताओ के मिर्जा लखनऊ क्यो जाता है? और अगर असबाब ख़रीदना था, तो एक मौतमद को भेज दिया होता, बजाते ख़ुद इस तकलीफे[3] बेजा को गवारा करना क्या जरूर? ये बात जवाब तलब है।

मेरे आने की ये सूरत है के मिर्जा की इस्तेदुआ से कते नजर मेरा दिल भी तो पत्थर या लोहे का नही जो अपने बच्चों को देखने को न चाहे। एक बहन, उसकी मजमू औलाद वहाँ, मेरा तो वो ख़ाना[4] बाग है। बहार[5] के मौसम मे बाग की सैर को किसका जी न चाहेगा? बशर्ते सेहत आऊँगा। इशा अल्लाह्।

सुबह शंबा ३ रमजान, २२ फरवरी साले हाल।

---

१ विपरीत। २. हास्य। ३. निरर्थक कष्ट। ४. घर। ५. वसन्त।

१७

(१८६३ ई०)

मीर साहब,

माजरा ये है के मैं हमेशा नवाब गवर्नर जनरल बहादुर के दरबार मे सीधी सफ़[1] मे दसवाँ नबर और सात पारचा और तीन रकम जवाहर खलत पाता था। गदर के बाद पिन्सन जारी हो गई, लेकिन दरबार और खलत बन्द। अब के जो लार्ड साहब यहाँ आए, तो अहले दफ़्तर ने बमूजिबे हुक्म के मुझको इत्तला दी के तुम्हारा दरबार और खलत बागुजाश्त हो गया, मगर दिल्ली मे दरबार नही। अम्बाले आओगे तो दरबार मे नबर और खलत मामूली पाओगे। मैंने खबर में वजदान[2] का मजा पाया और अम्बाले न गया। राबर्ट माटगुमरी साहब लेफ्टेंट गवर्नर बहादुर कलम रू ए पजाब यहाँ आए, दरबार किया। मै दरबार मे न गया। दरबार के बाद एक दिन बारह बजे चपरासी आकर मुझको बुला ले गया। बहुत इनायत फरमाई और अपनी तरफ से खलत अता किया।

आगाजे दीवान के शेर याने मतले में हर्गिज हुरूफ व अल्फाज की कैद नही है। हाँ, रदीफ अलिफ की ये अमर काबिले पुरसिश के नही, बदीही है। देख लो और समझ लो। ये जो दीवान मशहूर है—हाफिज व साइब व सलीम व कलीम। इनके आगाज की गजल के मतले देखो और हुरूफ व अल्फाज का मुकाबिला करो, कभी एक सूरत, एक तर्कीब, एक जमीन, एक बहर न पाओगे, ने जाए[3] कैदे हुरूफो अल्फाज, लाहौला वलाकूव्वता, इल्ला बिल्लाह।

१. पंक्ति। २ परम आनन्द। ३ अक्षर और शब्द का मिलना कैसे।

१८

(२२ अगस्त १८६३ ई०)

साहब,

मैं बरस दिन से बीमार था। एक फोड़ा अच्छा हुआ दूसरा पैदा हुआ। अब फिलहाल दोनो पावो-हातो मे नौ फोड़े है। दोनों पॉवो पर दो फोड़े, पिंडली की हड्डी पर ऐसे है के जिनका उमुक[1] हड्डी तक है। उन्होंने मुझको बिठा दिया। उठ नही सकता, हाजती धरी रहती है, पलग पर से खिसल पड़ा, फिर पड़ रहा। रोटी भी इसी तरह खाता हूँ। पाखाने, क्या कहूँ, क्योकर जाता हूँ। सुबह से शाम तक और शाम से सुबह तक पडा रहता हूँ। ये सुतूर लेटे लेटे लिखे है। नीम मुर्दा हूँ, करीब बमर्ग ", इफादा व इस्तफादा व इस्लाह के हवास नही। गजल रहने दी। ये हाल तुमको लिख भेजा।

शबा, २२ अगस्त सन् १८६३ ई०।

नजात का तालिब--गालिब

१९

(२४ नवम्बर १८६३)

सैयद साहब,

तुमने जो खत मे बरखुरदारे कामगार मिर्जा अब्बास बेग खाँ बहादुर की रियासत और इनायत का शुक्रिया अदा किया है, तुम क्यो गुजर गुजार होते हो? जो कुछ नेकी और निकोई उस इकबाले[2] निशान ने तुम्हारे साथ की है,

---

१ गहराई। २ शुभ लक्षण।

वोवेऐनही मेरे साथ की है। उसका सिपास मैं अदा करूँ। खुदा की कसम दिल से दुआएँ दे रहा हूँ भाई, उसका जौहरे तबा अजरूए फितरत शरीफ है। परवर दिगार उसको सलामत रखे और मदारिजे आला को पहुँचाये। ये अपने वालिदैन के खानदान का फख्र है और चूँके उसकी माँ का और मेरा लहू और गोश्त और हड्डी और खून और ज़ात एक है, पस वो फख्र मेरी तरफ भी आयद होता है। वो अपने जी में कहता होगा के मामूँ मेरी बेटी के व्याह में न आया और सिर्फ़ जर से जी चुराया है। मैं तो जर को खाक व खाकिस्तर के बराबर भी नही समझता, मगर क्या करूँ के मुझमे दम ही न था। काश के जब ऐसा होता, जैसा के अब हूँ तो सबसे पहले पहुँचता। जी उसके देखने को बहुत चाहता है, देखूँ उसका देखना कब मयस्सर आता है? मैं अब अच्छा हूँ। बरस दिन साहबे फराश रहा हूँ। छोटे-बड़े जख्म बारह और हर जख्म खूँ[1] चकाँ, एक दर्जन फाये लग जाते थे। जिस्म मे जितना लहू था, पीप हो-कर निकल गया। थोडा-सा जो जिगर में बाकी है, वो खाकर जीता हूँ, कभी खाता हूँ, कभी पीता हूँ। मर्ज के आसार मे से अब भी ये निशान मौजूद है के दोनो पाँवो की दो-दो उँगलियाँ टेढी हो गई है, माहाजा मुतवर्रम[2] है, जूता नही पहना जाता। जोफ का तो बयान हो ही नही सकता, मगर हाँ ये मेरा शेर—

दर कशाकशे ज़ोफम नगसलद रवाँ अजतन
ईं के मन न मी मीरम हम ज नातवानी हास्त

अबके रज्जब याने माहे आइन्दा की आठवीं तारीख से सत्तरवाँ बरस शुरू होगा।

चो हफ्ताद[3] आमद आजा रफ्त अजकार

---

१. रक्तवाही। २ शोथ युक्त। ३ सत्तरवाँ साल क्या आया सभी ने उत्तर दे दिया।

पस अब शिकवए जौफ नादानी है, ईमान सलामत रहे।

से शम्बा २४ नवम्बर १८६३ ई०।

नजात का तालिब—ग़ालिब

२०

(१८६५ ई०)

कुर्रतुल[1] ऐन मीर गुलाम हुसनैन सल्लमकुम्मलाहुताला।[2] तुम्हारा ख़त पहुँचा। दिल खुश हुआ। मौलवी नजफअलीख़ाँ साहब की क्या तारीफ हो, तुम कुछ लिखो, तो जानूँ। वल्लाह अगर कभी मौलवी साहब मेरे घर आए हों या मैंने उनको देखा हो, 'चे जाए[3] अिख़्तलात व इर्तबात'! सिर्फ व रियायत जानिबे हक चन्द कलमात उन्होंने लिखे हैं, तुम मेरे यार हो और मेरी ख़िदमत गुजारी के हुकूक हैं तुम पर, मुझको मदद दो और अपनी कुव्वते इल्मी सर्फ करो, 'मुहर्रिक कातै बुरहान' मेरे पास मौजूद है, मुझसे मँगवाओ। मैं हर मौके पर ख़ता और जिल्लते[4] मौल्लिफ का इशारा कर दूँगा। तुम हर फिक्रे को बगौर देखो और वेरब्ती ए अल्फाज और लगवियते माने को मीजाने[5] नजर में तोलो। आमी नहीं हो, आलिम हो। आख़िर मौलवी नज़फ अली साहब ने भी तो अपनी कुव्वते आकिला से बे इआनते[6] गैर 'मुहर्रिक' के जामे की धज्जियाँ उडाई हैं। तुम्हारे पास दो नुस्ख़े—एक 'दाफे हिज़यान' एक 'सवालाते अब्दुल करीम' मय इस्तफता[7] व इफ्ताए दस्तख़ती उल्मा ए देहली मौजूद हैं और अब उस किताब के साथ मेरे इशारात सूदमंद[8] पहुँचेंगे। तुमको मारिजा

१ मेरी दृष्टि। २ ईश्वर तुम्हें सकुशल रखे। ३. मेल मिलाप के लिए। ४ सम्पादक का कलक। ५. दृष्टि तुला। ६. किसी की सहायता लिए बिना। ७. हजरत अली का सेवक और बारह इमामों को मानने वाला। ८ लाभकर।

बहुत आसान होगा। मुद्दई का कलाम दरअस्ल लगो, फिर तुम्हारे पास सरमाय ए इल्मी मौजूद और ये तीन नुस्खे माकूल उस पर मजीद अलैं उस पर। 'मुर्हरिक' 'साहबे मुर्हरिक' का खाका उड़ जाएगा। मेरे खत के पहुँचते ही जवाब लिखिये और इजाज़त भेजिए के मैं नुस्खे मतबुआ[1] और नामतबुआ[2] 'मुर्हरिक' बसबीले डाक भेज दूँ। मगर जिस दिन से किताब पहुँच जाए उसी दिन से आप उर्दू जबान मे रिसाला लिखना शुरू कीजिए और बाद इख्तताम[3] मुझे इत्तला दीजिए। फिर जैसा लिखूँ वैसा अमल मे लाइए।

—गालिबे इस्ना अशरी ए[4] हैदरी

हाँ साहब, आगा मुहम्मद हुसेन नाखुदा ए शीराजी का खत मय अशार आया और मैंने उसका जवाब भिजवाया। अब जो ढूँढा तो मेरा मसविदा हात आया मगर आगा का खत न आया। उस मसविदे को साफ करके तुम्हारे पास भेजता हूँ। आगा साहब का जब खत निकल आवेगा वो भी भिजवा दिया जाएगा। सआदत व इकबाले निशान मिर्जा अब्बास बेग खाँ को मेरी दुआ कहना और ये वरक उनको सरासर पढा देना।

२१

(१८६७ ई०)

सैयद साहब,

तुम 'कद्र' और नूरे चश्म मिर्जा अब्बास कद्रदाँ। खातिर जमा रखो, नौकरी तुम्हारी हो जाएगी। साहब[5] की और राजा[6] की तारीफ के कसीदे

---

१. मुद्रित। २ अमुद्रित। ३. समाप्ति। ४. शिया गालिब। ५ विलियम हैंड्फोर्ड, संचालक शिक्षा विभाग अवध। ६ महाराजा मानसिंह।

वाकई गुलदस्ते है मगर मिर्जा[1] की मदह के कसीदे को गुलदस्ता न कहो, ये तो एक बाग है, सरसब्जो[2] शादाब, जिसमें गुलबन हज़ार दर हज़ार, मेवा-दार दरख्त बेशुमार। ज़मीन सरासर सब्जाज़ार, बहुत हौज, बहुत नहरे, मिट्टी नज़र नही आती, सब्जा, या लहरे। फकीर गालिब तुम्हारा खैरख्वाह और तुम्हारे ममदूह का दुआगो है।

२२

(१८६८ ई०)

हजरत,

फकीर ने शेर कहने से तोबा की है, इस्लाह देने से तोबा की है। शेर सुनना तो मुमकिन ही नही, बहरा हूँ। शेर देखने से नफरत है। पछत्तर बरस की उम्र, पन्द्रह बरस की उम्र से शेर कहता हूँ। ६० बरस बका, न मदह का सिला मिला न गजल की दाद, बकौले अनवरी—

> ऐ दरेगा नीस्त ममदूहे सजावारे मदीह
> वै दरेगा नीस्त माशूके सजावारे गजल

सब शोरा से और अहबाब से मुतवक्के हूँ के मुझे जुम्र ए[3] शोरा में शुमार न करे और इस फन मे मुझसे कभी पुरसिश न हो।

—असदुल्लाहखाँ अलमुतखल्लुस बगालिब व अलमुखातिब बनज्मुद्दौला खुदायश[4] बया मुरजाद।

---

१. मिर्जा मुहम्मद अब्बास बेग, अतिरिक्त सहायक जिलाधीश लखनऊ। २ हरा भरा और सरस। ३. कवियो की पक्ति। ४ ईश्वर उसे क्षमा करे।

नवाब मुहम्मद यूसुफ़ अलीख़ाँ बहादुर, रामपुर नरेश के नाम

१

(१५ फरवरी १८५७)

हजरत वली ए नेमत आयए[1] रहमत सलामत,

आदाव वजा लाता हूँ। गजलो के मसविदात साफ कर कर हुजूर में भेजत हूँ। मसविदात अपने पास रहने दिए है। इस नजर से के अगर अहयानन डाक लिफाफा तलफ हो जाए तो मै फिर उसको साफ कर कर भेज दूँ, वर्ना मौ ए हको इस्लाह मुझे क्या रहेगा।

मै नही चाहता के आपका इस्मे सामी और नामे नामी तखल्लुस रहे नाजिम, आली, अनवर, शौकत, नैसाँ इनमें से जो पसद आए वो रहने दीजिए मगर ये नही के खाही न खाही आप ऐसा ही करे। अगर वही तखल्लुस मजू हो तो वहुत मुबारक। ज्यादा हद्दे अदव।

तुम सलामत रहो कयामत तक।

रोजे यक शवा १५ फरवरी सन् १८५७ ई०।

इनायत का तालिब—गालिब

२

जनाबे आली,

कुछ कम एक महीना हुआ के मैंने हुजूर की गजलो को देखकर खिदमत मे रवाना किया है और उसके पहुँचने से इत्तला नही पाई। अब डाक मे

---

१. दया का कारण।

खत तलफ भी हो जाया करते हैं। इस वास्ते मैं मुतरद्दुद हूँ और मुद्दआ इस तहरीर से ये है के अगर वो लिफाफा न पहुँचा हो तो मैं उस मसविदे को फिर साफ कर कर रवाना करूँ। ज्यादा हद्दे अदब।

निगाश्ता सुबहे पज शबा, २७ शाबान सन् १२७३ हि०।

अज़--ग़ालिब

३

जनाबे आली,

आदाब बजा लाता हूँ और अर्ज करता हूँ के उजूरादार[1] पहुँचा मगर लुटा हुआ और भीगा हुआ और भागता हुआ। गूजरो ने उसे लूट लिया, रुपया-कम्मल सब ले लिया। खत उस दारोगीर मे गिर पडा, भीग गया, लिफाफा मुझ तक न पहुँचा। खत मय हुण्डवी के पहुँचा, ख़त मे से अलकाव[2] बतकल्लुफ पढा और ये जुम्ला 'सिफतचए मुबल्लग दो सद[3] व पिजाह रुपया' पढा गया और बाकी ख़ैरो आफियत। 'मुकर्रर आँ के' इसके बाद जो कुछ लिखा था उसमे से 'मौलवी' ये लफ्ज और बाद एक लफ्ज के 'खाँ साहब' ये पढा गया, और कुछ नही। मुझको ग़म ये है के गजल हाये[4] इस्लाही और दीवाने उर्दू की रसीद मैने न पाई।

हुण्डवी का बेऐनही वो हाल जो हाल मेरे ख़त का था, कुछ पढा जाए, कुछ न पढा जाए। आपका नाम और ढाई सौ रुपया ये पढा गया। चूँ के महाजन मुझको जानता था, उसने उस भीगे हुए कागज को अपनी चिट्ठी मे लपेट कर रामपूर उस महाजन के पास भेजा है जब वो सही कर भेजेगा,

---

१. कर्मचारी २. काव्य नाम के साथ उपाधि। ३. ढाई सौ।४. सम्पूर्ण सशोधित गज़ल।

तब वो मुझको रुपया देगा। उसके सही करने मे क्या ताम्मुल है। मैंने सिर्फ़ बतरीके इत्तला लिखा है। और गजलो की और दीवान की रसीद और जो इस खत में 'मुकर्रर आँ के' बाद मतालिब मुन्दर्ज थे वो फिर ऐसे ही बारीक कागज पर लिखकर उस साहूकार को दीजिएगा और उसको ताकीद कीजिएगा के इसको भेज दे। यहाँ के साहूकार ने मेरी खातिर से इस रुक्के को अपनी चिट्ठी मे रवाना किया है।

पजुम जिल हज्जा।

—गालिब

४

(७ नवम्बर १८५८)

हजरत वली नेमत आयए रहमत सलामत,

मसूरे[1] अतूफत के देखने मे जिन्दगी की सूरत नजर आई। मुखम्मस[2] और गजलो के पहुँचने की इत्तला पाई। ये भी एक बख्शिश का बहाना पैदा करना है, वर्ना हुजूर के कलाम को इस्लाह की अहतयाज[3] क्या है? मेरी क्या सुखनवरी और सुखनसराई है? आपकी कद्रदानी बल्के कद्र अफजाई है। तकल्लुफ है अगर कहूँ के ताकयामत[4] रहो। बेतकल्लुफ दुआ ये है के खुदा करे एक सौ बीस बरस तक सलामत रहो।

इन करीनों से के बसबब कम फुरसती के उनका मुलाहिजा न करना मालूम हुआ, लेकिन के दीवान और उस किताब का पहुचना मालूम हुआ। दीवान के देखने न देखने मे आपको अख्तियार है। मगर ये चार जुज्व का

---

१. आनन्दपूर्ण पत्र। २. पाँच शेर की कविता। ३. आवश्यकता। ४. प्रलय पर्यंत।

रिसाला जो अब भेजा है, इसका देखना ज़रूर दरकार है। फ़ारसी ए कदीम और फिर हुस्नेमाने और सनते अल्फाज[1] बा ई हमा हर अम्र की अहतयात[2] और हर बात का लिहाज़।

जनाबे आली तुरफा[3] मामला है। खुदा का शुक्र है और अपनी किस्मत का गिला है। खुदा का शुक्र ये के बावजूदे ताल्लुके किला किसी तरह के जुर्म का बनिस्बत मेरे अेहतमाल भी नही। किस्मत का गिला ये के अता ए पिन्सने कदीम का हुक्काम को खयाल भी नही। ये नवम्बर सन् १८५८, उन्नीसवॉ महीना है। गोया बिन खाए जीना है। कहते है के जनवरी शुरू साल मे पिन्सनदारो को रुपया मिलेगा, देखिए क्या नया गुल खिलेगा? पहली नवम्बर को यहॉ इश्तेहारे आम हो गया है के अब कलम रू ए हिन्दुस्तान मे अमले मलिकए मुअज़्ज़िमए आली मुकाम हो गया है। मै पहले से मद्दाहो मे अपना नाम लिखवा चुका हूँ और वुजरा[4] ए मलिक ए दारा-दरबान के दो सार्टीफिकट पा चुका हूँ। अगर इस इजमाल को लतफसील मालूम किया चाहिए तो इसी किताब मौसूम ब 'दस्तम्बू' मे देखा चाहिए।

निगाश्तए रोजे यकशबा हफ़्तुम नवम्बर सन् १८५८ ई०।

खुशनूदी का तालिब—

—ग़ालिब

५

(१७ नवम्बर १८५८)

खुदावन्द नेमत सलामत,

जो आप बिन मागे दे उसके लेने मे मुझे इन्कार नही। और जब मुझको हाजत आ पडे तो आप से मॉगने में आर नही।

---

१. शब्दालकार। २ सावधानी। ३. विचित्र समस्या। ४. जिस रानी (विक्टोरिया) के द्वारपाल का नाम दारा (ईरान का एक प्रसिद्ध शासक) है, उसके मत्री।

वारे, गिराने गम से पस्त हो गया हूँ। आगे तगदस्त था, अब तिहीदस्त हो गया हूँ। जल्द मेरी खबर लीजिए और कुछ भिजवा दीजिए।

चार शबा, याजदहुम[1] रबीउस्सानी सन् १२७५ हि० व १७ नवम्बर सन् १८५८ ई०।

इनायत का तालिब

—गालिब

६

(३ दिसम्बर १८५८)

हजरत वली नेमत आयए रहमत सलामत,

बाद आदाब बजा लाने के अर्ज करता हूँ के मशूरे[2] राफत लिखा हुआ २५ नवम्बर का जुमे के दिन तीसरी दिसम्बर को इस दुआगोए[3] दौलत के पास पहुँचा। ढाई सौ रुपए की हुण्डवी मौतमद के हवाले की गई। आज या कल रुपया आ जाएगा।

खातिरे अकदस जमा रहे।

मेरे हाजिर होने को जो इरशाद होता है, मैं वहाँ न आऊँगा तो और कहाँ जाऊँगा? पिन्सन के वसूल का जमाना करीब आया है। इसको मुल्तवी छोड़कर क्यों कर चला आऊँ? सुना जाता है और यकीन भी आता है के जनवरी आगाज़ साल ५९ ई० में ये किस्सा अंजाम पाए। जिसको रुपया मिलना है उसको रुपया, जिसको जवाब मिलना है, उसको जवाब मिल जाए।

---

१. ११। २. गौरवपूर्ण पत्र। ३. समृद्धि का प्रार्थी।

नवाब मुहम्मद यूसुफ़अलीख़ा बहादुर, रामपुर-नरेश के नाम

हुजूर ने ये क्या तहरीर फरमाया है के इन बारह गजलो की इस्लाह मे कलामे खुश मतलूब है, अगली गजलो की तरह न हो। मगर अगली गजलो की इस्लाह पसद न आई, और उन अशार मे कलाम खुश न था। हज़रत का तो उन गजलो मे भी वो कलाम है के शायद औरो के दीवान मे वैसा एक शेर भी न निकलेगा। मै बकद्र अपनी फहम व इस्तादाद के कभी इस्लाह मे कुसूर नही करता।

ज्यादा हद्दे अदब। मारूजए जुमा, २६ रबीउस्सानी सन् ७५ हि० व ३ दिसम्बर ५८ ई०।

अर्ज़दाश्ते ग़ालिब

७

(२८ मार्च १८५९)

हजरत वली नेमत आयए रहमत सलामत,

मै इस दौलते[१] अबद मुद्दत का अज राहे मौदत खैरख़ाह हूँ। अम्रे[२] मलाल अगेजे अन्दोहावर मे आरायशे गुफ्तार गवारा नही कर सकता। नवाब मिर्जा ने दिल्ली आकर पहले नवीदे[३] बज्म आराई सुनाई। चाहता था के उसकी तहनियत लिखूँ। कल उसने अज़ रू ए ख़ते आमदे रामपूर, हजरत जनाब आलिया के इन्तकाल की ख़बर सुनाई। क्या कहूँ, क्या गम व अन्दोह का हुजूम हुआ। हजरत के गमगीन होने का तसव्वुर कर और ज्यादा मगमूम हुआ। बेदर्द नही हूँ, के ऐसे मुकाम मे बतरीके इंशा परदाजी इबारत आराई करूँ। नादान नही हूँ के आप जैसे दानादिले दीदावर को तलकीने[४] सब्र व शकेबाई करूँ।

---

१. अनन्तकाल तक रहने वाली सम्पत्ति। २ दुखद समाचार। ३. आनन्दोत्सव का समाचार। ४. धैर्य रखने का उपदेश।

अज[1] दस्ते गदा ए बेनवा नायद हीच
जुज आँ के बसिदके दिल दुआए बेकुनद

हकताला जाते सुतूदा[2] सिफात को दायमन[3] और अबदन जाहो[4] जलाल व दौलतो इकबाल के साथ सलामत बा करामत रखे।

मरकूमा यकशबा २१ शाबान व २८ मार्च साले हाल।

अरीजा निगार—असदुल्लाह अल मुतखल्लुस
व ग़ालिब

८

(१७ अप्रैल १८५९ ई०)

हज़रत वली नेमत आयए रहमत सलामत,

एक खत मुश्तमिल अपने हाल पर और एक खत जनाब बेगम साहिबा व किब्ला[5] मगफूरा[6] की ताजियत में रवाना कर चुका हूँ। अब एक कते तारीख भेजता हूँ। अगर चे एक का तामिया[7] है, लेकिन तामिया कितना खूब और बेतकल्लुफ है।

मास्जए १३ रमजान व १७ अप्रल साले हाल

अर्ज दाश्ते—
असदुल्लाह

कता

[8]जनाबे आलिया अजबहिश्ते हक
बफिरदौसे बरी चूँ कर्द आराम

१. फकीर केवल प्रार्थना कर सकता है। २. जिसके गुणों की प्रशंसा की गई हो। ३. शाश्वत और अनन्त काल तक। ४ प्रताप और प्रतिष्ठा के साथ। ५ पूज्य। ६. स्वर्गीया। ७. तारीख कहते हुए अपने उद्देश्य को गुप्त रूप से प्रकट करना। ८ ईश्वर की दया से स्वर्गीया ने जब स्वर्ग में विश्राम किया तब गालिब उनके निधन की तिथि निवेदन करता है, मेरा निवेदन उपनाम रूप में है—पुण्यात्मा स्वर्ग में निवास करे। 'खुल्द मुक़ीम' (१२७५)।

नवाब मुहम्मद यूसुफ़अलीखा़ बहादुर, रामपुर-नरेश के नाम

सखुन परदाजे 'ग़ालिब' साले रेहलत
'खुलूदे खुल्द' गुफ्त अज रू ए इलहाम

सन् १२७५ हि० ।

१

(१८ अप्रेल १८५९)

हज़रत वली नेमत आयए रहमत सलामत,

बाद तस्लीम के अर्ज करता हूँ—आज दो शबे का दिन १४ रमज़ानुल मुबारक की और १८ माहे अप्रेल की सुबह के वक़्त डाक का हरकारा आया और मशूरे अतूफत लाया। मैंने सर पर रखा, आँखों से लगाया। ताज्जुब है के मेरे दो खतो की रसीद इस इनायतनामे मे मरकूम नही। आया न पहुँचे, या पहुँचे और न पढे गए; कुछ मालूम नही।

पहले खत मे ये अर्ज किया है के मजमू[1] पिन्सनदारो की मिस्ल मुरत्तिब है, और हनोज सदर को रवाना नही हुई। नवाब गवर्नर जनरल लार्ड केनिंग बहादुर ने कलकत्ते से मेरे पिन्सन के कवागज तलब किए, और वो कागज़ फेहरिश्त मे से अलग होकर लेफ़्टेंट गवर्नर बहादुर पंजाब की ख़िदमत मे इरसाल हुए। वहाँ से कलकत्ते को भेजे जाएँगे फिर वहाँ से हुक्मे मंजूरी पंजाब होता हुआ यहाँ आएगा और यहाँ मुझको रुपया मिल जाएगा। आज रुपया मिला, कल मैंने आपसे सवारी और बारबरदारी माँगी। आज सवारी और बारबरदारी पहुँची और कल मैंने रामपूर की राह ली। बल्के उसी

---

१ सम्पूर्ण।

१८५९ थी, सर्फे वुरूद लाया। जर मुन्दरज ए हुण्डवी मारिजे वसूल मे आया। खातिरे अकदस जमा रहे।

१२

(७ नवंबर १८५६)

हजरत वली नेमत आयए रहमत सलामत,

बाद बजा लाने आदाबे नियाज़ के अर्ज करता हूँ। ये मेरा दर्दे दिल है। नामे तहनियत मे इसका इन्दराज मुनासिब नही जाना। मैं अगरेज़ी सरकार मे इलाके रियासते दूदमानी का रखता हूँ। माश अगरचे कलील[1] है, मगर इज्ज़त ज्यादा पाता हूँ। गवर्मेंट के दरबार मे दाहिनी सफ में दसवाँ नंबर और सात पार्चे जेगा[2], सरपेच, मालाए[3] मरवारीद, खलत मुकर्रर है। लार्ड हार्डिंग साहब के अहद तक पाया। लार्ड दलहौसी यहाँ नही आए। अब ये नवाब[4] मुअल्ला अलकाब आते हैं। जमाने का रंग और, कोई हाकिम, कोई सेक्रेटर मेरा आशना नही। बड़े मेरे मुरब्बी कद्रदान[5] जनाब अटमिन्स्टन साहब वो भी चीफ सेक्रेतर नही रहे, लेफ्टेंट गवर्नर हो गए। वो सेक्रेतर रहते तो मुझे कुछ गम न था। अब तक मैं अपने को ये भी नही समझा के बेगुनाह हूँ या गुनाहगार। मकबूल हूँ या मरदूद। माना के कोई खैरख्वाही नही की जो नये इनाम का मुस्तहक़ हूँ, लेकिन कोई बेवफाई भी सरज़द[6] नही हुई, जो दस्तूरे क़दीम को बरहम मारे, बहरहाल इस तशवीश में हूँ। राहे नाम मसदूद, और दुख मौजूद। 'उर्फी' खूब कहता है—

मरा[7] ज़मानए तन्नाज़ दस्तबस्ता व तेग

---

१. [illegible]। २. सरपेच। ३. मोतियों का हार। ४ जिनकी उपाधियाँ बड़ी है। ५. अभिभावक। ६ पकड़। ७ आक्षेप करने वाले ज़माने ने मेरे हाथ बाँध दिए हैं, वह तलवार से सिर पर प्रहार कर रहा है और कहता है सिर झुकाये रहो।

नवाब मुहम्मद यूसुफअलीखा बहादुर, रामपुर-नरेश के नाम

जनद वफर्कमो गोयद के हाँ सरे मी खार

मरकूमा सुबह यकशवा ७ नवबर १८५९।

१३

(२७ नवंबर १८५९)

हजरत वली नेमत आयए रहमत सलामत,

वाद वजा लाने आदावे नियाज़ के अर्ज़ करता हूँ—मशूरे अुतूफत पहुँचा। नवावे आली जनाव की मुलाज़िमत का हाल वसवीले[1] अिजमाल मुन्दर्ज था। मै अज रू ए अखवार व तफसील दरयाफ्त कर चुका हूँ। हिन्दुस्तान मे किसी रईस के वास्ते ये वात काहे को हुई है; मसनद तकिया किसी को कव मिला है? ये कमाले इज्जो शान और इस्तहकामे[2] विना ए रियासत का निशान है। लुत्फ ये है के अब साहेवान कोर्ट आफ डरैक्तर हायल[3] नही रहे, नवाब गवर्नर जनरल बहादुर नायव सल्तनत है। इस सूरत मे जो कुछ दिया है वो अतिया हजरते फलक[4] रफत मलिकए मौज्ज़िमा का है। ऐसे शाहशाह की सरकार से विसादा[5] सरवरी का अता होना वहुत वडी नवाज़िश और सज़ावारे सदगुना[6] नाजिश है। ये चार वालिशे[7] इमारत[8] और 'काशीपूर' का ज़मीमए[9] मिल्के मौरूसी[10] होना पहले आपको और फिर वली अहद वहादुर

---

१. सक्षेप मे उल्लिखित। २. राज्य के स्थायी अधिपति की मान्यता। ३. वाधक। ४. आकाश की तरह ऊँचा। ५. सरदारी का तकिया। तकिया लगाकर वैठने का गौरव, गद्दी पर वैठने का गौरव। ६. सौ गुना। ७. चार तकिये। ८. शान शौकत। ९. पैतृक सम्पत्ति का एक अश। १०. पैतृक सम्पत्ति।

को और फिर आपके औलादो[1] इख़वानो अन्सार को और सब के बाद गालिबे दुआगो ए गोशानशी को मुबारक हो ।

ज्यादा हद्दे अदब ।

मरकूमा सुबह यक शबा २७ नवबर १८५९ ई० ।

१४

(८ दिसम्बर १८५९)

हज़रत वली नेमत आयए रहमत सलामत,

आदाबे नियाज़ बजा लाकर अर्ज़ करता हूँ के सौ रुपए की हुण्डवी बाबत मसारिफे[2] माह नवबर १८५९ पहुँची और रुपया वसूल मे आया और सर्फ हो गया, और बदस्तूर भूका और नगा रहा । तुमसे न कहूँ तो किससे कहूँ ? इस मशाहिरए मुकर्ररी से अलावा दो सौ रुपया अगर मुझको और भेज दीजिएगा तो जिला लीजिएगा, लेकिन इस शर्त से के इस अतिया मुकर्ररी मे महसूब[3] न हो, और बहुत जल्द मरहमत हो ।

ज्यादा हद्दे अदब ।

मारूजए सुबह पज शबा, हश्तुम दिसंबर सन् १८५९ ई० ।

बमुजर्रदे वुरूदे इनायतनामा मरकूमा माहे हाल ।

अर्ज़दास्त—ग़ालिब

१५

(७ फरवरी १८६०)

हज़रत वली नेमत आयए रहमत सलामत,

आदाबे नियाज़ बजा लाता हूँ और मिज़ाजे अकदस की ख़ैर पूछता हूँ और

---

१. सन्तान, बन्धु और साथी। २. नवम्बर का ख़र्च। ३. हिसाब में काटा जाना।

वकमाले नाचारी बसद गुनाह शर्मसारी अर्ज करता हूँ के आज सेशवा ७ फरवरी की है। जो लोग के मेरे साथ है, गोश बर[1] आवाज है और जो वजीफाखार दिल्ली मे हैं वो चश्मे[2] ब राह होगे।

ज्यादा हद्दे अदब।

सुबह से शबा, ७ फरवरी सन् १८७०।

खुशनूदी का तालिब

—ग़ालिब

१६

(२२ अप्रेल १८६०)

हजरत वली नेमत आयए रहमत सलामत,

तकदीमे[3] मरासिमे तसलीम मुकदमा इस गुजारिश का है के आलम दो है। एक आलमे शहादत,[4] एक आलमे[5] गैब। जिस तरह आलमे शहादत मे आप मेरी दस्तगीरी कर रहे ह, आलमे गैब मे आपका इकबाल मुझको मदद पहुँचा रहा है। तफसील इस अिजमाल[6] की ये के वो नक़्शा पिन्सनदारो का जो यहाँ से सदर को गया था वो अब सदर से बाद सुदूरे[7] हुक्म आ गया। हुक्म बनिस्बत हर वाहद[8] के मुख्तलिफ है। तकलील बहुत है। सौ रुपए महीने वाले को पछत्तर भी है और पच्चीस भी है, और दस भी है। अब फरमाइये मेरे वास्ते क्या अहतमाल गुज़रता है? यासे[9] कुल्ली है। लेकिन वाकआ ये हुआ के सब से पहले मेरा नाम और पूरे पिन्सन की

---

१. उत्सुक है। २. प्रतीक्षा मे लग हुए। ३. अभिवादन के नमस्त शिष्टाचारो को पहले पूर्ण करते हुए। ४. प्रत्यक्ष जगत। ५. परलोक। ६. संक्षेप। ७. आदेश के साथ। ८. व्यक्ति। ९. पूरी परेशानी।

वागुज़ाश्त का हुक्म। तुर्फा[1] ये के मेरे नाम के साथ एक अंगरेज़ी तहरीर है के जिसके देखने से मालूम होता है के गवर्मेन्ट का हुक्मे मजूरी इस तहरीर पर मुतफर्रअ है। हुक्काम के अमले में और विकला और अहले शहर में ये मशहूर है के वो तहरीर विलायत से आई है। बहरहाल दो अम्र हनोज़ मुव्हम है, एक इस अंगरेज़ी तहरीर का हाल और दूसरे मेरे भाई के पिन्सन की हकीकत। सो ये दोनो अम्र चंद रोज में मालूम हो जाएँगें। और जो मालूम होगा वो अर्ज किया जाएगा।

—ग़ालिब

१७

(१३ जुलाई १८६०)

हजरत वली नेमत आयए रहमत सलामत,

शुक्र बन्दा परवरी बजा लाकर अर्ज़ करता हूँ के कल १२ जुलाई को नवाज़िशनामा मय सौ रुपये की हुण्डवी के पहुँचा और रुपया मारिज़े वसूल में आया। मुतवक़्क़े हूँ के ये अतिया चौथी-पाँचवी अगरेज़ी को जैसा के हमेशा पहुँचता था, पहुँचा करे। दसवी-बारहवी न हुआ करे।

तुम सलामत रहो कयामत तक।

सुबह जुमा, २३ ज़िलहज्जा सन् १२७६ मुताबिक १३ जुलाई सन् १८६०।

खुशनूदी का तालिब
—ग़ालिब

---

१ आश्चय।

१८

(७ अप्रैल १८६१)

वली नेमत आयए रहमत सलामत,

बाद तसलीम मारूज है—इनायतनामे के वुरूद से मैंने इज्जत पाई। सौ रुपए की हुण्डवी बाबत मसारिफे मार्च सन् १८६१ के पहुँची; जरे मुन्दर्जए मौरिजे वसूल में आया। खातिरे अकदस करीने जमीयत रहे। कुल्लियाते फारसी के पहुँचने से और इस नज्र के मकबूल होने से मुझको बहुत खुशी हासिल हुई।

तुम सलामत रहो कयामत तक।

सुवह यकशबा ७ अप्रेल सन् १८६१ ई०।

इनायत का तालिब
—ग़ालिब

१९

वली नेमत आयए रहमत सलामत,

बादे तस्लीम तोरे[1] और खलत के अतिए का आदाव वजा लाता हूँ। खुदा आपको सलामत रखे और अपनी औलाद की शादिया करनी और उन शादियो मे तोरा व खलत की तक्सीम नसीव हो।

ये तहरीर नही, मकालिमा[2] है। गुस्ताखी माफ करवा के और आप से इजाजत ले के बतरीक इन्वेसात[3] अर्ज करता हूँ के ये सवा सौ रुपए जो तोरे व खलत के नाम से मरहमत हुए है, मैं काल का मारा अगर ये सब रुपया

१ किश्तियाँ। २ वार्त्तालाप। ३. प्रसन्नता।

खा जाऊँगा, और इसमे लिवास न वनाऊँगा तो मेरा ख़लत हुज़ूर पर वाकी रहेगा या नही ?

तुम सलामत रहो हज़ार वरस
हर वरस के हो दिन पचास हजार

दो शबा, 'बहिसावे' ताजियादारान[1] ५वी और अज रू ए दूज ६ मुहर्र-मुल हराम सन् १२७८।

दाद का तालिव
—ग़ालिव

२०

(२२ जुलाई १८६१)

वली नेमत आयए रहमत सलामत,

वादे तस्लीम मारूज है—आठ-सात वरस से मस्दरे[2] खिदमत और शरीके दौलत हूँ। लाजिम कर लिया है के वेहूदा गुज़ारिश न करूँ और कभी किसी की सिफारिश न करूँ। भाई हसनअलीखाँ के वेटो के वाव मे जो अलीवख्शखाँ साहव को लिखा इसको मैं सिपारिश न समझा था। मुख़विर वना, और आपके अहलेकारो को उस वात की खवर दी के जिसका तदारुक[3] साहवाने मुल्क व हाकिमाने अहद पर लाज़िम है; सो वमुक्तजा[4] ए निस्फत व अदालत वो मुकदमा फैसल हो गया। मीर सरफराज़ हुसेन और मीरन साहव को वल्लाह विल्लाह अगर मैंने भेजा हो। नौकरी की जुस्तजू को निकले थे। मीर सरफराज हुसेन नौकरीपेशा और मीरन मर्सिया[5] खाँ और यहाँ के

---

१ शिया। २. सेवा योग्य। ३. दण्ड। ४. आपके न्याय पर निर्भर। ५. मर्सिया कहने वाला।

मर्सियाख्वानो मे मुमताज[1]। ख़ानसामाँ साहब को जो मैंने ये लिखा के ये ऐसे है और ऐसे है, गर्ज़ इससे ये थी के मुहर्रम मे जहाँ दस-पाँच मर्सियाख्वाँ मुकर्रर होते है, मीरन भी मुकर्रर हो जाएँ। आखिर जाबजा थानेदार, कोतवाल, तहसीलदार नौकर है। मीर सरफराज़हुसेन होशियार और कार गुजार आदमी है। किसी इलाके पर ये भी मुकर्रर हो जाएँ ये दोनो अम्र या इन दोनो मे से एक हो जाता, बहतर था न हुआ, बहतर। दरहक़ीकत सिपारिश न थी। सिर्फ मौर्रफ[2] होना था। सिपारिश करता तो क्या मै आपको न लिख सकता था। मेरी तरफ से ख़ातिरे आतिर जमा रहे—

[3]ज़ सीना ताब लबम सालहा नियाबद राह
हर आँ नफ़्स के रजा ए तो अन्दर आँ बुवद।

दो शबा २२ जुलाई सन् १८६१।

दाद का तालिब
—ग़ालिब

२१

(२१ नवंबर १८६१ ई०)

वली नेमत आयए रहमत सलामत,

बाद तस्लीम के अर्ज़ करता हूँ और तुलू ए[4] सितारा इकबाल की मुबारकबाद देता हूँ। यकीन है के इस सफ़रे फैज असर मे रेलगाड़ी की सवारी की भी सैर देख ली होगी। ये उस मैमनत[5] व शिको व शौकत से अलावा एक तमाशा नया देखा। हक ताला हज़रत को सलामत वा करामत रखे।

---

१. श्रेष्ठ। २. परिचित। ३. जिस साँस में आपके लिए प्रसन्नता न हो उसे वक्षस्थल से ओठो तक बरसो मार्ग नही मिलेगा। ४. सौभाग्य-नक्षत्र के उदय की बधाई। ५. शुभ।

दुआगो एक महीना भर से बीमार हूँ। इब्तदा वही कौलंजे[1] दौरी। बसबवे इस्तमाले[2] अदवियए हार्रा, के इस मर्ज मे उससे गुरेज़ नही। तप ने आ घेरा, कई बारियाँ भुगती। अब दो बारियाँ टल गई हैं, लेकिन ताक़त बिल्कुल सल्व हो गई है और जौफे दिमाग ने करीब व हलाकत पहुँचा दिया है। बिलफैल आवे सेब[3] का इस्तेमाल है।

तरीके दुआगोई व सनाखानी की रियायत से नौ बैत बसवीले मसनवी, के जिसमे हुसूले अतियए सुलतानी की हिजरी व ईसवी तारीख है, बहरहाल लिख ली हैं। कल वुरूदे इनायतनामा से मौज्जिज होकर आज वो अशार नजर करता हूँ।

ज्यादा हद्दे अदब।

तुम सलामत रहो कयामत तक

दो शबा ११ नवम्बर सन् १८६१।

शफक़्कत का तालिब

—ग़ालिब

२२

(१५ सितम्बर १८६२)

हज़रत वली नेमत आयए रहमत सलामत,

बादे तस्लीम मारूज़ है—कल एक शेर जहूरि ए मगफूर का और एक शेर गालिबे मरहूम का एक वरक पर लिखकर सुबह को डाक में भिजवा दिया।

---

१. पेट का दर्द। २. उष्ण औषधियो के सेवन से। ३. सेव का रस।

शाम को तौक़ी[1] ए वकीहरकारा डाक ने ला दिया। अगस्त सन् १८६२ की परवरिश की हुण्डवी पहुँची और सौ रुपए वसूल हो गए।

फ़क़ीर का शेवा सिद्क़[2] व सद्दाद का है। चंद रोज़ से तफ़क़्क़ुद[3] व इल्तफ़ाते क़दीम मे ख़ुदा न ख़ास्ता बाशद, कुछ कमी चाहता हूँ। अगर गलत है मेरा गुमान ब शर्फ़ इत्तला मुशर्रफ़[4] फ़रमाइए। और अगर मेरा दिले दीवाना सच समझा है तो मुतवक्के हूँ के अिताव[5] के सबब से आगही पाऊँ। ज्यादा हद्दे अदब।

तुम सलामत रहो हजार बरस
हर बरस के हो दिन पचास हज़ार

मारूजए सुबहे दो शंबा, १५ सितम्बर सन् १८६२ ई०।

मुहर —ग़ालिब सन् १२७८ हि०

ये अर्ज़दास्त जुदा है, अलबत्ता इसके जवाब का उम्मीदवार हूँ और रसीदे मामूली जुदा है।

२३

(१५ सितम्बर १८६२)

हज़रत वली नेमत आयए रहमत सलामत,

बाद तस्लीम मारूज है—नवाजिशनामा मय सौ रुपयों की हुण्डवी के पहुँचा, अगस्त सन् १८६२ ई० के महीने की परवरिश का रुपया वसूल हुआ।

१, प्रतिष्ठापूर्ण आदेश। २. सत्य भाषिता। ३. पुरानी कृपा। ४. कृतार्थ। ५. रोष।

तुम सलामत रहो हज़ार बरस
हर बरस के दिन हो पचास हजार

मारूजए १६ मार्च सन् १८६३ ई० ।

मुहर : —गालिब सन् १२७८ हि०

२६

(४ अगस्त १८६३)

हजरत वली नेमत आयए रहमत सलामत,

बाद तस्लीम मारूज है—जब अवाले मेरा जाना हुआ, तो मैंने कसीदए-मदह, जो दरबार की नज्र के वास्ते लिखा था, बतरीके डाक जनाब चीफ सेक्रेतर बहादुर को इस मुराद से भेजा के आप इसको जनाब नवाब मौल्ला अलकाब की नज़र से गुजरानें और ये दस्तूरे कदीम था के जब मैं क़सीदए मदहिया[1] भेजता तो साहब सेक्रेतर बहादुर का खत बेवासतिये[2] हुक्कामे मातहत मुझको आ जाता। अब जो मैंने मुआफिके मामूल कसीदा भेजा, यकीन है के मार्च या अप्रेल के महीने मे वो लिफाफा यहाँ से लश्कर को गया। सदाए[3] बर न खास्त, ना उमीद होकर बैठ रहा, बल्के ये ख़याल गुजरा के जब रस्मे तहरीरे खुतूत न रही, तो दरबार और खलत कहाँ? नागाह, कल शाम को साहब सेक्रेतर बहादुर का खत डाक मे आया। वही अफगानी[4] कागज, वही अलकाब, जी चाहता था के असले खत मय सरनामा भेज दूँ ताके हुजूर मुलाहिजा फरमाएँ। मगर बरसात का अदेशा माने[5] आया। नकल सरनामे और खत को भेजता हूँ।

---

१. प्रशंसात्मक। २. बिना अधिकारियों के माध्यम से। ३. कुछ ज्ञात नहीं हुआ। ४. विवाह आदि अवसरों के लिए तैयार किया गया कागज। ५. बाधक।

नवाब मुहम्मद यूसुफअलीखा बहादुर, रामपुर-नरेश के नाम

तुम सलामत रहो कयामत तक
दौलतो इज्जो जाह रोज अफजूँ

मुबह सेशबा, ४ माहे अगस्त सन् १८६३।

हुजूर की खुशनूदी का तालिब
—ग़ालिब

२७

(५ जुलाई १८६४ ई०)

हजरत वली नेमत आयए रहमत सलामत,

वाद तस्लीम के मारूज है—नवाज़िशनामा और उसके साथ दो भँगियाँ[१] दो सौ आमो की पहुँची।

शुक्र नेमत हाय तो चन्दाँ के नेमत हाय तो
ज्यादा हद्दे अदब।

तुम सलामत रहो कयामत तक
दौलतो इज्जो जाह रोज़ अफजूँ

से शवा पंजुम जुलाई सन् ६४।

नजात का तालिब
—ग़ालिब

२८

(११ अगस्त १८६४)

हज़रत वली नेमत आयए रहमत सलामत,

वाद तस्लीम मारूज है—मशूरे उतूफ़त मय कतए हुण्डवी शर्फे वुरूद लाया, सौ रुपया बावत तनखाहे जुलाई सन् १८६४ के मारिज वसूल में आया—

---

१. टोकरियाँ।

तुम सलामत रहो हज़ार बरस
हर बरस के हो दिन पचास हज़ार

तरह्हुम[1] का तालिब
—ग़ालिब

२९

(९ सितम्बर १८६४)

हज़रत वली नेमत आयए रहमत सलामत,

बाद तस्लीम मारूज़ है—नवाजिशनामा मय हुण्डवी इज्ज़े वुरूद लाया। सौ रुपया बाबते तनख़ा माहे अगस्त सन् १८६४ मारिज़ वसूल में आया। ज्यादा हद्दे अदब।

तुम सलामत रहो हज़ार बरस
हर बरस के हो दिन पचास हज़ार

जुमा, नहुम सितम्बर सन् १८६४।

नजात का तालिब
—ग़ालिब

३०

(१७ अक्टूबर १८६४)

हज़रत वली नेमत आयए रहमत सलामत,

बाद तस्लीम मारूज़ है—मुद्दूरेवाला नामा से मैंने इज्ज़ात पाई। बजरिये

१. कृपाकांक्षी।

हुण्डवी सौ रुपए बाबत तनखा सितबर सन् १८६४ वसूल हुए। ज्यादा हद्दे अदब।

तुम सलामत रहो हजार बरस
हर बरस के हो दिन पचास हजार

दहुम अक्तूबर सन् १८६४ ई०।

तरह्हुम का मुस्तहक और तफ़क्कुद का तालिब
—ग़ालिब

३१

(८ नवम्बर १८६४)

हजरत वली नेमत आयए रहमत सलामत,

बाद तस्लीमो नयाज़ मारूज है—जब से हजरत की नासाज़िए[1] मिजाजे मुबारक का हाल खारिज से मसमू हुआ है, आलमुल गैब गवाह है के मुझ पर और मेरी बीवी और मेरे फर्जन्द हुसेन अली पर क्या गुजरी है। एक दिन-रात मेरे घर मे रोटी नही पकी। हम सब ने फाका किया। बारे, वो खबर वहशत असर गलत निकली। हवास ठिकाने हुए। बिल्कुल इत्मीनान जब होगा के आपके गुस्ले सेहत की नवीद सुनूँगा और कतए तारीखे गुस्ले सेहत लिखकर भेजूँगा। फ़िलहाल इतना चाहता हूँ के इस खत का जवाब पाऊँ और हकीकते मर्ज़ से आगही हो। ज्यादा हद्दे अदब।

तुम सलामत रहो हजार बरस
हर बरस के हो दिन पचास हजार

तुम्हारी सलामती का तालिब
—ग़ालिब

---

१. अस्वस्थता।

३२

(१३ नवम्बर १८६४)

हजरत वली नेमत आयए रहमत सलामत,

बाद तस्लीम मारूज है—इब्तदा ए यकुम नवबर से ११ तक अर्ज नही कर सकता के लैलो[१] निहार मुझ पर कैसे गुजरे है। राह दूर, मैं रजूर, माहाजा बे मकदूर। अगर दिल्ली से रामपूर तक शिकरम की[२] डाक जाती होती तो मैं यहाँ एक दम न ठहरता और खिदमत मे हाजिर होता। तारे वर्की[३] भी नही जो सेहत व आफियत की खबर जल्द हासिल हो। नाचार अज राहे इस्तरार ८ माहे हाल याने नवम्बर को अरीजा रवाना किया। खुदा की इनायत और मुर्शदे[४] कामिल यानी हजरत की हिदायत ने उस खत के जवाब आने की मुद्दत से पहले मुझे गर्दाबे[५] इज्तराब से निकाला। कल १२ नवम्बर को नवाजिशनामा आ गया। गोया मेरी जान बच गई, बल्के एक और नई जान मेरे बदन मे आ गई, अब इस्तदुआ ये है के हाले नासाजी मिजाजे अकदस मुफस्सल मालूम हो। ज्यादा हद्दे अदब।

तुम सलामत रहो हजार बरस
हर बरस के हो दिन पचास हजार

यक शबा १३ नवम्बर सन् १८६४।

आफियत का तालिब
—गालिब

---

१. रात दिन। २. एक तरह का टाँगा। ३. टेलिग्राम। ४. पूर्ण गुरु। ५. विपत्तियो का भवँर।

३३

(१३ नवंबर १८६४)

हजरत वली नेमत आयए रहमत सलामत,

बाद तस्लीम मारूज है—इनायतनामा मय हुण्डवी शर्फे वुरूद लाया। सौ रुपया बाबत अक्तूबर सन् १८६४ मारिज वसूल मे आया। ज्यादा हद्दे अदब।

तुम सलामत रहो कयामत तक
दौलतो इज्जो जाह रोज अफजूँ

आफियत का तालिब
—ग़ालिब

३४

(२७ नवंबर १८६४)

हजरत वली नेमत आयए रहमत सलामत,

बाद तस्लीम मारूज है—किस जबान से कहूँ और किस कलम से लिखूँ के ये हफ्ता[1] अशरा किस तरद्दुद व तशवीश से बसर हुआ है। हर रोज़ शाम तक जानिबे दर[2] निगराँ रहता के डाक का हरकारा आये हजरत का नवाजिशनामा लाए। बारे, खुदा की मेहरबानी हुई। अज सरे[3] नौ मेरी जिन्दगानी हुई के कल चार घडी रात गए डाक के हरकारे ने वो उतूफत नाम ए आली दिया जिसको पढकर रूह ताज़ा[4] रगो पै मे दौड गई। नीद किसकी, सोना किसका? रोशनी के सामने बैठा और अशारे तहनियत लिखने लगा। ७ शेर मय माद्दए

१ आठ-दस दिन। २. दरवाजे की ओर देखना। ३. नवीन रूप से। ४. नसो मे नई आत्मा दौड गई।

हुसूले[1] सेहत जब लिख लिए तब सोया। अब इस वक़्त वो मसविदा साफ करके इरसाल करता हूँ।

तुम सलामत रहो हज़ार बरस
हर बरस के दिन हो पचास हज़ार

ख़ैरो आफियत का तालिब
—ग़ालिब

३५

(१२ दिसंबर १८६४)

हज़रत वली नेमत आयए रहमत सलामत,

बाद तस्लीम मारूज है—नवाजिशनामा इज्ज़े वुरूद लाया। अज़ रुए हुण्डवी सौ रुपए बाबते तनख़ाह माहे नवंबर सन् १८६४ मारिजे वसूल में आया। ज़्यादा हद्दे अदब।

तुम सलामत रहो हज़ार बरस
हर बरस के दिन हो पचास हज़ार

१३ रज्जब व दिसंबर सन् १८६४।

तुम्हारी सलामती का तालिब
—ग़ालिब

३६

(२६ दिसंबर १८६४)

हज़रत वली नेमत आयए रहमत सलामत,

बादे तस्लीम मारूज है—हज़रत के कदमों की कसम, चोब चीनी के इस्माल

---

१. स्वास्थ्य लाभ।

का हुक्म डाक से मैंने नही पाया। २२ दिसंबर को हरकारा आया। नवाजिश-नामए शर्फ अफजा[1] लाया। दिल्ली अब शहर नही; छावनी है, कम्प है। न किला है, न शहर के उमरा, न अतराफे शहर के रऊसा[2]। वहरहाल तीन-चार दिन मे हरेक जगह से मगवा कर रगीन व सगीन व बेगिरह[3] या कम गिरह खुद चुनकर पाँच सेर कत्तात चोव चीनी एक ठिलिया मे रखकर आटे से मुँह बन्द किया, फिर कपडा लपेटा। डोरे से खूब मजबूत बाँधकर दो जगह अपनी मुहर की और ठिलिया कहार को सौंपी।

तुम सलामत रहो कयामत तक
दौलतो इज्जो जाह रोज अफजूँ

रोजे दो शबा, २६ दिसंबर सन् १८६४, वक्ते सुबह हवाले कहारे सरकार।

मुहर गालिब

३७

(१५ जनवरी १८६५)

हज़रत वली नेमत आयए रहमत सलामत,

वाद तस्लीम मारूज है—नवाज़िशनामे के वुरूद से इज्ज़त और इदराके[4] सेहत व आफियते मिजाजे अकदस से मसर्रत हासिल हुई। परचए हुण्डवी उस तौकी मे मलफूफ पाया। सौ रुपया वावते तनखा दिसंबर सन् १८६४ मारिज़े वसूल मे आया। ज्यादा हद्दे अदव।

तुम सलामत रहो कयामत तक
दौलतो इज्जो जाह रोज अफजूँ

हुजूर की सलामती का तालिव
—गालिव

---

१. स्वास्थ्य की सूचना। २. रईस (व० व०) ३ विना गाँठ का। ४. स्वास्थ्य लाभ।

अज़दद्दौला हकीम .गुलाम नजफ़ख़ां के नाम

१.

(२१ दिसम्बर १८५७)

मियाँ,

हकीकते हाल इससे ज्यादा नही है के अब तक जीता हूँ, भाग नही गया, निकाला नही गया, लुटा नही, किसी महकमे में अभी तक बुलाया नही गया, मारिज़े वाजपुर्स मे नही आया। आइन्दा देखिए क्या होता है। शेर ज़माख़ाँ ने मुझे आगरे से खत लिखा। उसमे एक रुक्का शेख नज्मुद्दीन हैदर साहब की तरफ से बनाम जहीरुद्दीन के। अब मुझको जरूर आ पडा के उसको तुम्हारे पास भेजू। आदमी कोई ऐसा नज़र न चढा, नाचार, बतरीके डाक भेजता हू। अगर पहुँच जाए तो आगरे का जवाब लिखकर मेरे पास भेज देना। मै यहाँ से आगरे को रवाना कर दूँगा।

मुरस्सिलए दो शंबा, चारुम जमादिल अव्वल सन् १२७४ हि०।

जवाब तलब

—ग़ालिब

२

(२६ दिसम्बर १८५७)

मियाँ,

तुम्हारा खत पहुँचा। आज मैंने उनको अपने खत मे मलफूफ करके आगरे को रवाना किया। तुम जो कहते हो के तुमने कभी मुझको खत नही

लिखा और अगर शेख नज्मुद्दीन हैदर का खत न आता तो अब भी न लिखते, इन्साफ करो। लिखू तो क्या लिखूँ? कुछ लिख सकता हूँ, कुछ काबिल लिखने के है? तुमने जो मुझको लिखा तो क्या लिखा और अब जो मै लिखता हूँ तो क्या लिखता हूँ? बस इतना ही है के अब तक हम जीते है। ज्यादा इससे न तुम लिखोगे, न मै लिखूँगा। जहीरुद्दीन को दुआ कहना और मेरी तरफ से प्यार करना। तुमको और जहीरुद्दीन और उसकी माँ को और बहन को और उसकी लडकी को तुम्हारी माँ दुआ कहती है और दुआएं देती है। ये रुक्का हैदर हुसेन खाँ के नाम का है। उनको हवाले कर देना।

निगाश्तए शबा २६ दिसम्बर सन् १८५७ ई०।

—असदुल्लाह

३

(१९ जनवरी १८५८)

सआदतो इकबाले निशान हकीम गुलाम नजफखाँ ताला[1] बकाहहू,

तुम्हारा रुक्का पहुँचा। जो दम है, गनीमत है। इस वक्त तक मै मय अयालो[2] अतफाल जीता हू; बाद घडी भर के क्या हो, कुछ मालूम नही। कलम हात मे लिए, पर, जी वहुत लिखने को चाहता है, मगर कुछ नही लिख सकता। अगर मिल वैठना किस्मत में है तो कह लेगे वर्ना इन्नालिलाह् व इन्ना-इलहे राजऊन।

नवासी का हाल मालूम हुआ। हक ताला उसकी माँ को सब्र दे और जिन्दा रखे। मै यो समझता हू के ये छोकरी किस्मतवाली और हुरमतवाली थी। तुम्हारी उस्तानी[3] तुमको और ज़हीरुद्दीन को और उसकी माँ को और

---

१. चिरजीवी हो। २ सपरिवार। ३ गुरुपत्नी।

उसकी बहन को दुआ कहती है और मैं ज़हीरुद्दीन को प्यार करता हूँ और दुआ देता हूँ।

से शबा, १९ जनवरी सन् १८५८ ई० ।

—ग़ालिब

४

(१८५८ ई०)

भाई,

होश मे आओ। मैंने तुमको खत कब भेजा और रुक्के मे कब लिखा के शेर ज़माँखाँ का खत तुम्हारे पास भेजता हूँ। मैंने तो एक लतीफा लिखा था के शेर ज़माँखाँ ने मेरे खत मे तुमको बंदगी लिखी थी और मैं वो वन्दगी इस रुक्के में लपेट कर तुमको भेजता हूँ। बस बात इतनी ही थी, वही बन्दगी लिखी हुई, गोया लिपटी हुई थी सो हजरत को पहुँच गई। खातिरे आतिर जमा रहे।

—ग़ालिब

५

(१ अप्रेल १८५८ ई०)

मियाँ,

तुमको मुबारक हो के हकीम साहब पर से वो सिपाही जो उनके ऊपर मुतइय्यन था उठ गया और उनको हुक्म हो गया के अपनी वज़ा पर रहो मगर शहर में रहो। बाहर जाने का अगर कस्द करो तो पूछ कर जाओ और हर हफ्ते में एक बार कचहरी में हाज़िर हुआ करो। चुनाचे वो कच्चे बाग के

पिछवाडे मिर्ज़ा जागन के मकान मे आ रहे। सफदर मेरे पास आया था, ये उसकी जबानी है। जी उनके देखने को चाहता है, मगर अज़राहे अहतियात जा नही सकता।

मिर्जा बहादुर बेग ने भी रिहाई पाई। अब इस वक्त सुना है के वो खाँ साहब के पास आए है। यकीन है के बाद मुलाकात बाहर चले जाएगे। यहाँ न रहेगे। कदम शरीफ मे वो रहते है।

आज पाँचवाँ दिन है के हकीम महमूदखाँ मय[1] कबायल व अशायर पटियाले को गए। मै बमुक्तजा[2] ए वक्त अपनी सुकूनत के मकान छोडकर यहाँ रहा हूँ, इस तरह के महलसरा मे जनाना और दीवानखाने मे मर्दाना।

पिन्सन की दरखास्त का अभी कुछ हुक्म नही मालूम हुआ। कलेक्टर से कैफियत तलब हुई है। देखिये बाद कैफियत के जाने के पिन्सन मिलता है या जवाब।

पजशबा १६ शाबान सन् १२७४ हि० मुताबिक यकुम अप्रेल सन् १८५८ ई०।

६

(अप्रेल १८५८)

भाई,

मेरा दुख सुनो। हर शख्स को गम माफिक उसकी तबीयत के होता है। एक तन्हाई से नफूर[3] है, एक को तन्हाई मजूर है। ताहुल[4] मेरी मौत है। मै कभी इस गिरफ्तारी से खुश नही रहा। पटियाले जाने में एक मुब[5] की

---

१. परिवार और परिचारको के साथ। २. समय के अनुसार। ३. घृणा। ४. बाल बच्चो मे रहना। ५. अपमान।

और जिल्लत थी। अगर चे मुझको दौलते तन्हाई मयस्सर आ जाती, लेकिन इस तन्हाई चन्द रोजा और तजदीद[1] मुस्तार की क्या खुशी? खुदा ने लावलद[2] रखा था, शुक्र बजा लाता था। खुदा ने मेरा शुक्र मकबूल व मजूर न किया। ये बला भी कबीलेदारी की शक्ल का नतीजा है, याने जिस लोहे का तौक, उसी लोहे की दो हतकडियाँ भी पड़ गई। खैर, इसका क्या रोना है? ये कैदे[3] जावेदानी[4] है।

जनाब हकीम साहब एक रोज अज राहे इनायत यहाँ आए। क्या कहूँ के उनके देखने से दिल क्या खुश हुआ है। खुदा उनको जिन्दा रखे। मियाँ, मैं कसीरुल[5] अहबाब शख्स हूँ। सैकड़ो बल्के हजारो दोस्त इस बासठ बरस में मर गए। खुसूसन इस फितना व आशोब मे तो शायद कोई मेरा जानने वाला न बचेगा। इस राह से मुझको जो दोस्त अब बाकी है, बहुत अजीज है। वल्लाह, दुआ माँगता हूँ के अब इन अहिब्बा[6] मे से कोई मेरे सामने न मरे, क्या माने के जो मैं मरूँ, कोई मेरा याद करने वाला और मुझ पर रोने वाला भी तो दुनिया मे हो।

मुस्तफा खा का हाल सुना होगा। खुदा करे मुराफे में छूट जाए, वर्ना हब्से[7] हफ्तसाला की ताब उस नाज[8] परवर्द मे कहा? अहमद हुसेन 'मयकश' का हाल कुछ तुमको मालूम है या नही? मखनूक[9] हुआ, गोया इस नाम का आदमी शहर मे था ही नही।

पिन्सन की दरखास्त दे रखी है। बगर्ते इजरा भी मेरा क्या गुजारा होगा? हाँ दो बातें है, एक तो ये के मेरी सफाई और वे गुनाही की दलील है, दूसरे ये के मुआफिक कौले अवाम—चूल्हे दलद्दर न होगा।

---

१. पृथक रहना। २. निस्सन्तान। ३. [illegible] बन्धन। ४. चिरकालीन। ५. बहुमित्र। ६. प्रिय। ७. सात वर्ष की जेल। ८ कोमल। ९. जिसे फांसी दी गई।

तुझको मेरी जानकी कसम। अगर मैं तन्हा होता तो इस वजह कलील मे कैसा फारिगुल[1] बाल और खुशहाल रहता? ये भी खब्त है जो मैं कह रहा हूँ, खुदा जाने पिन्सन जारी होगा या न होगा। एहतमाले तैय्युश व तनउम[2] बशर्तें तजरीद सूरत इजरा ए पिन्सन मैं सोचता हूँ, और वो मौहूम[3] है। 'बेदिल' का शेर मुझको मजा देता है—

न[4] शामे मा रा सहरे नवीदे, न सुबह मा रा दम सुपैदे
चू हासिले मास्त ना उमीदी, गुबारे दुनिया वफर्के उकबा।

इस वक्त जी तुमसे बातें करने को चाहा। जो कुछ दिल मे था वो तुमसे कहा। ज्यादा क्या लिखूँ?

अज़—ग़ालिब

बनाम—जानो जानाँ। व अज जानो जाना अज़ीजतर हकीम गुलाम नजफखाँ सल्लमुहल्लाह् ताला।

७

(१८५८ ई०)

मियाँ,

पहले जहीरुद्दीन का हाल लिखो, फिर हकीम साहब की हकीकत लिखो। कही और जाएँगे या यहाँ आएँगे? अगर यहाँ आएँगे तो कब तक आएँगे? फिर तुम खत लिखो मियाँ निजामुद्दीन को, और उसमे लिखो के तुमने गालिब के खत का जवाब नही लिखा। वो कहता है के मैं हैरान हूँ के मियाँ निजा-

---

१. निश्चिन्त, सन्तुष्ट। २. विलास और वरदान। ३. सन्दिग्ध। ४. मेरी सन्ध्या को प्रातःकाल होने की आशा नही, यदि प्रातःकाल हो भी जाए तो वह प्रकाशमान न होगी। जब मेरा प्राप्तव्य असफलता है तो जीवन का दुःख प्रलय-दिवस के दुःख से बढकर है।

मुद्दीन और मेरे खत का जवाब न लिखें ! खुदा जाने मुझसे ऐसी क्या तकसीर[1] हुई है ।

नजात का खुदा से, और तुमसे इस रुक्के के जवाब का तालिब—

—ग़ालिब

८

(जुलाई १८५८)

भाई,

तुम्हारे रुक्के का जवाब पहले तुमको शेर जमाँखाँ ने दिया होगा, फिर जहीरुद्दीनखाँ ने तुमसे कहा होगा । कहो, कोई तरह शहर मे तुम्हारे आने की भी ठहरी या नही ? बोद[2] तीस कोस और आध कोस का बराबर है । मेरी जान, तुम हनोज़ दोजाने में हो । मुझको भी तुम जानते हो के मेरा शहर में रहना बइजाजत सरकार के नही और बाहर निकलना बे टिकट मुमकिन नही । फिर मैं क्या करूँ, क्यो कर वहाँ आऊँ ? शहर मे तुम होते तो जुरत करके तुम्हारे पास चला आता । शेरजमाखाँ साहब एक बार आए थे । कह गए थे के फिर भी आऊँगा । मगर नही आए । खुदा जाने उनके वालिद की रिहाई हुई या नही । अगर तुमसे मिले तो मेरा सलाम कहना और उनको मेरे पास भेज देना और तुम, उनके वालिद का जो हाल उनकी जबानी मालूम हुआ हो वो मुझको लिख भेजो । जहीरुद्दीन को दुआ । बद्दुआ ।

अज़—ग़ालिब

---

१. अपराध । २. दूरी ।

९

(अगस्त १८५८)

भाई,

हाँ, गुलाम फकरुद्दीनख़ाँ की रिहाई, ज़िन्दगी दुबारा है। ख़ुदा तुमको मुबारक करें, सुना है लुहारू भी उन दोनो साहबो को मिल गया। ये भी एक तहनियत है। ख़ुदा सब का भला करे। मुझको डिप्टी कमिश्नर ने बुला भेजा था। सिर्फ इतना ही पूछा के गदर मे तुम कहाँ थे ? जो मुनासिब हुआ वो कहा गया। दो-एक खत आमद विलायत मैंने पढ़ाए। तफसील लिख नहीं सकता। अन्दाजे[1] अदा से पिन्सन का वहाल व बरकरार रहना मालूम होता है, मगर पन्द्रह महीने पिछले मिलते नज़र नही आते।

मियाँ ये अलवर मे क्या फसाद बरपा हुआ है ? ख़ुदा खैर करे। वास्ते ख़ुदा के जो तुमको मालूम हुआ हो और जो मालूम हो जाए उससे मुझको भी इत्तिला देना।

—ग़ालिब

१०

(१८५८ ई०)

किब्ला,

ये तो मालूम हुआ के बाद कत्ल होने दस आदमी के, के दो उसमे अज़ीज़ भी थे ये सब वहाँ से निकाले गए। मगर सूरत नही मालूम के क्यो कर निकले। प्यादा या सवार ? तिहीदस्त या मालदार ? मस्तूरात[2] को रथें दे दी थीं। जुकूर का हाल क्या हुआ और फिर वहाँ से निकलने के बाद क्या हुआ ?

---

१. रग ढग। २. महिलाएँ।

कहाँ रहे और कहाँ रहेगे ? सरकार अगरेजी की तरफ से मौरिद तफक्कुद व तरहहुम है या नही ? रग क्या नजर आता है। जब्र[1] कसर की तवक्को है या नही ?

तफज्जुल हुसेनखाँ का हाल खुसूसन और इन सवालात का जवाब उमूमन लिखो। मिर्जा मुगल मेरा हकीकी भानजा, के वो मुशी खलीलुद्दीनखाँ मरहूम का खीश है, उसकी वीवी है और शायद एक या दो वच्चे भी है। इजानी[2] है ये अम्र के वो भी काफिले के साथ होगा। अगर आपको मालूम हो तो उसका हाल वइन्फराद[3] लिखिए। खाजा जान और खाजा अमान की हकीकत भी वशर्ते इत्तिला जरूर तहरीर फरमाइए। और हाँ साहव, आप जानते होगे अली मुहम्मदखाँ को, वो जो मीर मुशी अजीजुल्लाखाँ का खीश[4] है। अगर कुछ उसका भी जिक्र सुना हो तो मैं उसका खैर[5] तलव हूँ।

जवाव तलव।

—गालिव

११

(२१ जनवरी १८६०)

मियाँ,

मैं तुमसे रुख़सत होकर उस दिन मुरादनगर मे रहा। दूसरे दिन याने जुमे को मेरठ पहुंचा। नवाव मुस्तफाखाँ ने एक दिन रख लिया। आज शंवा २१ जनवरी यहाँ मुकाम है। ९ वज गए है। वैठा हुआ ये खत लिख रहा हूँ। मुफ्त का खाना है। खूब पेट भर कर खाऊँगा। कल शाहजहाँपुर, परसों गढ-

१ अत्याचार मे कमी। २. विश्वास है। ३. व्यक्तिगत। ४. आत्मीय। ५. शुभेच्छक.

मुकतेसर रहूँगा। मुरादाबाद से फिर तुमको खत लिखूँगा। लड़को के हात के दो खत लिखे हुए उनकी दादी को भिजवा दिए है। तुम इस अपने नाम के खत को लेकर डेवढी पर जाना और अपनी उस्तानी जी को पढ़कर सुना देना। और खैरो आफियत कह देना। जनाव खॉ साहब को मेरा सलामे नियाज़ और जहीरुद्दीन अहमद को दुआ कह देना।

हाँ भाई, मे अज़ रू ए मसलिहत अपने को मुक़ामाते मुख़्तलिफ[1] का आजिम[2] कह आया हूँ। अब जो शख्स तुमसे पूछा करे उससे पर्दा न करना और साफ कह देना के रामपूर को गया है। याने सब को मालूम हो जाए और कोई तजबजुब में न रहे।

मरकूमए चाश्तगाहे शबा, २१ जनवरी।

१२

(३ फ़रवरी १८६०)

वरखुरदार सआदतो इकवाले निशान हकीम गुलाम नजफखॉ को मेरी दुआ पहुँचे।

तुम्हारी तहरीर पहुँची। तुम जुदागाना ख़त क्यो न लिखा करो ? खत लिखा और वैरग या पोस्ट-पेड जिस तरह चाहा अपने आदमी के हात डाकघर भेज दिया। मकान का पता जरूर नही। डाकघर मेरे घर के पास, डाक-मुशी मेरा आशना। अव तुम एक काम करो, आज या कल डेवढी पर जाओ और जितने ख़त जमा है, वो लो, मानसिगी मजवूत कागज़ का लिफाफा करो और 'वैरग' लिख कर कल्याण के हात डाकघर मे भिजवा दो। और अपने खत में जो हाल शहर में नया हो वो मुफ़स्सिल लिखो। जनाव हकीम साहव को सलामे नियाज और जहीरुद्दीन अहमदखा को दुआ कहना।

---

१. विविध। २. इच्छुक।

अब मेरा हाल सुनो। ताजीम[1] व तौकीर बहुत, मुलाकाते तीन हुई है; एक मकान, के, वो तीन चार मकानो पर मुश्तमिल है, रहने को मिला है। यहाँ पत्थर तो दवा को भी मयस्सर नही। ख़िश्ती[2] मकान गिनती के है, कच्ची दीवारे और खपरेल। सारे शहर की आबादी इसी तरह पर है। मुझको जो मकान मिले है, वो भी ऐसे है। हनोज़ कुछ गुफ़्तगू दर्मियान नही आई। मै ख़ुद उनसे इब्तदा[3] न करूँगा। वो भी मुझसे बिलमुशाफा[4] न कहेगे, मगर ब वास्तए कार परदाजान सरकार[5]। देखूँ क्या कहते है और क्या मुकर्रर करते है, मै समझा था के मेरे पहुँचने के बाद जल्द कोई सूरत करार पाएगी; लेकिन आज तक, के, जुमा आठवाँ दिन मेरे पहुँचे को है, कुछ कलाम नही हुआ। खाना दोनो वक़्त सरकार से आता है और वो सब को काफी होता है। गिजा मेरे भी खिलाफे[6] तबा नही। पानी का शुक्र किस मुँह से अदा करूँ! एक दरिया है 'कोसी'। सुभान अल्लाह्! इतना मीठा पानी के पीने वाला गुमान करे के ये फीका शरबत है, साफ, सुबुक,[7] गवारा, हाजिम, सरीउल[8] नफ़ूज। इस आठ दिन मे कब्ज़ व इन्कबाज के सदमे से महफ़ूज़ हूँ। सुबह को भूक खूब लगती है, लडके भी तन्दुरुस्त, आदमी भी तवाना[9] मगर हाँ एक इनायतुल्ला दो दिन से कुछ बीमार है। खैर अच्छा हो जाएगा। बहुआ।

जुमा ३ फरवरी सन् १८६० ई०।

१३

(१४ फरवरी १८६०)

मियाँ,

तुमने बुरा किया के लिफाफा खोलकर न पढ़ लिया। वारे, आज

---

१. आदर सत्कार। २. ईट। ३. प्रारम्भ। ४. प्रत्यक्ष। ५. सरकारी कर्मचारियो के द्वारा। ६. स्वभाव के विरुद्ध। ७. हलका। ८. शरीर को तुरन्त प्रफुल्ल करता है। ९. हृष्ट पुष्ट।

सेशंबा १४ फरवरी, सुबह के वक्त ये लिफाफा पहुँचा और उसी वक़्त पढ़वाया गया। ख़त लेफ्टेट गवर्नर वहादुर का नहो। ये खत नवाब गवर्नर जनरल बहादुर के चीफ सेक्रेतर का है। तर्जुमा उसका ये है—

"अज़ दफ़्तरखाना सेक्रेतर आजम। हुक्म दिया जाता है अर्ज़ी देने वाले को के जवाब इस अर्जी का नवाब गवर्नर जनरल बहादुर बाद दरियाक्त के इर्शाद फरमाएँगे। अज केम्प लूधियाना, २८ जनवरी सन् १८६० ई०।"

यहाँ का ये हाल है के नवाब लेफ्टेट गवर्नर बहादुर आगरा, मुरादावाद आया चाहते है। मुरादाबाद यहाँ से बारह कोस है। नवाव साहब दौरे को, अपने मुल्क के, गए हैं। दो-चार दिन मे फिर आएँगे। अगर उनकी मुलाक़ात को मुरादाबाद जाएँगे, मैं भी साथ जाऊँगा। अगर चे गवर्नर गर्वो शुमाल को दिल्ली से कुछ इलाका नही, मगर देखूँ क्या गुफ्तगू दरमियान आती है, जो वाके होगा तुम्हे लिखूँगा।

ये तुम क्या लिखते हो के घर में खत जल्द जल्द लिखा करो। तुमको जो खत लिखता हूँ, गोया तुम्हारी उस्तानीजी को लिखता हूँ। क्या तुमसे इतना नही हो सकता के जाओ और पढ कर सुना आओ? अब उनको ख़याल होगा के इस अंगरेजी खत मे क्या लिखा है। तुम ये खत मेरा हात मे लिए जाओ और हर्फ व हर्फ पढ सुनाओ।

लडके दोनो अच्छी तरह है, कभी मेरा दिल वहलाते हैं, कभी मुझको सताते है। वकरियाँ, कबूतर, वटेरे, तुक्कल, कनकौआ सब सामान दुरुस्त है। फरवरी महीने के दो-दो रुपए लेकर दस दिन मे उठा डाले। फिर परसो छोटे साहब आए के दादाजान कुछ हमको क़र्ज़ हसना[1] दो। एक रुपया दोनो को कर्ज हसना दिया गया। आज १४ है। महीना दूर है।

---

१. बिना व्याज का ऋण।

देखिए कै वार कर्ज लेगे। यहा का रग नवाब साहब के आने पर जो होगा और जो करार पाएगा वो मुफस्सिल तुमको लिखूँगा। और तुम अपनी वालिदा को सुना देना। और हा भाई ये भी घर मे पूछ लेना के केदार-नाथ ने अन्दर-बाहर की तनखा बाट दी ? मैंने तो वफादार[1] और हलाल[2]-खोरी तककी भी तनखा भेज दी है।

सेशबा, १४ फरवरी सन् १८६० ई०।

—गालिब

१४

(११ जनवरी १८६३)

साहब,

कल आखिरी रोज तुम्हारा खत आया। मैंने पढा। आँखो से लगाया फिर भाई जियाउद्दीन खाँ साहब के पास भिजवाया। यकीन है के उन्होने पढ लिया होगा। मा कुतुबे फी[3] मालूम किया होगा। तुम्हारे यहाँ न होने से हमारा जी घबराता है। कभी कभी नागाह जहीरुद्दीन का आना याद आता है। कहो, अब खैर से कब आओगे ? कै बरस, कै महीने, कै दिन राह दिखाओगे ? यहाँ का हाल, जैसा के देख गए हो, बदस्तूर है।

जमी सख्त है आसमां दूर है

जाडा खूब पड रहा है। तवाँगर[4] गुरूर से, मुफलिस[5] सर्दी से अकड रहा है। आबकारी के बन्दोबस्ते जदीद[6] ने मारा, अर्क के न खीचने की कैदे शदीद[7] ने मारा। इधर इन्सदादे[8] दरवाजए आबकारी है, उधर विलायती अर्क की कीमत भारी। इन्नालिल्लाहे व इन्नाइलहे राजऊन।

---

१. नौकर-चाकर। २ भंगी से सम्बन्धित। ३. जो कुछ भी उसमे लिखा गया। ४. धनी लोग। ५. दरिद्र। ६. नवीन। ७. कडा बन्धन। ८. रोक।

मौलवी फजले रसूल साहब हैदराबाद गए है। मौलवी गुलाम इमाम 'शहीद' आगे से वहाँ है। मुहिउद्दोला, मुहम्मदयारखाँ सूरती ने इन सूरतो को बुलाया है, पर यह नही मालूम के वहाँ इनको क्या पेश आया है। अगर तुम मालूम कर सको या कुछ तुमको मालूम हो गया है, तो मुझको जरूर लिखो। ज्यादा क्या लिखूँ ?

क्यो जहीरुद्दीन, क्या मै इस लायक न था के तू एक खत मुझको अलग लिखता या अपने बाप के खत मे अपने हात से अपनी बन्दगी लिखता! हकीम गुलाम नजफखाँ खत लिखने बैठे, तेरी बन्दगी लिख दी। तेरे फरिश्तो को भी खबर नही। इस बन्दगी के आने की मुझे क्या खुशी ?

सुबह यक शबा, ११ जनवरी सन् १८६३ ई०।

—ग़ालिब

१५

(१८६४ ई०)

भाई,

मै तुमको क्या बताऊँ के मै कैसा हूँ ? ताकत यक कलम जाती रही है। फोडा बदस्तूर है; रिसता है। खैर, महले अँदेशा नही है; रिस रिस कर माद्दा निकल जाएगा। इससे और ज्यादा खस्ता व अफसुर्दा हूँ—कब्ज के वो दुश्मने[1] जानी है, इन दिनो मे हद को पहुँच गया है। बहरहाल—

मर्गेऽस्त[2] बनामे ज़िन्दगानी

हज़रत, गौर की जगह है। एक मकान दिलकुशा, कूचे की सैर, बाज़ार का तमाशा, दो कमरे, दो कोठरियाँ, आतिशदान, सहन वसी। इसको छोड

१. प्राण लेवा। १. मेरा जीवन क्या है ? मृत्यु।

कर वो मकान लूँ जो एक तग गली के अन्दर है। दरवाजा वो तारीक[1] के दिन को वगैर चिराग के राह न मिले। और डेवढी पर हलालखोरो का मजमा, गोह के ढेर, कही हलालखोरो[2] का बच्चा हग रहा है, कही बैल बँधा हुआ है, कही कूडा पड़ा हुआ है। अयाजन बिल्लाह। खुदा न ले जाए ऐसे मकान में।

तुमने वो मसविदा क्यो नही भेजा ? मै खिदमत गुजारी को आमादा हूँ।

नजात का तालिब
—गालिब

१६

शवा, ४ जीकादा (१२८१ हि०) यकुम अप्रेल (१८६५ ई०)

मियाँ, तुम्हारा गिला मेरे सरो चश्म पर लेकिन मेरा हाल सुन लो और अपने वहम[3] व कयास पर अमल न करो। पहले जहीर दिल पजीर का खत आया। पढते ही उसका जवाब लिख रखा। दूसरे दिन डाक में भिजवाया। मजमून[4] वतगय्युरे अल्फाज ये—तुम जो फोडे फुन्सी मे मुब्तिला रहते हो इसका सबब ये के मुझमे तुम्हारा लहू मिलता है और मै अहतराके[5] खून का पुतला हूँ। फिर तुम्हारा खत आया। तीसरे दिन उसका जवाब भिजवा दिया। मजमून ये के तुमसे तो मेरा प्यारा पोता जहीरुद्दीन अच्छा के जाते वक्त मुझसे मिल गया और वहाँ पहुँचते ही मुझको खत लिखा। रसीद डाक-घर से मिलती नही। खत दोनो पेड़ थे। यहाँ के डाक घर में मुमकिन नही के मेरे वे दोनो खत रह गए हो, शेखूपुर की डाक के हरकारो ने न पहुँचाया, मेरा क्या कुसूर ? अलबत्ता सरनामे पर सिर्फ बस्ती का नाम और तुम्हारा

---

१. अन्धकार पूर्ण। २. गू। ३. भगी। ४. बदले हुए शब्दों में उसका आशय। ५. उष्ण रक्त।

नाम था। महल्ले का नाम न था। शायद इस सबब से ख़त न पहुँचा हो। इसी वक़्त तुम्हारा खत आया। मैंने लेटे लेटे ये सतरे लिखी। अब इनायतुल्ला को तुम्हारे घर भेजता हूँ और पुछवा मँगवाता हूँ के पता वहाँ से क्या लिखा जाता है। लो साहब, इनायतुल्ला आया और पुर्जा लाया है। पता सरनामे पर लिखता हूँ, मगर डाक का वक़्त नही रहा, कल भेज दूँगा।

हकीम जहीरुद्दीन खाँ को दुआ। बेटा अब इस वक़्त मुझमे दम नही, दुआ पर किनाअत कर। तेरे ख़त का जवाब जैसा के ऊपर लिख आया हूँ, भेज चुका हूँ। झूटे पर लानत। तू भी कह 'बेशबाद[1]'।

नवाब मुस्तफाखाँ कल शहर मे आ गए। मय कबायल[2] आए है। जीकादा मे छोटे लडको की खतना, और ज़िलहज्जा[3] मे मुहम्मद अली ख़ाँ की शादी करेगे।

आज पाँचवाँ दिन है। शहर मे मुर्ग के अडे के बराबर ओले पडे; कही-कही इससे बडे भी। नवाब लेफ्टेट गवर्नर बहादुर जदीद[4] आए। दरबार किया, मेरी ताजीम और मुझ पर इनायत, मेरी तमन्ना से ज्यादा की। आओगे तो मुफस्सिल सुन लोगे।

नजात का तालिब

—ग़ालिब

१७

मियाँ,

चाँवल बुरे-बढते नही, लबे नही, पतले नही। अब ज्यादा किस्मा न करो। पुराने और पतले चाँवल आये, एक रुपए के खरीद करके भेज दो। याद रहे,

---

१. अधिक हो। २. सपरिवार। ३. एक महीने का नाम। ४. नये।

नये चाँवल काविज़ होते है और पुराने चॉवल काविज नही होते। ये मेरा तजर्वा है।

शाम को मीर मजदुद्दीन साहब कहते थे के हकीम गुलाम नजफखाँ के पास एक कातिब हैं। भाई, दस बारह जुज्व की एक किताव नस्र की मुझको लिखवानी है। ये मालूम करलो के वो साहब रुपये के कै जुज्व लिखेगे और रोज़ किस कदर लिख सकते हैं। ये तो अब लिखो और फिर दोपहर वाद उनको पास भेज दो ताके मैं उनको कागज़ और मनकूल[1] अना हवाले करूँ।

जहीरुद्दीन को दुआ कहो और उसका हाल लिखो।

—गालिब

१८

(११ अक्टूबर १८६५)

बरखुरदार हकीम गुलाम नजफखाँ को फकीर गालिब अली शाह की दुआ पहुँचे।

बुध का दिन, पहर भर दिन चढा होगा के मैं फक्त पालकी पर मुरादाबाद पहुँचा। २० जमादिल अव्वल की, ११ अक्तूबर की है। दोनो लडके, दोनो गाडियाँ और रथ और आदमी सब पीछे हैं। अब आए जाते है। रात बखैर गुज़रे, बशर्त्ते हयात कल रामपूर पहुंच जाएँगे। घबराया हुआ हूँ। तीसरा दिन है, पायखाना फिरे को। लडके वग़ैरो आफियत हैं। अपनी उस्तानी से कह देना। मिर्जा शहाबुद्दीनखाँ को दुआ। नवाब जियाउद्दीन को सलाम। मेरा रुक्का इन दोनो साहबो को पढा देना, जरूर जरूर। जहीरुद्दीन 'दुआ' से [illegible]फा होगा। उसको मेरी बन्दगी कहना।

—गालिब

---

१. जो [illegible] है।

मे हमेशा इन अमराज मे मुब्तिला हो जाती है। एक नुस्ख़ा
पास माउल्लहम[1] का है, वो खिचवा दो और जरा खबर लेते
क़दारदनाथ लडका है। वो मुझसे क्या खफा होगा? रुपया जो
मे जमा होगा आख़िर वही लाएगा। खफा मै हूँ के रुपया
ाम पाया और मेरा तमस्सुक न दिया और चिट्ठा '२३' रुपए ८
ा न बाँटा। मकान के रोकने को और किस तरह लिखूँ? शहाबुद्दीनखा
नखा। शमशादअली बेग को लिखा, अब तुमको लिखता हूँ।
सेतम्बर को '५ रुपए ८ आने' दे आया हूँ। अक्तूबर, नवम्बर, दिसम्बर
६ रुपए ८ आने' आकर दूँगा? बल्के अगर मौका बनेगा तो ये सेमाहा
से बतरीके हुण्डवी भेज दूँगा।

इस्माइल खा साहब को मेरी दुआ कहो और कहो के डेवढी की सीढ़ी
ा दे और हवेली के पायखाने की सूरत दुरुस्त करवा दे। हाय किस्मत:
किस्मत पर लानत के मियाँ फजले हसन मेरे मुरव्वी व मुहसिन बने और
ाये[2] महरूमी के मतलब बर आरी न हो! खुदा करे न हो। लौडो का
ाहरे कातिल है। फजलुल्लाखाँ मेरा भाई है। उसका अहसान
ा। सौ वार उससे कहा और हजार वार कहूँगा। खैर जो हुआ
आप उससे जिन्हार न कहिएगा, न लिखिएगा। अगर कुछ
हो, तफज्जुल से कहो, व इल्लाला[3], नवाब साहब दौरे से,
ल, आ जाएँगे। जश्ने जमशीदी की तैयरियाँ हो रही है।

सन् १८६५ ई० सुब्ह का वक़्त।

नजात का तालिब
—गालिब

से नि- ... हैं।
...तिरि ... सी।

से मुझे कुछ न आएगा। वफर्जे महाल अगर मिला तो ढाई सौ रुपया, सो वो भी मुझे भाई फजलुल्लाखाँ का देना है। उनका कर्ज अदा हो जाएगा। अहयानन अगर, खिलाफ मेरे अकीदे के, पान सौ रुपए का हुक्म हुआ और वो आ जाएँ, तो तुम बाद इत्तला ढाई सौ मियाँ फजल को देकर मुझको लिखना। वाकी के वास्ते मै जिस तरह लिखूँ उस तरह करना। लो साहव, शेखचिल्ली वना। खयाली पुलाव पका लिया।

अव रूदाद सुनो। नवाव साहव का इखलास[1] व इल्तफात अफजूँ है। आज मगल का दिन चार जमादिस्सानी की और २४ अक्तूवर की है। खाने की और घोडो और वैलो के घास-दाने की नकदी हो गई। लेकिन इसमे फायदा है। नुक़सान नही। दिसम्वर की पहली से जश्न शुरू होगा। हफ्ते दो हफ़्ते की मुद्दत उसकी है। वाद जश्न के रुखसत होगे। ख़ुदा चाहे तो आखिर दिसम्वर तक तुमको आ देखता हूँ। ज़हीरुद्दीन खाँ को दुआ।

२१

(२२ नवम्बर १८६५)

साहव,

तुम्हारे दो खत मुतवातिर आये। जहीरुद्दीन का आगरे जाना, मेरा ख़त उसका मौसूमा तुम्हारे पास पहुँचना और उसका आगरे को रवाना होना। जहीरुद्दीन की दादी का ये आरिज़ए सुरफा[2] व सुवाल[3] ज़ूर होना, किदारनाथ का मुझसे खफा होना, मकान के रोकने की इजाजत का मागना, फज़्ले हसन से मेरे वास्ते दरयूज़ा[4] तफक्कुद करना, ये मरा-रिज व मतालिव मालूम हुए। जहीरुद्दीन का ख़त तुमने क्यों खोला? वो मगलूवुल[5] गजव है। तुम पर ख़फ़ा होगा। उसकी दादी इस

---

१. शिष्टाचार। २, ३. खाँसी। ४. भीख माँगना। ५. वात वात पर क्रोध करने वाला।

मौसम मे हमेशा इन अमराज मे मुब्तिला हो जाती है। एक नुस्खा उसके पास माउल्लहम[1] का है, वो खिंचवा दो और जरा खबर लेते रहो, किदारदनाथ लडका है। वो मुझसे क्या खफा होगा? रुपया जो खज़ाने मे जमा होगा आखिर वही लाएगा। खफ़ा मैं हूँ के रुपया दाम दाम पाया और मेरा तमस्सुक न दिया और चिट्ठा '२३' रुपए ८ आने का न बाँटा। मकान के रोकने को और किस तरह लिखूं? शहाबुद्दीनखा को लिखा। शमशादअली बेग को लिखा, अब तुमको लिखता हूँ।

सितम्बर को '५ रुपए ८ आने' दे आया हूँ। अक्तूबर, नवम्बर, दिसम्बर ये '१६ रुपए ८ आने' आकर दूँगा? बल्के अगर मौका बनेगा तो ये सेमाहा यहाँ से बतरीके हुण्डवी भेज दूँगा।

इस्माइल खा साहब को मेरी दुआ कहो और कहो के डेवढ़ी की सीढी बनवा दे और हवेली के पायखाने की सूरत दुरुस्त करवा दे। हाय किस्मत: इस किस्मत पर लानत के मियाँ फजले हसन मेरे मुरब्बी व मुहसिन बने और फिर वाये[2] महरूमी के मतलब बर आरी न हो! खुदा करे न हो। लौंडो का अेहसान जहरे कातिल है। फजलुल्लाखाँ मेरा भाई है। उसका अहसान मुझको गवारा। सौ बार उससे कहा और हजार बार कहूँगा। खैर जो हुआ सो हुआ। अब आप उससे जिन्हार न कहिएगा, न लिखिएगा। अगर कुछ कहो तो फजल से कहो, तफज्जुल से कहो, व इल्लाला[3], नवाब साहब दौरे से, या आज शाम को या कल, आ जाएँगे। जश्ने जमशीदी की तैयरियाँ हो रही है।

यकशबा १२ नवम्बर सन् १८६५ ई० सुबह का वक्त।

नजात का तालिब

—ग़ालिब

---

१. एक प्रकार की औषधि, विविध पक्षियो के मांस से निकाला गया अर्क।

२. सफलता प्राप्त नही हुई, दु.ख है। ३. इनके अतिरिक्त अन्य किसी से नही।

२२

(१८६६ ई०)

मियाँ,

आज सुबह को तुम आए थे। मै उस टिकट के किस्से मे ऐसा उलझा के तुमसे कहना भूल गया। अब मीर इनायत हुसेन साहब तुम्हारे पास पहुँचते है। जिस अम्र मे ये तुमसे कोशिश चाहे, तुमको मेरी जान की कसम बदिल मुतवज्जह् होकर उस काम को अजाम दो। अम्र सहल है। कुछ बात नही है, मगर दर सूरत सई खुदा के हाँ से तुमको बडा अजर मिलेगा और मै तुम्हारा ममनून हूँगा।

नजात का तालिब
—ग़ालिब

२३

(१८६६ ई०)

हकीम गुलाम नजफखाँ,

सुनो—अगर तुमने मुझे बनाया है, याने उस्ताद और बाप कहते हो, ये अम्र अज रू ए तमस्खुर है, तो ख़ैर, और अगर अज रू ए अँतकाद है, तो मेरी अर्ज मानो और हीरासिंघ की तकसीर माफ करो। भाई, इन्साफ करो, उसने अगर हकीम अहसनुल्लाखाँ से रुजू की, वो तुम्हारे भाई भी है और तुमको उनसे इस्तफादा भी है। अगर घबरा कर हकीम महमूदखाँ के पास गया तो उनके बाप से तुमको निस्बत तलम्मुज़[1] की है। इब्तदा मे उनसे पढे

१ शिष्य।

हो। पस, ये गरीब सिवाय तुम्हारे अगर गया तो तुम्हारे ही इलाके मे गया वो भी घबरा कर और खफकान से तग आकर। अब जो हाजिर होता है तो लाजिम है के इस पर बनिस्बत साबिक के तवज्जो ज्यादा फरमाओ और बदिल उसका मालिजा[1] करो।

इल्तफात का तालिब

-ग़ालिब

---

१. चिकित्सा।

२

(८ मार्च १९५८)

साहब,

दो खत तुम्हारे बसबीले डाक आए। कल दोपहर ढले एक साहब अजनबी, साँवले सलौने, डाढी मुँडे, बडी बडी आँखो वाले तशरीफ़ लाए। तुम्हारा खत दिया। सिर्फ उनकी मुलाकात की तकरीब में था। बारे, उनसे इस्मे[1] शरीफ पूछा गया। फरमाया--अशरफ अली। कौमियत का इस्तफसार[2] हुआ। मालूम हुआ सैयद है। पेशा पूछा--हकीम निकले। याने हकीम मीर अशरफ अली। मै उनसे मिलकर खुश हुआ। खूब आदमी है और काम के आदमी है। कितने ओछें हो ? 'मुस्तलाहातुश्शोरा, मुस्तलाहातुश्शोरा[2] !' भाई, वो किताब तुम्हारी है; मैंने गसब[3] नही की। मेरे पास मुस्तार[4] है, देख चुकूँगा, भेज दूँगा। तकाजा क्यो करो ? मियाँ मुहम्मद अफजल तस्वीर खीच रहे है, जल्दी न करो। देर आयद दुरुस्त आयद।

सरफराज़ हुसेन और मीरन साहब और मीर नसीरुद्दीन को दुआएँ।

सुबह चहार शबा, हफ्तुम रमजान, हश्तुम मार्च।

३

(मई १८५८)

क्यो यार क्या कहते हो ? हम कुछ आदमी काम के है या नही ? तुम्हारा खत पढकर दो सौ बार ये शेर पढा--

---

१. शुभ नाम। २. पूछ। ३. हजम नही की। ४. अमानत।

मीर मेहदी हुसेन 'मजरूह' के नाम

वाद[1] ए वस्ल चूँ शवद नजदीक
आतिशे शौक तेजतर गर्दद

कल्लू को मालवी मजहर अली साहब के पास भेज कर कहला भेजा के आप कही जाइएगा नही, मैं आता हूँ। भला भाई, अच्छी हिकमत की। क्या वो मेरे बाबा के नौकर थे के मैं उनको बुलाता? उन्होने जवाब मे कहला भेजा के आप तकलीफ न करे, मैं हाजिर होता हूँ। दो घडी के बाद वो आए। इधर की बात, उधर की बात, कोई अगरेज़ी कागज़ दिखाया। कोई फारसी खत पढवाया। 'अजी क्यो हजरत, आप मीरन साहब को नही बुलाते?' साहब, मै तो उनको लिख चुका हूँ के तुम चले आओ और एक मुकाम का उनको पता लिखा है के वहाँ ठहर कर मुझको इत्तिला करो। मैं शहर में बुला लूँगा। 'साहब, अब वो जरूर आएँगे।' आखिरकार उनसे इजाज़त लेकर अब तुमको लिखता हूँ के उनसे मुख्तसर ये कलमा कह दो के भाई, ये तो मुबालिगा है, के रोटी वहाँ खाओ तो पानी यहाँ पीओ। ये कहता हूँ के ईद वहाँ करो तो बासी ईद यहाँ करो।

ये मेरा हाल सुनो, के बेरिज्क[2] जीने का ढब मुझको आ गया है। इस तरफ से खातिर जमा रखना। रमजान का महीना रोज़ा रवा खाकर काटा। आइन्दा खुदा रज्जाक है। कुछ और खाने को न मिला तो गम तो है। बस साहब जब एक चीज खाने को हुई, अगर चे गम ही हो, तो फिर क्या गम है?

मीर सरफराज हुसेन को मेरी तरफ से गले लगाना और प्यार करना। मीर नसीरुद्दीन को दुआ कहना और शफी अहमद साहब को और मीर अहमद अली साहब को सलाम कहना। मीरन साहब को न सलाम न दुआ। ये खत पढा दो और इधर को रवाना करो। क्या खूब बात याद आई!

---

१. जब मिलने का निश्चित समय निकट आता है तो उत्सुकता अधिक तीव्र हो जाती है। २ बिना खाये पिये।

है ? क्यो वो शहर से बाहर ठहरे और क्यो किसी के बुलाने की राह देखे। शिकरम[१] मे, कराची[२] मे, चौपहिए मे याने डाक मे आएँ, बल्लीमारो के महल्ले मे मेरे मकान पर उतर पडे । मिर्जा कुरबान बेग के मकान मे मौलवी मजहरअली रहते है। मेरे उनके मस्कन मे एक मीर खैराती की हवेली दरमियान है। डाक को ज़िन्हार कोई नही रोकता। ये सलाह तो ऐसी है, के अगर इस ख़त के पहुँचते ही चल दे तो ईद भी यही करे।

४

(८ अगस्त १८५८ ई०)

खूबी[3] ए दीनो दुनिया रोजी बाद,

मीर अशरफ अली साहब ने तुम्हारा ख़त दिया। वो, जो तुमने लिखा था के तेरा ख़त मेरे नाम का मेरे हमनाम के हात जा पड़ा, साहब, कुसूर तुम्हारा है। क्यो ऐसे शहर मे रहते हो, जहाँ दूसरा मीर मेहदी भी हो ! मुझको देखो के मै कब से दिल्ली मे रहता हूँ, न कोई अपना हमनाम होने दिया न कोई अपना हम उर्फ बनने दिया, न अपना हमतख़ल्लुस बहम पहुँचाया। फक़्त ।

पिन्सन की सूरत ये है के कोतवाल से कफियत तलब हुई । उसने अच्छी लिखी। कल हफ़्ते का दिन सातवी अगस्त की, मुझको अर्जटन साहब बहादुर ने बुलाया । कुछ सहल सवाल मुझसे किए। अब ऐसा मालूम होता है के तनखा मिले और जल्द मिले । तरद्दुद अगर है तो इसमे है के १५ महीने पिछले भी मिलते है या सिर्फ आइन्दा को मुक़र्रर

---

१. एक तरह का टांग्रा । २. लड्ढा, माल ढोने की दो पहियो की गाड़ी।
३. धर्म और ससार के प्रति कर्त्तव्य में वृद्धि हो ।

होती है। गुलाम फख़्रुद्दीनख़ाँ की दो एक रूबकारियाँ हुई हैं। सूरत अच्छी है। ख़ुदा चाहे, तो रिहाई हो जाए।

साहब, हमने घबरा कर उस तहरीरे फारसी को तमाम किया। दफ्तर बन्द कर दिया और ये लिख दिया के यकुम अगस्त सन् १८५८ ई० तक मने १५ महीने का हाल लिखा और आइन्दा लिखना मौकूफ किया। तुमको आगे इससे लिखा था के तुम अपने औराक का फिक्र[1] ए अख़ीर लिख भेजो। अब फिर तुमको लिखा जाता है के जल्द लिखो ताके मैं उसके आगे की इबारत तुमको लिख कर भेज दूँ। हाँ, साहब, मीर अशरफअली साहब भी यही फरमाते थें के मीर सरफराज़ हुसेन पानीपत आया चाहते हैं। अगर आ जाएँ तो मुझको इत्तिला करना।

५

(९ सितम्बर १८५८)

मियाँ,

तुमको पिन्सन की क्या जल्दी है ? हर बार पिन्सन को क्यो पूछते हो ? पिन्सन जारी हो, और मैं तुमको इत्तला न दूँ ? अभी तक कुछ हुक्म नही। देखूँ क्या हुक्म हो और कब हो ? मीरन साहब जैपुर पहुँचे। तुम शापुरी[2] बताते हो। शायद सच यही हो। हाँ, मीर महमूद अली और ये, बीरबर और अबूफजल तो थे, मगर देखा चाहिए। दरख्त जगह से उखड़ कर बदुश्वारी जमता है। खुलासा मेरी फिक्र का ये है के अब बिछड़े हुए यार कही कयामत ही को जमा हो तो हो। सो वहाँ क्या खाक जमा होगे ? सुन्नी अलग, शिया अलग; नेक जुदा, बद जुदा।

---

१ अन्तिम वाक्य। २. शाहपुर ही।

मीर सरफराज़ हुसेन को दुआ। मीर नसीरुद्दीन को पहले वन्दगी, फि
दुआ। किताब का नाम 'दस्तम्बू' रखा गया। आगरे मे छापी जाती है। तु
तुम्हारे हात के औराक लिखे लूँगा। तव एक किताव तुमको दूँगा।

रोजे वुरूदेनामा पजशम्बा ९ सितम्बर सन् १८५८ ई०।

—गालि

६

(अक्टूबर १८५८)

सैयद साहव,

तुम्हारे ख़त के आने से वो खुशी हुई जो किसी दोस्त के देखने से
लेकिन ज़माना वो आया है के हमारी किस्मत मे ख़ुशी है ही नही। खत
मालूम हुआ, तो क्या मालूम हुआ के ढाई सौ दिए। इन दिनो मे ढाई रुप
भी भारी है, ढाई सौ कैसे? सुभान अल्लाह्! वावजूद इस तिहीदस्ती
फिर भी कहना पडता है के रुपए गए, वला से, आवरू वची, जान वची
अब मीर सरफराज हुसेन को चाहिए के अलवर चले जाएँ। शायद नए वदोवस्त
मे कोई सूरत नौकरी की निकल आए। मेरी दुआ कहो और ये कहो के अप
हाल और अपना किस्सा, अपने हात से मुझको लिखे। पिन्सन का हाल कु
मालूम हुआ हो तो कहूँ। हाकिम खत का जवाव नही लिखता। अमले
हरचन्द तफह्हुस[1] कीजिए के हमारे ख़त पर क्या हुक्म हुआ। कोई कुछ न
वताता। वहरहाल इतना सुना है और दलायल[2] और करायन से मालूम हु
है के मै वेगुनाह करार पाया हूँ; और डिप्टी कमिश्नर वहादुर की राय
पिन्सन पाने का इस्तह्काक[3] रखता हूँ। वस, इससे ज्यादा न मुझे मालूम,
किसी को ख़वर।

---

१. खोज। २. युक्ति और रग ढग। ३. पात्रता।

मियाँ, क्या बाते करते हो ? मै किताबे कहाँ से छपवाता ! रोटी खाने को नही, सराब पीने को नही, जाडे आते है, लिहाफ-तोशक की फिक्र है; किताबे क्या छपवाऊँगा ? मुंशी उम्मीदसिंघ इन्दौर वाले दिल्ली आए थे। साबिक ए[१] मारिफत मुझसे न था। एक दोस्त उनको मेरे घर ले आया। उन्होने वो नुस्खा देखा। छपवाने का कस्द किया। आगरे मे मेरा शागिर्द रशीद मुंशी हरगोपाल 'तफ्ता' था। उसको मैंने लिखा। उसने इस एहतमाम को अपने जिम्मे लिया। मसविदा भेजा गया। ८ आने फी जिल्द कीमत ठहरी। पचास जिल्दे मुंशी उम्मीदसिंघ ने ली। २५ रुपए छापेखाने में बतरीके हुण्डवी भिजवा दिए। साहबे[४] मतवाने बशुमूले[५] सई ए मुंशी हरगोपाल 'तफ़्ता' छापना शुरू किया। आगरे के हुक्काम को दिखाया। इजाजत चाही। हुक्काम ने बकमाले[६] खुशी इजाजत दी। पान सौ जिल्द छापी जाती है। उस पचास जिल्द मे शायद २५ जिल्द मुंशी उम्मीदसिंघ मुझको देगे। मै अजीजो को बाँट दूँगा। परसो खत तफ्ता का आया था, वो लिखते है के एक फरमा छपना बाकी रहा है। यकीन है के इसी अक्तूबर मे किस्सा तमाम हो जाए। भाई, मैंने ११ मई सन् १८५७ ई० से इकतीसवी जुलाई सन् १८५८ ई० तक का हाल लिखा है और खातमे मे इसकी इत्तिला दे दी है। अमीनुद्दीनखाँ की जागीर के मिलने का हाल और बादशाह की रवानगी का हाल क्यो कर लिखता ? उनको जागीर अगस्त मे मिली। बादशाह अक्तूबर मे गए। क्या करता अगर तहरीर मौकूफ न करता ? मुंशी उम्मीदसिंघ इंदौर जाने वाले थे। अगर खतम कर कर मसविदा उनके सामने आगरे न भेज देता तो फिर छपवाता कौन ?

अहले[७] खित्ता का हाल अज रू ए तफसील मुझको क्यो कर मालूम हो ? सुनता हूँ के दाव[८] ए खून पेश किया चाहते है, सौदा हो गया है। मसविदा

---

१. पूर्व परिचय। २. सुशिष्य। ३. प्रेस के स्वामी। ४. प्रयत्नो के साथ। ५. प्रसन्नता पूर्वक। ६. एक स्थान के रहने वाले। ७ कत्ल का दावा।

हो रहा है। ब्लंक साहब के जैपूर मे टुकडे उड गए, गवर्नर मुद्दई न हुए, किसास[1] न हुआ। अब एक हिन्दुस्तानी के खून का किसास कौन लेगा ?

अै[2] सब्ज ए सरे राह, अज जोरे पा चे नाली ?
दर कैश रोजगाराने गुल खूँ बहा नदारद

खैर, जो होना है, हो रहेगा। बाद वक्, हम भी सुन लेगे। तुम इतना क्यो दिल जला रहे हो।

७

भाई,

एक खत तुम्हारा पहले पहुँचा और एक खत कल आया। पहले खत में कोई अम्र जवाब तलब न था। अगरचे कल के खत मे भी सिर्फ किताबो की रसीद थी, लेकिन चूँके दो अम्र लिखने के लायक थे इस वास्ते एक लिफाफा तुम्हारी पसद का तुम्हारे नज्र करना पडा। पहला अम्र ये के आज मीर नसीरुद्दीन जो दोपहर को मेरे पास आए थे, उनको देखकर मेरा दिल खुश हुआ। तुमने भी खत मे लिखा था के मीर सरफराज़ हुसेन अलवर गए थे, और मीर नसीरुद्दीन भी कहते थे के मै और वो एक दिन पानीपत से चले, वो इधर गए, मै इधर आया। जाहिरा पार्सल के पहुँचने से पहले वो रवाना हुए है। उनकी किताब रह गई, अब उन तक क्योकर पहुँचेगी ? खुदा खैर करे।

मियाँ लडके, सुनो, मीर नसीरुद्दीन औलाद मे से है शाह मुहम्मद आजम साहब के। वो खलीफा थे मौलवी फखरुद्दीन साहब के, और मै मुरीद हूँ उस खानदान का। इस वास्ते मीर नसीरुद्दीन को पहले वन्दगी लिखता हूँ और

---

१. कत्ल नही हुआ। २ अरी राह की हरियाली यदि तुझ पर कोई पाँव रखता है तो तू क्यो रोती है ? ससार का यही रग ढंग है, लोग फूल तोडते है किन्तु मूल्य कोई नही देता।

फिर तुम्हारे इलाके[1] से दुआ। सूफी साफी हूँ और हज़राते[2] सूफिया हिफ्जे मरातिब मलहूज़ रखते है—

गर[3] हिफ़्ज़े मरातिब न कुनी ज़िन्दीकी

ये जवाब है तुम्हारे उस सवाल का के जो पहले ख़त मे तुमने लिखा था।

अबके ख़त मे तुमने मीरन साहब की खैरो आफियत क्यो न लिखी ? ये बात अच्छी नही। मै तो डर गया था के अगर तुम्हारे खत में उनको दुआ-सलाम लिखूँगा तो उनसे तुम काहे को कहोगे ? पीरजादा साहब याने मीर नसीरुद्दीन ने उनकी बन्दगी मुझसे कही है। वास्ते खुदा के मेरी दुआ उनको कह देना।

८

(२२ दिसंबर १८५८)

वाह वाह सैयद साहब,

तुम तो बडी इबारत आराइयाँ करने लगे। नस्र मे ख़ुदनुमाइयाँ[4] करने लगे। कई दिन से तुम्हारे खत के जवाब की फ़िक्र मे हूँ मगर जाड़े ने बेहिस्सो[5] हरकत कर दिया है। आज जो बसबब[6] अब्र के वो सर्दी नही, तो मैने खत लिखने का कस्द किया है। मगर हैरान हूँ के क्या सेहर साज़ी करूँ, जो सुखन परदाजी करूँ ? भाई, तुम तो उर्दू के मिर्जा 'कतील' बन गए हो। उर्दू बाजार मे नहर के किनारे रहते रहते रूदे[7] नील बन गए हो। क्या 'कतील' क्या रूदेनील, ये सब हँसी की बाते है। लो, सुनो, अब तुम्हारी दिल्ली की बाते है। चौक मे बेगम के बाग मे दरवाज़े के सामने, हौज़ के पास, जो कुआँ था,

---

१. सम्बन्ध। २. सूफी पद प्रतिष्ठा के अनुसार सब से यथोचित मिलते है। ३. तू यदि दूसरे की पद-प्रतिष्ठा का ध्यान नही रखेगा तो गर्हणीय है, काफिर हो जाएगा। ४. ऐंठ, गर्व। ५. निष्क्रिय। ६. बादल के कारण। ७ नील नदी।

उसमे सगो खिश्त व खाक डालकर बन्द कर दिया। बल्लीमारो के दरवाज़ें के पास की कई दूकाने ढाकर रास्ता चौडा कर लिया। शहर की आबादी का हुक्म, खासो आम ,कुछ नही। पिन्सनदारो से हाकिमो का काम कुछ नही। ताजमहल, मिर्जा कैसर, मिर्जा जवाँबख्त के साले बिलायत बेग जैपूरी की ज़ोजा इन सब की इलाहाबाद से रिहाई हो गई। बादशाह, मिर्जा जवाँ बख्त, मिर्ज़ा अब्बास, शाह जीनतमहल कलकत्ते पहुंचे और वहा से जहाज पर चढाई होगी। देखिए, केप मे रहे या लदन जाएँ। खल्क ने अजरूए कयास, जैसा के दिल्ली के खबर तराशो का दस्तूर है, ये बात उडा दी है सो सारे शहर मे मशहूर है के जनवरी, शुरू साल सन १८५९ ई० मे लोग उमूमन शहर मे आबाद किए जाएँगे और पिन्सनदारो को झोलियाँ भर भर रुपए दिए जाएँगे।

खैर, आज बुध का दिन २२ दिसम्बर की है। अब शम्बे को 'बडा दिन' और अगले शबे को जनवरी का पहला दिन है। अगर जीते है तो देख लेंगे क्या हुआ ? तुम इस खत का जवाब लिखो और शिताब लिखो।

मेरी जान, सरफराज हुसेन तुम क्या कर रहे हो और किस खयाल में हो ? अब सूरत क्या है और आइन्दा अज़ीमत[1] क्या है ?

अशरफ़ अली साहब, आप तो दायर सायर थे। पानीपत मे मुकीम क्यो कर हो गए ? कुछ लिखिए तो मै जानूँ।

मीर नसीरुद्दीन को सिर्फ दुआ और इश्तियाके दीदार।

मीरन साहब कहा है ? कोई जाए और बुला लाए। हजरत आए। सलामलेकुम। मिज़ाजे मुबारक। कहिए, मौलवी मजहर अली ने आप के खत का जवाब भेजा या नही ? अगर भेजा तो क्या लिखा ? मै जानता हूँ के मीर अशरफ़ अली और मीर सरफ़राज हुसेन कम, और ये सितम पेशा मीर मेहदी

---

१. इच्छा।

वहुत, आपकी जनाब मे गुस्ताखियाँ करते है। क्या करूँ, मै कही--तुम कही। वहाँ होता तो देखता के क्योकर तुमसे बेअदबियाँ कर सकते है। इंशा अल्लाह ताला, जब यकजा होगे, तो इन्तकाम लिया जायगा। है, है। क्यो कर यकजा होगे ? देखिए जमाना और क्या दिखाएगा। अल्लाह्, अल्लाह्, अल्लाह् !!!

९

(९ फरवरी १८५९)

सैयद साहब,

न तुम मुजरिम न मै गुनहगार, तुम मजबूर, मै नाचार ! लो अब कहानी सुनो, मेरी सर गुजिश्त मेरी जबानी सुनो। नवाब मुस्तफाखाँ ब मियाद सात बरस के कैद हो गए थे। सो उनकी तक़्सीर माफ हुई और उनको रिहाई मिली। सिर्फ रिहाई का हुक्म आया है। जहाँगीराबाद की जमीदारी और दिल्ली की अमलाक और पिन्सन के बाब में हनोज हुक्म कुछ नही हुआ। नाचार वो रिहा होकर मेरठ ही मे एक दोस्त के मकान मे ठहरे है। मै बमुजर्रदे[1] इस्तमा इस खबर के डाक मे बैठकर मेरठ गया। उनको देखा, चार दिन वहाँ रहा, फिर डाक मे अपने घर आया। तारीख आने जाने की याद नही, मगर हफ्ते को गया, मगल को आया। आज बुध दूअम फरवरी है। मुझको आए हुए नवाँ दिन है। इन्तजार मे था के तुम्हारा खत आए तो उसका जवाब लिखा जाए। आज सुबह को तुम्हारा खत आया। दोपहर को मै जवाब लिखता हू--

रोज इस शहर मे एक हुक्म नया होता है
कुछ समझ मे नही आता है के क्या होता है !

मेरठ से आकर देखा के यहाँ बडी शिद्दत है और ये हालत है के गोरो की पासबानी[2] पर किनाअत[3] नही है। लाहौरी दरवाज़े का थानेदार मूँढा

---

१ सुनते ही। २ पहरेदारी। ३. सन्तोष।

बिछा कर सडक पर बैठता है। जो बाहर से, गोरे की आँख बचा कर आता है, उसको पकड कर हवालात मे भेज देता है। हाकिम के यहाँ से पाँच-पाँच बद लगते है या दो रुपया जुर्माना लिया जाता है, आठ दिन कैद रहता है। इससे अलावा सब थानो पर हुक्म है के दरियाफ्त करो कौन बे टिकट मुकीम है और कौन टिकट रखता है। थानो मे नक्शे मुरत्तिब होने लगे। यहा का जमादार मेरे पास भी आया। मैने कहा भाई, तू मुझे नक्शे मे न रख मेरी कैफियत की इबारत अलग लिख। इबारत ये के असदुल्लाह-खॉ पिन्सनदार सन् १८५० ई० से हकीम पटियाले वाले के भाई की हवेली मे रहता है। न कालो के वक्त मे कही गया, न गोरो के जमाने मे निकला और न निकाला गया। करनेल ब्रोन साहब बहादुर के जबानी हुक्म पर उसकी इकामत का मदार है। अब तक किसी हाकिम ने वो हुक्म नही बदला। अब हाकिमे वक्त को इख्तियार है। परसो ये इबारत जमादार ने महल्ले के नक्शे के साथ कोतवाली मे भेज दी है। कल से ये हुक्म निकला के ये लोग शहर के बाहर मकान-दूकान क्यो बनाते है? जो मकान बन चुके है, उन्हे ढा दो, और आइन्दा को मुमानियत का हुक्म सुना दो और ये भी मशहूर है के पॉच हजार टिकट छापे गए है। जो मुसलमान शहर मे इकामत चाहे बकदरे मकदूर[1] नजराना दे। उसका अन्दाजा करार देना हाकिम की राय पर है। रुपया दे और टिकट ले। घर बरबाद हो जाए, आप शहर मे आबाद हो जाए। आज तक ये सूरत है। देखिए शहर के बसने की कौन महूरत है? जो रहते है, वो भी इखराज[2] किए जाते है, या जो बाहर पडे हुए है वो शहर मे आते है? अल मुल्के लिल्लाह्, व अल हुक्मे लिल्लाह्।

नूरे चश्म मीर सरफराज हुसेन और बरखुरदार मीर नसीरुद्दीन को

---

१. यथाशक्ति। २. निर्वासित।

दुआ, और जानिब मीरन साहब को सलाम भी और दुआ भी। इसमे से
वो जो चाहे कुबूल करले।

१०

(फ़रवरी १८५९)

मेरी जान,

ख़ुदा तुझको १२० बरस की उम्र दे। बूढा होने आया। डाढी मे बाल सफेद आ गये, मगर बात समझनी न आई। पिन्सन के बाब मे उलझे हो और क्या बेजा उलझे हो। ये तो जानते हो के दिल्ली के सब पिन्सनदारो को मई सन् १८५७ ई० से पिन्सन नही मिला। ये फरवरी सन् १८५९ ई०, बाईसवा महीना है। चन्द अशख़ास को इस बाईस महीने मे साल भर का रुपया बतरीके मदद खर्च मिल गया। बाकी चढे हुए रुपए के बाब मे आइन्दा माह ब माह मिलने के वास्ते अभी कुछ हुक्म नही हुआ। तो अब अपने सवाल को याद करो, के इस वाकए से उसको कुछ निस्बत है या नही? ये हज़रत का सवाल अमीर ख़ुसरो की अनमली है—

चील बसोला ले गई तो काहे से फटकूँ राब?

अलीबख़्शख़ाँ पचास रुपया महीना पाते थे, बाईस महीने के ११ सौ होते हैं। उनको ६ सौ रुपए मिल गए। बाकी रुपया चढा रहा। आइन्दा मिलने मे कुछ कलाम नही। गुलाम हसन ख़ाँ सौ रुपए महीने का पिन्सदार, २२ महीने के बाईस सौ रुपए होते हैं। उसको बारह सौ मिले। दीवान किशनलाल का डेढ सौ रुपया महीना, बाईस महीने का तीन हज़ार, तीन सौ होते है, उसको १८ सौ मिले। मत्ता जमादार दस रुपए महीने का सख लबर, साल भर के १२० ले आया। इसी तरह पन्द्रह-सोलह आदमियो को मिला है, आइन्दा के वास्ते किसी को कुछ हुक्म नही। मुझको फिर मदद ख़र्च नही मिला। जब

हुसेन को दुआ कहना और मेरी तरफ से गले लगाना और प्यार करना। मीर नसीरुद्दीन को दुआ कहना और मीरन साहब को मुबारकबाद कहना।

१२

(मार्च १८५९)

मेरी जान,

सुनो दास्तान। साहब कमिश्नर बहादुरे देहली, याने जनाब सान्डर्स साहब बहादुर ने मुझको बुलाया। पजशबा २४ फ़रवरी को मैं गया। साहब शिकार को सवार हो गए थे। मैं उल्टा फिर आया। जुमा २५ फ़रवरी को गया। मुलाकात हुई। कुर्सी दी। बाद पुरसिशे मिजाज के एक खत अँगरेज़ी चार वरक का उठा कर पढ़ते रहे। जब पढ़ चुके तो मुझसे कहा के ये खत है मेकलोड साहब हाकिमे अकबरे सदर[1] बोर्ड पजाब का। तुम्हारे बाब मे लिखते है के इनका हाल दरियाफ्त करके लिखो, सो हम तुमसे पूछते है के तुम मलिकए मौज्ज़िमा से खलत क्या माँगते हो? हकीकत कही गई। एक कागज़ आमदे विलायत ले गया था, वो पढवा दिया। फिर पूछा के तुमने किताब कैसी लिखी है? उसकी हकीकत बयान की। कहा—एक मेकलोड साहब ने देखने को माँगी है और एक हमको दो। मैने अर्ज़ किया—कल हाज़िर करूँगा। फिर पिन्सन का हाल पूछा, वो भी गुज़ारिश किया। अपने घर आया और खुश आया।

देखो, मीर मेहदी, हाकिमे पजाब को मुकदमए विलायत की क्या खबर? किताबो से क्या इत्तिला? पिन्सन की पुरसिश से क्या मुद्दआ। ये इस्तफसार बहुक्मे नवाब गवर्नर जनरल बहादुर हुआ है और ये सूरत मुकदमा फतह[2] व फ़ेरोज़ी है। गर्ज़ के दूसरे दिन यकशबा, यौमुत्तातील था। मैं अपने घर

---

१. मुख्य। २. सफलता और विजय।

रहा। दो शबा २८ फरवरी को गया। बाहर के कमरे मे बैठकर इत्तिला करवाई। कहा—अच्छा, तौक़्क़ुफ[1] करो। बाद थोडी देर के गढ़ कप्तान की चिट्ठी आई। सवारी माँगी। जब सवारी आ गई, बाहर निकले। मैने कहा—वो किताबे हाज़िर है। कहा—मुंशी जीवनलाल को दे आओ। वो उधर सवार हो गये। मै इधर सवार होकर अपने मकान पर आया।

से शबा यक़ुम मार्चको फिर गया। बहुत इस्तेन्बात[2] और अख़्तलात[3] से बाते करते रहे। कुछ सर्टिफिकेट गवर्नरो के ले गया था। वो दिखाए। एक खत मेकलोड साहब बहादुर के नाम का ले गया था। वो देकर ये इस्तदुआ की के किताब के साथ ये भी भेजा जाए। बहुत अच्छा कह कर रख लिया। फिर मुझसे कहा के हमने तुम्हारे पिन्सन के बाब मे अजर्टन साहब को कुछ लिखा है। तुम उनसे मिलो। अर्ज़ किया—बेहतर। अजर्टन साहब बहादुर, जैसा के तुमको मालूम था, गए हुए थे। कल वो आये, आज मैने उनको ख़त लिखा है। जैसा के वो हुक्म देगे, उसके मुआफ़िक़ अमल करूँगा। जब बुलाएँ तब जाऊँगा। देखो, सैयद असदुल्लाह्‌उल[4] गालिब अले सलाम की मदद को, के अपने गुलाम को किस तरह् से बचाया। बाईस महीने तक भूका-प्यासा भी न रहने दिया, फिर किस महकमे से के वो आज सल्तनत का देहन्दा[5] है, मेरे तफ़क़्क़ुद का हुक्म भिजवाया। हुक्काम से मुझको इज़्ज़त दिलवाई। मेरे सब्रो[6] सबात की दाद मिली। सब्रो सबात भी उसी का बख्शा हुआ था। म क्या अपने बाप के घर से लाया था। मीर सरफराज़ हुसेन को ये खत पढा देना और उनको और नसीरुद्दीन 'चिराग़े देहली' को और मीरन साहब को दुआ कहना।

---

१. ठहरो। २. पूछताछ। ३. प्रेम। ४. हज़रत अली। ५ ऋणी। ६. धैर्य।

१३

(७ मार्च १८५९ ई०)

मीर मेंहदी जीते रहो,

आफरी, सद हजार आफरी! उर्दू इबारत लिखने का अच्छा ढंग पैदा किया है के मुझको रश्क आने लगा। सुनो दिल्ली के तमाम मालो मता व जर[1] व गौहर की लूट पंजाब इहाते में गई है। ये तर्ज इबारत[2] ख़ास मेरी दौलत थी, सो एक जालिम, पानीपत, अन्सारियो के मुहल्ले का रहने वाला लूट कर ले गया। मगर मैंने उसको बहल[3] किया, अल्लाह बरकत दे। मेरे पिन्सन और विलायत के इनाम का हाल, कमाहू[4] हक्क हूँ समझ लो। बर्रहमन[5] अल्ताफ खुफिया। एक तर्ज ख़ास पर तहरीक हुई। नवाब गवर्नर जनरल बहादुर ने हाकिमे पंजाब को लिखा के हाकिमे दिल्ली से फला शख़्स के पिन्सन के कुल चढे हुए रुपए के एक मुश्त पाने की और आइन्दा माह व माह मिलने की रिपोर्ट मँगवा कर अपनी मंजूरी लिख कर, हमारे पास भेज दो, ताके हम हुक्मे मंजूरी देकर तुम्हारे पास भेज दे। सो यहाँ उसकी तामील बतर्ज मुनासिब हो गई। कमोबेश दो महीने मे सब रुपया मिल जाएगा और हाँ, साहब कमिश्नर बहादुर ने ये भी कहा के अगर तुमको जरूरत हो तो सौ रुपए ख़जाने से मँगवा लो। मैंने कहा—साहब, ये कैसी बात है के औरो को बरस दिन का रुपया मिला और मुझे सौ रुपए दिलवाते हो? फरमाया के तुमको अब चंद रोज़ मे सब रुपया और इजरा का हुक्म मिल जाएगा, औरो को ये बात बरसो मे मयस्सर आएगी। मैं चुप रहा। आज दो शबा यकुम शाबान और हफ्तुम मार्च है। दोपहर हो जाए तो अपना

---

१. सोना और मोती। २. लिखने की शैली। ३. क्षमा। ४. जो कुछ सुना सच हो। ५. दयालु की अदृश्य कृपा से।

आदमी मय रसीद भेजकर सौ रूपया मँगालूँ। पर, यार, विलायत के इनाम की तवक़्क़ो ख़ुदा ही से हैं। हुक्म तो इस हुक्म के साथ उसकी रिपोट करने का भी आया है मगर ये भी हुक्म है के अपनी राय लिखो। अब देखिए ये दो हाकिम याने हाकिमे देहली और हाकिमे पजाब अपनी राय क्या लिखते हैं। पजाब के गवर्नर बहादुर का ये भी हुक्म है के 'दस्तम्बू' मगाकर और तुम देखकर हमको लिखो के वो कैसी है और उसमे क्या लिखा है। चुनाँचे हाकिमे देहली ने एक किताब यही कह कर मुझसे माँगी और मैने दी। अब देखूँ, हाकिमे पजाव क्या लिखता है।

इस वक्त तुम्हारा एक खत और यूसुफ मिर्जा का एक खत आया। मुझको बाते करने का मजा मिला। तुम दोनो का जवाब अभी लिखकर रवाना किया। अब मै रोटी खाने जाता हूँ। मीर सरफराज हुसेन, मीरन साहब, मीर नसीरुद्दीन को दुआ।

१४

(२७ मार्च १८५६)

सैयद,

ख़ुदा की पनाह! इबारत लिखने का ढग हात क्या आया है के तुमने सारे जहाँ को सर पर उठाया है। एक गरीव सैयद मज़लूम के चेहरए नूरानी पर मोहासा निकला है, तुमको सरमायए[1] आरायश गुफ्तार बहम पहुँचा है। मेरी उनको दुआ पहुँचाओ और उनकी ख़ैरो आफियत जल्द लिखो।

भाई, यहाँ का नक़्शा ही कुछ और है। समझ मे किसी की नही आता के क्या तौर है। अवायल[2] माहे अँगरेज़ी मे रोक-टोक की शिद्दत होती थी,

---

१. वाणी को अलकृत करने की सम्पत्ति। २. अँग्रेज़ी मास के आरभ में।

आठवी-दसवी से वो शिद्दत कम हो जाती थी। इस महीने मे बराबर वही सूरत रही है। आज २७ मार्च की है। पाँच-चार दिन महीने मे बाकी है। आँच वैसी ही तेज है। खुदा अपने बदो पर रहम करे।

मुझ पर मेरे अल्लाह् ने एक और इनायत की है, और इस ग़मज़दगी मे एक गुना खुशी, और कैसी बड़ी खुशी, दी है। तुमको याद होगा के एक 'दस्तम्बू[2]' नवाब लेफ़्टेंट गवर्नर वहादुर की नज्र भेजी थी। आज पाँचवाँ दिन है के नवाब लेफ़्टेट गवर्नर बहादुर का खत मुकामे इलाहाबाद से बसबीले डाक आया। वही कागज अफशानी, वही अलकाबे[1] कदीम, किताब की तारीफ, इबारत की तहसीन, मेहरबानी के कलमात[2]। कभी तुमको खुदा यहाँ लाएगा तो उसकी ज़ियारत करना। पिन्सन के मिलने का भी हुक्म आज कल आया चाहता है और ये भी तवक़्को पड़ी है के गवर्नर जनरल बहादुर के हाँ से भी किताब की तहसीन और इनायत के मजामीन की तहरीर आ जाए।

मीरन साहब को सलाम पहले लिख चुका हूँ। मीर सरफराज़ हुसेन और मीर नसीरुद्दीन को दुआ कह देना और ये खत दिखा देना।

१५

(अप्रेल १८५९)

मार डाला यार, तेरी जवाब तलबी ने! इस चर्ख़[3] कज रफ्तार का बुरा हो। हमने इसका क्या बिगाड़ा था? मुल्को माल[4] व जाहो जलाल[5] कुछ नही रखते थे। एक गोशा[6] व तोशा[7] था। चन्द मुफ़लिस[8] व बेनवा एक जगह फराहम होकर कुछ हँस-बोल लेते थे।

---

१. पुरानी उपाधियाँ। २. वाक्य। ३. विपरीत गति मे चलने वाला आकाश। ४. देश और सम्पति। ५. ऐश्वर्य। ६. एकान्त। ७. भोजन। ८. दरिद्र।

मीर मेहदी हुसेन 'मजरूह' के नाम

सो भी न तो कोई दम देख सका ऐ फलक
और तो याँ कुछ न था एक मगर देखना

याद रहे ये शेर ख्वाजा मीर दर्द का है। कल से मुझको 'मयकश' बहुत याद आता है। सो साहब, अब तुमही बताओ के मैं तुमको क्या लिखूँ? वो सोहबतें और तकरीरें जो याद करते हो और तो कुछ बन नही आती, मुझसे खत पर खत लिखवाते हो। आँसुओ प्यास नही बुजती। ये तहरीर तलाफी उस तकरीर की नही कर सकती। बहरहाल कुछ लिखता हूँ, देखो क्या लिखता हूँ।

सुनो, पिन्सन की रिपोर्ट का अभी कुछ हाल नही मालूम। देर आयद दुरुस्त आयद।

भई, मैं तुमसे बहुत आजुर्दा हूँ। मीरन साहब की तन्दुरुस्ती के बयान मे न इज़हारे मसर्रत और न मुझको तहनियत बल्के इस तरह से लिखा है के गोया उनका तन्दुरुस्त होना तुमको नागवार हुआ है। लिखते हो के मीरन साहब वैसे ही हो गये, जैसे आगे थे, उछलते-कूदते फिरते है। इसके ये माने के—है है, क्या गजब हुआ के ये क्यो अच्छे हो गये? ये बातें तुम्हारी हमको पसन्द नही आती। तुमने 'मीर' का वो मक्ता सुना होगा, बतगय्युरे अल्फाज़ लिखता हूँ—

क्यो न 'मीरन' को मुग्तनिम जानूँ
दिल्ली वालो मे इक बचा है ये

मीर तक़ी का मक्ता यो है—

'मीर' को क्यो न मुग्तनिम जाने
अगले लोगो में इक रहा है ये

'मीर' की जगह 'मीरन' और 'रहा' की जगह 'बचा'। क्या अच्छा तसरुफ है!

अरे मियाँ, तुमने कुछ और भी सुना। कल यूसुफ मिर्जा का खत लखनऊ से आया। वो लिखता है के नसीरखाँ उर्फ नवाबजान वालिद उनका दायमुल[1] हब्स हो गया। हैरान हूँ के ये क्या आफत आई! यूसुफ मिर्जा तो झूट काहे को लिखेगा, खुदा करे उसने झूट सुना हो।

लो भई, अब तुम चाहो बैठे रहो, चाहो जाओ अपने घर, मैं तो रोटी खाने जाता हूँ। अन्दर बाहर सब रोजादार है। यहाँ तक के बडा लडका बाकर-अलीखाँ भी। सिर्फ एक मै और एक मेरा प्यारा बेटा हुसेन अलीखाँ, ये हम रोजाखार है। वही हुसेन अली खाँ, जिसका रोजमर्रा है—'खिलौने मँगा दो' "मैं भी बजार जाऊगा।" मीर सरफराज हुसेन को दुआ कहना और ये खत उनको जरूर सुना देना। बरखुरदार मीर नसीरुद्दीन को दुआ पहुँचे।

१६

(१८५९ ई०)

बरखुरदार कामगार[2] मीर मेहदी,

कता तुमने देखा? सचमुच मेरा हुलिया है। वाह, अब क्या शायरी रह गई है। जिस वक्त मैंने ये कता वहाँ के भेजने के वास्ते लिखा, इरादा था के खत भी लिखूँ। लड़को ने सताया के दादा जान चलो, खाना तैयार है, हमे भूक लगी है। तीन खत और लिखे हुए रखे थे, मैंने कहा के अब क्यो लिखूँ? उसी कागज को लिफाफे मे रखकर टिकट लगा, सरनामा लिख कलयान के हवाले कर घर मे चला गया, और हाँ, एक छेड़ भी थी के देखूँ मेरा मीर मेहदी खफा होकर क्या बाते बनाता है। सो वही हुआ। तुमने जले फफोले फोडे। लो अब बताओ, खत लिखने बैठा हूँ, क्या लिखूँ? यहाँ का हाल, जबानी मीरन साहब के सुन लिया होगा। मगर वो जो कुछ तुमने सुना होगा, वे अस्ल बातें

---

१. आजीवन कारावास। २ सौभाग्य शाली।

है। पिन्सन का मुकदमा कलकत्ते मे नवाब गवर्नर जनरल बहादुर के पेश नजर, यहाँ के हाकिम ने अगर एक रूबकारी लिख कर अपने दफ्तर मे रख छोडी, मेरा उसमे क्या जरर।

यहाँ तक लिख चुका था के दो-एक आदमी आ गए, दिन भी थोडा रह गया। मैंने बक्स बन्द किया। बाहर तख्तो पर आ बैठा। शाम हुई। चिराग रोशन हुआ। मुशी सैयद अहमद हुसेन सिरहाने की तरफ मूँढे पर बठे है। मै पलग पर लेटा हुआ हूँ, के नागाह चश्मो चराग[1] दूदमाने इल्मो यकीन सैयद नसीरुद्दीन आया, एक कोडा हाथ मे और एक आदमी साथ। उसके सर पर टोकरा। उस पर घास हरी बिछी हुई। मैंने कहा—अहा हा हा! सुलतानुल-उलेमा मौलाना सरफराज हुसेन देहलवी ने दुबारा रसद भेजी है। बारे, मालूम हुआ के वो नही है। ये कुछ और है। फैजे खास नही, लुत्फे आम है। शराब नही, आम है। खैर, ये अतिया भी बेखलल है। बल्के नेमुल[2] बदल है। एक एक आम को एक एक सर्बो[3] मोहर गिलास समझा, लिक्वर से भरा हुआ; मगर वाह, किस हिकमत से भरा है के पैसठ गिलास मे से एक कतरा नही गिरा है! मियाँ कहता था के ये अस्सी थे। पन्द्रह बिगड गए, बल्के सड गए। ता उनकी बुराई औरो मे सरायत न करे, टोकरे मे से फेक दिए। मैंने कहा—भाई, ये क्या कम है? मगर मै तुम्हारी तकलीफ और तकल्लुफ से खुश नही हुआ। तुम्हारे पास रुपया कहा जो तुमने आम खरीदे? खाना आबाद, दौलत ज्यादा।

लिक्वर एक अँगरेजी शराब होती है, केवाम[4] बहुत लतीफ और रगत की बहुत खूब और तौम की ऐसी मीठी जैसा कन्द का केवाम पतला। देखो, इस लुगत के माने किसी फरहग मे न पाओगे। हाँ फरहगे सरूरी मे हो तो हो।

---

१. वश का नेत्र और दीपक। २ तत्स्थानीय। ३. मुहरबन्द। ४. तरल पदार्थ, चाशनी।

'मुज्तहिदुल अस्र' और हकीम मीर अशरफअली को के वो उनके इल्म की कुजी है और टके टके की किताबे चालीस-पचास रुपये को ले गए है, मेरी दुआ कह देना।

१७

(जुलाई १८५९)

भाई,

तुमतो लड़को की सी बाते करते हो। जो माजरा मैने सुना था वो अलबत्ता मूजिबे तशवीश[1] था। तुम्हारी तहरीर से वो तशवीश रफा हो गई। फिर तुम क्यो हाय-वावेला करते हो ? ऊपर का हाकिम माफिक है, मातहत का हाकिम जो मुखालिफ था सो गया, फिर क्या किस्सा है ?

'कातै बुरहान' के मसविदे सब मैने फाड डाले, इस वास्ते के हर नजर मे उसकी सूरत बदलती गई। वो तहरीर बिल्कुल मगशूश हो गई। हाँ उसकी नकले साफ़, के जिसमे किसी तरह की गल्ती नही, नवाब साहब ने कर ली है। एक मेरे वास्ते, एक भाई जियाउद्दीन के वास्ते। मेरी मिल्क की जो किताब है, उसकी जिल्द बँध जाए तो बतरीके[2] मुस्तार भेज दूँगा। तुम उसकी नकल लेकर मेरी किताब मुझको फेर देना और ये अम्र बाद मुहर्रम वाके होगा। मगर याद रहे के जो साहब इसको देखेगे वो हर्गिज न समझेगे, सिर्फ 'बुरहान-कातै के नाम पर जान देगे। कई बाते जिस शख्स मे जमा होगी वो उसको मानेगा—पहले तो आलिम हो, दूसरे फने लगत को जानता हो। तीसरे फारसी का इल्म खूब हो और इस जबान से उसको लगाव हो। असातिज ए[3] सलफ

---

१. चिन्ता का कारण, विकृत। २ देखकर वापिस करने के लिए। ३. प्राचीन आचार्य।

का कलाम बहुत कुछ देखा हो और कुछ याद भी हो। चौथे मुन्सिफ हो, हट धरम न हो। पाँचवें तबे[1] सलीम व ज़हने मुस्तकीम रखता हो, माविजुल[2] जहन और कज[3] फहम न हो। न ये पाँच बाते किसी मे जमा होगी और न कोई मेरी मेहनत की दाद देगा।

'फहमायश' का लफ्ज मिया बुधा वल्द मिया जुमा और लाला गनेशीदास वल्द भरो नाथ का घडा हुआ है। मेरी जबान से कभी तुमने सुना है ? अब तफसील सुनो--अम्र के सीगे के आगे 'शीन' आता है तो वो अम्र माने मसदरी देता है और इसको हासिले[4] बिल मसदर कहते है। 'सोख्तन' मसदर, 'सोजद[5]' मुज़ारअ, 'सोज' अम्र, 'सोजिश' हासिल बिल मसदर। इसी तरह है--'खाहिश' व 'काहिश' व 'गुजारिश' व 'गुदाजिश' व 'आराइश' व 'पैराइश' व 'फरमाइश'। 'फहमीदन' फारसी उल अस्ल नही है। मसदर जाली है, 'फहम' लफ्ज अरबी उल अस्ल है। 'तलब' लफ्ज अरबी उल अस्ल है। इनको माफिके कायदए तफरीस[6] 'फहमीदन' व 'तलबीदन' कर लिया है। और इस कायदे मे ये कुलिया है के लुगते अस्ली अरबी आखिर को अम्र बन जाता है। 'फहम' याने 'बफहम', 'समझ', 'तलब' याने 'बतलब', 'माग', 'फहमद' मुजारअ बना, 'तलबद' मुजारअ बना। खैर, ये फर्ज कीजिए के जब हमने मसदर और मुजारअ और अम्र बनाया तो अब हासिल बिल मसदर क्यो न बनाये ? सुनो, हासिल बिल मसदर 'फहमश' और 'तलबश' चाहिए। 'फहम' था सीगा अम्र, 'फहमद' में से निकला था, अलिफ और ये कहाँ से लाया ? 'फहमाए' तो नही जो फ़हमायश दुरुस्त हो। कही 'फरमायश' को इसका नजीर गुमान न करना। वो मसदरे असली फारसी फरमूदन' है, 'फ़रमायद' मुजारअ, 'फरमाए' अम्र, हासिले मसदर--'फ़रमायश' ज्यादा-ज्यादा !

---

१. सुस्वभाव। २. मट्ठस। ३ निर्बुद्ध। ४ क्रियार्थक सज्ञा। ५. विधि लिंग। ६. अन्य भाषा के शब्दो के फारसीकरण का नियम।

पहले हकीम मीर अशरफ अली को दुआ और बेटा पैदा होने की मुबारक-बाद। मियाँ मैंने रात को अपने आलमे[1] सरखुशी मे तारीखी नाम का खयाल किया। मीर काजिमदीन के बारह सौ पचहत्तर होते है। लेकिन ये इस्म भी मानिंदे लफ्ज़ 'फहमायश' टकसाल से बाहर है।

१८

(१५ अक्टूबर १८५९)

मेरी जान,

तुमको तो बेकारी मे खत लिखने का शगल है। कलम दवात ले बैठे। अगर खत पहुँचा है तो जवाब वर्ना शिकवा व शिकायत व इताबो[2] खिताब लिखने लगे।

कल हकीम मीर अशरफ अली आये थे। सर मुडवा डाला है। 'मुहल्ले-कीन[3] रूसकम' पर अमल किया है। मैंने कहा के सर मुडवाया है तो दाढ़ी रखो। कहने लगे—'दामन[4] अज कजा आरम के जामा नदारम।' वल्लाह उनकी सूरत काबिल देखने के है। कहते थे के मीर अहमदअली साहब आ गये और बहाल व बरकरार रहे। खुदा का शुक्र बजा लाया, कभी तो ऐसा भी हो के किसी अजीज की अच्छी खबर सुनी जाए। मेरा सलाम कहना और मुबारकबाद देना। खबरदार भूल न जाइयो।

तुम्हारी शिकायत हाए बेजा का जवाब ये है के तुमने जो खत मुझको पानी-पत से भेजा था और करनाल की रवानगी की इत्तला दी थी, मैंने तजवीज कर

---

१. मस्ती। २. अप्रसन्न होना, सम्बोधित करना। ३. अपने सर मुंडवाने वाले। ४. जब कपडा नही है तो दामन कहाँ।

लिया था के जब करनाल से खत आएगा तो मैं जवाब लिखूँगा। आज शबा १५ अक्तूबर सुबह का वक्त। अभी खाना पका भी नही, तबरीद पीकर बैठा था के तुम्हारा खत आया और पढा और ये जवाब लिखा। कल्यान बीमार है। अयाज को खत देकर डाकघर रवाना किया। बोलो तुम्हारा गिला बेजा या बजा? भाई गिला करो तो अपने से करो। तुमने करनाल पहुँचकर खत लिखने मे क्यो देर की? और हाँ, ये क्या सबब है के बहुत दिन से मीर नसीरुद्दीन का नाम तुम्हारे कलम से नही निकलता? न उनकी खैरो आफियत, न उनकी बन्दगी। अगर वो मुझसे खफा है तो उनकी बन्दगी न लिखते, खैरो आफियत तो लिखते। ये बाते अच्छी नही।

मीरन साहब के बाब मे हैरान हूँ। तन्हा तुम्हारे साथ गए है। वालिदा उनकी पानीपत मे है। वहाँ कोई मकान लेकर वालिदा को वही बुलाएँगे या खुद बाद चन्द रोज़ के यहाँ आ जाएगे? ये दो बाते जवाब तलब है। मीर नसीरुद्दीन की बन्दगी न लिखने का सबब और मीरन साहब की बूदो[1] बाश की हकीकत लिखो। रहा मेरा पिन्सन, उसका जिक्र न करो। अगर मिलेगा तो तुमको इत्तला दी जाएगी। शहर की आबादी का चर्चा हुआ। किराए को मकान मिलने लगे। चार-पान सौ घर आबाद हुए थे के फिर वो कायदा मिट गया। अब खुदा जाने क्या दस्तूर जारी हुआ है, आइन्दा क्या होगा?

सुलतान उल उलेमा मुज्तहिदुल अस्र मौलवी सैयद सरफराज हुसेन को अगरचे नजर उनके मदारिज[2] इल्मो अमल पर, बन्दगी चाहिए, मगर खैर, मैं अजीजदारी व यगानगी की राह से दुआ लिखता हूँ। मीरन साहब को दुआ और बाद दुआ बहुत-सा प्यार। मीर नसीरुद्दीन को दुआ। ज्यादा क्या लिखूँ?

---

१. रहन सहन। २. पद-प्रतिष्ठा की दृष्टि से।

१९

(८ नवम्बर १८५९)

भाई,

न कागज है न टिकट है, अगले लिफाफो मे से एक बैरग लिफाफा पड़ा है। किताब मे से एक कागज फाड़ कर तुमको खत लिखता हूँ और बैरग लिफाफे मे लपेट कर भेजता हूँ। गमगीन न होना कल शाम को कुछ फुतूह[१] कही से पहुँच गई है, आज कागज व टिकट मँगा लूगा। से शम्बा ८ नववर सुवह का वक्त है, जिसको अवाम[२] बडी फजर[३] कहते है। परसो तुम्हारा खत आया था। आज जी चाहा के अभी तुमको खत लिखू, इस वास्ते ये चन्द सतरें लिखी।

बरखुरदार मीर नसीरुद्दीन पर उनकी बेटी का कदम मुबारक हो। नाम तारीखी तो मुझसे ढू ढ़ा न जाएगा। हाँ, अजीमुन्निसा बेगम नाम अच्छा है, के इसमे एक रिआयत है, शाह मुहम्मद अजीम साहव रहमतुल्ला अले के नाम की। 'मुज्तहिदुल अस्र' को मेरी दुआ कहना। तुमको क्या हुआ है के तुम उनको अपना छोटा भाई जान कर 'मुज्तहिदुल अस्र' नही लिखा करते ? ये बे अदवी अच्छी नही। मीरन साहव को वहुत दुआ कहना और मेरी तरफ से प्यार करना।

शहर का हाल क्या जानू क्या है ? 'पौन्टोटी'[४] कोई चीज है, वो जारी हो गई है। सिवाय अनाज और ऊपले के कोई चीज ऐसी नही जिस पर महसूल न लगा हो। जामा मस्जिद के गिर्द पच्चीस-पच्चीस फुट गोल मैदान निकलेगा। दूकाने, हवेलिाँ ढाई जाएगी। 'दारुलबका'[५] फना हो जाएगी। रहे

१. ऊपरी आय। २. सामान्य जनता। ३. प्रात काल। ४. चूँगी। ५. कवरिस्तान।

नाम अल्लाह का ! खान चन्द का कूचा 'शाह बोला के बड' तक ढहेगा । दोनों तरफ से फावडा चल रहा है । बाकी खैरो आफियत है । हाकिमे अकबर की आमद आमद सुन रहे है । देखिए दिल्ली आए या नही । आएं तो दरबार करें या नही, दरबार करे तो मै गुनहगार बुलाया जाऊ या नही । बुलाया जाऊँ तो खलत पाऊ या नही । पिन्सन का तो न कही जिक्र है, न किसी को खबर है ।

सेशम्बा ८ नवम्बर सन् १८५९ ई० ।

—ग़ालिब

२०

मेरी जान,

तू क्या कह रहा है ! बनिये से स्याना सो दीवाना । सब्रो तसलीम व तवक्कलो[1] रज़ा, शेवा सूफिया का है । मुझसे ज्यादा इसको कौन समझेगा, जो तुम मुझको समझाते हो ! क्या मै ये जानता हूँ के इन लडको की परवरिश मैं करता हूँ ! अस्तगफरुल्लाह[2] ! ला मौसरफिलवजूद[3] इल्लिल्लाह । या तुम ये समझे हो के मैं शेखचिल्ली की तरह से ये खयाल बाधता हूँ के मुर्गी मोल लूंगा और उसके अडे-बच्चे बेचकर बकरी खरीदूंगा । और फिर क्या करूंगा और आखिर क्या होगा । भाई, ये तो मैंने अपना राज़े[4] दिल तुमसे कहा था के आरज़ू यो थी और अब वो नक्श बातिल[5] हो गया । एक हसरत का बयान था न खाहिश का । देखा इस पिन्सने कदीम का हाल ? मैं तो इससे हात धोये बैठा हूँ । लेकिन जब तक जवाब न पाऊँ कही और क्यो कर चला जाऊं ! हाकिमे अकबर की आने की खबर गर्म है । देखिये कब आये ! आये, तो मुझे भी

---

१. ईश्वर पर विश्वास करना, ईश्वर प्रदत्त आफत को प्रसन्नता से स्वीकार करना । २. ईश्वर की शरण । ३. ईश्वर के अतिरिक्त सब नाशमान । ४. हृदय का रहस्य । ५ गुप्त चिन्ह ।

दरबार मे बुलाये या न बुलाये। खलत मिले। या न मिले इस पेच मे एक और पेच आ पड़ा है। उसको देखलूँ। और फिर सिर्फ उसी का इन्तेजार नही। इस मरहले के तय होने के बाद पिन्सन के मिलने न मिलने का तरद्दुद रहेगा। सुबुक[1] सैर क्यो कर बनवाऊँ! ये सब उमूर मुल्तवी छोडकर निकल जाऊँ। पिन्सन जारी हुये पर भी तो सिवा रामपूर के कही ठिकाना नही है। वहा तो जाऊँ और ज़रूर जाऊँ। तीन बरस सिबाते[2] कदम अख्तियार किया। अब अजामेकार मे इज्तराब की क्या वजह!

चुपके हो रहो और मुझको किसी आलम मे गमगीन और मुज्तिर गुमान न करो। हर वक़्त मे जैसा मुनासिब होता है वैसा अमल में आता है। साहब, ये मीरन साहब ने जो दो सतरे दस्तखते खास से लिखी थी, वल्लाह मैं कुछ नही समझा के ये किस मुकदमे का जिक्र है।

२१

(२ दिसम्बर १८५९)

भाई,

क्या पूछते हो? क्या लिखूँ? दिल्ली की हस्ती मुन्हसिर कई हगामो पर थी—किला, चाँदनी चोक, हर रोज़ा[3] बाजार मस्जिदे जामा का, हर हफ्ते सैर जमना के पुल की। हर साल मेला फूल वालो का। ये पाँचो बाते अब नही। फिर कहो—दिल्ली कहाँ? हाँ, कोई शहर कलमरू ए हिन्द मे इस नाम का था।

नवाब गवर्नर जनरल बहादुर १५ दिसम्बर को यहाँ दाखिल होगे। देखिए कहाँ उतरते है और क्योकर दरबार करते है? आगे के दरबारो मे सात

१. अधिक सामान रखने वाला यात्री। २. एक स्थान पर स्थिर। ३. दैनिक।

जागीरदार थे, के उनका अलग अलग दरबार होता था--झज्जर, बहादरगढ़, बल्लबगढ, फरुख नगर, दोजाना, पाटौदी, लोहारू। चारो मादूमे[1] महज़ हैं जो बाकी रहे, उसमे से दोजाना व लोहारू तहत हुकूमत हाँसी-हिसार, पाटौदी हाज़िर। अगर हाँसी-हिसार का कमिश्नर उन दोनो को यहाँ ले आया तो तीन रईस वर्ना एक रईस, बस। रहे दरबार आम वाले महाजन लोग, सब मौजूद। अहले इस्लाम मे से सिर्फ तीन आदमी बाकी है--मेरठ मे मुस्तफाखा, सुलतान-जी मे मौलवी सदरुद्दीन, बल्लीमारो मे सगे[2] दुनिया मौसूम व असद तीनो मर-दूद[3] व मतरूद, महरूम[4] व मगमूम--

तोड बैठे जब के हम जामो[5] सुबू फिर हमको क्या
आसमाँ से बाद[6]-ए-गुलफाम गर बरसा करे

तुम आते हो, चले आओ। जाँनिसारखाँ के छत्ते की सड़क, खानचन्द के कूचे की सड़क देख जाओ। बुलाकी बेगम के कूचे का ढैना, जामा मस्जिद के गिर्द सत्तर-सत्तर गज़ गोल मैदान निकलना, सुन जाओ। 'गालिबे' अफ़सुर्दा दिल को देख जाओ, चले जाओ।

'मुज्तहिदुल[7] अस्र' मीर सरफराज हुसेन को दुआ। हकीमुल मुल्क हकीम मीर अशरफ अली को दुआ। 'कुतुबुल मुल्क' मीर नसीरुद्दीन को दुआ। यूसुफे हिन्द मीर अफज़ल अली को दुआ।

मरकूमए सुबह जुमा, ६ जमादिल अव्वल, २ दिसम्बर साले हाल।

---

१. सर्वथा नष्ट। २. ससार का कुत्ता। ३. निकम्मा। ४. अभागा। ५. सुराही और प्याला। ६. पुष्पवर्णी सुरा। ७. अपने युग का सबसे बड़ा आदमी।

२२

(१३ दिसम्बर १८५९)

बेमय[१] न कुनद दर कफे मन खामा रवाई
सर्दस्त हवा आतिशे बेदर्द कुजाई !

मीर मेहदी,

सुबह का वक्त है। जाड़ा खूब पड़ रहा है। अँगीठी सामने रखी हुई है। दो हुर्फ लिखता हूँ। आग तापता जाता हूँ। आग में गरमी सही मगर हाय, वो आतिशे[२] सय्याल कहाँ के जब दो जुरे पी लिये, फौरन रगो पै मे दौड गई, दिल तवाना हो गया। दिमाग रोशन हो गया। नफ़्से[३] नातिका को तवाजिद बहम पहुँचा। साकी ए कौसर का वन्दा और तिश्ना लब[४] ! हाय गजब, हाय गज़ब !

मियाँ, तुम पिन्सन पिन्सन क्या कर रहे हो ? गवर्नर जनरल कहाँ और पिन्सन कहा ! डिप्टी कमिश्नर, साहब कमिश्नर, लेफ्टेट गवर्नर वहादुर। जव इन तीनो ने जवाव दिया हो, तो उसका मुराफा गवर्मेन्ट मे करूँ। मुझे तो दरवारी खलत के लाले पडे हैं। तुमको पिन्सन की फिक्र है। यहाँ के हाकिम ने मेरा नाम दरवार की फर्द मे नही लिखा। मैंने इसका अपील लेफ्टेट गवर्नर के हाँ किया है।

देखिए क्या जवाव आता है।

वहरहाल जो कुछ होगा, तुमको लिखा जायगा।

---

१. जव मै पान नही करता लेखनी में शक्ति नही आती, हवा ठंडी है, शराव कहाँ है ? २. शराव। ३. वाक् शक्ति। ४. प्यासा।

अजी, वो यूसुफे हिन्द न सही, यूसुफे[1] दहर सही, यूसुफे[2] असर सही। यूसुफे[3] हफ़्त किशवर सही, उनकी जुलेखा ने सितम बरपा कर रखा है। मुझे तो खबर नही, कही हज़रत कह गए है के मै साढे सात रुपया महीना भेजे जाऊँगा। अब उसका तकाज़ा है। रहीम बख्श रोज आता है और कहता है के फूफाजान को लिखो के फूफीजान भूकी मरती है, खर्च जल्द भेजो वर्ना नालिश की जाएगी और तुमको गवाह करार दिया जायगा। बहरहाल मीरन साहब को ये इबारत पढवा देना।

मीर सरफ़राज हुसेन को दुआ, मीर नसीरुद्दीन को दुआ। हकीम मीर अशरफ अली को दुआ। यूसुफे हफ्त किशवर को दुआ।

से शम्बा १३ दिसम्बर सन् १८५९ ई०।

२३

(१ जनवरी १८६०)

मियाँ लडके,

कहाँ फिर रहे हो! इधर आओ, खबरे सुनो। दरबार लार्ड साहब का मेरठ मे हुआ। दिल्ली के इलाके के जागीरदार बमूजिब हुक्म कमिश्नर देहली मेरठ गए। माफिके दस्तूरे कदीम मिल आये। गर्ज़ के पंच शबा २९ दिसम्बर को पहर दिन चढे लार्ड साहब यहाँ पहुँचे। काबली दरवाजे की फ़सील के तले डेरे हुए। उसी वक़्त तोपो की आवाज सुनते ही मै सवार होकर गया। मीर मुंशी से मिला। उनके खीमे मे बैठकर साहब सेक्रेतर को खबर करवाई। जवाब आया के फ़ुर्सत नही। ये जवाब सुनकर नौमीदी की पोट बांध कर

---

१. २. समय का यूसुफ। ३. सात देशो का यूसुफ।

आया। हर चद पिन्सन के बाब मे हनोज ला व[1] नाम नही। मगर कुछ फिक्र कर रहा हूँ। देखूँ क्या होता है। लार्ड साहब कल या परसो जाने वाले है। यहाँ कुछ कलाम व पयाम नही मुमकिन। तहरीर डाक मे भेजी जाएगी। देखिये क्या सूरत पेश आएगी।

मुसलमानो की अमलाक की वागुजाश्त का हुक्म आम हो गया है। जिनको किराये पर मिली है उनको किराया माफ हो गया है। आज यक शबा यकुम जनवरी सन् १८६० है। पहर दिन चढा है के ये खत तुमको लिखा है। अगर मुनासिब जानो तो आओ अपनी अमलाक पर कब्जा पाओ। चाहो यही रहो, चाहो फिर चले जाओ। मीर सरफराज हुसेन, मीर नसीरुद्दीन, मीरन साहब को मेरी दुआएँ कहना और हकीम मीर अशरफ अली को बाद दुआ के ये कह देना के वो हुबूब[2] जो तुमने मुझको दी थी उनका नुस्खा जल्द लिखकर भेज दो। अल्लाह् मौजूद, मासिवा मादूम। अपनी मर्ग का तालिब——

——ग़ालिब

२४

(फरवरी १८६०)

अहा हा हा! मेरा प्यारा मीर मेहदी आया। आओ भाई, मिजाज तो अच्छा है। बैठो। ये रामपूर है। दारुस्सुरूर[3] है, जो लुत्फ यहाँ है वो और कहाँ है? पानी, सुभान अल्लाह्! शहर से तीन सौ कदम पर एक दरिया है और कोसी उसका नाम है। बेशुबा[4] चश्मए आबे हयात की कोई सोत उसमे मिली है। खैर, अगर यो भी है तो, भाई, आबे हयात उम्र बढाता है, लेकिन इतना शीरी कहाँ होगा?

---

१. नही और हाँ। २ गोलिया। ३. आनन्द धाम। ४. निस्सन्देह, अमृत स्रोत।

तुम्हारा खत पहुँचा। तरद्दुद अवस, मेरा मकान डाकघर के करीव और डाक मुंशी मेरा दोस्त है। न उर्फ़ लिखने की हाजत, न मुहल्ले की हाजत। बेवसवास[1] खत भेज दिया कीजिये और जवाव लिया कीजिए। यहाँ का हाल सब तरह खूब है और सोहवत[2] मरगूब है। इस वक्त तक मेहमान हूँ, देखूँ क्या होता है। ताजीम व तौकीर मे कोई दकीका फरो गुजाश्त[3] नही है। लड़के दोनो मेरे साथ आये है। इस वक्त इससे ज्यादा नही लिख सकता।

२५

(६ अप्रेल १८६०)

मीर मेहदी,

तुम मेरे आदात को भूल गए। माहे मुवारक रमज़ान में कभी मस्जिदे जामा की तरावी[4] नागा हुई है? मैं इस महीने मे रामपूर क्यो कर रहता? नवाव साहव माने[5] रहे और वहुत मना करते रहे। वरसात के आमो का लालच देते रहे मगर भाई मैं ऐसे अदाज़ से चला के चाँद रात के दिन यहाँ आ पहुँचा। यकशवे को गुर्रए[6] माहे मुक़द्दस हुआ। उसी दिन से हम सुवह को हामिद अलीखाँ की मस्जिद में जाकर जनाव मौलवी जाफर अली साहव से कुरान सुनता हूँ, शव को मस्जिदे जामा जाकर नमाज़ तरावी पढता हूँ। कभी जो जी मे आती है तो वक़्ते सोम 'महताव वाग' मे जाकर रोज़ा खोलता हूँ और सर्द पानी पीता हूँ। वाह-वाह! क्या अच्छी तरह उम्र वसर होती है।

अव असल हकीकत सुनो। लड़को को साथ ले गया था। वहाँ उन्होने मेरा नाक में दम कर दिया। तन्हा भेज देने में वहम आया के खुदा जाने अगर

---

१. निश्चिन्त होकर। २. संगति अनुकूल। ३. अन्तर। ४. रमज़ान में पढ़ी जाने वाली विशेष नमाज़। ५. वाधक। ६. रमज़ान की पहली तारीख़।

को अम्र[1] हादिस हो तो बदनामी उम्र भर रहे। इस सबब से जल्द चला आया वर्ना गर्मी-बरसात वहाँ काटता। अब बशर्ते हयात, जरीदा[2] बाद बरसात जाऊँगा और बहुत दिनो तक यहाँ न आऊँगा। करारदाद ये है के नवाब साहब जुलाई सन् १८५९ से, के जिसको ये दसवा महीना है, सौ रुपया मुझे माह बमाह भेजते हैं। अब जो मैं वहाँ गया तो, सौ रुपया महीना बनाम दावत और दिया याने रामपूर रहे तो दो सौ रुपया महीना पाऊँ और दिल्ली रहूँ तो सौ रुपया। भाई, सौ दो सौ मे कलाम नही, कलाम इसमे है के नवाब साहब दोस्ताना व शागिर्दाना देते है। मुझको नौकर नही समझते है। मुलाकात भी दोस्ताना रही। मानिका[3] व ताज़ीम जिस तरह अहबाब मे रस्म है, वो सूरत मुलाकात की है। लडको से मैंने नज़्र दिलवाई थी, बस। बहरहाल गनीमत है। रिज़्क के अच्छी तरह मिलने का शुक्र चाहिए। कमी का शिकवा क्या? अँगरेज़ की सरकार से दस हज़ार रुपए साल ठहरे। उसमे से मुझको मिले ७५० रुपये साल, एक साहब ने न दिए, मगर तीन हज़ार रुपये साल। इज़्ज़त मे वो पाया, जो रईसजादो के वास्ते होता है, बना रहा। "खान साहब बिसियार महरबाँ, दोस्ताँ" अलकाब, खलत-सात पार्चा और जेगा सरपेच व मालाए मरवारीद। बादशाह अपने फ़र्जन्दो के बराबर प्यार करते थे। बख्शी, नाज़िर, हकीम, किसी से तौकीर कम नही, मगर फ़ायदा वही कलील। सो मेरी जान यहाँ भी वही नक़्शा है। कोठरी में बैठा हूँ, टट्टी लगी हुई है, हवा आ रही है, पानी का झज्जर धरा हुआ है, हुक़्का पी रहा हूँ, ये खत लिख रहा हूँ। तुमसे बाते करने को जी चाहा, ये बातें कर ली।

मीर सरफ़राज़ हुसेन और मीरन साहब और मीर नसीरुद्दीन को ये खत पढ़ा देना। और मेरी दुआ कह देना।

जुमा, ६ अप्रैल।

---

१. दुर्घटना। २. एकाकी। ३. मिलना और अभिवादन। ४. मित्रों पर अत्यधिक दयालू।

२६

(मई १८६०)

मियाँ,

क्यो नासिपासी[1] व नाहक शिनासी करते हो ? चश्मे[2] बीमार ऐसी चीज हैं के जिसकी कोई शिकायत करे ? तुम्हारा मुँह चश्मे बीमार के लायक कहाँ ! चश्मे बीमार मीरन साहब किब्ला की आँख को कहते है । जिसको अच्छे-अच्छे आरिफ देखते रहते है । तुम गवार, चश्मे बीमार को क्या जानो ? खैर, हँसी हो चुकी, अब हकीकत मुफस्सिल लिखो । तुम तो ज़हीर[3] की आदत रखते हो । अवारिजे[4] चश्म से तुमको क्या इलाका ? मेरे नूरे चश्म की आँख क्यो दुखी ? मैने खत तुम्हे, जानकर, नही लिखा । तुमने लिखा था के बाद ईद मैं वहाँ आऊँगा, मुझको खत भेजने मे ताम्मुल हुआ । लिखते कुछ हो, करते कुछ हो । तनखा की सुनो । तीन बरस के दो हजार, दो सौ पचास रुपये हुए। सौ मदद खर्च के जो पाये थे वो कट गये । डेढ सौ अमला[5] फेला के नजर हुए, मुख्तारे कार दो हजार लाया । चूँके मे उसका कर्जदार हूँ, रुपये उसने अपने घर मे रखे और मुझसे कहा के मेरा हिसाब कीजिए। हिसाब किया, सूद-मूल सात कम पन्द्रह सौ हुए । मैने कहा—'मेरे कर्जे मुतफर्रिक का हिसाब कर' । कुछ ऊपर ग्यारह सौ निकले । मैं कहता हूँ—'ये ग्यारह सौ बाँट दे, नौ सौ बचे, आधे तू ले, आधे मुझे दे ।' वो कहता है—'पन्द्रह सौ मुझको दो । पान सौ सात तुम लो' । ये झगडा मिट जाएगा, तब कुछ हात आएगा । खज़ाने से रुपया आ गया है । मैंने आँख से देखा हो तो आँखें फूटे । बात रह गई, पत्त रह गई । हासिदो को मौत आ गई । दोस्त शाद हो गये । मैं जैसा नंगा-

---

१. अकृतज्ञता । २. बीमार के नेत्र । ३ पेचिश की बीमारी । ४. आँखो की बीमारी । ५. सरकारी कर्मचारी ।

भूका हूँ, जब तक जीऊँगा ऐसा ही रहूँगा। मेरा दारो गीर से बचना मौजिजए[1] असदुल्लाही है, इन पैसो का हात आना अतियए[2] यदुल्लाही है। हाकिमे शहर लिख दे के ये शख्स हर्गिज पिन्सन पाने का मुस्तहक नही, हाकिमे सदर मुझको पिन्सन दिलवाये और पूरा दिलवाये।

मीरन साहब को दुआ कहता हूँ और मिजाज की खबर पूछता हूँ। जवाबे[3] तुर्की, तुर्की, जवाबे अरबी, अरबी। जो उन्होने लिखा वो मैंने भी लिखा। 'मुज्तहिदुल अस्र' को बन्दगी लिखूँ, दुआ लिखूं, क्या लिखूँ? नही भई वो मुज्तहिद[4] हो, हुआ करे; मेरे तो फर्जन्द है। मैं दुआ ही लिखूँगा और इसी तरह मीर नसीरुद्दीन को भी दुआ।

२७

(६ जून १८६०)

जाने गालिब,

अब के ऐसा बीमार हो गया था के मुझको खुद अफसोस था। पाँचव दिन गिज़ा खाई, अब अच्छा हूँ, तन्दुरुस्त हूँ। जिलहज्जा सन् १२७६ तक कुछ खटका नही है। मुहर्रम की पहली तारीख से अल्लाह मालिक है। मीर नसीरुद्दीन आए कई बार, मगर मैंने उनको देखा नही। अब के बार दर्द में मुझको गफलत बहुत रही, अक्सर अहबाब के आने की खबर नही हुई। जब से अच्छा हुआ हूँ, सैयद साहब नही आए।

तुम्हारी आँखो की गुबार की वजह ये है के जो मकान दिल्ली में ढाए गए और जहाँ जहाँ सडकें निकली, जितनी गर्द उडी, उसको आपने अजराहे

१. हजरत अली का चमत्कार। २. हजरत अली का दान। ३. जैसे को तैसा। ४. मौलवी।

मुहब्बत अपनी आँखो मे जगह दी। बहरहाल, अच्छे हो जाओ और जल्द आओ। मुज्तहिदुल अस्र मीर सरफराज़ हुसेन का खत आया था। मैंने मीरन साहब की आजुर्दगी के खौफ से उसका जवाब नही लिखा। ये रुक्का उन दोनो साहबो को पढा देना ताके मीर सरफराज़ हुसेन साहब अपने खत की रसीद से मुत्तले हो जाएँ और मीरन साहब मेरे पास उलफत[1] पर इत्तला पाएँ।

चहार शबा ६ जून सन् १८६० ई०।

२८

(१८ दिसम्बर १८६० ई०)

मियाँ,

तुम्हारे खत का जवाब मुनहस्सिर तीन बातो पर है, दो का जवाब लिखता हूँ, तीसरी बात का जवाब तुम बताओ के तुम्हे क्या लिखूँ ? पहली बात मियाँ मुहम्मद अफजल तस्वीर ले गए। अब वो तस्वीर खीचा करे और तुम इतज़ार। दूसरी बात मीर नसीरुद्दीन आए और इन तीनो साहबो का जीद के जाने का हाल मुफ़स्सिल मालूम हुआ। हक ताला अपने बदो पर रहम फरमाये। तीसरी बात—मीरन साहब को जब तक तुम न कहो मै दिल्ली न बुलाऊँ। गोया उनके आशिक तुम्ही हो, मै नही। भाई, होश मे आओ, गौर करो। ये मकदूर मुझ मे नही के उनको यहाँ बुलाकर एक अलग मकान रहने को दूँ और अगर ज्यादा न हो तो तीस रुपया महीना मुकर्रर करुँ, के भाई ये लो और दरीबा और चावडी और अजमेरी दरवाजे का बाज़ार और लाहौरी दरवाजे का बाज़ार नापते फिरो और उर्दू बाजार और खास बाजार और बुलाकी बेगम का कूचा और खान दौरानखाँ की हवेली के खंडर गिनते फिरो। अै मीर मेहदी, तू दरमांदा[2] व आजिज पानीपत मे पड़ा रहे, मीरन साहब वहाँ

१. स्नेह। २. विवश।

पड़े हुए दिल्ली देखने को तरसा करे, सरफराज हुसेन नौकरी ढूँढता फिरे और मैं इन गमहाय[1] जाँगुदाज की ताब लाऊँ? मकदूर होता तो दिखा देता के ने क्या किया।

ऐ[2] बसा आरज़ू, के खाक शुदा!
अल्लाह, अल्लाह, अल्लाह!!!
से शम्बा, ४ जमादि उस्सानी १८ दिसम्बर।

२९

(९ जनवरी १८६१)

मियाँ,

तुम्हारी तहरीर का जवाब ये है के वो तस्वीर जो मैंने मियाँ मुहम्मद अफजल को दी थी वो उन्होंने वापिस दी और उसकी नकल के बाब में ये कहा के अभी तैयार नहीं है। जब वो तैयार हो जाएगी मैं उनको रुपया देकर ले लूँगा। खातिर जमा रखो।

पिन्सन सरासर सब को शशमाही मिलने का हुक्म हो गया। हर महीने में सूदी लो और खाओ। कश्मीरी कटरा बिगड़ गया। हाय, वो ऊँचे ऊँचे दर और वो बड़ी बड़ी कोठरियाँ दो रूया[3] नजर नहीं आती के क्या हुई। आहनी सडक का आना और उसके रहगुज़र का साफ होना हनोज मुल्तवी है। चार दिन से पुरवा हवा चलती है। अब्र आते हैं मगर सिर्फ छिड़काव होता है। मेंह नहीं बरसता। गेहूँ, चना, बाजरा तीनों अनाज एक भाव है--नौ सेर साढ़े-नौ सेर।

---

१. प्राण नाशी वेदना। २. ऐसी बहुत सी लालसाएँ थीं जो मिट्टी में मिल गईं। ३. दोनों पंक्तियों की।

मीर सरफराज़ हुसेन और मीरन साहब को मैं अच्छी तरह नहीं समझा के जीद मे है या यहाँ है। मीर नसीरुद्दीन दो बार मेरे पास आए, अब मुझको नही मालूम के वो कहां है। कासिम अलीखा "कुतुबुल[1] अकताब" एक दिन कहते थे के मीर अहमद साहब के कबायल यहाँ आए हुए है। आखिर को शादी भी कब होने वाली है और कहाँ होने वाली है। इस खत का जो जवाब लिखो तो सब हालत मुफस्सिल लिखो।

सुबह चहार शम्बा, नहुम जनवरी सन् १८६१ ई०।

—ग़ालिब

३०

(११ जनवरी १८६१)

लो साहब, ये तमाशा देखो। मै तो तुमसे पूछता हूँ के मीर सरफराज-हुसेन और मीर नसीरुद्दीन कहा है, हालाँ के मीर नसीरुद्दीन शहर मे है और मुझसे नही मिलते। मीर सरफराज हुसेन आए है और मेरे हां नही उतरे। लाहौला वला कुव्वता! उतरना कैसा, मिलने को भी तो नही आए। अफ्सोस। जिनको मै अपना समझता हूँ वो मुझको बेगाना जानते है। अब तुम ये पूछो के नसीरुद्दीन का दिल्ली मे होना और 'मुज्तहिदुल अस्र' का यहां आना तूने क्यो कर जाना।

भाई, आज जुमे का दिन, २८ जमादिउस्सानी की, और ११ जनवरी की, सुबह के वक़्त मुँह अंधेरे, उसी वक़्त मेरी आँख खुली थी, लिहाफ मे लिपटा हुआ पड़ा था के नागाह मीर नसीरुद्दीन साहब तशरीफ लाए और फरमाया के मै अब जाता हूँ और मीर हसन साहब भी जाते है। मैं समझा मीर सरफ़-राज़ हुसेन। जब वाद तकरार मालूम हुआ, तो मीर हसन—जैपूर से आए और

१. ऐसा वली जिस पर ससार का प्रबन्ध निर्भर हो, उनमें शिरोमणि।

ख़ुदा जाने कहाँ उतरे और अब कहाँ जाते हैं। हैं, है! मुझे गैर समझा या मरा हुआ समझा के मेरे हा न आए और मुझसे न मिले। अपनी ससराल मे रहे और मैके को छोडा। वल्लाह, मेरा जी उनके देखने को बहुत चाहता था। अब उठा हूँ। सर्दी रफा हो ले, धूप निकल ले, आगाजान के हा आदमी को भेजता हूँ। मै कम्बख्त ये भी तो नही जानता के आगाजान कहा रहते है। अब मीर अहमदअली की बीबी पास, हब्शखा के फाटक आदमी भेजूँगा। जब आगाजान के घर का पता मालूम हो जाएगा और आदमी देख आएगा और ये भी मालूम कर आएगा के मीर हसन साहब है तो मै सवार होकर जाऊँगा और उनसे मिलूँगा। तुम इस खत का जवाब जल्द लिखो और अपने चचा के यहा आने का मंशा और उनका अहवाल मुफस्सिल लिखो।

तस्वीर का हाल आगे लिख चुका हूँ। खातिर जमा रखो और मुज्तहिदुल अस्र और मीरन साहब का हाल लिखो।

सुबह जुमा ११ जनवरी सन् १८६१ ई०।

नजात का तालिब—
—गालिब

३१

(१८६१ ई०)

जाने गालिब,

तुम्हारा ख़त पहुचा। गज़ल इस्लाह के बाद पहुँचती है—

'हरेक से पूछता हूँ—वो कहाँ है?'

मिसरा बदल देने से ये शेर किस रुतबे का हो गया!

अै मीर मेहदी तुझे शर्म नही आती—

'मियाँ, ये अहले देहली की ज़बाँ है।'

अरे! अब अहले देहली या हिन्दू है या अहले हुर्फा है या खाकी है या पंजाबी है या गोरे है। इनमे से तू किसकी जबान की तारीफ करता है। लखनऊ की आबादी मे कुछ फर्क नही आया। रियासत तो जाती रही बाकी हर फन के कामिल लोग मौजूद है।

खस की टट्टी, पुरवा हवा, अब कहाँ? लुत्फ, वो तो उसी मकान मे था। अब मीर खैराती की हवेली मे वो जहत[1] और सिम्त बदली हुई है। बहरहाल मी[2] गुज़रद। मुसीबते अज़ीम ये है के कारी का कुआँ बन्द हो गया। लाल-डिग्गी के कुएँ यककलम खारी हो गये। खैर, खारी ही पानी पीते। गर्म पानी निकलता है। परसो मै सवार होकर कुओ का हाल दरियाफ्त करने गया था। मस्जिदे जामा होता हुआ राजघाट दरवाजे को चला। मस्जिदे जामा से राजघाट दरवाजे तक बेमुबालगा एक सहरा[3] लक व दक है। ईटो के ढेर जो पड़े है वो अगर उठ जाएँ तो हू का[4] मकान हो जाए। याद करो, मिर्ज़ा गौहर के बागीचे के इस जानिब को कई बाँस नशेब[5] था, अब वो बागीचे के सेहन के बराबर हो गया, यहाँ तक के राजघाट का दरवाजा बन्द हो गया। फ़सील के कँगूरे खुल रहे है, बाकी सब अट गया। कश्मीरी दरवाजे का हाल तुम देख गये हो। अब आहनी सडक के वास्ते कलकत्ता दरवाजे से काबली दरवाज़े तक मैदान हो गया। पजाबी कटरा, धोबी वाडा, रामजी गज, सग्रादतखाँ का कटरा, जरनेल की बीबी की हवेली, रामजीदास गोदाम वाले के मकानात, साहबराम का बाग-हवेली इनमे से किसी का पता नही मिलता। किस्सा मुख्तसर, शहर सहरा हो गया था, अब जो कुएँ जाते रहे और पानी गौहरे[6] नायाब हो गया, तो यह सहरा[7] सहरा[8] ए कर्बला हो जाएगा।

अल्लाह अल्लाह! दिल्ली न रही और दिल्ली वाले अब तक यहाँ की जबान को अच्छा कहे जाते है। वाह रे हुस्ने अैतकाद! अरे, बन्दए खुदा उर्दू

---

१. दिशा। २. किसी तरह गुजरती है। ३ उजाड वियाबान। ४. सन्नाटा। ५. ढाल। ६ अलभ्य मोती। ७ रेगिस्तान। ८. कर्बला की मरुभूमि।

'मियाँ, बैठो, होश की खबर लो। तुम्हारे जाने न जाने से मुझे क्या इलाका ? मै बूढा आदमी, भोला आदमी, तुम्हारी बातो मे आ गया और आज तक उसे खत नही लिखा। लाहौला वला कूवता।'

सुनो मीर मेहदी साहब, मेरा कुछ गुनाह नही, मेरे खत का जवाब लिखो। तप तो रफा हो गई, पेचिश के रफा होने की खबर शिताब लिखो, परहेज़ का भी खयाल रखा करो। ये बुरी बात है के वहाँ कुछ खाने को मिलता ही नही। तुम्हारा परहेज अगर होगा भी तो 'अस्मते बीबी[1] अज बेचादरी' होगा। हालात यहाँ के मुफस्सिल मीरन साहब की जबानी मालूम होगे। देखो की बैठे है। क्या जानूँ हकीम मीर अशरफ अली मे और उनमे कुछ कौन्सल[2] हो तो रही है। पजशबा रवानगी का दिन ठहरा तो है। अगर चल निकलें और पहुँच जाएँ तो उनसे ये पूछो के जनाब मलिकए इंग्लिस्तान की सालगिरह की रोशनी की महफिल मे तुम्हारी क्या गत हुई थी, और ये भी मालूम कर लीजिए के जो फारसी मसल मशहूर है के 'दफ़्तर रा गाव खुर्द' इसके माने क्या है, पूछिए और न छोडिए जब तक न बतायें।

इस वक़्त पहले तो आँधी चली, फिर मेह आया। अब मेह बरस रहा है। मै खत लिख चुका हूँ, सरनामा लिख कर रख छोडूँगा। जब तरश्शो मौकूफ़ हो जाएगा तो कल्यान डाक को ले जाएगा। मीर सरफराज हुसेन को दुआ पहुँचे। अल्लाह्, अल्लाह्! तुम पानीपत के 'सुलतानुलउलमा' और 'मुजतहिदुल अस्र' बन गये। कहो वहाँ के लोग तुम्हे किब्ला व काबा कहने लगे या नही ? मीर नसीरुद्दीन को दुआ कहना।

३४

(मई १८६१)

मियाँ,

किस हाल में हो, किस खयाल में हो ? कल शाम को मीरन साहब

१. लज्जादेवी निर्वसना। २ परामर्श।

रवाना हुए। यहाँ उनकी ससराल मे किस्से क्या क्या न हुए। सास और सालियो ने और बीवी ने आँसुओ के दरिया बहा दिये। खुशदामन[1] साहब बलाएँ लेती है। सालियाँ खडी हुई दुआएँ देती है। बीबी मानिंद सूरते दीवार चुप, जी चाहता है, चीखने को, मगर नाचार चुप। वो तो गनीमत था के शहर वीरान, न कोई जान न पहचान; वर्ना हमसाये मे कयामत वरपा हो जाती। हरेक नेकवख्त अपने घर से दौडी आती। इमामे[2] जामिन अले सलाम का रुपया बाजू पर बाँधा। ग्यारह रुपए खर्चे राह दिये। मगर, ऐसा जानता हूँ के मीरन साहब अपने जद की[3] नियाज का रुपया राह ही मे अपने बाजू पर से खोल लेगे और तुमसे सिर्फ पांच रुपए जाहिर करेगे। अब सच झूट तुम पर खुल जाएगा। देखना यही होगा के मीरन साहब तुमसे बात छिपाएंगे। इससे बढकर एक बात और है और वो महले गौर है—सास गरीब ने बहुत सी जलेबियाँ और तोदए[4] कलाकन्द साथ कर दिया है, और मीरन साहब ने अपने जी मे ये इरादा कर लिया है के जलेबियाँ राह मे चट करे और कलाक़न्द तुम्हारे नज़र कर कर तुम पर अेहसान धरेगे। भाई, मै दिल्ली से आया हूँ, कलाक़न्द तुम्हारे वास्ते लाया हूँ। जिन्हार न बावर कीजियो। माले मुफ्त समझकर ले लीजियो। कौन गया है? कौन लाया है? कल्लू, अयाज के सर पर कुरान रखो। कल्यान के हात गगाजली दो। वल्के मै भी कस्म खाता हूँ के इन तीनो मे से कोई नही लाया। वल्लाह मीरन साहब ने किसी से नही मँगाया। और सुनो, मौलवी मजहर अली साहब लाहौरी दरवाज़े के बाहर सदर बाजार तक उनके पहुँचाने को गये। रस्मे मुशाइअत[5] अमल में आई। अब कहो भाई, कौन बुरा और कौन अच्छा है? मीरन साहब की

---

१. सास। २. यात्रा पर जाते समय भुजा पर बाँधने का एक मागलिक वस्त्र। ३ दादा। ४ ढेर भर क़लाक़न्द। ५. विदाई।

नाजुक मिजाजियो ने खेल बिगाड रखा है। ये लोग तो उन पर अपनी जान निसार करते हैं, औरते सदके जाती हैं, मर्द प्यार करते हैं ।

'मुज्तहिदुल अस्र—सुलतान उल उलेमा' मौलाना सरफ़राज़ हुसेन को मेरी दुआ कहना और कहना के हज़रत हम तुमको दुआ कहे और तुम हमको दुआ दो। मियां, किस किस्से मे फँसा है ? फिका[1] पढकर क्या करेगा? तिब व[2] नुजूम वहैत[3] व मन्तिख व फ़लसफ़ा पढ जो आदमी बना चाहे। खुदा के बाद नबी और नबी के बाद इमाम, यही है मज़हबे हक । वस्सलाम व अकराम । 'अली, अली' किया करो, और फारिगुल[4] बाल रहा करो ।

३५

(२६ जुलाई १८६१ ई०)

जुमा १७ मुहर्रम २६ जुलाई ।
सैयद साहब,

कल पहर दिन रहे तुम्हारा खत पहुँचा। यकीन है के उस वक़्त या शाम को मीर सरफराज़ हुसेन तुम्हारे पास पहुच गए हो। हाल सफर का जो कुछ है, उनकी ज़बानी सुन लोगे, मै क्या लिखू ? मैंने भी जो कुछ सुना है, उन्ही से सुना है। इनका इस तरह नाकाम फिर आना, मेरी तमन्ना और मेरे मकसूद के खिलाफ है, लेकिन मेरे अकीदे और तसव्वुर के मुताबिक है। मै जानता था के वहा कुछ न होगा, सौ रुपए की ज़ेरबारी नाहक हुई, चू के ये जेरबारी[5] मेरे भरोसे पर हुई तो मुझे भी शर्मसारी है। मैंने इस छयासठ बरस में इस तरह की शर्मसारिया और रु सियाहिया बहुत उठाई है। जहा

१. इस्लामी धर्म शास्त्र। २. चिकित्सा शास्त्र और ज्योतिष। ३. तर्कशास्त्र। ४. निश्चिन्त। ५. परेशानी।

हज़ार दाग हैं, एक हजार एक सही, मीर सरफराज हुसेन की ज़ेरबारी से दिल कुढता है।

वबा[1] को क्या पूछते हो ? कद्र अंदाज कजा[2] के तरकश मे यही एक तीर बाकी था। कत्ल ऐसा आम ! लूट ऐसी सख्त ! काल ऐसा बडा। वबा क्यों न हो ? 'लस्सानउल[3] गैब' ने दस बरस पहले फरमाया है—

हो चुकी गालिब बलाएँ सब तमाम
एक मर्गे नागहानी और है

मियाँ, सन् १२७७ की बात गलत न थी, मगर मैंने वबा ए-आम में मरना अपने लायक न समझा। वाकई इसमे मेरी कसरे शान थी। बाद रफे फसाद हुआ समझ लिया जाएगा। 'कुल्लियाते उर्दू' का छापा तमाम हुआ। अगलब के इसी हफ्ते है, गायत[4] इसी महीने मे एक नुस्खा बसवीले डाक तुमको पहुँच जाएगा। 'कुल्लियात नज्मे फारसी' के छापने की भी तदबीर हो रही है। अगर डौल बन गया, तो वो भी छापा जाएगा। 'कातै बुरहान' के खात्मे मे कुछ फवायद बढाए गए है। अगर मकदूर[5] मुसाअदत[6] करेगा तो मैं बशिरकते[7] गैब उसको छपवाऊगा, मगर ये खयाल मुहाल है। मेरे मकदूर की तैयारी का हाल 'मुज्तहिदुल अस्र' को मालूम है। 'वल्लाहअलाकुल्ले[8] शईन कदीर' खुदा का बन्दा हूँ, अली का गुलाम। मेरा खुदा करीम, मेरा खाविन्द सखी।

अली[9] दारम चे गम दारम ?

वबा की आंच मद्धम हो गई है। पान-सात दिन बडा ज़ोर-शोर रहा। परसो खाजा मिर्जा वल्द खाजा अमान मय अपनी बीबी बच्चो के दिल्ली में आया।

---

१. दैवीविपत्ति। २. काल। ३ अदृश्य की भाषा। ४. तात्पर्य। ५ सामर्थ्य। ६. अनुकूल। ७. स्वय। ८. ईश्वर सब पर प्रभुत्व रखता है। ९, मैं अली का हूँ, मझे क्या दु.ख है ?

कल रात को उसका नौ बरस का बेटा हैजा करके मर गया। इन्ना लिल्लाह, व इन्ना इलहे राजऊन।

अलवर में भी वबा है। अलेक्ज़ेण्डर हैडरले मुश्तहिर[1] ब "अलक साहब" मर गया। वाकई बेतकल्लुफ वो मेरा अज़ीज और तरक्की ख़ा और राज में और मुझ मे मुतवस्सित था, इस जुर्म मे माख़ूज[2] होकर मरा। ख़ैर, ये आलमे असबाब है। इसके हालात से हमको क्या।

३६

(८ अगस्त १८६१)

भाई,

तुम सच कहते हो—

बरसरे[3] फर्ज़न्द आदम हर चे आयद बगुज़रद।

लेकिन मुझे अफसोस इस बात का है के ये ज़ेरबारी मेरी तहरीर के भरोसे पर हुई और खिलाफ मेरी मर्ज़ी के हुई। जिस तरह से ये आए है, अगर चे मेरी तबीयत और मेरी खाइश के मुनाफी[4] है; लेकिन वल्लाह मेरे अकीदे और तसव्वुर और कयास के मुताबिक है। याने मैं यही समझता था के अलबत्ता यो ही होगा।

"दीवाने उर्दू" छप चुका। हाय, लखनऊ के छापेखाने ने जिसका दीवान छापा उसको आसमान पर चढा दिया, हुस्ने[5] ख़त से अल्फाज को चमका दिया। दिल्ली पर और उसके पानी पर और उसके छापे पर लानत! साहबे दीवान को इस तरह याद करना जैसे कोई कुत्ते को आवाज दे। हर कापी देखता

१. अलक के नाम से प्रसिद्ध। २. बन्दी होकर। ३. मनुष्य पर जो कुछ पडे वह गुज़र जाती है। ४. प्रतिकूल। ५. सुलेखन।

रहा हूँ। कापी निगार और था, मुतवस्सित जो कापी मेरे पास लाया करता था वो और था। अब जो दीवान छप चुके, हकउल[1] तस्नीफ एक मुझको मिला। गौर करता हूँ तो वो अल्फाजे गलत जो के तों हैं; याने कापी निगार ने न बनाए। नाचार गलतनामा लिखा, वो छपा। बहरहाल खुश व नाखुश कई जिल्दे मोल लूँगा। अगर खुदा चाहे तो इसी हफ्ते में तीन मुजल्लद असहाबे[2] सलसा के पास पहुँच जाएँ। न मैं खुश हुआ हूँ न तुम खुश होगे। और ये जो लिखते हो के यहाँ खरीदार हैं, कीमत लिख भेजो। मैं दलाल नही, सौदागर नही, मोहतमिमे मतबा नही। मतबे अहमदी के मालिक मुहम्मद हुसेनखाँ, मोहतमिम मिर्जा अम्मूजान। मतबा शाहदरे मे, मुहम्मद हुसेनखाँ दिल्ली शहर और राय मान के कूचे में, मुसव्विरों की हवेली के पास, कीमते किताब छ आने, महसूल डाक खरीदार के जिम्मे, तालिबाने किताब को इत्तिला दो, दो-चार-दस-पाँच जिल्दे जिसको मगानी हो मुहम्मद हुसेनखाँ के नाम पर देहली राय मान के कूँचे, मुसव्विरो की हवेली का पता लिखकर खत डाक में भिजवादो। किताब डाक में पहुँच जाएगी। कीमत चाहो नक्द चाहो टिकट इरसाल करो। मुझको क्या और तुमको क्या ? जो कहे उसको ये जवाब दे दो।

वबा थी कहाँ, जो मै लिखूँ के अब कम है या ज्यादा। एक छयासठ बरस का मर्द, एक चौसठ बरस की औरत, इन दोनो मे से एक भी मरता तो हम जानते के हाँ वबा आई थी। तुफ[3] बरी वबा!

पजशबा ८ माह अगस्त की, (कमरी) महीने का हाल कुछ मालूम नही। कल शाम को दो मूँढे रखकर, कई आदमी देखा किए, हिलाल नजर नही आया।

नजात का तालिब--गालिब।

---

१. लेखन का प्रतिफल। २. तीन प्रतिष्ठित व्यक्ति। ३. ऐसी महामारी को धिक्कार।

३७

(२२ सितम्बर १८६१ ई०)

हाँ साहब, तुम क्या चाहते हो? 'मुज्तहिदुल अस्र' के मसविदे को इस्लाह देकर भेज दिया। अब और क्या लिखूँ? तुम मेरे हम उम्र नही जो सलाम लिखूँ। मैं फ़क़ीर नही जो दुआ लिखूँ। तुम्हारा दिमाग चल गया है, लिफाफे को कुरेदा करो। मसविदे के काग़ज़ को बार बार देखा करो, पाओगे क्या? याने तुमको वो मुहम्मदशाही रविशे पसन्द है—'यहाँ खैरियत है, वहाँ की आफ़ियत मतलूब[1] है। खत तुम्हारा बहुत दिन के बाद पहुँचा'। जी ख़ुश हुआ। मसविदा बाद इस्लाह के भेजा जाता है। बरखुरदार मीर सरफराज़ हुसेन को देना और दुआ कहना। और हाँ हकीम मीर अशरफ़अली और मीर अफ़ज़ल अली को भी दुआ कहना। लाज़िमए सआदतमन्दी ये है के हमेशा इसी तरह ख़त भेजते रहो।' क्यो? सच कहियो, अगले के ख़ुतूत की तहरीर की यही तर्ज़ थी या और? हाय, क्या अच्छा शेवा है! जब तक यो न लिखो वो खत ही नही है, चाह बेआब है, अब्र बेबाराँ है। नख़्ल बेमेवा है, खानए बे-चिराग है चिराग बेनूर है। हम जानते है के तुम जिन्दा हो; तुम जानते हो के हम जिन्दा है। अम्र जरूरी को लिख लिया। ज़वायद को और वक़्त पर मौकूफ रखा, और अगर तुम्हारी खुशनूदी उसी तरह की निगारिश पर मुनहसिर है, तो भाई साढे तीन सतरें वैसी भी मैंने लिख दी। क्या नमाज़े[2] कज़ा नही पढते और वो मक़बूल नही होती। खैर, हमने भी वो इबारत जो मसविदे के साथ लिखी थी, अब लिख भेजी। कुसूर माफ करो, खफ़ा न हो।

मीर नसीरुद्दीन एक बार आए थे, फिर न आए। नस्रे फारसी, नई मैंने कहाँ लिखी के तुम्हारे चचा को या तुमको भेज दूँ? नवाब फैज़ मुहम्मदखाँ

---

१. अभीष्ट। २. कारण वश समय बीतने पर पढी गई नमाज़।

के भाई हसनअलीखां मर गए। हामिदअलीखाँ की एक लाख तीस हजार कई सौ रुपए की डिक्री पादशाह पर हो गई। कल्लू दारोगा बीमार हो गया था, आज उसने गुस्ले सेहत किया। बाकरअलीखाँ को महीने भर से तप आती है। हुसेनअलीखाँ के गले मे दो गुदूद हो गए है। शहर चुपचाप, न कहीं फावड़ा बजता है, न सुरग लगा कर कोई मकान उडाया जाता है। न आहनी सड़क आती है, न कही दमदमा बनता है। दिल्ली शहर खमोशाँ[1] है।

कागज निबड गया, वर्ना तुम्हारे दिल की खुशी के वास्ते अभी और लिखता।

यकशबा २२ सितम्बर।

३८

(१५ मई १८६२)

पजशबा १५ जीकादा व मई।

साहब,

आज तुम्हारा खत दोपहर को आया। उसमे मैंने मसविदा तारीख का पाया, कलमदान मे रख लिया। खत पढकर मीर सरफराज हुसेन को भेज दिया। कल वो कहते थे के उनतीस रुपए को तीन गाडियाँ मुकर्रर हो गई है, मैं कल याने आज शाम को सवार हो जाऊँगा। अब इस वक्त जो मैं ये खत लिख रहा हूँ, पहर दिन बाकी है। लिखकर खुला रख छोड़ूँगा। शाम को 'मुज्तहिदुल अस्र' मेरे घर ज़रूर आएँगे। अगर आज जाएँगे तो वास्ते तोदी[2] के, और न जाएँगे तो माफक मामूल के आएँगे। उनके जान न जाने का हाल, सुबह को इस वरक पर लिखकर खत बन्द करके भेज दूँगा। खुदा करे उर्दू की नक्ल का लिफाफ़ा उन्होने डाक मे भेज दिया हो। शाम को मुझे दे जाएँ तो मैं कल इस खत के साथ उसको भी भिजवा दूँ। महाराज अगर दौरे को गए तो क्या

१. कबरिस्तान। २. विदाई के लिए।

अँदेशा है? गर्मी का मौसम है, लबा-चौडा सफर क्यो करेंगे? आठ-सात दिन मे फिर आएँगे। यहाँ की तलाश का नतीजा देखो, तब कही जाइयो। मीरन साहब की तुम्हारी चूमाचाटी के लिखने का मुझ मे दम नही, तुम जानो, वो जानें।

'कुल्लियात' के छापे की हकीकत सुनो—६० सफे छापे गए थे के मौलवी हादीअली मुसह्ह[1] बीमार हो गए। कापी निगार रुख्सती अपने घर गया। अब देखिए कब छापा शुरू हो। 'काते बुरहान' का छापा खत्म हुआ। एक जिल्द बतरीके नमूना आ गई। मैंने ५० जिल्दो की दरख़ास्त पहले से दे रखी है। अब पचास रुपए भेजूँ तो उनंचास जिल्दे मगाऊँ। देखिए नौ मन तेल कब मयस्सर हो, और राधा कब नाचे।

मियाँ, कल शाम को मीर सरफराज़ हुसेन मेरे घर नही आए। या तो अलवर को मुझसे वगैर रुख्सत हुए गए या नही गए। मै तो आज जुमा १६ मई सुबह वक़्त ये ख़त डाक मे भेजता हूँ।

नजात का तालिब
—गालिब

३९

(२९ जुलाई १८६२)

सैयद साहब,

अच्छा ढकोसला निकाला है। बाद अलकाब के शिकवा शुरू कर देना और मीरन साहब को अपना हम जवान कर लेना। मैं मीर मेहदी नहीं के मीरन साहब पर मरता हू, मीर सरफराज़ हुसेन नही के उनको प्यार करता

---

१. प्रूफरीडर।

हूँ। अली का गुलाम और सादात[1] का मौतकद हू, उसमे तुम भी आ गए। कमाल ये के मीरन साहब से मुहब्बत कदीम है। दोस्त हू, आशिके[2] जार नही; बन्द[3] ए महरो वफा हू, गिरफ्तार नही। तुम्हारे भाई ने सख्त मुशविश[4] बल्के नाल[5] दरे आतिश कर रखा है। एक 'सलाम[6]' इस्लाह के वास्ते भेजा और लिखा के बाद मुहर्रम के मै भी आऊगा। मैने 'सलाम' रहने दिया और मुन्तज़िर रहा के डाक मे क्यो भेजूं, वो आएगे तो यही उनको दे दूंगा। मुहर्रम तमाम हुआ। आज से शबा गुर्रएसफ़र[7] है. हजरत का पता नही, ज़ाहिरा बरसात ने आने न दिया।

बरसात का नाम आ गया, लो पहले तो 'मुजमिलन'[8] सुनो—एक गदर कालो का, एक हगामा गोरो का, एक फितना इनहदामे[9] मकानात का, एक आफत वबा की, एक मुसीबत काल की, अब ये बरसात जमी[10] हालात की जामा[11] है। आज इक्कीसवॉ दिन है, आफ़ताब इस तरह गाह गाह नज़र आ जाता है, जिस तरह बिजली चमक जाती है; रात को कभी कभी तारे अगर दिखाई देते है तो लोग उनको जुगनू समझ लेते है। अधेरी रातों मे चोरो की बन आई है। कोई दिन नही के दो चार जगह की चोरी का हाल न सुना जाए। मुबालिगा न समझना। हजारहा मकान गिर गए, सैकड़ो आदमी जा बजा[12] दबकर मर गए। गली गली नदी बह रही है। किस्सा मुख्तसर वो अनकाल था के मेह न बरसा, अनाज न पैदा हुआ, ये पनकाल है, के पानी ऐसा बरसा के बोए हुए दाने बह गए। जिन्होने अभी नही बोया था, वो बोने से रह

---

१. हजरत मुहम्मद की सन्तति। २. मरने वाला प्रेमी। ३. प्रेम का दास। ४. परेशान। ५ उद्विग्न। ६ कविता का एक प्रकार। ७. सफर (मुस्लिम वर्ष का दूसरा मास) की पहली तिथि। ८ सक्षेप मे। ९. मकानो की तोड फोड। १०. बीती अवस्था। ११ समष्टि। १२. यत्र तत्र।

गए। सुन लिया दिल्ली का हाल ? इसके सिवा कोई नई बात नही है। जनाब मीरन साहब को दुआ। ज्यादा क्या लिखूं।

सेशम्बा एकुम सफर व २९ जुलाई।

४०

बरखुरदार नूरे चश्म मीर मेहदी को बाद दुआ ए हयातो सेहत के मालूम हो—

भाई, तुमने बुखार को क्यो आने दिया, तप को क्यो चढने दिया, क्या बुखार मीरन साहब की सूरत मे आया था, जो तुम माने न आए ? क्या तप अव्वन बनकर आई थी जो उसको रोकते हुए शर्म आए ? हकीम अशरफ अली अभी गए है। कहते थे के मैंने नुस्खा लिखकर आज डाक मे भेज दिया है। चूं-के ये खत भी आज रवाना होता है, क्या अजब है के दोनो खत एक दिन बल्के एक वक़्त पहुँचे। दिल तुम्हारे वास्ते बहुत कुढता है। हक ताला तुमको जल्द शफा दे और तुम्हारी तन्दुरुस्ती की खबर मुझको सुनाए।

सुनो मियाँ सरफराज़ हुसेन, हजार बरस मे तुमने मुझको एक खत लिखा, वो भी इस तरह का के जैसा 'जलाले असीर' कहता है—

व[1] गैर दर शकर आवस्त व रू बमा दारद

पढता हूँ उस खत को और ढूँढता हूँ के मेरे वास्ते कौन सी बात है, मुझको कौन पयाम है, कुछ नही। शायद दूसरे सफे मे कुछ हो, उधर खातमा[2] बिल खैर है। या रब, सरनामा मेरे नाम का, आगाज़े तहरीर में अलकाब मेरा; फिर सारे खत मे मीरन साहब का झगडा। ये क्या सैर है ? मैं ऐसे

---

१. दूसरे के साथ तुम पानी और शक्कर की तरह रहते हो लेकिन हमारी तरफ केवल मुंह देखी का बर्ताव करते हो। २. समाप्ति, इति श्री।

ख़त का जवाब क्यों लिखूँ? मेरी बला लिखे। अब जो तुम ख़त लिखोगे और उसमें अपने भाई की ख़ैरो आफियत रकम करोगे और मीरन साहब का नाम और उनके लिए सलाम तक भी उसमें न होगा तो मैं उसका जवाब आँखों से लिखूँगा।

और हाँ मियाँ, फिर तुमने मीर अशरफ़ अली को क्या लिखा के हमने सुना है चचा ने उसका मरना सुना होगा? उस गरीब का कौल ये है के मेरी दोनो बहने और पाँच भानजियाँ पानीपत मे है। क्या चचा को न मालूम होगा के कौन सी लड़की मरी? काश, उसके बाप का नाम लिखते, ताके मैं जानता के कौन-सी भानजी मरी है। अब मैं किसका नाम लेकर रोऊँ और किसकी फातिहा दिलवाऊँ?

इस अमर में हक बजानिब उस मजलूम के है। तौजी[1] वकैदे नाम लिखो।

४१

(२६ सितम्बर १८६२)

वाह हजरत,

क्या ख़त लिखा! इस खुराफात के लिखने का फायदा? बात इतनी ही है के मेरा पलग मुझको मिला, मेरा बिछौना मुझको मिला, मेरा हमाम मुझको मिला, मेरा बैतुलखला मुझको मिला। रात का वो शोर 'कोई आइयो, कोई आइयो," फरो[2] हो गया। मेरी जान बची, मेरे आदमियो को जान बची—

१. विस्तृत और व्याख्या सहित। २. समाप्त हो गया।

अकनूँ[1] शबे मन शबस्त व रोजम रोजस्त

भई, तुमने ये न लिखा के मीरन साहब को मेरा खत पहुँचा या न पहुँचा। मैं गुमान करता हूँ के नही पहुँचा। अगर पहुँचता तो बेशक वो तुम्हारी नजर से गुजरता और मीरन साहब उसकी असल हकीकत तुमसे पूछते और इस सूरत मे ये भी जरूर था के तुम इस वाहियात के बदले मुझको वो रूदाद[2] लिखते जो मीरन साहब मे और तुममे पेश आई। पस अगर, जैसा के मेरा गुमान है, खत नही पहुँचा तो खैर जाने दो। अगर खत पहुँचा है तो मीरन साहब के खत के जवाब लिखवाने मे तुमने मेरा दम नाक मे कर दिया था। अब उनसे मेरे खत के जवाब का तकाजा क्यो नही करते ? हुस्न भी क्या चीज है ? नादिर का इतना खौफ नही, जितना हसीन आदमी का डर होता है! तुम उनसे ख़्वाहिशे[3] विसाल करते हुए डरो। मेरे खत के जवाब के बाब मे क्यो नही कहते! न साहब, ये कुछ बात नही। मेरे खत का जवाब उनसे लिखवाकर भिजवाओ। यहा का हाल वो है जो देख गये हो, पानी गर्म, हवा गर्म, तपे मस्तूली, अनाज महगा। बेचारा मुशी मीर अहमद हुसेन का भतीजा, मीर इमदाद अली 'अ।गोव' का बेटा मुहम्मद मीर शबे गुजिश्ता को गुजर गया। आज सुबह को उसको दफन कर आये। जवाने सालेह,[4] परहेजगार, मोमनीन का पेशे नमाज[5] था। इन्नालिल्लाह व इन्नाइलेहे राजेऊन।

'मुजतहिदुल अस्र' का हुक्म बजा लाऊंगा, और न रईस को बल्के मदारल[6] महामे रियासत को लिखूगा। रईस मेरे सवाल का जवाब कलमन्दाज कर

---

१ अब मेरी रात रात है और मेरा दिन दिन है। २. विवरण। ३ मिलन की इच्छा। ४. सदाचारी। ५. धार्मिक लोगो को नमाज पढाने वाला। ६. प्रधान मत्री।

जाएगा और मदारुल माहम अम्रे[1] वाकई लिख भेजेगा। मुज्तहिदुल अस्र को दुआ कहना और ये खत पढा देना। मीरन साहब को दुआ और कहना के भला साहब, तुमने हमारे खत का जवाव नही लिखा, हम भी तुम्हारी तर्ज काततब्वो[2] करेगे। हकीम मीर अशरफ अली को दुआ कहना और कहना के अगर तुममे उनमे राहो रस्म, ताजियतो[3] तहनियत हो तो मीर अहमद हुसेन को खत लिखो और ये भी उनको मालूम हो के हफीज यहाँ आया हुआ है, कवायल तुम्हारे यही है। अगर वहाँ कुछ रसाई हासिल हो तो खैर वर्ना यहाँ क्यो न चले आओ!

मैं भूला नही तुझको ऐ मेरी जान
करूँ क्या के याँ गिर रहे है मकान

बरसात का हाल न पूछो। खुदा का कहर है। कासिमजान की गली सआदत खाँ की नहर है। मै जिस मकान मे रहता हू, आलमवेगखाँ के कटरे की तरफ का दरवाजा गिर गया। मस्जिद की तरफ के दालान को जाते हुए जो दरवाजा था वो गिर गया, सीढियाँ गिरा चाहती है, सुवह के वैठने का हुजरा झुक रहा है। छते छलनियाँ हो गई है। मेह घडी भर वरसे तो छत घटा भर वरसे। कितावे, कलमदान सव तोशाखाने मे। फर्श पर कही लगन रखा हुआ, कही चिलमची धरी हुई है। खत लिखू कहाँ वैठकर? पाँच-चार दिन से फुरसत है। मालिके मकान को फिक्रे मरम्मत है। आज एक अम्न की सूरत नजर आई, कहा के आओ, मेंहदी के खत का जवाव लिखू। अलवर की नाखुशी, राह की मेहनतकशी, तप की हरारत, गर्मी की शरारत, यास[4] का आलम, कसरते अन्दोहो[5] गम, हाल की फिक्र, मुस्तकविल का खयाल, तवाही का रंज, आवारगी का मलाल, जो कुछ कहो वो कम है। विल-

---

१. सच्ची घटना। २. अनुकरण। ३ शोक और हर्ष का सम्बन्ध। ४. निराशा। ५. दुःख, वेदना।

फ़ैल तमाम आलम का एक-सा आलम है। सुनते हैं, के नवम्बर में महाराजा को अख्तियार मिलेगा। हाँ, मिलेगा, मगर वो अख्तियार ऐसा होगा जैसा खुदा ने खल्क को दिया है—सब कुछ अपने कब्जए[1] कुदरत में रखा, आदमी को बदनाम किया है। वादे रफा मर्ज का हाल लिखो। खुदा करे, तप जाती रही हो। तन्दुरुस्ती हासिल हो गई हो ? मीर साहब कहते हैं—

तुन्दुरुस्ती हजार नेमत है

हाय, पेश[2] मिसरा मिर्ज़ा कुर्बान अली बेग 'सालिक' ने क्या खूब बहम पहुचाया है! मुझको बहुत पसन्द आया है—

तगदस्ती अगर न हो 'सालिक'
तन्दुरुस्ती हज़ार नेमत है

मुज्तहिदुल अस्र जनाब मीर सरफराज़ हुसेन को दुआ। अहा हा हा! मीर अफ़जल अली साहब कहाँ है ? हजरत, यहाँ तो इस नाम का कोई आदमी नही है। लखनऊ के मुज्तहिदुल अस्र के भाई का नाम मीरन साहब था, जैपूर के मुज्तहिदुल अस्र के भाई मीरन साहब क्यों न कहलायें। हाँ भाई, मीरन साहब, भला उनको हमारी दुआ कहना।

४२

(२० नवम्बर १८६२)

मेरी जान,

खत न भेजो और मेरे खत का इंतज़ार करो, इसकी वजह मैं नही समझा। तुम्हारा खत आए और मैं जवाब न लिखूं तो गुनहगार। नवाब यूसुफ अली खाँ 'नाज़िम' का दीवान मेरे पास कहाँ ? नवाब

१. अधिकार। २. प्रतिचरण (कविता)।

साहब ने बसबीले अर्मुगाँ[1] मुझे एक वरक भी नही भेजा। यहाँ कुछ बिकते आ गए थे। मैंने एक मोल लेकर नवाब मुस्तफाखा को जहाँगीराबाद भेजा था। अब मुहम्मद बख्श और पीरजी से कह दूंगा। अगर किसी ने ला दिया तो एक जिल्द मीर सरफराज़ हुसेन को भेज दूंगा। तवक़्क़ो नौकरी का हाल मुझको मुफस्सिल मालूम है। ये भी बादशाही तनखा हुई के रुपया देकर मोल ले और कहे के हमने नज़राना दिया है।

बशर्त्ते नौकरी हो जाने के, बरस-छ महीने तक अपना दिया हुआ रुपया मुस्तर्द[2] करना होगा। नौकरी मुफ्त मे।

'मुकद्दर' मुज़क्कर और 'तकदीर' मुअन्नस है। कौन कहेगा—'फलाने की मुकद्दर अच्छी है' ? कौन कहेगा—'ढमके का तकदीर बुरा है' ! ये मसला साफ है। मुज़बजब नही। कोई भी मुकद्दर को मुअन्नस न कहता होगा। तुमको तरद्दुद क्यो हुआ ?

जवाँ मर्द, जवाँ बख्त, जवाँ दौलत, जवाँ उम्र, जवाँ[3] साल, जवाँ[4] ख़िरद, जवाँ[5] मर्ग ये अल्फ़ाज़ मुकर्ररए अहले ज़बान है; कमी मक़लूब[6] व माकूस[7] नही आते।

'अवद अखबार' मे बादशाह के मरने की खबर-लिखी देखी, मगर फिर कही से तसदीक[8] नही हुई। नरिन्दरसिंघ राज ए पटियाला बेतकल्लुफ मर गया। मस्जिदे जामा की वागुज़ाश्त की खबर मशहूर है। अगर सच हो जाए तो क्या दूर है ? शाहे अवद की अमलाक की भी वागुजाश्त की खबर है।

लो कहो, अब और क्या लिखूँ ? सरेराह की मुँड़ेर के पास जो तख्त बिछा है उस पर बैठा हुआ धूप खा रहा हूँ और खत लिख रहा हूँ। बस,

---

१. भेट। २. वापिस। ३. नवयुवक। ४. बुद्धिमान। ५. युवावस्था में मरने वाला। ६. ७ एक दूसरे के विपरीत। ८. पुष्टि।

का कुछ हाल मालूम कर लूँ और कप्तान अलेक्जेण्डर का ख़त आये और मैं उसको मीर सरफराज़ हुसेन के मुकदमे मे लिख लूँ तो उस वक्त तुम्हारे ख़त का जवाब लिखूँ। चूँके आज तक उनका ख़त न आया, मैं सोचा के अगर इसी इन्तजार मे रहूँगा और ख़त का जवाब न भेजूँगा तो मेरा प्यारा मीर मेहदी खफा होगा। नाचार जो कुछ अलवर का हाल सुना है, वो, और कुछ अपना हाल लिखता हूँ। हरचन्द मैंने दरियाफ़्त करना चाहा; मगर हकीम महमूद अली का वहाँ पहुँचना और ये के वहाँ पहुँचने के बाद क्या तौर करार पाया, कुछ मालूम नही हुआ। सिर्फ खबर वाहिद है के उनको रावराजा ने साहब एजेण्ट से इजाज़त लेकर बुला लिया है। कहते हैं के साहब एजेण्ट अलवर ने राजा के बालिग़ और आकिल होने की रिपोट सदर को भेजी है। क्या अजब है के इनका राज इनको मिल जाए। कहते हैं के रावराजा ने अहलेखित्ता[1] के फिराक[2] की शिकायत हाकिम से की थी। जवाब पाया के वो लोग मुफसिद[3] और बदमाश हैं और तुम्हारी बिरादरी के लोग उनसे नाखुश हैं। उनके आने में फ़साद का अेहतमाल है। वो न आने पाएँगे।

मौलाना गालिब अलइर्रहमान इन दिनो मे बहुत ख़ुश हैं। पचास-साठ जुज़्व की किताब अमीर हम्ज़ा की दास्तान की, और इसी कद्र हजम[4] की एक जिल्द 'बोस्ताने ख़याल' की आ गई है, सत्रह बोतलें बादएनाब[5] की तोशक-खाने मे मौजूद हैं। दिन भर किताब देखा करते हैं। रात भर शराब पिया करते हैं।

कसे[6] की मुरादिश मयस्सर बुवद
अगर जम न बाशद सिकन्दरबुवद

---

१. आसपास रहने वाले। २. वियोग, जुदाई। ३. फसाद करने वाले। ४. मोटी। ५. निरी शराब। ६. यदि किसी की इच्छा पूर्ण हो जाय तो वह जमशेद न भी बन सके तो सिकन्दर अवश्य बनता है।

मीर सरफराज हुसेन को और मीरन साहब को और मीर नसीरुद्दीन साहब को दुआएँ और दीदार की आरज़ुएँ।

४५

(१८६३ ई०)

बरख़ुरदार,

तुम्हारा खत पहुँचा। मगर ये गजब है के मैं उसका जवाब नही लिख सकता और वो जवाबतलब है। जवाब क्या लिखूँ? कवायद अमलदारी के बरहम[1] हो गए। नए-नए दस्तूर हैं। शोहरत हुई के लार्ड साहब आते हैं। फ़रवरी को अम्बाले पहुँचेगे। अहले देहली की मुलाज़िमत वहाँ होगी। अब यह आवाज बुलन्द है के फरवरी मे कलकत्ते से चलेगे। बनारस, इलाहाबाद, अकबराबाद होते हुए मार्च को अम्बाले पहुँचेगे। अलवर, जैपूर, कोटा ये तीन राजा आगरे पहुँच गए। वहाँ मीरे[2] फर्श की तरह बेकार धरे हुए हैं। अलवर के राजा गोया यूसुफ[3] हैं। उनके खरीदार दौडते फिरते हैं। कोई शिकरम, कोई केराची ढूँढ रहा है। कोई प्यादा चल निकला, किसी ने माँगे का टट्टू बहम पहुँचाया। ये सब किस्से एक तरफ, अब सुनता हूँ के राजस्तान के एजेण्ट ने सब रईसो को लिखा है के लार्ड साहब तुम्हे बुलाते नही, जिसका जी चाहे आओ, जिसका जी न चाहे न आओ। इस तहरीर को देखकर जो बादशाह पर जा पहुँचे वो पशेमान[4] हैं। जो राह मे हैं वो वही ठिठक रहे हैं। न आगे बढते है, न पीछे हट सकते हैं। जो अपने मुकाम से न हिले थे, वो अच्छे रहे।

यहाँ दो-तीन महावटे बरस गई हैं। गेहूँ-चना अच्छा होगा। रबी की उम्मीद पडी।

---

१. नष्ट भ्रष्ट। २. निरर्थक वस्तु। ३. सुन्दर। ४. परेशान, अपमानित।

उफकहा[1] पुर अज अब्र वहमन मिही
सिफालीना जामे मन अज मय तिही

सीधे हात पर एक जख्म, वाएँ वाजू पर एक घाव। सीधी रान पर एक फोडा, ये हाल मेरा है। वाकी खैरो आफियत !

मीर सरफराज हुसेन और मीरन साहव को दुआ पहुँचे।

गालिव

४६

(२२ अगस्त १८६३)

नूरे चश्म मीर मेहदी को वाद दुआ के मालूम हो के 'कुल्लियाते फारसी' का पहुँचना मुझको मालूम हुआ। मियाँ, इसमे अग़लात वहुत हैं। मुवारक हो तुम्हें और मीर सरफराज हुसेन को और मीरन साहव को और भाई खुदा करे मुझको भी। लो साहव एजेंट वहादुर राजस्तान का हुक्म अलवर के एजेंट को आया के तुम पहली सितम्वर को राज के कागज जो तुम्हारे पास हैं और राज का असवाव जो तुम्हारे तहत में है वो सव राजा को दो और तुम अलग हो जाओ। सितम्वर की वीसवी को हम अलवर आएँगे, राजा साहव को मसनद पर वैठाएँगे। खलते शाही उन्हे पहनाएँगे।

सितम्वर[2] सितम्वुर्दो आउर्द दाद।

गम्वा २२ अगस्त सन् १८६३ ई०।

अज—गालिव

---

१. वहमन मास के वादल आकाश पर छाये हैं, मेरा सुरापात्र रिक्त है।
२. सितम्वर के मास में अत्याचार समाप्त हुआ और न्याय का युग आरम्भ हुआ।

४७

(८ दिसम्बर १८६३)

आइये जनाब मीर मेहदी साहब देहलवी,

बहुत दिनो मे आए। कहाँ थे? वारे, आपका मिज़ाज खुश है? मीर सरफराज हुसेन साहब अच्छी तरह है? मीरन साहब खुश है?

हस्ती हमारी अपनी फना पर दलील है
याँ तक मिटे के आप हम अपनी कसम हुए

पहले ये समझो के कसम क्या चीज है? कद उसका कितना लम्बा है। हात-पॉव कैसे है, रग कैसा है। जब ये न बता सकोगे तो जानोगे के कसम जिस्मो जिस्मानियात मे से नही। एक ऐतबारे[१] महज़ है। वजूद उसका सिर्फ ताकुल[२] मे है। सीमुर्ग का सा उसका वजूद है। याने कहने को है, देखने को नही। पस शायर कहता है के जब हम आप अपनी कसम हो गए तो गोया इस सूरत मे हमारा होना हमारे न होने की दलील है।

मी[३] खाहम अज खुदा व न मी खाहम अज़ खुदा
दीदन हबीब रा व न दीदन रकीब रा

लफ्फो[४] नश्र मुरत्तब है। मी खाहम अज़ खुदा दीदन हबीब रा। न मी खाहम अज़ खुदा न दीदन रकीब रा। खारो[५] ज़ार व खस्ता[६] व सोगवार[७] मावी तो इसमे मौजूद है मगर बोलचाल टकसाल बाहर है। एक जुमले का

---

१. विश्वास। २. बुद्धि। ३. ईश्वर से मैं चाहता हूँ और नही भी चाहता। मित्र की आकृति देखना चाहता हूँ, शत्रु का मुँह नही देखना चाहना। ४ लिखने का एक ढग, पहले कुछ चीजो का उल्लेख करना और फिर उनके सम्बन्ध में क्रमश: कहा जाए। अन्वय। ५. अपमानित। ६. दरिद्र। ७. दुःखी।

जुमला मुकद्दर छोड दिया है और फिर इस भौडी तरह से; के जिसको अलमाना[1] फ़ीबतनु शायर कहते हैं। ये शेर असातिजए मुसल्लमुल[2] सबूत मे से किसी का नही है। कोई साहब होगे के उन्होने लोगो के हैरान करने के वास्ते ये शेर कह दिया, और किसी उस्ताद का नाम दिया के उनका है।

तज़कीर व तानीस का कोई कायदा मिनजब्त नही के जिस पर हुक्म किया जाए। जो जिसके कानो को लगे, जिसको जिसका दिल कुबूल करे, उस तरह कहे। 'रथ' मेरे नजदीक मुजक्कर है याने 'रथ आया'। लेकिन जमा में क्या करूँगा? नाचार मुअन्नस बोलना पड़ेगा, याने 'रथे आई।' 'खबर' मुअन्नस है बइत्तफाक, मगर 'कागज़े अख़बार', इसको खुद समझ लो के तुम्हारा दिल क्या कुबूल करता है। मै तो मुज़क्कर कहूँगा याने 'अख़बार आया।' 'पीर हुई' या 'हुआ'; ये मन्तिक़[3] अवाम का है। हमें इससे कुछ काम नही। हम कहेगे के 'दोशम्बा' हुआ। 'पीर का दिन हुआ।' निरी 'पीर हुई' या 'पीर हुआ' हम क्यो बोलेगे? 'बुलबुल' मेरे नज़दीक मुअन्नस है, जमा उसकी बुलबुलें, 'तूती बोलता है', 'बुलबुल बोलती है'। भाई, इस अम्र में मै मुफ़्ती[4] व मुज्तहिद[5] बन नही सकता; अपना अन्दिया[6] लिखता हूँ। जो चाहे माने, जो चाहे न माने।

सेशम्बा, ८ दिसम्बर सन् १८६३ ई०।

नजात का तालिब
—गालिब

४८

बरखुरदार कामगार मीर मेहदी देहलवी, उर्दू बाज़ार के मौलवी, साहब[7] लिवाये विलाए मुर्त्तज़वी पर अलमे[8] अब्बास इब्ने अली का साया।

---

१. कविता का अर्थ कवि के मस्तिष्क में। २. प्रामाणिक आचार्य। ३. बोलना। ४. निर्णायक। ५. आविष्कार करने वाला। ६. मनोभाव। ७. हज़रत अली की ध्वजा। ८. अली के पुत्र की ध्वजा की छाया।

राजा साहब के सुलूक का हाल हम पहले ही सुन चुके थे। अलहम्दुलिल्लाह्[1] अला कल्ले हाल। देखिए, अब माविदत[2] कब करते हैं। माफिक अपने वादे के हमको क्योकर तलब करते है? कलकत्ते जाते वक्त फरमा गए है के मैं आकर असद को बुलाऊगा। अलबत्ता अगर वो बुलाएँगे तो मै क्यो कर न जाऊँगा? जाहिरा हमारे-तुम्हारे वास्ते जमानए इन्तहा[3] ए मुसीबत और वक़्त पेश आमदे दौलत है। अब मुझको मीरन साहब की ख़ुशामद करनी पड़ेगी। वो मुकर्रिब[4] बनेगे, अगर मेरी किस्मत लडेगी। तुम मेरी कामयाबी का सामान कर रखना। मीरन साहब को मुझ पर मेहरबान कर रखना। भाई, ये जो मीरन साहब या अमीरन साहब है, हुजूर के बड़े मुसाहिब है। जिस गिरोह मे से जिसको चाहे हुजूर से मलवा दे। फिर्कए शोअरा में से जिसको जो कुछ चाहे दिलवा दे। उनको और मुज्तहिदुल अस्र को मेरी दुआ कहना।

नजात का तालिब

—ग़ालिब

४९

मेरी जान,

वो पारसी-ए कदीम जो होशगो जमशीदो कै ख़ुसरो के अहद में मुरव्विज थी, उसमे खुर, व खाए[5] मजमूम, 'नूरे[6] काहिर' को कहते हैं और चूंके पारसियो की दीदो[7] दानिस्त मे बाद ख़ुदा के आफताब से ज्यादा कोई बुजुर्ग नही है इस वास्ते 'आफताब' को 'ख़ुर' लिखा, और शीद का लफ़्ज बढा दिया। 'शीद' व 'शीन'[8] मकसूर व याए मारूफ बरवजने ईद, 'रोशनी' को कहते

---

१. प्रत्येक स्थिति में ईश्वर की कृपा। २. वापिसी। ३. अत्यधिक विपत्ति। ४. निकटस्थ। ५. 'ख़े' पेश के साथ। ६ सूर्य। ७ देखना और समझना, बुद्धि, समझ। ८. सूर्य मे जो प्रकाश है वह ईश्वर का प्रकाश है।

है। याने ये उस 'नूरे काहिरे ईजदी' की रोशनी है। 'खुर' और "खुरशीद," ये दोनो इस्म आफताब के ठहरे। जब अरब व अजम मिल गए तो अकाबिरे अरब ने, के वो, मम्बए[1] उलूम हुए, वास्ते दफा इल्तबास[2] के 'खुर' मे वाव[3] मादूला बढाकर 'खूर' लिखना शुरू किया। हर[4] आइना मुताखिरीन ने इस कायदे को पसद किया और मजूर किया। और फिलहकीकत ये कायदा बहुत मस्तहसन है। फकीर खुर जहाँ बे इजाफए लफ्ज़े 'शीद' लिखता है, माफिके कानूने उजमा[5] ए अरब व वावे मादूला लिखता है, याने खूर, और जहाँ व इजाफए लफ्जे शीद लिखता है, वहाँ व पैरवी बुजुर्गाने पारसी सरबसर लफ़्ज 'खूर' को बे वाव लिखता है। याने खुरशीद, खुर का काफिया 'दुर' और 'बुर' के साथ जायज और रवा है। खुद मैंने दो-चार जगह बाँधा होगा। वहाँ मै 'बे वाव' क्यो लिखूँ? रहा खूरशीद, चाहो बे वाव लिखो चाहे माउल[6] वाव लिखो। मै बे वाव लिखता हूँ, मगर माउल वाव को गलत नही जानता। और खुर को कभी बे वाव न लिखूँगा। काफिया हो या न हो। याने नज्म मे वस्ते शेर[7] मे आ पड़े या नस्र की इबारत मे वाके हो, 'खूर' लिखूँगा। ये बात भी तुमको मालूम रहे के जिस तरह 'खुर' तर्जुमा 'काहिर'[8] का है उसी तरह 'जम' तर्जुमा 'कादिर[9]' का है के ब इजाफए लफ़्ज 'शीद' इस्मे शह-शाहे वक्त करार पाया है।

मुज्तहिदुल अस्र मीर सरफराज हुसेन को दुआ पहुँचे।

सच कहिए, तुम्हे वहाँ कोई मुज्तहिदुल अस्र न कहता होगा। न कहो, तुमको क्या? मैंने तुमको मान लिया, अब कोई कहे या न कहे। मियाँ बदरुद्दीन से एक मुहर खुदवा दूँगा।

---

१ ज्ञान के उद्भवस्थल। २. अनुकृति। ३. लुप्त वकार। ४. हर प्रकार से। ५. अरब के बडे लोग। ६. वाव सहित। ७. शेर के मध्य मे। ८. कहर करने वाला। ९. प्रभुत्व सम्पन्न।

"जनाब मुज्तहिदुल अस्र सरफराज हुसेन"

बस, तुम ये मुहर खतो पर, महजरो पर, तमस्सुको पर, करनी शुरू करना, सबके सब तुमको मुज्तहिदुल अस्र कहने लगेगे।

हकीम मीर अशरफ़ अली को और उनके फर्जन्द को दुआ पहुँचे।

मीरन साहब को दुआ पहुंचे। भाई मीरन अब वो खस का पर्दा खोल डाला। साफियाँ झज्जर पर लपेटता हूँ। दम बदम भिगोता हूँ, वह लू कहाँ जो पर्दे से लिपट कर साफी को लगे आकर, और पानी को ठडा करे। वो पानी जो मीर मेहदी और तुम और हकीम जी पिया किए हो, अब कहाँ? बरफ[1] पन्द्रह दिन की और बाकी है। आइदा खुदा रज्जाक[2] है।

५०

१७ जनवरी १८६५

कुर्रतुल[3] ऐनेन मीर मेहदी व मीर सरफराज हुसेन मुझसे नाखुश और गिलामन्द होगे, और कहते होगे के देखो हमे खत नही लिखता।

हम भी मुँह मे जबान रखते है।

काश पूछो के माजरा क्या है!

माजरा ये है के तुम्हारा भी तो कोई खत नही आया, मैं जिसका जवाब लिखता। मीरन साहब से तुम्हारी खैरो आफियत पूछनी, और कह देना के मेरी दुआ लिख भेजना। बस अब इतना ही दम बाकी है। कल मीरन साहब आए, पूछा के अलवर से कोई खत आया। फरमाया के इन हफ्ते में कोई खत मैने नही पाया। क्या कहूँ के क्या हाल है! पेश[4] अर्जी अपना ये

१. पेय पदार्थ (शराब)। २. दानी। ३. नेत्रो का प्रकाश। ४. इसके पहले।

शेर पढा करता था—

बस हुजूमे ना उमीदी खाक मे मिल जाएगी
ये जो एक लज्जत हमारी सई[1] बेहासिल में है।

अब इस जमज़मे[2] का भी महल न रहा। याने सई बेहासिल क
लज्ज़त खाक मे उड गई। इन्नालिल्लाह व इन्नाइलिहे राजऊन।

सेशम्बा १८ शाबान, सन् १२८१ हिज़री। मर्गे नागाह का तालिब—

—ग़ालि

१. व्यर्थ प्रयत्न। २. अच्छी आवाज़।

मिर्ज़ा शहाबुद्दीन अहमदख़ां 'साक़िब' के नाम

१

(८ फरवरी १८५८)

भाई,

तुम्हारा ख़त हकीम महमूदख़ाँ साहब के आदमी के हात पहुँचा। ख़ैरो आफियत मालूम हुई। इन्साफ करो। किताब कोई-सी हो उसका पता क्यो कर लग। लूट का माल चोरी चोरी कोने खुतरो में बिक गया। और अगर सड़क पर भी बिका तो मैं कहाँ जो देखूँ? सब्र करो और चुप हो रहो।

वर दिले नफ़्से अन्दहे गेती बसर आरेद
गीरेद के गेती हमा यक सर बसर आमद

आदमी तो आते जाते रहते हैं। खुदा करे यहाँ का हाल सुन लिया करते हो। अगर जीते रहे और मिलना नसीब हुआ तो कहा जाएगा, वर्ना, किस्सा मुख़्तसर, किस्सा तमाम हुआ। लिखते हुए डरता हूँ और वो भी कौन सी ख़ुशी की बात है जो लिखूँ? अपने घर मे और अपने बच्चो को, मेरी और मेरे घर की तरफ से दुआ कह देना, और तुमको भी तुम्हारी उस्तानी दुआ कहती हैं। ज़्यादा ज़्यादा।

दो शबा ८ फरवरी सन् १८५८ ई०।

अज़—ग़ालिब

२

(मार्च १८५८)

भाई शहाबुद्दीनखाँ,

वास्ते खुदा के। ये तुमने और हकीम गुलाम नजफखाँ ने मेरे दीवान का क्या हाल कर दिया है? ये अशार जो तुमने भेजे हैं, खुदा जाने किस वल्दुज्जिना[1] ने दाखिल कर दिए है। दीवान तो छापे का है। मतन मे अगर ये शेर हो तो मेरे हैं, और अगर हाशिये पर हो तो मेरे नही हैं। बिल फर्ज अगर ये शेर मतन में पाए भी जाएँ तो यो समझना के किसी मलऊन[2] जन जलब ने असल कलाम को छील कर ये खुराफात लिख दिए हैं। खुलासा ये के जिस मुफसिद[3] के ये शेर हैं, उसके बाप पर और दादा पर और परदादा पर लानत और वो हफ्ताद[4] पुश्त तक वल्दुलहराम[5]। इसके सिवा और क्या लिखूँ। एक तो लडके, मियाँ गुलाम नजफ, दूसरे तुम; मेरी कमबख्ती बुढापे मे आई के मेरा कलाम तुम्हारे हात पडा। बाद इन सतरो के लिखने के तुम्हारा खत पहुँचा। ये दूसरा हादसा मुझको पहले ही मालूम हो गया था। कजा व कद्र के उमूर मे दम मारने की गुंजाइश नही है। कही जागीर पर जल्द जाने की इजाजत हो जाए ताके सब यकजा बाहम आराम से रहो। अपने कातिब को कह देना के ये खुराफात मतन मे न लिखे। अगर लिख दिए हो तो वो वरक निकलवा डालना और वरक उसके बदले लिखवा कर लगा देना। मुनासिब तो यो है के तुम किसी आदमी के हात वो दीवान जो तुम्हारे कातिब ने नकल किया है, मेरे पास भेज दो; ताके मै उसको एक नजर देखकर फिर तुमको भेज दूँ। ज्यादा ज्यादा।

आज न मेरे पास टिकट है न दाम। माफ रखना। वस्सलाम।

---

१. एक गाली। २. एक गाली। ३. उत्पाती। ४. सात पीढ़ियाँ। ५. एक गाली।

३

(११ अप्रेल १८५८)

भाई,

तुम्हारा खत पहुँचा। कोई मतलब जवाब तलब नही था के मैं उसका जवाब लिखता। फिर सोचा के मबादा तुम आजुर्दा हो। इस वास्ते आज ये रुक्का तुमको लिखता हूँ। मेरा जी तो ये चाहता था के अब जो खत तुम्हे लिखूँ उसके आगाज मे ये लिखूँ के मुबारक हो। तुम्हारे अबो[1] अम माउल[2] खैर अपनी जागीर को रवाना हो गए। इशा अल्लाह् ताला अब के जो खत तुमको लिखूँगा उसका मजमून यही होगा। खातिर जमा रखना, और अगर मेरा खत दो-चार दिन न पहुँचे तो मुझे उसी मजमून के ज़हूर का मुन्तजिर समझना और गिला न करना।

और हाँ साहब, तुम जो खत लिखते हो तो उसमे अहमद सईदखाँ का कुछ जिक्र नही लिखते। लाज़िम है के उसकी खैरो आफियत और उसकी बहन की खैरो आफियत लिखत रहा करो, यहाँ तुम्हारी फूफी और तुम्हारे दोनो भतीजे अच्छी तरह है। वद्दुआ।

यकशबा २१ अप्रेल सन १८५८ ई०।

अज़—ग़ालिब

४

(अगस्त १८६१)

तुम्हारे भाई का खत तुम्हारे पास भेजता हूँ। 'कुल्लियाते उर्दू' जो तुमने खरीदे ह, एक उसमें से चाहो अपने चचा के नज़्र करो, चाहो भाई को तोहफा

---

१ पिता और चाचा। २ सकुशल।

भेजो। मैंने इस वक्त उनके नाम का खत लोहारू को रवाना किया है। बाद इरसाले खत मौलवी सदीदुद्दीनखाँ साहब मेरे हाँ आए। अस्नाए[1] हर्फ़ व हिकायत में मैंने 'शाहीन' की हकीकत पूछी। जवाब दिया के हाँ, अरबी में एक बाजे का नाम शाहीन है। सूरत उसकी पूछी गई, कहा, मुझे मालूम नही, 'सुराह[2]' मे मैंने देखा है। फ़क़त।

तुम जो मौलाना अलाई को खत लिखो ये रुक़्क़ा मलफूफ करो।

—ग़ालिब

५

(२४ दिसम्बर १८६१)

नूरे चश्म शहाबुद्दीनखाँ को दुआ के बाद मालूम हो—ये जो रुक़्क़ा लेकर पहुँचते हैं, इनका नाम हसनअली है, और ये सैयद हैं। दवासाज़ी मे यगाना,[3] रकाबदारी[4] मे यकता। जान मुहम्मद इनका बाप मुलाजिम सरकारे शाही था। अब इनका चचा मीर फतहअली पन्द्रह रुपए महीने का अलवर मे नौकर है। बहरहाल इनसे कहा गया के पाँच रुपए महीना मिलेगा और लोहारू जाना होगा। इन्कार किया के पाँच रुपए में मैं क्या खाऊँगा! यहाँ ज़न[5] व फ़र्ज़न्द को क्या भिजवाऊँगा! जवाब दिया गया के सरकार बड़ी है। अगर काम तुम्हारा पसन्द आएगा तो इज़ाफ़ा[6] हो जाएगा। अब वो कहता है के खैर तवक़्क़ो पर ये कलील[7] मुशाहिरा क़ुबूल करता हूँ। मगर दोनो वक्त रोटी सरकार से पाऊ। बगैर इसके किसी तरह नही जा सकता। सुनो मियाँ, हक़[8] बजानिब[9] इस ग़रीब के है। रोटी मुकर्रर हुए बगैर बात नही बनती।

---

१. उलहना और पूछताछ। २ निरुक्त। ३. कुशल। ४. मिठाई बनाने का काम। ५. पत्नी और पुत्र। ६. वृद्धि। ७ कम वेतन। ८. सचाई। ९. तरफ।

यकीन है तुम रिपोट करोगे तो इस अम्र की मजूरी का हुक्म आ जाएगा। ये किस्सा फैसल हुआ। अब ये कहता है के दोमाहा मुझे पेशगी दो, ता के कुछ कपडा-लत्ता बनाऊ और कुछ घर मे दे जाऊ—राह मे रोटी और सवारी सरकार से पाऊं; मै तो यहाँ भी हक बजानिब सायल[1] के जानता हूं, मगर कुछ कह नही सकता। अपनी राय इस बाब में लिख नही सकता। खैर तुम यही मेरा रुक्का अपने नाम का अलाईमौलाई को भेज दो।

से शम्बा २४ दिसम्बर १८६१ ई०।

—गालिब

६

(१८६२ ई०)

मियाँ,

वो काजी तो मस्खरा, चूतिया है, उनका खत देख लिया, खैर। हाँ, अलाउद्दीनखाँ का खत घटा भर भाँड के तायफे का तमाशा हे। अब तुम कहो उस्ताद मीर जान को क्यो कर भेजोगे ? उनको कहाँ पाओगे ? और अलाउद्दीनखाँ ने हस्बुल[2] हुक्म तुम्हारे चचा को लिखा है। लोहारू की सवारियाँ आई हुई शायद कल या परसो जाए। इसकी फिक्र आज करो। अमीनुउद्दीनखाँ वेचारा अकेला घबराता होगा।

'चकीदन दहेम', 'रमीदन दहेम'—ये गजल अलाउद्दीन को भेज चुका हूँ। तुम अलाउद्दीनखाँ को लिखो के बडी शर्म की बात है के—

हरदम[3] आजुर्दगी ग़ैर सबब रा चे इलाज

---

१. प्रार्थी। २. आदेशानुसार। ३. बार बार क्रुद्ध होने का क्या इलाज है !

इस गज़ल को हाफिज़ की गज़ल समझते हो! वाह-वाह! "गैर सबब" कहाँ की बोली है?

अज़[1] खान्दन कुराने तो कारी चे फायदा

अयाज़न बिल्लाह्। अमीर खुसरो 'कुरान' को के बसुकूने[2] राय कुरेशत व अलिफे ममदूदा है, 'कुरान' बरवज़न 'पुरान' लिखेंगे? ये दोनो गज़ले दो गधो की हैं। शायद एक ने मकते मे हाफिज और एक ने मकते मे खुसरो लिख दिया हो।

—ग़ालिब

७

रुबाई

रुक्के का जवाब क्यो न भेजा तुमने?
साकिब हरकत ये की है बेजा तुमने
हाजी कल्लू को दे के बे वजह् जवाब,
'गालिब' का पका दिया कलेजा तुमने

८

रुबाई

ऐ रोशनी दीदा शहाबुद्दीनखाँ
कटता है बताओ किस तरह से रमज़ाँ
होती है तरावीह मे फुर्सत कब तक?
सुनते हो तरावीह में कितना कुरआँ!

---

१. कुरान के केवल पाठ करने से क्या लाभ। २. 'क' और दीर्घ आकार के साथ।

९

(८ अक्टूबर १८६५)

मियाँ मिर्जा शहाबुद्दीनख़ाँ,

अच्छी तरह रहो। गाजियाबाद का हाल शम्शादअली से सुना होगा। हफ्ते के दिन, दो-तीन दिन घड़ी दिन चढे, अहबाब को रुख़सत करके राही हुआ। कस्द ये था के पिलखवे रहूँ। वहाँ काफिले की गुंजाइश न पाई। हापुड को रवाना हुआ। दोनो बरखुरदार घोडो पर सवार पहले चल दिए। चार घड़ी दिन रहे मै हापुड की सराय मे पहुँचा। दोनो भाइयो को बैठे हुए और घोड़ों को टहलते हुए पाया। घडी भर दिन रहे काफिला आया। मैंने छटाँक भर घी दाग किया। दो शामी कबाब उसमे डाल दिए, रात हो गई थी। शराब पी ली, कबाब खाए, लडको ने अरहर की खिचड़ी पकवाई। खूब घी डालकर आप भी खाई और सब आदमियो को भी खिलाई। दिन के वास्ते सादा सालन पकवाया, तरकारी न डलवाई। बारे, आज तक दोनो भाइयो मे मुआफिकत[1] है। आपस की सलाह व मशविरत से काम करते हैं। इतनी बात ज़ायद है के हुसेनअली मजिल पर उतर कर पापड और मिठाई के खिलौने ख़रीद लाता है। दोनो भाई मिलकर खा लेते हैं। आज मैंने तुम्हारे वालिद की नसीहत पर अमल किया। चार बजे, पाँच के अमल मे हापुड़ से चल दिया। सूरज निकले बाबूगढ की सराय मे आ पहुँचा। चारपाई बिछाई, उस पर बिछोना बिछाकर हुक्का पी रहा हूँ और ये ख़त लिख रहा हूँ। दोनो घोडे कोतल आ गए। दोनों लडके रत मे सवार होकर आते हैं। अब वो आए और खाना खा लिया और चले। तुम अपनी उस्तानी के पास जाकर ये रुक्का सरासर पढ़ कर सुना देना। शम्शाद को किताब के मुकाबिले और तसहीह की ताकीद कर देना।

---

१. सौहार्द।

मिर्ज़ा हातिमअली 'मेहर' के नाम

१

बहुत सही, गमे गेती[1] शराब कम क्या है !
गुलाम[2] साकी ए कौसर हूँ, मुझको ग़म क्या है !
सुख़न में ख़ाम ए 'ग़ालिब' की आतिश[3] अफसानी
यकीन है हमको भी लेकिन अब उसमे दम क्या है !

इलाकए मुहब्बत[4] अज़ली को बरहक मान कर और पैवदे गुलामी जनाब मुर्त्तज़ा अली को सच जानकर एक बात और कहता हूँ के—बीनाई[5] अगर चे सब को अज़ीज़ है, मगर शुनवाई भी तो आख़िर एक चीज़ है। माना के रू शनासी उसके इज़ारे में आई है, ये भी दलीले आशनाई है। क्या फ़र्ज़ है के जब तक दीद वादीद[6] न हो ले अपने को बेगानए यक दिगर समझें। अलबत्ता हम-तुम दोस्ते देरीना हैं, अगर समझें। सलाम के जवाब में खत बहुत बड़ा अहसान है। ख़ुदा करे, ख़त जिसमे मैंने आपको सलाम लिखा था, आपकी नज़र से गुज़र गया हो। अहयानन अगर न देखा हो तो अब मिर्ज़ा तफ़्ता से लेकर पढ लीजिएगा, और खत के लिखने के अहसान को उस खत के पढ लेने से दोबाला[7] कीजिएगा।

हाय मेजर जान जाकोब, क्या जवान मारा गया है ! सच, उसका ये शेवा था के उर्दू की फिक्र को माना आता और फारसी ज़बान में शेर कहने की रग़बत दिलवाता। बन्दा····ये भी उन्हींमें है के जिनका मैं मातमी हूँ।

---

१. सांसारिक दुख। २. हज़रत अली का दास। ३. अग्नि वर्षी। ४. स्थायी प्रेम। ५. दृष्टि। ६. साक्षात्कार। ७ अधिक।

हज़ारहा दोस्त मर गए। किसको याद करूँ और किससे फ़रियाद करूँ ? जीऊँ तो कोई ग़मख़ार नही, मरूँ तो कोई अज़ादार[1] नहीं।

गजले आपकी देखी। सुभान अल्लाह्, चश्मे बद्दूर, उर्दू की राह के तो सालिक हो, गोया इस ज़बान के मालिक हो। फारसी भी ख़ूबी में कम नहीं, मश्क शर्त है। अगर कहे जाओगे, लुत्फ पाओगे। मेरा तो गोया बकौले "तालिब" आमुली अब ये हाल है—

लब[2] अज गुफ्तन चुनाँ बस्तम के गोई
दहन बर चहरा ज़ख्मे बूद व शुद

जब आपने बगैर खत के भेजे ख़त मुझको लिखा हो, तो क्योकर मुझको अपने खत के जवाब की तमन्ना न हो। पहले तो अपना हाल लिखिए के मैंने सुना था, के आप कही के सदर अमीन हैं। फिर आप अकबराबाद मे क्यो ख़ानानशीन हैं ? इस हगामे में आपकी सोहबत हुक्काम से कैसी रही ?

राजा बलवानसिंघ का भी हाल लिखना ज़रूर है के कहाँ हैं और वो दो हज़ार महीना जो उनको सरकार अगरेज़ी से मिलता था, अब भी मिलता है या नही ?

हाय, लखनऊ ! कुछ नही खुलता के उस बहारिस्तान पर क्या गुज़री ? अमवाल क्या हुए ? अगखास कहाँ गए ? खानदाने शुजाउद्दौला के ज़न व मर्द का अजाम क्या हुआ ? किल्ला व कावा हज़रत मुज्तहिदुल अस्र की सर गुज़िश्त क्या है ? गुमान करता हूँ के बनिस्बत मेरे तुमको कुछ ज्यादा आगही होगी। उम्मीदवार हूँ के जो आप पर मालूम है, वो मुझ पर मझूल न रहे। पता मस्कन मुबारक का कश्मीरी बाज़ार से ज्यादा नही मालूम हुआ। ज़ाहिरा

१. शोक करने वाला। २. मैंने अपना मुँह बन्द कर लिया है। आकृति पर जो घाव लगे थे वे अच्छे हो गए।

इसी कद्र काफी होगा, वर्ना आप ज़्यादा लिखते। मिर्जा तफ़्ता को दुआ कहिएगा और उनके उस खत के पहुँचने की इत्तिला दीजिएगा, जिसमे आपके खत की उन्होने नवीद लिखी थी। वस्सलाम।

२

(५ मार्च १८५८)

खुद[1] शिकवा दलीले रफए आजाद वसस्त
आयद व ज़बान हर आँचे अज दिल वनवद

बन्दापरवर, फकीर शिकवे से बुरा नही मानता, मगर शिकवे के फन को सिवाय मेरे कोई नही जानता। शिकवे की खूबी ये है के राहे रास्त से मुँह न मोडे और माहजा दूसरे के वास्ते जवाब की गुंजाइश न छोडे। क्या मै ये नही कह सकता के मुझको आपका फ़र्रुखाबाद जाना मालूम हो गया था, इस वास्ते आपको खत नही लिखा था ?

क्या मै ये कह नही सकता के मैने इस अर्से मे कई खत भिजवाए और वो उल्टे फिर आए ? आप शिकवा काहे को करते है ? अपना गुनाह मेरे जिम्मे धरते है। न जाते वक्त लिखा के मै कहाँ जाता हूँ, न वहाँ जाकर लिखा के मै कहाँ रहता हूँ। कल आपका मेहरबानी नामा आया। आज मैने उसका जवाब भिजवाया। कहिए अपने दावे मे सादिक हूँ या नही ? बस दर्दमन्दो को ज्यादा सताना अच्छा नही। मिर्ज़ा तफ्ता से आप फक्त उनके खत न लिखने के सबब सरगिर्रां[2] है। मै ये भी नही जानता के वो इन दिनो मे कहाँ है। आज, तवक्कलतोअल[3] अल्लाह, सिकन्दराबाद खत भेजता हूँ। देखूँ, क्या देखता हूँ।

---

१. स्वयं पछतावा करना दुःख को दूर करने का प्रमाण है। जो कुछ जिह्वा से निकलता है वह मेरे हृदय की वाणी है। २. अप्रसन्न। ३. ईश्वर के विश्वास पर।

३

(१८५८ ई०)

साहब मेरे, ओहद ए वकालत मुबारक हो। मौक्किलो[1] से काम लिया कीजिए। परियो को तस्खीर[2] किया कीजिए। मसनवी पहुँची। झूट बोलना मेरा शियार नही, क्या खूब बोलचाल है! अन्दाज़ अच्छा, बयान अच्छा, रोजमर्रा साफ़। हब्शियो का इस्तगासा, क्या कहूँ, क्या मज़ा दे रहा है—

बिगम साहब फसौडे मे फँसाया
छुटा बेगम ने बेहुरमत कराया

इस मसनवी ने अगली मसनवियो को तकवीमे[3] पारीना कर दिया।

'बयाने बख्शायश' हम गुनहगारो तक क्यो पहुँचेगा? मगर हाँ इस राह से—

के मुस्तहक्के[4] करामत गुनहगारानन्द।

बख्शिश का मुतवक्के हूँ। मैं अभी तक ये भी नही समझा के वो नुस्खा नज्म है या नस्र है, और मज़मून उसका क्या है। मिर्ज़ा यूसुफ़ अली खाँ आठ-आठ, दस-दस महीने से मय अयालो अतफाल इसी शहर में मुकीम है। एक हिन्दू अमीर के घर पर मकतब का सा तौर कर लिया है, मेरे मस्कन के पास एक मकान किराए को ले लिया है। उसमें रहते हैं। अगर उनको ख़त भेजो तो मेरे मकान का पता लिख देना और ये भी आपको मालूम रहे के मेरे ख़त के सरनामे पर मुहल्ले का नाम लिखना ज़रूर नही। शहर का नाम और मेरा नाम, किस्सा तमाम। हाँ यार 'अज़ीज़' के ख़त पर मेरे

१. लाक्षणिक रूप में जिन्द। २. वश में लाना। ३. पुराना पचांग। ४. चमत्कार अथवा कृपा के अधिकारी गुनहगार हैं।

'मकान के करीब' का पता ज़रूर है। दो रोज से 'शोआए मेहर' को देख रहे हैं। अक्सर तुम्हारा ज़िक्रे खैर रहता है। वो तो अब हर वक़्त यही तशरीफ़ रखते हैं। रात को तो पहर—छ घड़ी की निशिस्त[1] रोज रहती है। अभी यही से उठकर मकतब[2] को गए है। तुमको सलाम कहते है और 'शो आए मेहर' के मद्दाह[3] और 'बयाने बख्शायश' के मुश्ताक है।

४

भाई साहब,

तुम्हारा खत और कसीदा पहुंचा। असल ख़त तुम्हारा लिफाफे में लपेट कर मिर्ज़ा तफ्ता को भेज दिया, ताके हाल उनको मुफस्सिल मालूम हो जाए। बाद इस रिपोट के तुमको तहनियत देता हूँ। परवर दिगार व तसद्दुक[4] अईमए[5] अतहार ये पेश आमद इकबाल तुमको मुबारक करे और मन्सब हाए खतीर[6] और मदारिज अज़ीम को पहुँचावे। वाकई ये के तुमने बडी जुरत की। फिल हकीकत अपनी जान पर खेले थे। बात पैदा की, मगर अपनी मर्दी व मर्दानगी से। दौलत का हात आना मय नेकनामी, इससे बेहतर दुनिया मे कोई बात नही। अब यकीन है के खिदमते मुन्सफी मिले और जल्द तरक्की करो, ऐसा के साले आइन्दा तक चश्मेबद्दूर सदरुस्सुदूर[7] हो जाओ।

अल्लाह, अल्लाह, एक वो जमाना था के 'मुगल' ने तुम्हारा जिक्र मुझसे किया था और वोअशार जो तुमने उसके हुस्न के वस्फ मे लिखे थे, तुम्हारे हात के लिखे हुए मुझको दिखाए थे। अब एक ये जमाना है के तरफैन[8] से नामा[9] व पयाम आते जाते हैं। इशा अल्लाहो ताला वो दिन भी आ जाएगा

---

१. बैठक। २. पाठशाला। ३. प्रशसक। ४. उनके कारण। ५. पवित्र इमाम। ६ अगणित। ७. धर्माध्यक्ष, सदर का सदर। ८. दोनो ओर से। ९. पत्र और सदेश।

के हम-तुम बाहम बैठे और बाते करे। कलम बेकार हो जाए। जबान बर-सरे गुफ़्तार आए। इशा अल्ला खॉ का भी कसीदा मैंने देखा है। तुमने बहुत बढ कर लिखा है और अच्छा समॉ बाँधा है। जबान पाकीज़ा, मजामीन अछूते, मानी नाज़ुक, मतालिब[1] का बयान दिलनशीन, ज्यादा क्या लिखूँ?

५

(सितंबर १८५८)

बन्दा परवर,

आपका मेहरबानी नामा आया। आपकी मेहर अगेज और मुहब्बतख़ेज़ बातो ने गमे बेकसी[2] भुलाया। कहाँ ध्यान लड़ा है, कहाँ से 'दस्तम्बू' की मुनासिबत के वास्ते 'यदे बैजा[3]' ढूँढ निकाला है! आफरी सद हज़ार आफरी! तीसरा मिसरा अगर यो हो तो फकीर के नजदीक बहुत मुनासिब है—

नाम खुद साले ख़ीश दाद नगॉ

मिर्जा तफ़्ता का खत हातरस से आया, उनके लड़के-बाले अच्छे है। आप घबराएँ नहीं। वो आए के आए है। अगर तुम्हे बगैर उनके आराम नही, तो उनको बगैर तुम्हारे चैन कहाँ? साहबे वन्दा इस्ना अशरी[4] हूँ। हर मतलब के ख़ात्मे पर बारह का हिन्सा करता हूँ। खुदा करे मेरा भी ख़ात्मा इसी अक़ीदे पर हो। हम तुम एक आका के गुलाम है, तुम जो मुझसे मुहब्बत करोगे, या मेरी गम-गुसारी मे मेहनत करोगे, क्या तुमको गैर जानूँ, जो तुम्हारा इहसान मानूँ? तुम सरापा[5] मेहरो वफ़ा हो; वल्लाह, इस्मे मुसम्मा[6] हो।

---

१. अर्थ। २. विवशता। ३. हजरत मूसा का एक चमत्कार यह था कि जब वे हाथ खोलते थे तो हाथ से प्रकाश निकलता था। इसी चमत्कार को 'यदे बैजा' कहते है। 'दस्तम्बू' के 'दस्त' की समता के लिए पुस्तक का नाम रखा गया 'यदे बैजा'। ४. शिया। ५. नख से शिख तक प्रेम मय। ६. जैसा नाम वैसा गुण।

मुवालिगा इस किताब की तसही मे इस वास्ते करता हूँ के इबारत का ढग नया है, सही का दुरुस्त पढना बडी बात है, अगर गलत हो जाए तो फिर वो इबारत निरी खुराफात है। बारे, बसबवे इलतफात भाई मुंशी नबी बख्श साहब के सेहते अल्फाज से खातिर जमा है। मुतवक्के हूँ के वो तकलीफ सहे, और खत्मे किताब तक मुतवज्जह रहे। मुन्शी शीवनरायन साहब ने कापी मेरे देखने को भेजी थी, सब तरह मेरे पसन्द आई, चुनाचे उनको लिख भेजा है—अगर हो सके तो स्याही जरा और भी रगत की अच्छी हो।

हजरत, चार जिल्दे यहाँ के हुक्काम को दूँगा और दो जिल्दें विलायत को भेजूँगा। अल्लाह् अल्लाह्। क्या गफलत है, और क्या ऐतमाद है जिन्दगी पर। बहरहाल ये हवस थी और शायद अब भी हो के इन छ जिल्दो की कुछ तज्जी[1] और आरायश की जावे। आप और भाई साहब और उनका फ़र्जन्दे रशीद मुन्शी अब्दुल लतीफ और मुन्शी शीवनरायन ये चारो साहब फ़राहम हो, और ब इजलासे कौन्सिल ये अम्र तजवीज किया जावे के क्या किया जावे। माहजा दो-दो रुपए किताब से ज्यादा का मकदूर भी नही। हाँ, ये मुमकिन है के चार जिल्दें छ रुपयो मे और दो जिल्दे छ रुपयो मे तैयार हो। फिर सोचता हूँ या रब, आरायश की गुंजाइश कहाँ? लाचार, चार किताबो की जिल्द डेढ-डेढ रुपए और दो किताबो की जिल्द तीन-तीन रुपए की बनाई जाए। किस्सा मुख्तसर, कुछ किया जाए या यही कह दिया जाए के तेगे राय कौन्सिल में मकबूल और सिर्फ जिल्दो की तैयारी मजूर हुई। बारह रुपए भेज दे।

मतालिब व मकासिद तमाम हुए, और हम तुम ब जबाने कलम नाहम दिगर हम कलाम हुए।

---

1. सजावट।

६

(२० सितम्बर १८५८)

भाई साहब,

अज़ रू ए तहरीर मिर्जा तफ़्ता आपका छ किताबो की तब्ज़ी की तरफ मुतवज्जह होना मालूम हुआ। फिर भाई मुंशी नबी बख्श साहब ने दो बार लिखा के मै ब इजमाल लिखता हूँ, मुफस्सिल मिर्जा हातिमअली साहब ने लिखा होगा। या रब, उनके दो खत आ गए; मिर्जा साहब ने अगर लिखा होता तो उनका खत क्यो न आता? अपने हुस्ने ऐतक़ाद से यो समझा के न लिखना बमुक़्तजाए[1] यकदिली है। जब अपना काम समझ ले, तो, मुझको लिखना क्या जरूर है? मगर इसको क्या करूँ के जवाब तलब बातो का जवाब नही। मतवए अखबारे 'आफ़तावे आलम ताब' मे यकुम सितम्बर सन् १८५८ हाल से हकीम अहसनुल्लाखाँ का नाम लिखवा देना और दो नम्बरो का एक बार भिजवा देना और आइन्दा हर हफ्ते उसके इरसाल का तौर ठहरा देना। क्यो साहब, ये अम्र ऐसा क्या दुश्वार था के आपने न किया? और अगर दुश्वार था तो उसकी इत्तिला देनी क्या दुश्वार थी? अभी शिकायत नही करता, पूछता हूँ के आया ये उमूर मुक्तज़ी शिकायत है या नही! मिर्जा तफ़्ता के एक खत मे ये किस्सा लिख चुका हूँ। क्या उन्होने भी वो खत तुमको नही पढाया! हरचन्द अक्ल दौडाई, कोई दिरग की वजह ख़याल मे नही आई। अब हुसूले मुद्दआ से कते नजर मैं ये सोच रहा हूँ के देखूँ छ महीने बाद, बरस दिन बाद, अगर मिर्ज़ा साहब खत लिखते है तो इस अम्रे खास का जवाब क्या लिखते है!

---

१. बन्धुता के कारण।

मै भी शायर हूँ। अगर कोई मजमून होता, तो मेरे भी खयाल मे आ जाता। कोई उज्र ऐसा मेरे जहन मे नही आता के काबिल समात के हो। मैं भी तो देखूँ तुम क्या लिखते हो!

७

(२१ सितम्बर १८५८)

मरा ब[1] सादा दिले हाए मन तुआँ बख्शीद
खता नमूदा अमो चश्मे आफरी दारम

कल दोशम्बे का दिन, २० सितम्बर की थी। सुबह को मैंने आपको शिकायत नामा लिखा और बैरंग डाक मे भेज दिया। दोपहर को डाक का हरकारा आया। तुम्हारा खत और एक मिर्जा तफ्ता का खत लाया। मालूम हुआ के जिस खत का जवाब मैं आप से माँगता हूँ वो नही पहुँचा। कुछ शिकवे से शर्मिदा और कुछ खत के न पहुँचने से हैरत हुई। दोपहर ढले मिर्जा तफ्ता के खत का जवाब लिखकर टिकट निकालने लगा, बक्स मे से वो तुम्हारे नाम का खत निकल आया। अब मैं समझा के खत लिख कर भूल गया हूँ, और डाक में नही भेजा। अपने निसयान[2] को लानत की और चुप हो रहा। मुतवक्के हूँ के मेरा कुसूर माफ हो। बाद चाहने अफ्‌ए जुर्म के आपके [illegible] के खत का जवाब लिखता हूँ। सुभान अल्लाह, जिल्दों की आराइश के बाब में क्या अच्छी फिक्र की है। मेरे दिल मे भी ऐसी ही ऐसी बातें थीं। यानि है के सत[3] ए शाहवार हो जाएँगी। सहार[4] मुहरा अगर हो जाएगा तो हर्फ खूब चमक जाएँगे। इसका खयाल उन चार जिल्दों मे भी रहे, [illegible]

---

१. मेरी भूलों को क्षमा कर, मैं [illegible] हूँ, किन्तु [illegible] हूँ।
२. विस्मरण। ३. [illegible]। ४. [illegible] से कागज को घोटने का [illegible]।

की हुण्डवी पहुँचती है। रुपया वसूल कर मुझको इत्तिला दीजिएगा। वर्ना मैं मशविश रहूगा।

हजरत, यहा दो खबरे मशहूर है। इनके बाब मे आप से तस्दीक चाहता हूँ। एक तो ये के लोग कहते हैं आगरे मे इश्तेहार जारी हो गया है और ढँढोरा पिट गया है के कम्पनी का ठेका टूट गया और बादशाही अमल हिन्दुस्तान मे हो गया। दूसरी खबर ये है के जनाब अडमिन्स्टन साहब बहादुर, गवर्मेन्ट कलकत्ता के चीफ सेक्रेतर, अकबराबाद के लेफ्टिनेट गवर्नर हो गए। खबरे दोनो अच्छी है, खुदा करे सच हो और सच होना इनका आपके लिखने पर मुन्हसिर है।

हाँ साहब, एक बात और है और वो महले गौर है। मैंने हजरत मलिकए मुअज्जिमए इग्लिस्तान की मदह मे एक कसीदा इन दिनो मे लिखा है— "तहनियते फतहे हिन्द और अमलदारि ए शाही।" साठ बैत हैं। मजूर ये था के किताब के साथ कसीदा एक और कागजे मजहब पर लिखकर भेजूँ। फिर ये खयाल मे आया के दस सतर के मिस्तर पर किताब लिखी गई है, याने छापा हुआ है। अगर ये छ सफे याने तीन वरक और छपकर उस किताब के आगाज मे शामिले जिल्द हो जाएँ तो बात अच्छी है। आप और मुशी नबीबख्श साहब और मिर्जा तफ्ता मुशी शीवनरायन साहब से कहकर इसका तौर दुरुस्त करे और फिर मुझको इत्तिला दे तो मैं मसविदा आपके पास भेज दूँ। जब किताब छप चुके तो ये छप जाए। दो बातें हैं—

एक तो ये के छपे बाद किताब के, और लगाया जाए पहले किताब से। दूसरे ये के इसकी स्याह कलम की लौह अलग हो और पहले नफे पर जिस तरह किताब का नाम छापते हैं, इस तरह ये भी छापा जाए के "कसीदा दर मदहे जनाब मलिकए इग्लिस्तान खल्दुल्लाहु[1] मुल्क हा।" मेरा नाम कुछ जरूर नही; किताब के पहले नफे पर तो होगा।

---

१. ईश्वर उनके देश को सकुशल रखे।

हुण्डवी की रसीद और इस मतलबे खास का जवाब वा सवाब यानें नवीदे क़ुबूल जल्द लिखिए।

८

(२९ सितम्बर १८५८)

भाई साहब, खुदा तुमको दौलत व इकबाल रोज अफज़ूँ अता करे और हम तुम एक जगह रहा करे। खुदा करे कसीदे के छापे की मजूरी और हुण्डवी की रसीद आए। गोया सफर[1] के महीने मे ईद आए। हुण्डवी का रुपया जब चाहो तब मँगवाओ और किताबो की लौहे और जिल्दे माफिक अपनी राय के बनवा लो।

अब आप दो वरके का डाक में भेजना मौकूफ रखें और किताबो की दुरुस्ती पर हिम्मत मसरूफ़ रखे। कसीदे के मसविदे का वरक़ मिर्जा तफ़्ता के खत मे पहुँच गया होगा। आपने और मिर्जा तफ्ता ने और भाई मुंशी नबी बख्श साहब ने क़सीदे को देखा होगा। कसीदे का शामिले किताब होना बहुत जरूर है, पर देखा चाहिए साहबे मतब को क्या मजूर है। अगर वो कागज़ की कीमत का उज्र करेगे, तो हम पान सात रुपए से और भी उनका भरना भरेगे।

जनाब एडमिन्स्टन साहब बहादुर से मैं सूरत आशना नही। कभी मैंने उनको देखा नही। खतो की मेरी उनकी मुलाकात है और नामा व पयाम की यो बात है के जब कोई नवाब गवर्नर जनरल बहादुर नए आते है तो मेरी तरफ से एक कसीदा बतरीके नज्र जाता है। वे[2]—जरिए जनाब साहब बहादुर एजेन्ट देहली और नवाब लेफ्टेंट गवर्नर बहादुर आगरा भिजवाता हूँ और साहब सेक्रेटर बहादुर गवर्मेन्ट या गत

१. सफ़र के महीने को अशुभ माना जाता है। २. सीधा।

उसकी रसीद मे वसबीले डाक पाता हूँ। जब जनाब लार्ड केनिंग वहादुर ने कुर्सी गवर्नरी पर इजलास फर्माया तो मैने माफिक़ दस्तूर के कसीदा डाक मे भिजवाया । अेडमिन्स्टन साहब वहादुर चीफ सेक्रेतर का जो मुझको खत आया तो उन्होने बावजूद अदम साबिका मारिफत मेरा अलकाब बढ़ाया। कव्ल अर्ज़ी 'खान साहब विसियार, मेहरबान दोस्तान' मेरा अलकाब वढ़ाया । कव्ल अजी 'खान साहब विसियार,[1] मेहरवान, दोस्तान' मेरा अलकाव था। इस क़द्रशनास ने अज़राहे कद्र अफजाई 'खान साहब मुशफिफक विसियार मेहरवाने मुखलिसान, लिखा। अब फ़रामाइए उनको क्यो कर अपना मोहसिन और मुरव्वी[2] न जानू ! क्या काफिर हूँ जो अेहसान न मानू ?

वरखुरदार मिर्जा तफ़्ता को दुआ कहता हूँ । भाई अव मै इसका मुन्तजिर रहता हूँ के तुम और मिर्ज़ा साहव मुझको लिखो के लो साहव, 'दस्तम्बू- का छापा तमाम किया गया और कसीदा छाप कर इब्तदा मे लगा दिया गया । माद्दए तारीख़ मे क्या वुराई है, जो तुम्हारे जी मे ये वात आई है के मुझसे वारवार पूछते हो ? माद्दा अच्छा है। कता लिख लो और खातमए किताव पर लगा दो । एक कता मिर्ज़ा साहव का, एक कता तुम्हारा ये दोनो कते रहे। और अगर वहाँ कोई और साहव शायर हो, तो वो भी कहे। इस इवारत से ये न समझना के रु ए सुखन सारी ख़ुदाई की तरफ है, वल्के खास ये इशारा भाई की तरफ है। मौलाना हकीर को तवज्जह इस वात में चाहिए और उनका नाम भी इस किताव मे चाहिए।

इस खत को लिख कर वन्द कर चुका था के डाक का हरकारा मेरे मुशफिक मुशी शीवनरायन साहव का खत लाया। वारे, कसीदे का मसविदा

---

१. अधिक।

पहुँच गया और मुंशी साहब ने उसका छापना कुबूल किया। ये तशवीश भी रफा हो गई। आप उनसे मेरा सलाम कहिएगा और ये कहिएगा—

शुक्र[1] राफत हाए तू चन्दाँ के राफत हाए तू

और ये उनको इत्तिला दीजिएगा के अखबार का लिफाफा हर्गिज़ मुझको नही पहुँचा, वर्ना क्या इमकान था के मै उसकी रसीद न लिखता ?

९

भाई साहब,

आपके खाम ए मिश्कबार की सरीर[2] ने किताबो की लौहे तिलाई का आवाजा[3] यहाँ तक पहुचाया, बल्के मुझको उनकी लौहो का हर खते तिलाई मानिन्दे शोआए[4] आफताब नजर आया। क्या पूछना है, और क्या कहना ? मुझको तो बमूजिब इस मिसरे के—

खामोशी[5] अज़ सनाए तस्त हद्दे सनाए तस्त

दिल मे खुश होकर चुप रहना है। हजरत, मदह को एक मौका जरूर है। मुझको आपके हुक्म का बजा लाना मजूर है। इस नज्म के पहुँचने के बाद जब कोई उनका इनायत नामा आएगा तो बदा दरगाहे मदह गुस्तरी का जौहर दिखाएगा। उस नज्म में आपका जिक्रे खैर भी आ जाएगा। अब ये तो फरमाइए के मुद्दते इन्तजार कब अजाम पाएगी और किताबो की रवानगी की खबर मुझको कब आएगी ? आप की फर्त्त[6] तवज्जह का सब तरह यकीन है। सियाह कलम की पाँचो लौहे भी अगर बन गई हो तो कुछ अजब नही है। जिल्दो का बनाना अलबत्ता छापे के अेहतेमाम पर मौकूफ है। मालूम तो होता

---

१. कस्तूरी वर्षा। २ ध्वनि। ३. प्रसिद्धि। ४ सूर्य-किरण। ५ आपकी विशेषताओ की प्रशंसा करने में असमर्थ हूँ। ६. अधिक ध्यान।

है भाई नबीबख्श साहब और हमारे शफीक मुंशी शीवनरायन साहब की हिम्मत उसके जल्द अन्जाम होने पर मसरूफ[1] है।

या रब इसी अक्तूबर के महीने मे ये काम अन्जाम पा जाए और चालीस जिल्दो का पुश्तारा[2] मेरे पास आ जाए।

मिर्जा तफ्ता को क्या दूँ और क्या लिखूँ ? मगर दुआ दूँ और दुआ लिखूँ। साहब अब ढील न करो। काम मे ताजील[3] करो।

अँ ज[4] फुर्सत बेखबर दर हर चे वशी जूद बाश।

ख़ुदा करे नस्र की तहरीर अजाम पा गई हो और कसीदे छापने की नौबत आ गई हो। कसीदे का नस्र से पहले लगाना अज राहे इकराम[5] व इजाज है, वर्ना नस्र मे और सनत,[6] और नज्म का और अन्दाज है। ये उसका दीवाचा क्यो हो ? बल्के सूरत इन दोनो के इजमा की यो हो के सरिश्तए[7] आमेजिश तोड दिया जाए और कसीदे के और दस्तम्बू के बीच मे एक वरक सादा छोड दिया जाए। राय उमीदसिंघ का कोई खत अगर इन्दौर से आया हो तो मुझको भी आगही दो। चाहो तुम्हीं इब्तिदा करो और एक खत उनको लिखो और उसका परदाज[8] इस बात पर रखो के अब वो किताबे तैयार होने को आई हैं। आपकी ख़िदमत मे कहाँ भेजी जाएँ और क्या पता लिखा जाए। ये खत जवाब तलब हो जाएगा और उनको लिखना पडेगा।

१०

मिर्जा साहब,

मैंने वो अन्दाजे तहरीर ईजाद किया है के गुरासिले को मुकालिमा बना दिया है। हजार कोस से ब ज़बाने कलम बाते किया करो। हिज्र[9] में

---

१. व्यस्त। २. बडल। ३. शीघ्रता। ४. कब तक असावधान रहेगा, जो कुछ करना है शीघ्र कर। ५. प्रतिष्ठा। ६. अलकरण। ७ सम्बन्ध। ८. विचार। ९. वियोग।

विसाल के मजे लिया करो। क्या तुमने मुझसे बात करने की कसम खाई है? इतना तो कहो के ये क्या बात तुम्हारे जी मे आई है? बरसो हो गए के तुम्हारा खत नही आया; न अपनी खैरो आफियत लिखी, न किताबो का ब्यौरा भिजवाया। हाँ, मिर्ज़ा तफ़्ता ने हातरस से ये खबर दी है के पाँच वरक पाँच किताबो के आगाज़ के उनको दे आया हूँ और उन्होने सियाह कलम की लौहो की तैयारी की है। ये तो बहुत दिन हुए जो तुमने खबर दी है के दो किताबो की तिलाई लौह मुरत्तब हो गई है। फिर अब उन दो किताबो की जिल्दे बन जाने की क्या खबर है? और इन पाँच किताबो के तैयार होने में दिरग किस कदर है? मुहतमिमे मतबा का खत परसो आया था, वो लिखते हैं के तुम्हारी चालीस किताबे बाद मिन्हाई लेने सात जिल्दो के, इसी हफ़्ते मे तुम्हारे पास पहुँच जाएँगी। अब हज़रत इर्शाद करे के ये सात जिल्दे कब आएँगी! हरचन्द कारीगरो के देर लगाने से तुम भी मजबूर हो। मगर ऐसा कुछ लिखो के आँखो की निगरानी और दिल की परेशानी दूर हो। खुदा करे, उन तैतीस जिल्दो के साथ, या दो तीन रोज़ आगे पीछे ये सात जिल्दे आपकी इनायती भी आए, ता खासो आम को जा-बजा भेजी जाएँ।

मेरा कलाम मेरे पास कभी कुछ नही रहा। ज़ियाउद्दीनखाँ और हुसेन मिर्ज़ा जमा कर लेते थे। जो मैंने कहा उन्होने लिख लिया। उन दोनो के घर लुट गए। हजारो रुपए के किताबखाने बरबाद हुए। अब मैं अपने कलाम को देखने को तरसता हूँ। कई दिन हुए के एक फ़क़ीर, के वो खुश आवाज़ भी है और जमजमा[1] परदाज भी है, एक गज़ल मेरी कही से लिखवा लाया, उसने वो कागज़ जो मुझको दिखाया, यक़ीन समझना के मुझको रोना आया। गज़ल तुमको भेजता हूँ और सिले में उसके इस खत का जवाब चाहता हूँ।

---

१. मधुर कण्ठ वाला।

ग़ज़ल

दर्द मिन्नत[1] कश दवा न हुआ
मै न अच्छा हुआ, बुरा न हुआ
जमा करते हो क्यो रकीबो को !
इक तमाशा हुआ गिला न हुआ
रहजनी[2] है के दिलसितानी[3] है !
लेके दिल दिलसिताँ[4] रवाना हुआ
है खबर गर्म उनके आने की
आज ही घर मे बोरिया न हुआ !
ज़ख्म गर दब गया, लहू न थमा
काम गर रुक गया, रवा न हुआ
कितने शीरी है तेरे लब के रकीब
गालियाँ खा के वेमज़ा न हुआ
क्या वो नमरूद[5] की खुदाई थी !
वन्दगी मे मेरा भला न हुआ !
जान दी, दी हुई उसी की थी
हक तो यो है के हक अदा न हुआ
कुछ तो पढिए के लोग कहते है—
आज 'गालिब' गज़ल सरा न हुआ

---

१. मेरी वेदना में कोई दवा काम न आई। २. चोरी। ३. दिल चुराना। ४. दिल चुराने वाला। ५. नमरूद मिस्र का एक बादशाह, उसने अपने को ईश्वर बताया था।

११

भाई साहब,

मतवे मे से सादा किताबें यकीन है के आजकल भेजी जाएँ और पसोपेश सात जिल्दे आपकी बनवाई हुई भी आएँ। बिलफैल एक और उकदा[१] सरिश्तए खयाल मे पड़ा है, याने अज रू ए अखबारे 'मुफीदे खलायक' जहन यो लडा है, के इस हफ़्ते मे जनाब एडमिन्स्टन साहब बहादुर आगरे आएँगे और बिसादए[२] लेफ़्टेट गवर्नरी पर इजलास फ़रमाएँगे। इस सूरत मे अगलब है के विलियम म्योर साहब बहादुर उनकी जगह चीफ़ सेक्रेतर बन जाएँगे। फिर देखिए के ये महक्मए लेफ़्टेंट गवर्नरी मे अपना सेक्रेतर किसको बनाएँगे; मीर मु शी इस महक्मे के तो वही मु शी गुलाम गौसखाँ रहेगे। देखिए, हमारे मु शी मौलवी कमरुद्दीनख़ाँ कहाँ रहेगे। बहरहाल, आप से ये इस्तदुआ है के पहले किताबो का अहवाल लिखिए और फिर जुदा जुदा जवाब हर सवाल का लिखिए। जब तक अेडमिन्स्टन साहब बहादुर चीफ सेक्रेतर थे तो ये खयाल मे था के उनकी नज़र और नवाब गवर्नर जनरल बहादुर की नज़र याने दो किताबे मय अपने ख़त के उनके पास भेजूँगा। अब हैरान हूँ के क्या करूँ? आया उनकी जगह सेक्रेतर कौन हुआ? और ये जो लेफ्टेट गवर्नर हुए तो इन्होने सेक्रेतर किसको किया। मीर मु शी लेफ्टेट गवर्नर का कौन रहा और गवर्नर जनरल का मीर मु शी कौन है? जो आपको मालूम हो वो, और जो न मालूम हो वो [दरियाफ़्त कर कर, लिखिए। कमरुद्दीनख़ाँ का हाल ज़रूर, मु शी गुलाम गौसखाँ का हाल पर ज़रूर। भाई मेरे सर की कसम इस खत्त का जवाब ज़रूर लिखना और मुफ़स्सिल लिखना और ऐसा वाज़े लिखना के मुझ-सा कुन्द[३] ज़हन अच्छी तरह उसको समझ ले। ज्यादा क्या लिखू?

१. ग्रंथि, उलझन। २. तकिया (सिंहासन)। ३. मूर्ख।

१२

(२० नवंबर १८५८)

भाई जान,

कल जो जुमा, रोजे मुवारक व सईद[१] था, गोया मेरे हक मे रोजे ईद था। चार घड़ी दिन रहे, नामए[२] फरहत फरजाम और चार घडी के वाद वक्ते शाम--

सात जिल्दो का पार्सल पहुँचा
वाह क्या खूव वरमहल पहुँचा

आदमी को माफिक उसकी तमन्ना के आरजू वर आनी वहुत महाल है। मेरी आरजू ऐसी वर आई के वो वरतर अज वहम व खयाल है। ये वनाव तो मेरे तसव्वुर मे भी नही गुजरता था। मै तो सिर्फ इसी क़द्र खयाल करता था के जिल्दे वधी हुई, दो की लौहे जरी[३] और पाँच की लौहें स्याह कलम की होगी। वल्लाह, अगर तसव्वुर मे भी गुजरता हो के किताबें इस रक़म की होगी। जव तक जहाँ है तुम जहाँ मे रहो, अईमए अतहार अलेहुमु स्सलाम[४] की अमान[५] मे रहो। मेरा मकसूद ये था के एक किताव मिस्ल उन चार के वन जाए, न ये के दो किताबो का सा रग दिखलाए। अव मैं हैरान हू के आया शुमारे अईमा ने[६] उन वारह रुपये मे वरकत दी या कुछ तुम्हारा रुपया सर्फ हुआ? दो पार्सलो का महसूल, दो रजिस्ट्रियो का मामूल, तीन किताबो की लौहे तिलाई ये सारी वात इस रुपए मे किस तरह वन आई? और क्यो कर मालूम करू? किससे पूछूँ? खुदा करे तुम तकल्लुफ़ न करो और

---

१. शुभ। २. शुभ और सुखद पत्र। ३. सुनहरी। ४. वारह इमामों पर ईश्वर की दया रहे। ५. शरण। ६. वारह इमाम।

इस अम्र के इजहार मे तौक़्क़ुफ़[1] न करो। ख़फ़क़ानी आदमी को बग़ैर हाल मालूम हुए आराम नही आता। जहाँ मुहब्बतें दीनी और रूहानी हो वहाँ तकल्लुफ काम नही आता। ज्यादा इससे के शुक्र गुजार हूं और शर्मसार हू, क्या लिखूं !

चारा[2] खामोशीस्त ची चीज़े रा के अज तहसीन गुजश्त।

१३

(२० दिसबंर १८५८)

बन्दा परवर,

आपका ख़त कल पहुचा। आज जवाब लिखता हूं। दाद देना, कितना शिताब लिखता हू। मतालिब मुन्दर्जा के जवाब का भी वक़्त आता है। पहले तुमसे ये पूछा जाता है के बराबर कई खतो में तुमको गमो अन्दोह का शिकवा-गुज़ार पाया है। पस अगर किसी बेंदर्द पर दिल आया है, तो शिकायत की क्या गुंजाइश है ! बल्के ये गम तो, नसीबें दोस्ताँ दरख़ोर[3] अफज़ायश है। बकौले 'गालिब' अलें उर्रहमान--

किसी को दे के दिल, कोई नवा[4] सजें फ़ुगां क्यो हो ?
न हो जब दिल ही पहलू में तो फिर मुंह मे जबाँ क्यों हो ?

है, है ?

हुस्ने मतला--

ये फितना आदमी की ख़ाना वीरानी को क्या कम है !
हुआ तू दोस्त जिसका दुश्मन उसका आसमाँ क्यो हो !

---

१. विलम्ब। २. मौन रहना ही आप की प्रशंसा है। ३. योग्य। ४ प्रार्थना और शिकायत करना।

अफसोस है के इस गजल के और अशार याद न आए। और अगर खुदा[1] न ख़ास्ता बाशद, गमे दुनिया है, तो भाई, हमारे हमदर्द हो। हम इस बोझ को मर्दाना उठा रहे हैं। तुम भी उठाओ अगर मर्द हो। बक़ौल 'गालिब' मरहूम—

दिला,[2] ये दर्दो अलम है, तो मुग्तनिम[3] है के आख़िर
न[4] गिरय ए सहरी है न[5] आहे नीम शवी है

"सहर होगी" "ख़बर होगी", इस ज़मीन मे वो शेर याने—

तुम्हारे वास्ते दिल से मकाँ कोई नही बेहतर
जो आँखो मे तुम्हे रक्खू तो डरता हू नजर होगी

कितना ख़ूब है और उर्दू का क्या अच्छा उस्लूब[6] है! कसीदे का मुश्ताक हू। ख़ुदा करे, जल्द छापा जाए तो हमारे देखने में भी आए। "क्या कहिए", "भला कहिए"; ये ज़मीन एक बार यहाँ तरह हुई थी। मगर बहर और ही थी।

कहूं जो हाल तो कहते हो मुद्दआ कहिए
तुम्ही कहो के जो तुम यों कहो, तो क्या कहिए
रहे न जान तो कातिल को ख़ूँ बहा दीजे
कटे जवान तो खंजर को मरहवा कहिए
सफीना[7] जब के किनारे पै आ लगा गालिब
ख़ुदा से क्या सितमो[8] जोरे नाख़ुदा[9] कहिए

और वो जो "फलातन फ़लातन फलातन फ़ालन" ये बहर है, उसमे एक मेरा कता है, वो मैंने कलकत्ते में कहा था। तकरीब ये के मौलवी करम हुसेन साहब एक मेरे दोस्त थे, उन्होने एक मजलिस में

---

१ ईश्वर ऐसा न करे। २. अरे दिल। ३. गनीमत है। ४. न प्रात काल का रोना है। ५. न आधी रात की आह है। ६. वर्णन। ७. नाव। ८. अत्याचार। ९. नाविक।

'चिकनी डली' बहुत पाकीज़ा और बेरेशा अपने कफेदस्त[1] पर रखकर मुझसे कहा के इसकी कुछ तशबीहात[2] नज़्म कीजिए। मैंने वहाँ बैठे बैठे नौ-दस शर का कता कह कर उनको दिया और सिले मे वो 'डली' उनसे ली। अब सोच रहा हू, जो शेर याद आते जाते है लिखता जाता हू—

है जो साहब के कफेदस्त मे ये चिकनी डली
ज़ेब देता है इसे जिस कदर अच्छा कहिए
खामा[3] अगुश्त वदन्दाँ, के इसे क्या लिखिए
नातिके[4] सर बगिरेबॉ के इसे क्या कहिए
अख्तरे[5] सोख्त ए कैस से निस्बत दीजे
खाले[6] मिश्कीने रुखे दिलकशे लैला कहिये
हजरुल[7] अस्वदे दीवारे हरम कीजिये फर्ज
नाफ[8] आहू ए बियावाने खुतन का कहिये
सोमये[9] मे इसे ठहराइए गर मुहरे नमाज
मयकदे[10] मे इसे खिश्ते खुमे सहवा कहिए
मिसी[11] आलूदा सर अगुश्ते हसीनाँ लिखिए
सरे[12] पिस्ताने परीजाद से माना कहिए

गर्ज़ के २०-२२ फब्तियाँ है। अशार सब कब याद आते है? अखीर की बत ये है—

१. हथेली। २. उपमाएँ। ३. आश्चर्य चकित हू। ४. चिन्ता में डूबा हुआ हूँ। ५. दग्ध मजनूं। ६. लैला के गाल का तिल। ७. काबा की दीवार में जड़ा हुआ संगे अस्वत। ८. खुतन के कस्तूरी मृग की नाभि। ९. मन्दिर में यदि इसे पूज्य का स्थान मिला हुआ है। १०. तो मधुशाला में सुरापात्र के नीचे रखी हुई ईंट का पद। ११. सुन्दर स्त्रियो की मिस्सी में डूबी हुई अगुलियाँ। १२. परियो के स्तनो का ऊपरी भाग।

अपने हज़रत के कफेदस्त को दिल कीजिए फर्ज़
और इस चिकनी सुपारी को सवेदा[1] कहिए

लो हज़रत, आपके ख़त के जवाब ने अंजाम पाया। अब मेरा दर्दे दिल सुनो। बरखुरदार मुंशी शीवनरायन ने मेरे दो खतो का जवाब नही लिखा और वो खुतूत जवाब तलब थे। तुम उनको मेरी दुआ कहो और कहो के मियाँ मेरा काम बन्द है, उस मतलबे खास का जवाब जल्द लिखो। याने अगर वो किताब बन चुकी है, तो जल्द भेजो और अगर उसके भेजने मे देर ही हो तो ये लिख भेजो के वो सियाह कलम की लौह की है या तिलाई।

१४

(१८५९ ई०)

खुदा का शुक्र बजा लाता हूँ के आपको अपनी तरफ मुतवज्जह पाता हूँ। मिर्जा तफ्ता का खत जो आपने नक़्ल कर कर भेज दिया है, मैंने मुंशी शीव-नरायन का भेजा हुआ अस्ल ख़त देख लिया है। अगर तुम मुनासिब जानो तो मेरी एक बात मानो, 'रुक्काते आलमगीरी' या 'इशाए खलीफा' अपने सामने रख लिया करो, जो इबारत उसमें से पसन्द आया करे वो खत में लिख दिया करो। खत मुफ्त मे तमाम हो जाया करेगा और तुम्हारे खत के आने का नाम हो जाया करेगा। अगर कभी कोई क़सीदा कहा तो उसका देखना मशाहिदए-अखबार पर मौक़ूफ रहा——

बराते[2] आशकाँ बर शाखे आहू

वाकई, जो अखबार आगरे से दिल्ली आते है, वो मेरे सामने पढे जाते है। साहब, होश मे आओ और मुझको बताओ के यहाँ जो पारसियो की दूकानो में

१. दिल का काला चिह्न। २. प्रेमियो की मुक्ति हिरन के शृंगो पर।

'चिकनी डली' बहुत पाकीज़ा और बेरेशा अपने कफेदस्त[1] पर रखकर मुझसे कहा के इसकी कुछ तशबीहात[2] नज्म कीजिए। मैंने वहाँ बैठे बैठे नौ-दस शर का कता कह कर उनको दिया और सिले मे वो 'डली' उनसे ली। अब सोच रहा हू, जो शेर याद आते जाते है लिखता जाता हू—

है जो साहब के कफेदस्त मे ये चिकनी डली
ज़ेब देता है इसे जिस कदर अच्छा कहिए
खामा[3] अगुश्त बदन्दाँ, के इसे क्या लिखिए
नातिके[4] सर बगिरेबाँ के इसे क्या कहिए
अख्तरे[5] सोख्त ए कैस से निस्वत दीजे
खाले[6] मिश्कीने रुखे दिलकशे लैला कहिये
हजरुल[7] अस्वदे दीवारे हरम कीजिये फर्ज
नाफ़[8] आहू ए बियाबाने खुतन का कहिये
सोमये[9] मे इसे ठहराइए गर मुहरे नमाज
मयकदे[10] मे इसे खिश्ते खुमे सहबा कहिए
मिसी[11] आलूदा सर अगुश्ते हसीनाँ लिखिए
सरे[12] पिस्ताने परीजाद से माना कहिए

गर्ज़ के २०-२२ फब्तियाँ है। अशार सब कब याद आते है ? अखीर की वत ये है—

---

१. हथेली। २. उपमाएँ। ३. आश्चर्य चकित हू। ४. चिन्ता में डूबा हुआ हूँ। ५. दग्ध मजनूं। ६. लैला के गाल का तिल। ७. काबा की दीवार में जड़ा हुआ सगे अस्वत। ८. खुतन के कस्तूरी मृग की नाभि। ९. मन्दिर में यदि इसे पूज्य का स्थान मिला हुआ है। १०. तो मधुशाला में सुरापात्र के नीचे रखी हुई ईंट का पद। ११. सुन्दर स्त्रियों की मिस्सी में डूबी हुई अगुलियाँ। १२. परियो के स्तनो का ऊपरी भाग।

अपने हजरत के कफेदस्त को दिल कीजिए फर्ज़
और इस चिकनी सुपारी को सवेदा[1] कहिए

लो हज़रत, आपके खत के जवाब ने अजाम पाया। अब मेरा दर्दे दिल सुनो। बरखुरदार मुशी शीवनरायन ने मेरे दो ख़तो का जवाब नही लिखा और वो खुतूत जवाव तलब थे। तुम उनको मेरी दुआ कहो और कहो के मियाँ मेरा काम बन्द है, उस मतलबे खास का जवाब जल्द लिखो। याने अगर वो किताब बन चुकी है, तो जल्द भेजो और अगर उसके भेजने मे देर ही हो तो ये लिख भेजो के वो सियाह कलम की लौह की है या तिलाई।

१४

(१८५९ ई०)

खुदा का शुक्र बजा लाता हूँ के आपको अपनी तरफ मुतवज्जह पाता हूँ। मिर्जा तफ्ता का खत जो आपने नक़ल कर कर भेज दिया है, मैंने मुशी शीवनरायन का भेजा हुआ अस्ल ख़त देख लिया है। अगर तुम मुनासिब जानो तो मेरी एक बात मानो, 'रुक्काते आलमगीरी' या 'इशाए ख़लीफा' अपने सामने रख लिया करो, जो इबारत उसमे से पसन्द आया करे वो ख़त मे लिख दिया करो। खत मुफ्त मे तमाम हो जाया करेगा और तुम्हारे खत के आने का नाम हो जाया करेगा। अगर कभी कोई कसीदा कहा तो उसका देखना मशाहिदए-अखबार पर मौकूफ रहा--

बराते[2] आशकाँ बर शाखे आहू

वाकई, जो अखबार आगरे से दिल्ली आते है, वो मेरे सामने पढे जाते है। साहब, होश मे आओ और मुझको बताओ के यहाँ जो पारसियो की दूकानो मे

१. दिल का काला चिह्न। २. प्रेमियो की मुक्ति हिरन के शृगो पर।

'फ्रेन्च' और 'शाम्पेन' के दर्जन धरे हुए हैं या साहूकारो के और जौहरियो के घ
रुपये और जवाहर से भरे हुए हैं, मै कहाँ वो शराब पीनें जाऊँगा और वो माल
क्योकर उठाऊँगा ? बस अब ज्यादा बाते न बनाइये और वो कसीदा मुझको
भिजवाइये। मैंने किताबे जा बजा बसबीले पार्सल इरसाल की है। अगर चे
पहुँचने की खबर पाई है, मगर नवीदे[1] कुबूल अभी कही से नही आई है।—

रात दिन गर्दिश मे है सात आसमाँ
हो रहेगा कुछ न कुछ घबराएँ क्या ?

देखना भाई, इस गज़ल का मतला क्या है ?

ग़ज़ल

जौर[2] से बाज़ आये पर बाज आएँ क्या ?
कहते हैं हम तुझको मुँह दिखलाएँ क्या !

मौजे[3] खूँ सर से गुज़र ही क्यो न जाए
आस्ताने[4] यार से उठ जाए क्या ?
लाग हो तो उसको हम समझे लगाव
जब न हो कुछ भी तो धोका खाए क्या
पूछते है वो के 'गालिब' कौन है
कोई बतलाओ के हम बतलाएँ क्या

गजल ना तमाम है।

है बस के हर इक उनके इशारे मे निशा और
करते हैं मुहब्बत तो गुजरता है गुमा और
तुम शहर में हो तो हमें क्या गम ? जब उठेंगे
ले आएगे बाजार मे, जाकर, दिलो जाँ और,

---

१. शुभ समाचार। २. अत्याचार। ३. खून की लहर। ४. प्रिय की देहली।

लोगो को है खुरशीदे[1] जहाताव का धोका
हर रोज़ दिखाता हूँ मै इकदागे नेहाँ[2] और
अब्रू से है क्या उस निगहेनाज़ को पैवन्द[3]
है तीर मुक़र्रर मगर उसकी है कमाँ और
या रब वो न समझे है न समझेंगे मेरी बात
दे और दिल उनको, जो न दे, मुझको ज़बां और
हर चन्द[4] सुबुक दस्त हुए बुत शिकनी में
हम है तो अभी राह मे है संगे[5] गिरा और
पाते नही जब राह तो चढ जाते हैं नाले[6]
रुकती है मेरी तबा तो होती है रवाँ और
मरता हूँ इस आवाज पे हर चन्द सर उड जाय
जल्लाद को लेकिन वो कहे जाए के 'हा और'
हैं और भी दुनिया में सुखनवर बहुत अच्छे
कहते हैं के 'गालिब' का है अंदाज़े बया और

दोशबे का दिन, २० दिसम्बर की, सुबह का वक़्त है। अँगीठी रखी हुई है। आग ताप रहा हूँ और खत लिख रहा हूँ। ये अशार याद आगए, तुमको लिख भेजे। वस्सलाम।

१५

(१८५६ ई०)

शर्ते इस्लाम बुवद वर्ज़िशे ईमान बिल गैब
ऐ तू गायब ज़ नजर मेहर तू ईमां मनस्त

---

१. ससार का प्रकाशमान सूर्य। २. गुप्त। ३. जोड। ४. प्रतिमाओ के भग करने मे बहुत कुछ हाथ हल्के हुए। ५. भारी पत्थर। ६. शोर गुल।

हुलिय ए मुबारक नजर अफ़रोज हुआ। जानते हो के मिर्जा यूसुफ अलीखां 'अजीज, ने जो कुछ तुमसे कहा उसका मन्शा क्या है? कभी मैंने बज़्मे अहबाब[1] मे कहा होगा के मिर्ज़ा हातिम अली के देखने को जी चाहता है। सुनता हूं के वो तरहदार आदमी हैं और भाई तुम्हारी तरहदारी का जिक्र मैंने मुगल-जान से सुना था। जिस जमाने मे के वो नवाब हामिदअलीखाँ की नौकर थी और उनमें मुझमे बेतकल्लुफाना रब्त था, तो अक्सर 'मुगल' से पहरों अेख्तलात[2] हुआ करते थे। उसनें तुम्हारे शेर अपनी तारीफ के भी मुझको दिखाए हैं। बहरहाल, तुम्हारा हुलिया देख कर तुम्हारे कशीदा[3] कामत होने पर मुझको रश्क न आया, किस वास्ते मेरा कद भी दराज़ी[4] मे अंगुश्त-[5]नुमा है। तुम्हारे गदुमी रग पर रश्क न आया, किस वास्ते के, जब मैं जीता था तो मेरा रग चम्पई था और दीदावर लोग उसकी सतायश किया करते थे। अब जो कभी मुझको वो अपना रग याद आता है, तो छाती पर सांप सा फिर जाता है। हाँ, मुझको रश्क आया और मैंने खूने जिगर खाया तो इस बात पर के डाढी खूब घुटी हुई है। वो मजे याद आ गए। क्या करूँ, जी पर क्या गुजरी, बक़ौले शेख अली हज़ी—

ता दस्त[6] रस्म बूद ज़दम चाके गरीवाँ
शर्मिन्दगी अज खिर्क ए पश्मीना नदारम

जब डाढी मूँछ में सफेद बाल आ गए, तीसरे दिन चिवँटी के अडे गालों पर नज़र आने लगे; इससे बढकर ये हुआ के आगे के दो दाँत टूट गये, नाचार मिस्सी भी छोड़ दी और डाढी भी। मगर ये याद रखिए इस भौंडे शहर में एक वर्दी है आम—मुल्ला, हाफिज, बिसाती, नेचाबन्द, धोबी, सक़्क़ा, भटियारा, जुलाहा, कुँजडा, मुँह पर डाढी, सर पर बाल। फ़कीर ने जिस दिन डाढ़ी

१. मित्र मंडली। २. मिलना जुलना। ३. लम्बा कद। ४. लम्बाई। ५. जिसकी ओर लोग संकेत करते हैं, उल्लेखनीय। ६. जब तक मुझमें शक्ति थी मैंने गरीबाँ फाड़ा। अब गुदडी से लज्जित होने का कारण क्या है।

रखी, उसी दिन सर मुँडवाया। लाहौलावलाकूव्वता इल्लाह बिल्लाहिल अली उल अज़ीम। क्या बक रहा हूँ!

साहब, बन्दे ने दस्तम्बू जनावे अशरफुल उमरा जार्ज फ्रेडरिक अेडमिन्स्टन साहब लेफ्टेट गवर्नर बहादुर गर्बो शुमाल की नज्र भेजी थी। सो उनका फारसी खत मुहर्रिर एदहुम मार्च मुश्तमिल[१] बर तहसीनो आफरी व इजहारे खुशनूदी बतरीके डाक आ गया। फिर मैंने तहनियत मे लेफ्टेट गवर्नरी की क़सीदए-फ़ारसी भेजा, उसकी रसीद मे नज़्म की तारीफ और अपनी रजामन्दी पर मुतजिम्मिन[२] खते फारसी बसबीले डाक मरकूम ए चहार दहुम आ गया। फिर एक कसीदए फ़ारसी मदह और तहनियत मे जनाब राबर्ट मिण्टगुमरी साहब लेफ़्टेंट गवर्नर बहादुर पजाब की खिदमत मे बवास्त ए साहब कमिश्नर बहादुरे-देहली भेजा था। कल उनका मुहरी खत बजरियए साहब कमिश्नर बहादुर देहली आ गया। पिन्सन के बाब मे अभी कुछ हुक्म नही। असबाब तवक्क़ो के फराहम होते जाने है। देर आयद दुरुस्त आयद। अनाज खाता ही नही हूँ, आध सेर गोश्त दिन को और पाव भर शराब रात को मिल जाती है—

हरेक बात पे कहते हो तुम के तू क्या है
तुम्ही कहो के ये अन्दाज़े गुफ़्तगू क्या है

अगर हम फकीर सच्चे है और इस गजल के तालिब का ज़ौक़ पक्का है तो ये गजल इस खत से पहले पहुँच गई होगी। रहा सलाम, वो आप पहुँचा देंगे।

१६

(१८५९ ई०)

जनाब मिर्ज़ा साहब,

दिल्ली का हाल तो ये है—

घर में था क्या जो तेरा ग़म उसे गारत करता?
वो जो रखते थे हम इक हसरते तामीर, सो है

१. प्रशंसा और साधुवाद से युक्त। २. उसके सिलसिले में।

यहाँ धरा क्या है, जो कोई लूटेगा ? वो खबर महज गलत है। अगर कुछ है तो वदी[1] नमत है, के चन्द रोज़ गोरो ने अहले बाज़ार को सताया था। अहले कलम और अहले फौज ने वइत्तेफाक राय हमदिगर[2] ऐसा वन्दोवस्त किया के वो फसाद मिट गया। अब अम्नो अमान है। नासिख मरहूम, जो तुम्हारे उस्ताद थे, मेरे भी दोस्ते सादिकुल[3] विदाद थे। मगर यक[4] फन्नी थे, सिर्फ गजल कहते थे, कसीदे और मसनवी से उनको कुछ इलाका न था, सुभान अल्लाह् ! तुमने कसीदे मे वो रग दिखाया के इशा को रश्क आया। मसनवी के अशार जो मैंने देखे, क्या कहूँ, क्या हज़ उठाया।

खुदा से मैं भी चाहूँ अजरहे मेहर[5]
फरोग[6] मीरजा[7] हातिम अली 'मेहर'

अगर इसी अन्दाज पर अजाम पाएगी, तो ये मसनवी कारनाम ए उर्दू कहलाएगी। खुदा तुमको जीता रखे, तुम्हारा दम गनीमत है। साहव, तुमसे पूछता हूँ के 'मेयारुल शोअरा' मे तुमने अपना खत क्यो छपवाया ? तुम्हारे हात क्या आया ? सुनो तो सही, अगर सव का कलाम अच्छा हो, तो इम्तेयाज क्या रहे ?

१७

जनाव मिर्ज़ा साहव,

आपका गम[8] अफजा नामा पहुँचा, मैंने पढा, यूसुफअलीखाँ 'अज़ीज़' को पढवा दिया। उन्होने जो मेरे सामने उस मरहूमा और आपका मामला वयान किया, याने उसकी इताअत और तुम्हारी उससे मुहव्वत, सख्त मलाल हुआ और रजे कमाल हुआ। सुनो साहव, शोअरा में फिरदोसी और फुकरा में हसन वसरी और उश्शाक मे मजनूँ ये तीन आदमी तीन फन में सरे[9] दफतर और पेशवा

---

१. उसी भाँति। २. परस्पर। ३. सच्चे मित्र। ४ समव्यवसायी। ५ प्रेम-मार्ग। ६ उन्नति। ७. मिर्ज़ा। ८. दुखद। ९. सूची में सर्वोपरि।

है। शायर का कमाल ये है के फिरदौसी हो जाये। फ़कीर की इन्तहा ये है के हसन बसरी से टक्कर खाए। आशिक की नमूद ये है के मजनूँ की हम तरही नसीब होवे। लैला उसके सामने मरी थी, तुम्हारी महबूबा तुम्हारे सामने मरी, बल्के तुम उससे बढकर हुए के लैला अपने घर में और तुम्हारी माशूका तुम्हारे घर मे मरी। भई, मुगलचे भी गजब होते हैं, जिस पर मरते हैं, उसको मार रखते है। मै भी मुगलचा हूँ, उम्र भर मे एक बडी सितमपेशा डोमनी को मैंने भी मार रखा है। खुदा उन दोनो को बख्शे और हम तुम दोनो को भी के ज़ख्मे मर्गे दोस्त[1] खाए हुए हैं, मगफरत[2] करे। चालीस-बयालीस बरस का ये वाकया है। बा आंकि ये कूचा छुट गया, इस फन से मैं बेगानए महज़ हो गया, लेकिन अब भी कभी कभी वो अदाएँ याद आती हैं। उसका मरना ज़िन्दगी भर न भूलूँगा, जानता हूँ के तुम्हारे दिल पर क्या गुज़रती होगी। सब्र करो और अब हंगामए इश्के मजाज़ी छोडो।

'सादी[3]' अगर आशकी कुनी व जवानी
इश्के मुहम्मद बसस्त व आले मुहम्मद

अल्लाह्[4] बस, मा सिवा हवस।

१८

(१८६० ई०)

मिर्ज़ा साहब,

हमको ये बातें पसन्द नही। पैंसठ बरस की उम्र है, पचास बरस आलमे रंगो बू की सैर की है। इब्तदा ए[5] शबाब मे एक मुर्शदे कामिल ने ये नसीहत की है के हमको ज़हदो[6] वरा मंज़ूर नही। हम माना फिस्को[7] फुजूर नहीं।

---

१. मित्र की मृत्यु का घाव। २. ईश्वर क्षमा करे। ३. यदि तुम प्रेम चाहते हो और जवानी चाहते हो तो हज़रत मुहम्मद और उनकी सन्तति से प्रेम करो। ४ ईश्वर के अतिरिक्त सब चीजें व्यर्थ। ५. यौवन के प्रारम्भ में। ६ परहेज़गारी। ७ बुराई।

पीओ, खाओ, मज़े उड़ाओ, मगर ये याद रहे के मिसरी की मक्खी बनो, शहद की मक्खी न बनो। सो मेरा इस नसीहत पर अमल रहा है। किसीके मरने का वो गम करे, जो आप न मरे। कैसी अश्कफ़शानी,[1] कहाँ की मर्सिया खानी? आजादी का शुक्र बजा लाओ। गम न खाओ और अगर ऐसे ही अपनी गिरफ़्तारी से खुश हो, तो चुन्नाजान न सही, मुन्नाजान सही। मैं जब बहिश्त का तसव्वुर करता हूँ, और सोचता हूँ के अगर मगफरत[2] हो गई, और एक कस्र[3] और एक हूर मिली, इकामत[4] जावेदानी है और उसी एक नेकवख्त के साथ जिन्दगानी है। इस तसव्वुर से जी घबराता है और कलेजा मुँह को आता है। है, है! वो हूर अजीरन हो जाएगी, तबीयत क्यो न घबराएगी। वही ज़मर्रुदी[5] काख और वही तूबा[6] की एक शाख। चश्मे बद्दूर, वही एक हूर! भाई होश मे आओ, कही और दिल लगाओ।

ज़ने[7] नौकुन ऐ दोस्त दर हर बहार
के तकवीमे पारीना नायद बकार

मिर्ज़ा मजहर के अशार की तज़मीन[8] का मुसद्दस[9] देखा। फिक्र सरापा पसन्द। ज़िक्र बहमा[10] जेहत नापसन्द। अपने नाम का खत मय उन अशार के मिर्ज़ा यूसुफअलीखा 'अज़ीज़' के हवाले किया।

मुकर्रमी नवाब मुहम्मदअलीखाँ साहब की खिदमत मे सलाम अर्ज करता हूँ। परवर दिगार उनको सलामत रखे। मौलवी अब्दुलवहाब साहब को मेरा सलाम। दम दे के मुझसे फ़ारसी इबारत में खत लिखवाया, मैं मुन्तज़िर रहा के आप लखनऊ जाएँगे। वो इबारत जनाब किब्ला व काबा को दिखाएँगे।

---

१. अश्रुवर्षा २. क्षमा। ३. महल, प्रासाद। ४. शाश्वत निवास। ५. पन्ने का महल। ६. कल्प वृक्ष। ७. हे मित्र प्रत्येक वसत मे नई स्त्री से विवाह कर, पुराना पंचाग किसी काम का नही रहता। ८. किसी दूसरे कवि के शेर पर अपने शेर लिखना। ९ छ पक्तियो की कविता। १० हर प्रकार से।

उनके मिज़ाजे[1] अकदस की खैरो आफियत मुझको रकम फरमाएंगे। मैं क्या जानूं के हज़रत मेरे वतन मे जलवा[2] अफरोज़ है।

यार[3] दर ख़ाना वो मा गिर्दे जहाँ मी गरदेम

अब मुझे उनसे ये इस्तदुआ है के दस्तख़ते ख़ास से मुझको ख़त लिखें और लखनऊ न जाने का सबब और जनाब किब्ला व काबा का जो कुछ हाल मालूम हो, वो उस ख़त मे दर्ज करे।

---

१. शुभ स्वास्थ्य। २. प्रकाशमान। ३. प्रिय घर मे है और हम उसे ससार मे ढूँढ रहे है।

साहबज़ादा ज़ैनुल आबदीनख़ां उर्फ़ कल्लन मियां रामपूर के नाम

१

(२५ मार्च १८५८)

बन्दा परवर,

मेहरबानी नामा पहुँचा। मैं तो समझा था आप मुझको भूल गए, बारे, याद किया। जनाब नवाब साहब मेरे मुहसिन और मेरे कद्रदान और मेरी उम्मीदगाह हैं। मैं अगर रामपूर न आऊँगा तो कहाँ जाऊँगा। ये जो आप कहते हैं के तुझको आने में तरद्दद क्या है। तरद्दद कुछ नही, तवक्कुफ[१] है। वजह तवक्कुफ की ये के मैंने अपनी पिन्सन के बाब में चीफ कमिश्नर बहादुर को दरखास्त दी थी। वहाँ से साहब कमिश्नर शहर के वो दरखास्त हवाले हुई। साहब कमिश्नर देहली ने साहब कलक्टर शहर से कैफ़ियत तलब की है। पस, अगर वो कैफ़ियत पिन्सन की है, तो यहाँ की कलक्टरी का दफ़्तर अगर नही रहा, न रहे। रेनू बोर्ड के दफ़्तर और लेफ़्टेट गवर्नरी आगरा और नवाब गवर्नर जनरल कलकत्ता के दफ़्तर इस पिन्सन की कैफियत से खाली नही हैं और अगर मेरी कैफियत मतलूब है तो मेरा बेजुर्म और बरी और अलग होना फसाद से अज़ रू ए दफ़्तरे किला व इज़हारे मुख़बरीन ज़ाहिर है। बहरहाल साहब कमिश्नर शहर, कैफियत साहब कलक्टर से तलब कर कर चीफ कमिश्नर के साथ पंजाब को गए हैं। देखिए कब आवें, और बाद मुलाहिज़ ए कैफियत क्या हुक्म

---

१. विलम्ब।

दे। मगर ता सुदूरे हुक्म मैं यहाँ से कही जा नही सकता। हाँ, बाद मिलने हुक्म के, ख़ाही दिल ख़ाह हो, ख़ाही मुख़ालिफे मुद्दआ दोनो सूरत मे रामपूर आऊँगा। मगर हैरान हूँ के जब तक यहाँ रहूँ, खाऊँ क्या ? और जब चलने का कस्द हो तो रामपूर किस तरह पहुँचूँ ? क्या खूब हो के तुम ये रुक़्का अपने नाम का हुजूर को याने हज़रत नवाब साहब को पढवाकर इस मुद्दआ ए खास का जवाब, जो वो फर्माएँ, मुझको लिख भेजो, लेकिन तुमसे ये तवक़्क़ो क्यो कर पड़े ! किस वास्ते के तुमने उर्दू दीवान के पहुँचने न पहुँचने का हाल जनावेआली से दरियाफ्त कर कर कब लिखा है, जो इस बात का जवाब लिखोगे ! ज्यादा इससे क्या लिखूँ ?

निगाश्ता व रवाँदाश्त ए पजशबा, २५ मार्च सन् १८५९ ई०।

ज़रूरी जवाब तलब।

अज़—गालिब

२

(१४ मार्च १८६५ ई०)

नवाब साहब वाला कद्र अज़ीमुश्शान सलेमकमल्लाहो ताला।

बाद सलाम[1] मसनून मशहूद खातिर हो। साबिक आपका ख़त, मुत-जिम्मिन उर्दू के इस्तिफ़ता[2] ए रोजमर्रा का आया था। उसका जवाब जो मुझे मालूम था, लिख भेजा। अब जो दूसरा खत आया उसमें अपने अशार बतवक़्क़ो इस्लाह भेजे है। आपको मालूम रहे के मैं लाम ख़िदमते इस्लाह अशार पर

---

१. अभिवादन की प्रक्रिया के पश्चात्। २. सम्मति।

नवाब साहब जनाब किब्ला का नौकर हूँ, और आप हुजूर के अज़ीज़ो मे और फ़र्ज़न्दो मे है। पस, मै बेहुक्म हुज़ूर के आपकी खिदमत बजा नही ला सकता। नाचार कागज़े अशार मुस्तर्द[1] भेजता हूँ। ये अमर यकीन है के, मूजिबे मलाल ख़ातिरे अकदस न होगा। बन्दगी, बेचारगी। ज़्यादा इससे क्या लिखूँ के मुद्दा ए ज़रूरी अल इजहार इसी कद्र था। वस्सलाम।

राकिम--असदुल्लाखा 'गालिब'

---

१. ज्यो के त्यो।

मिर्ज़ा अलाउद्दीन अहमदख़ां 'अलाई' व 'नसीमी' के नाम

१

(१८५८)

आज बुध के दिन २७ रमजान को पहर दिन चढे जिस वक़्त के मै खाना खाकर बाहर आया था, डाक का हरकार तुम्हारा खत और शहाबुद्दीनख़ा का खत (लाया)। मजमून दोनो का एक। वाह, क्या मजमून इन दिनो मे, के सब तरह के रजो अजाब फराहम है; एक दाग़े जिगर सोज[1] ये भी जरूर था। सुभान अल्लाह्, मैंने उसकी सूरत भी नही देखी या विलादत की तारीख सुनी या अब रेहलत की तारीख लिखनी पडी। परवरदिगार तुमको जीता रखे और नेमुलबदल[2] अता करे। मियाँ, इसको सब जानते है के मै माद्दए तारीख़ निकालने मे आजिज हू। लोगो के माद्दे दिए हुए नज्म कर देता हूँ, और जो माद्दा अपनी तबीयत से पैदा करता हू वो बेश्तर लचर हुआ करता है। चुनाचे अपने भाई की रेहलत का माद्दा 'दरेग[3] दीवाना' निकाला, फिर उसमे से 'आहे' के अदद घटाए। तमाम दोपहर इसी फिक्र मे रहा। ये न समझना के माद्दा ढूढा, तुम्हारे निकाले हुए दो लफ़्जो को ताका किया के किसी तरह मात इस पर बढाऊं। बारे, एकक़्ता दुरुस्त हुआ, मगर तुम्हारी जबान से, याने गोया तुमने कहा है। पाँच शेर मे तीन शेर जायद! दो मौजह[4] मुद्दआ, लेकिन मैं नही जानता के तामिया अच्छा है, या बुरा है। हा, ग्रिगलाक[5] तो अलबत्ता है,

---

१. जिगर को जलाने वाला। २. तत्स्थानीय। ३. दरेग़े दीवाना-(१२६८ हि०)। ४. इच्छानुसार। ५. कठिन।

ताम्मुल से समझ मे आता है और शायद लौहे[1] मजार पर खुदवाने के काबिल न हो।

क़ता—

दर[2] गिरिया अगर दावए हम चश्मीए मा कर्द
बीनी के शवद अब्रे बहारी खजिल अज़ मा
नाचार बिगिरियेम शबो रोज़ के ई सैल
बाशद के बरद कालबुदे आबो गिल अज़ मा
गुफ़्ती के निगहदार दिल अज कश्मकशे गम
खुद कर्द बराबुर्द गमे जाँ गुसिल अज मा
याहिया शुदो अज़ शोल ए सोज़े ग़मे हिजरश
चूं शमा दवद दूद बसर मुत्तेसिल अज मा
गम दीदा 'नसीमी' प ए तारीखे वफातश
वेनविश्त के दर दागे पिसर सोख्त दिल अज मा

'मा' के अदद ४१, 'दिल' के अदद ३४, 'मा' में से 'दिल' गया, गोया ४१ में से ३४ गये, बाकी रहे सात, वो 'दागे पिसर' पर बढाये, १२७४ हात आये।

---

१. कब्र का पत्थर।

२. यदि रोने मे वर्षा ऋतु का मेघ भी हमारी समता करेगा तो उसे भी लज्जित होना पडेगा। हम विवश रात-दिन रोते रहते हैं और उसकी लहर हमारे शरीरो को ही बहा ले जाए। तुमने कहा है कि मैं शोक से हृदय की रक्षा करू, इस प्राणलेवा शोक ने हमे पहले ही बर्बाद कर दिया है। याहिया का निधन हुआ। उसके शोक से शमा की तरह लगातार हमारे सिर से धुआँ निकल रहा है। दुखी 'नसीमी' ने स्वर्गीय की तारीख कही, लड़के के वियोग से हमारा हृदय जल गया।

२

१८५८ ई०

मिर्ज़ा नसीमी को दुआ पहुँचे,

आँख की गुहाजनी[1] जब खुद पक कर फूट गई थी, और पीप निकल गई थी, तो नश्तर क्यो खाया ? मगर ये के बतरीक़े खुशामद तबीब से रुजू की। जब उसने नश्तर तजवीज किया तो खाही न खाही इम्तेसाल[2] अम्र करना पड़ा और शायद यो न हो, कुछ माद्दा बाकी हो। बहरहाल, हक ताला अपने फ़ज्लो करम से शफा बख्शे।

क़ता—

बस[3] के फआल मायूरीद है आज
हर[4] सलह शोर इग्लिस्ताँ का
घर से बाज़ार में निकलते हुए
ज़हरा[5] होता है आब इन्साँ का
चौक जिसको कहे वो मकतूल[6] है
घर बना है नमूना ज़िन्दाँ[7] का
शहर देहली का ज़र्रा ज़र्रए खाक
तिश्नए[8] खूँ है हर मुसलमाँ का
कोई वाँ से न आ सके याँ तक
आदमी वाँ न जा सके याँ का

---

१. पलको में होने वाली फुन्सियाँ। २. आदेश पालन। ३. वह जो चाहता है कर सकता है। ४. इंग्लेण्ड का दक्ष सैनिक। ५. पित्ता पानी हो जाता है। ६. वध्य भूमि। ७. कारावास। ८. रक्त का प्यासा।

करना और मुताबिक वाके समझना। तुम्हारे देखने को दिल बहुत चाहता है और देखना तुम्हारा मौकूफ इस पर है के तुम यहाँ आओ। काश, अपने वालिद माजिद के साथ चले आते और मुझको देख जाते। उर्दू का दीवान रामपूर से लाया हूँ और वो आगरे गया है। वहाँ मुन्तबा होगा। एक नुस्खा तुम्हारे पास भी पहुँच जाएगा।

तुम जानो, तुमको गैर से जो रस्मो राह हो
मुझको भी पूछते रहो तो क्या गुनाह हो?

मरकूमए रोज़ दो शम्बा २ जुलाई सन् १८६० ई०।

—गालिब

५

(१८६० ई०)

साहब,

मेरी दास्तान सुनिए। पिन्सन बेकमो[1] कास्त जारी हुआ। जरें मुज्तमए[2] स साला यक मुश्त मिल गया। बाद अदाए हुकूक, चार सौ रुपये देने बाकी रहे और सात सौ रुपये ग्यारह आने मुझे बचे। मई का महीना बदस्तूर मिला। आखिर जून मे हुक्म हुआ के पिन्सनदार अललउमूम[3] शशमाही[4] पाया करे। माह ब माह पिन्सन तकसीम न हुआ करे।

मै दस बारह बरस से हकीम मुहम्मद हसनखाँ की हवेली मे रहता हूँ। अब वो हवेली गुलामुल्लाखाँ ने मोल ले ली। आखिर जून में मुझसे कहा के हवेली खाली कर दो। अब मुझे फिक्र पडी के कही दो हवेलियाँ करीब हमदिगर

---

१. बिना काट छाट। २. तीन वर्ष का एकत्रित धन। ३. सामान्यतया। ४. छमाही।

ऐसी मिले के एक महलसरा[1] और एक दीवानख़ाना हो, न मिली। नाचार य चाहा के 'बल्लीमारो' मे एक मकान ऐसा मिले के जिसमे जा रहूँ, न मिला। तुम्हारी छोटी फूपी ने बेकस नवाज़ी की। करोड़ा वाली हवेली मुझको रहने को दी। हरचन्द वो रिआयत[2] मरई न रही के महलसरा से करीब हो। मगर ख़ैर, बहुत दूर भी नही। कल या परसो वहाँ जा रहूँगा। एक पांव जमीन पर है, एक पाव रकाब मे, तोशे का वो हाल, गोशे की ये सूरत!

कल शबा १७ जिलहज्जा की और ७ जुलाई की, पहर दिन चढे तुम्हारा ख़त पहुँचा। दो घड़ी के बाद सुना गया के अमीनुद्दीनखा साहब ने अपनी कोठी मे नुजूल[3] इजलाल किया। पहर दिन रहे अज राहे महरबानी नागाह मेरे हाँ तशरीफ लाए। मैंने उनको दुबला व अफ़सुर्दा[4] पाया। दिल कुढा। अली हुसेन खाँ भी आया। उससे भी मैं मिला। मैंने पूछा के वो क्यो नही आए। भाई साहब बोले के जब मैं यहाँ आया तो कोई वहाँ भी तो रहे और इससे अलावा वो अपने बेटे को बहुत चाहते हैं। मैंने कहा—उतना ही, जितना तुम उसको चाहते थे। हँसने लगे। गर्ज़ के मैंने बजाहिर उनको तुमसे अच्छा पाया। आगे तुम लोगो के दिलो का मालिक अल्लाह है।

निगाश्ता व रवा दाश्त ए यक शबा, बैनुज्जुहर[5] व अल अस्र।

राक़िम—ग़ालिब

६

(४ अप्रेल १८६१)

मौलाना नसीमी,

क्यो ख़फा होते हो? हमेशा से अनलाफ व[6] अख़लाफ होते चले आये है। अगर नैयर खलीफ ए अव्वल है, तुम खलीफ ए सानी हो। उसको उम्र में तुम

१. अन्त पुर। २. पिछली सुविधा। ३. ठहरना। ४. मुरझाया हुआ। ५. अपराह्न। ६ पूर्वज और उनकी सन्तति।

पर तक्दमे[1] ज़मानी है। जानशीन दोनो, मगर एक अव्वल है और एक सानी है। शेर अपने बच्चो को शिकार का गोश्त खिलाता है, तरीके सैद[2] अफगनी सिखाता है। जब वो जवान हो जाते हैं, आप शिकार कर खाते है। तुम सुखनवर हो गये। हुस्ने तबा खुदादाद रखते हो, विलादत[3] फर्ज़न्द की तारीख क्यों न कहो ? इस्मे तारीखी[4] क्यो न निकाल लो के मुझ पीरे गमज़दा[5] दिले मुर्दा को तकलीफ दो ? अलाउद्दीनखा तेरी जान की कस्म, मैंने पहले लडके का इस्मे तारीखी नज़्म कर दिया था, और वो लड़का न जिया। मुझको इस वहम ने घेरा है के मेरी नहूसते[6] ताला की तासीर थी। मेरा ममदूह जीता नहीं। नसीरुद्दीन हैदर और अमजद अली शाह एक एक कसीदे में चल दिए। वाजिद अली शाह तीन कसीदो के मुतहमिल हुए, फिर न सँभल सके। जिसकी मदह में दस-बीस कसीदे कहे गए, वो अदम से भी परे पहुँचा। न साहब, दुहाई खुदा की, मैं न तारीखे विलादत कहूँगा, न नामे तारीखी ढूँढूगा। हक ताला तुमको और तुम्हारी औलाद को सलामत रखे और उम्रो दौलत व इकबाल अता करे।

सुनो साहब, हुस्न परस्तों का एक कायदा है। वो अमरद[7] को दो चार बरस घटा कर देखते हैं। जानते है के जवान हैं लेकिन बच्चा समझते हैं। ये हाल तुम्हारी कौम का है। कस्मे[8] शरई खाकर कहता हूँ के एक शख्श है के उसकी इज्ज़त और नामावरी जम्हूर[9] के नज़दीक साबित और मुतहक्किक[10] है और तुम साहब भी जानते हो मगर जब तक उससे कते नज़र न करो और मस्खरे को गुमनाम व ज़लील न समझ लो तुमको चैन न आएगा। पचास बरस से दिल्ली मे रहता हूँ। हज़ारहा खत अतराफ व जवानिब से आते हैं।

---

१. आयु वृद्धता। २ शिकार करना। ३ जन्म। ४. तारीख युक्त नाम। ५. वेदनाग्रस्त वृद्ध। ६. दुर्भाग्य। ७. कुमार। ८. धर्मशास्त्र की शपथ। ९. जन-सामान्य। १०. प्रामाणिक।

बहुत लोग ऐसे है के मुहल्ला नही लिखते, बहुत लोग ऐसे है के मुहल्ल ए साविक का नाम लिख देते है । हुक्काम के खुतूत फारसी व अंगरेजी, यहाँ तक के, विलायत के आए हुए, सिर्फ शहर का नाम और मेरा नाम । ये सब मरातिब तुम जानते हो और उन खुतूत को तुम देख चुके हो और फिर मुझसे पूछते हो के अपना मस्कन बता । अगर मै तुम्हारे नजदीक अमीर नही, न सही। अहले[१] हुर्फा मे से भी नही हूँ के जब तक मुहल्ला और थाना न लिखा जाए, हरकारा मेरा पता न पाए। आप सिर्फ देहली लिख कर मेरा नाम लिख दिया कीजिए। खत के पहुँचने का मै ज़ामिन ।

पजशबा ४ माहे अप्रेल।

७

(१२ मई १८६१)

मेरी जान,

तखल्लुस तुम्हारा बहुत पाकीजा और मेरे पसन्द है। 'पश्मी' को बतक़ल्लुफ उसका मुसह्हफ[२] क्यो ठहराओ ? ये मैदान तो बहुत फराख[३] है। खुदा की[४] 'खे' को जीमे फारसी से बदल दो, नबी को बतकदीमे मौहेदा अली अल नून[५] लिखो। ये वसाविस[६] दिल से दूर करो। 'रहरो' एक अच्छा तखल्लुस है। 'रहडो' उसकी तजनीस[७] मौजूद है। शुयून एक अच्छा तखलुस्स है, 'सुतून' उसकी तसहीफ है। तुम्हारे वास्ते बमुनासिबते इस्म 'आली' तखल्लुस खूब था। मगर इस तख़ल्लुस का एक शायर बहुत बड़ा नामी गुज़र चुका है। हाँ, 'नामी', 'सामी' ये दो तख़ल्लुस भी अच्छे हैं। मौलाना फायक की पैरवी करो। मौलाना 'लायक' कहलाओ। अगर कहोगे के इस तरकीब से लफ्ज़ 'नालायक' पैदा होता है,

---

१. कारीगर, दस्तकार आदि । २. व्यापक। ३. परिवर्त्तन । ४. खुदा को जुदा । ५. न्बी को बनी । ६. भ्रम । ७. उसी तरह का।

मौलाना 'शायक़' वन जाओ। इसी की वाते हो चुकी। अब हक़ीक़ते वाजिबी सुनो। 'नसीमी' तखल्लुस, खमासी, बरवज़ने 'जहूरी' व 'नज़ीरी' अच्छा है। अगर वदलना ही मजूर है तो 'नामी', 'सामी', 'रहरो', 'शुयून' ये चार तखल्लुस रुवाई, वरवज़ने 'उर्फ़ी' व 'गालिव' अच्छे है। इनमे से एक तखल्लुस करार दो। मेरे नजदीक सवसे बेहतर तुम्हारे वास्ते खास 'फख्री' तखल्लुस है। कहोगे के आजादपूर के वाग मे एक आम का नाम फख्री है। हासिल कलाम, दो दिन की फिक्र मे जो तखल्लुस मेरे खयाल मे आए, वो लिख भेजता हूँ। भाई, 'मौवद' तखल्लुस नया है। अगर ये पसन्द आए तो ये रखो। वद्दुआ।

सुवह यकशम्वा, १२ मई सन् १८६१ ई०।

नजात का तालिव

—ग़ालिव

८

(१ जून १८६१)

मेरी जान, अलाई हमादान[1]।

इस दफे दखले[2] मुकद्दर का क्या कहना है! 'फरहगे लुगते दसातीर' तुम्हारे पास है। मैं चाहता था के उसकी नकल तुमसे मँगाऊँ। तुमने 'दसातीर' मुझसे माँगी, उसी सहीफ़ए[3] मुकद्दस की कस्म के वो मेरे पास नही है। जी में कहोगे के अगर 'दसातीर' नही तो फरहग की ख़ाहिश क्यो है। हक यों है के वाज़[4] लुग़ात के ऐराव[5] याद नहीं। इस वास्ते 'फरहग' की ख़ाहिश

१. सर्वज्ञ। २. भाग्य में अंकित। ३. पवित्र पुस्तक कुरान। ४. शब्द। ५. मात्राओं का उच्चारण।

है ! अगर उस फरहग की नकल भेज दोगे तो मुझ पर अहसान करोगे ।'दसातीर' मेरे पास होती तो आज इस खत के साथ उसका भी पार्सल भेज देता । हाँ साहब, अगर 'दसातीर' होती और मै भेज देता तो अलबत्ता भाई साहब का मशकूर होता, दीनो दुनिया मे क्यो माजूर होता ? इरसाले[1] इहिदा पर हुसूले[2] अज्र क्यो मुतरत्तिब हो गया ? भाई वो मजहब अख्तियार किया चाहते है और तुम उस मजहब को हक जानते हो के मै जो वास्ता उसके ऐलानो शीव[3] का होता, तो इन्दिल्लाह्[4] मुझको इस्तहकाक[5] अज्र पाने का पैदा होता । अपने बाप को समझाओ, और एक शेर मेरा और एक शेर हाफिज का और एक शेर मौलवी रूम का सुनाओ--

गालिब—

दौलत[6] बगलत न बुवद अज सई पशेमाँ शौ
काफिर न तुवानी शुद नाचार मुसल्माँ शौ

हाफ़िज

जगे[7] हफ़्तादो दो मिल्लत हमा रा उज्र विने
चूं न दीदन्द हकीकत रहे अफसाना जदन्द

---

१. उपदेश देने पर। २. फल प्राप्ति। ३. प्रकाशन। ४. ईश्वर के लिए। ५. पुण्य प्राप्त करने का अधिकार। ६. यदि तुम्हारी गलतियो से ऐश्वर्य प्राप्त न हो तो यह तुम्हारी गलती है। यदि काफिर नही बना है तो विवशता से मुसलमान बन जा। ७ यह बहत्तर फिर्कों का झगड़ा किसी न किसी कारण से होगा। इन लोगो ने वास्तविकता को नही समझा और किस्से-कहानियो के आधार पर चल रहे है।

मौलाना 'शायक़' बन जाओ। इसी की बातें हो चुकी। अब हकीकते वाजिबी सुनो। 'नसीमी' तख़ल्लुस, खमासी, बरवज़ने 'जहूरी' व 'नज़ीरी' अच्छा है। अगर बदलना ही मजूर है तो 'नामी', 'सामी', 'रहरो', 'शुयून' ये चार तख़ल्लुस रुबाई, बरवज़ने 'उर्फ़ी' व 'गालिब' अच्छे हैं। इनमें से एक तख़ल्लुस करार दो। मेरे नजदीक सबसे बेहतर तुम्हारे वास्ते खास 'फख़री' तख़ल्लुस है। कहोगे के आजादपूर के बाग में एक आम का नाम फख़री है। हासिल कलाम, दो दिन की फिक्र में जो तख़ल्लुस मेरे ख़याल में आए, वो लिख भेजता हूँ। भाई, 'मौबद' तख़ल्लुस नया है। अगर ये पसन्द आए तो ये रखो। बद्दुआ।

सुबह यकशम्बा, १२ मई सन् १८६१ ई०।

नजात का तालिब

—ग़ालिब

८

(१ जून १८६१)

मेरी जान, अलाई हमादान[१]।

इस दफे दख़ले[२] मुकद्दर का क्या कहना है। 'फरहगे लुगते दसातीर' तुम्हारे पास है। मैं चाहता था के उसकी नकल तुमसे मँगाऊँ। तुमने 'दसातीर' मुझसे माँगी, उसी सहीफ़ए[३] मुकद्दम की कसम के वो मेरे पास नही है। जी में कहोगे के अगर 'दसातीर' नही तो फरहग की ख़ाहिश क्यो है। हक यों है के बाज़[४] लुगात के ऐराब[५] याद नही। इस वास्ते 'फरहग' की ख़ाहिश

१. सर्वज्ञ। २. भाग्य में अंकित। ३. पवित्र पुस्तक कुरान। ४. शब्द।
५. मात्राओं का उच्चारण।

है! अगर उस फरहग की नकल भेज दोगे तो मुझ पर अहसान करोगे।'दसातीर' मेरे पास होती तो आज इस ख़त के साथ उसका भी पार्सल भेज देता। हाँ साहब, अगर 'दसातीर' होती और मै भेज देता तो अलबत्ता भाई साहब का मशकूर होता, दीनो दुनिया मे क्यो माजूर होता? इरसाले[1] इहिदा पर हुसूले[2] अज्र क्यो मुतरत्तिब हो गया? भाई वो मजहब अख्तियार किया चाहते है और तुम उस मजहब को हक जानते हो के मै जो वास्ता उसके ऐलानो शीव[3] का होता, तो इन्दिल्लाह[4] मुझको इस्तहकाक[5] अज्र पाने का पैदा होता। अपने बाप को समझाओ, और एक शेर मेरा और एक शेर हाफिज का और एक शेर मौलवी रूम का सुनाओ--

गालिब—

दौलत[6] बगलत न बुवद अज सई पशेमाँ शौ
काफिर न तुवानी शुद नाचार मुसल्माँ शौ

हाफिज

जगे[7] हफ़्तादो दो मिल्लत हमा रा उज्र बिने
चूँ न दीदन्द हकीकत रहे अफसाना जदन्द

---

१. उपदेश देने पर। २. फल प्राप्ति। ३. प्रकाशन। ४. ईश्वर के लिए। ५. पुण्य प्राप्त करने का अधिकार। ६. यदि तुम्हारी गलतियो से ऐश्वर्य प्राप्त न हो तो यह तुम्हारी गलती है। यदि काफिर नही बना है तो विवशता से मुसलमान बन जा। ७ यह बहत्तर फिर्कों का झगड़ा किसी न किसी कारण से होगा। इन लोगो ने वास्तविकता को नही समझा और किस्से-कहानियो के आधार पर चल रहे है।

मौलना—

मजहबे[1] आशिक़ ज मज़हबहा जुदास्त
आशिकाँ रा मज़हबो मिल्लत खुदास्त

रात को खूब मेह बरसा है। सुबह को थम गया है। हवा सर्द चल रही अब्रे तुनक[2] छा रहा है। यकीन है के तुम्हारी जद्द ए माजिदा मय अपनी बहू और पोते के रवान-ए लोहारू हो। कल आज की रवानगी की खबर थी। ये लडका सईदे[3] अज़ली है। अब्र का मुहीत[4] होना और हवा का सर्द हो जाना खास उसकी आसायश के वास्ते है। मेरा मज़र सरे राह है। वहाँ बैठा हुआ ये खत लिख रहा हूँ। मुहम्मदअली बेग उधर से निकला।

'भई मुहम्मदअली बेग, लोहारू की सवारियाँ रवाना हो गईं?'

'हज़रत अभी नही।'

'क्या आज न जाएँगी?'

'आज ज़रूर जाएँगी, तैयारी हो रही है।'

मरकूम ए शम्बा यकुम जून वक़्त सुबह छ बजे, सात के अमल में।

९

(जून १८६१)

जाने गालिब,

याद आया है के तुम्हारे अम्मे[5] नामदार मे सुना है के लुगात 'दसातीर' की फरहंग वहाँ है। अगर होती तो क्यो न भेज देते? खैर,

आँचे मा[6] दरकार दारेम अक्सरे दरकारे नीस्त

तुम समरे[7] नौरस हो उस निहाल के जिसने मेरी आँखो के सामने नश्वो[8] नुमा पाई है, और मैं हवाखाह[9] व सायानशीन उस निहाल[10]

१. प्रेमी का धर्म सब धर्मों मे भिन्न है। आशिको का धर्म केवल ईश्वर है। २. झीना। ३. जन्म से शुभ। ४. छाना, घेरना। ५. सम्मानित चाचा। ६. मनुष्य की इच्छाए पूर्ण नही होती, वैसे हमारे पास जो कुछ है वही पर्याप्त है। ७. मरस फल। ८. पालन पोषण। ९. शुभेच्छु। १०. पेड़।

का रहा हूँ। क्यो कर तुम मुझको अज़ीज़ न होगे ? रही दीद[1] वादीद, उसकी दो सूरते—तुम दिल्ली मे आओ या मै लोहारू आऊँ ? तुम मजबूर, मै माज़ूर। खुद कहता हूँ के मेरा उज्र ज़िन्हार मसमू न[2] हो, जब तक न समझ लो के मै कौन हूँ और माजरा क्या है।

सुनो, आलम दो है—एक आलमे अरवाह[3] और एक आलमे[4] आबो गिल। हाकिम इन दोनो आलमो का वो एक है जो खुद फरमाता है—लेमनिल[5] मुल्कुल योम, और फिर आप जवाब देता है—लिल्लाहुल[6] वाहदुल क़ह्हार, हरचन्द कायद ए आम ये है के आलमे आबो गिल के मुजरिम आलमे अरवाह मे सज़ा पाते हैं। लेकिन यो भी हुआ है के आलमे अरवाह के गुनह-गार को दुनिया मे भेज कर सज़ा देते है। चुनाँ चेमैं आठवी रज्जब सन् १२१२ हि० मे रूबकारी के वास्ते यहाँ भेजा गया। तेरह बरस हवालात में रहा। ७ रज्जब सन् १२२५ हि० को मेरे वास्ते हुक्म दवामे हब्स सादिर हुआ। एक बेड़ी मेरे पाँव में डाल दी और दिल्ली शहर को ज़िन्दाँ मुकर्रर किया और मुझे उस ज़िन्दाँ मे डाल दिया। फिक्रे नज़्मो नस्र को मशक़्क़त ठहराया। बरसो के बाद मै जेलखाने मे से भागा। तीन बरस बिलादे[7] शर्किया में फिरता रहा। पायानेकार[8] मुझे कलकत्ते से पकड़ लाए और फिर उसी महबस[9] मे बिठा दिया। जब देखा के ये कैदी गुरेज़पा[10] है, दो हतकड़ियाँ और बढा दी। पाँव बेड़ी से फिगार,[11] हात हतकडियो से ज़ख्मदार; मशक़्क़त मुकर्ररी और मुश्किल हो गई। ताकत यक[12] कलम ज़ायल हो गई। बेहया हूँ। साले गुज़िश्ता बेड़ी को ज़ाविय ए ज़िन्दाँ मे छोड मय दोनो हतकडियों के भागा।

---

१. मेल मिलाप। २. सुना न जाए। ३. आध्यात्मिक जगत। ४. भौतिक जगत। ५. सब प्रभुत्व उसी का है, किस का प्रभुत्व है। ६. ईश्वर एक है और वह रुद्र है। ७. पूर्वी नगर। ८. अन्ततो गत्वा। ९. कारागृह। १०. भागने वाला। ११. घायल। १२. एक दम।

मेरठ, मुरादाबाद होता हुआ रामपूर पहुँचा। कुछ कम दो महीने वहाँ रहा था के फिर पकडा आया। अब अहद किया के फिर न भागूगा। भागू क्या ? भागने की ताकत भी तो न रही। हुक्मे रिहाई देखिए कब सादिर हो। एक जईफ[1] सा अहतमाल है के इसी माह ज़ीहज्जा सन १२७७ हि० मे छूट जाऊ। बहर तकदीर, बाद रिहाई के तो आदमी सिवाय अपने घर के और कही नही जाता, मै भी बाद नजात सीधा आलमे अरवाह को चला जाऊगा।

फर्रुखाँ[2] रोज के अज़ खान ए ज़िन्दाँ बरवम
सू[3] ए शहरे खुद अजी वादी ए वीराँ बरवम

गाने मे गजल के सात शेर काफी होते है। दो फारसी गज़ले, दो उर्दू गज़ले अपने हाफ़िज़े की तहवील मे भेजता हूँ, भाई साहब की नज़र।

अज़[4] जिस्म बजान निकाब ता के
ई गज दरी खराब ता के
ई गौहरे पुर फ़रोग या रब
आलूद ए खाको आब ता के

---

१. निर्बल विचार। २. वह दिन शुभ होगा जिस दिन मै इस कारावास से छूटूँगा, सुनसान कबरिस्तान में शयन करूगा। ३. वह दिन शुभ होगा जिस दिन हम इस कारावास से मुक्त होगे। इस सुनसान जगल से निकल अपने नगर की ओर जाएगे। ४. आत्मा पर शरीर का आवरण कब तक पड़ा रहेगा ? यह कोप इस जगल मे कब तक रहेगा ? हे ईश्वर, यह छवि युक्त मोती कीचड़ में कब तक पड़ा रहेगा? यह पवित्र मार्ग का पथिक भोग-विलास मे कब तक विवश बना रहेगा। विद्युत की उद्विग्नता क्षणिक होती है। हम और हमारी उद्विग्नता कब तक ? आत्मा मुक्ति के लिए कब तक प्रयत्नशील रहेगी ? हृदय अप्रसन्नता में कब तक बेचैन रहेगा ? तुमने अगणित जिज्ञासाएं है। मेरी वेदनाओ का लेखा कब तक चलेगा ? 'ग़ालिब' पूछता है—हे प्रभो, मेरा मन इस दुविधा में कब तक डूबा रहेगा !

ईं राहरवे मसालिके कुद्स
वा माँद ए खुर्दो खाव ता कै
बेताबिए वर्क जुज़ दमे नीस्त
मा, वी हमा इज्तराब ता कै
जाँ दर तलबे नजात ता चन्द
दिल दर तावे इताव ता कै
पुरसिश ज़ तो बे हिसाब बायद
गम हाए मरा हिसाब ता कै
'ग़ालिब' व चुनी कशाकश अन्दर
या हज़रते बूतुराव ता कै
दोश[1] कज़ गर्दिशे बख्तम गिलह बर रूए तो बूद
चश्म सू ए फ़लको रू ए सुखन सू ए तो बूद

१· अपने दुर्भाग्य की शिकायत मैंने कल आपके सम्मुख की। दृष्टि आकाश की ओर थी और बातचीत आप से कर रहा था। जिस वस्तु को आपने रात मे शमा समझा और क्रोध मे आकर आप चले गए, वह क्या थी ? मेरी साँस आपके स्वभाव के आवरण को हटाने वाली थी। यदि बनाने वाले ने तुम्हारी आकृति अत्यन्त सूक्ष्म बना दी तो इसमें आश्चर्य क्या है ? वह स्वय तुम्हारी आकृति को देखकर आश्चर्य करने वालो मे सम्मिलित था। मेरे हृदय की बदनामी हवा की गति की पहुँच मे न रहे। अन्तत. मेरा हृदय भी तुम्हारी अलको मे बन्दी था। मरना और बलिदान देने की भावना केवल तुम्हारी भुजाओ को कष्ट देने के लिए थी। कार्य मे आने वाली कठिनाइयो को मैं पसन्द करता हूँ। यह वही कठिनता है जो सदैव तुम्हारी भौंहो में रहती थी। उसके मरने के पश्चात् उसकी कब्र के आस पास लाला और गुलाब खिलेंगे। 'ग़ालिब' के दिल ने आप के दर्शन की कैसी लालसाएँ थी।

के ताने को ताजियाना[1] और मुझको घोड़ा बनाया। वो इलाका और वो पैवन्द लोहारू के सफ़र का माना[2] व मुजाहम क्यो हो ? रईस की तरफ से बतरीके वकील महकम ए कमिश्नरी मे मुअय्यन नही हूँ। जिस तरह उमरा वास्ते फुकरा के वजह माश मुकर्रर कर देते है, उसी तरह इस सरकार से मेरे वास्ते मुकर्रर है। हाँ, फ़कीर से दुआ ए खैर और मुझसे इस्लाह नज्म मतलूब है। चाहूँ दिल्ली रहूँ, चाहे अकबराबाद, चाहूँ लाहौर, चाहे लोहारू। एक गाड़ी कपड़ो के वास्ते किराया करूँ, कपडो के सन्दूक मे आधी दर्जन शराब धरूँ। आठ कहार ठेके के लूँ। चार आदमी रखता हूँ, दो यहाँ छोड़ूँ, दो साथ लूँ; चल दूँ। रामपूर से जो लिफाफा आया करेगा, लडको का हाफिज लोहारू भिजवाया करेगा। गाडी हो सकती है, शराब मिल सकती है, कहार बहम पहुँच सकते है। ताकत कहाँ से लाऊँ ? रोटी खाने को बाहर के मकान में से महलसरा मे, के वो बहुत क़रीब है, जब जाता हूँ, तो हिन्दुस्तानी घडी भर मे दम ठहरता है और यही हाल दीवानखाने में आकर होता है। वाली ए रामपूर ने भी तो मुर्शदजादे की शादी में बुलाया था; यही लिखा गया के मैं अब मादूमे महज़ हूँ। तुम्हारा इकबाल तुम्हारे कलाम को इस्लाह देता है। इससे बढकर मुझसे खिदमत न चाहो।

भाई के और तुम्हारे देखने को जी बहुत चाहता है, पर क्या करूँ ? अकरब[3] व कौस[4] के आफताब याने नवम्बर-दिसम्बर में क़स्द तो करूँगा; काश, लोहारू की जगह गुडगाँवा होता या बादशाहपूर होता। कहोगे के रामपूर क्या नजदीक है ? वहाँ गए को दो बरस हो गए। यहाँ इनहतात[5] व इज्मे-हलाल[6] रोज़[7] अफज़ूँ, न तुम यहाँ आ सकते हो और न मुझमें वहाँ आने का दम। बस, अगर नवम्बर-दिसम्बर में मेरा अखीर हमला चल गया, बेहतर; वर्ना—

---

१. कोडा। २. रुकावट और बाधा। ३ वृश्चिक ४. धन। ५, बुढापा। ६ निर्बलता। ७ नित्य वृद्धिशील।

मिर्ज़ा अलाउद्दीन अहमदखां 'अलाई' व 'नसीमी' के नाम

अं[1] वाए ज़ महरूमी दीदार दिगर हेच ?

—ग़ालिब

११

(१५ अक्टूबर १८६१)

मेरी जान,

क्या कहते हो ? क्या चाहते हो ? हवा ठंडी हो गई। पानी ठंडा हो गया। फ़सल अच्छी हो गई। अनाज बहुत पैदा हो गया। तौकी ए जानशीनी मुझसे तुमको पहुँचा। खिरका पाया, सबह[2] व सज्जादा का यहाँ पता नही, वर्ना वो भी अज़ीज न रखता। इससे बढ़कर ये के भाई ने शफा पाई, उस्ताद मीर जान पहुँच गए। आखिर अक्तूबर मे या आगाज़ नवम्बर में 'नैयरे रख़्शाँ' को भी वही लो। फिर अकरबो कौस के आफताब का क्या ज़िक्र ? आबान माह व आज़ुर माह से क्या ग़र्ज़ !

वसे[3] तीर व दैमाह व उर्दीवहिश्त
बर आयद के मा खाक बाशीमो खिश्त

उस्ताद मीर जान को, इस राह से के मेरी फूपी उनकी चची थी और ये मुझसे उम्र मे छोटे है, दुआ; और इस रू से के दोस्त है, और दोस्ती में कमी व बेशी सिन[4] ष साल की रिआयत नही करते, सलाम, और इस सबब से के उस्ताद कहलाते है बन्दगी; और इस नज़र से के ये सैयद ह, दरूद;[5] और माफिके मज़मून इस मिसरे के "सिवा अल्लाह् वल्लाह् माफ़िल वुजूद"

---

१. दुख इस बात का है कि तुम्हारे दर्शनों से वञ्चित हो गया हूँ। २. माला और नमाज़ का आसन। ३. बहुत से तीर, दै और उर्दी वहिस्त महीने आए लेकिन हम मिट्टी के मिट्टी रहे, जिससे ईंट बनती है। ४. आयु। ५. अभिवादन।

हज़रत, वो 'शर्फनामा' नही है। किसी अहमक ने "शर्फनामा" मे से कुछ लुगात अक्सर गलत, कमतर सही, चुनकर जमा किए है। न दीवाचा[1] है के उससे जामा का हाल मालूम हो, व खातमा है के अहदो[2] अस्र का हाल खुले। वाई हमा मिया जियाउद्दीन के पास है। अगर वो आजाएँगे तो उनसे कह दूँगा। अगर वो लावेगे तो उनको कीमत देकर 'अलाई मौलाई' को भेज दूँगा।

खस्सी बकरो के गोश्त के कलिए, दो प्याज़े, पुलाव, कबाब, जो कुछ तुम खा रहे हो, मुझको खुदा की कसम, अगर उसका कुछ खयाल भी आता हो। खुदा करे बीकानेर की मिस्री का कोई टुकड़ा तुमको मयस्सर न आया हो। कभी ये तसव्वुर करता हूँ के मीर जान साहब उस मिस्री के टुकड़े चबा रहे होगे तो यहाँ मै रश्क से अपना कलेजा चाबने लगता हूँ।

सेशम्बा, १५ माहे अक्तूबर सन् १८६१ ई०।

नजात का तालिब
—गालिब

१२

मिर्ज़ा अलाई,

पहले उस्ताद मीर जान साहब के कहरो गज़ब से मुझको बचाओ, ताके मेरे हवास जो मुन्तशिर हो गए है, जमा हो जाएँ। मै अपने को किसी तरह के क़ुसूर[3] का मौरद नही जानता। झगडा उनकी तरफ से है। तुम उसको यो चुकाओ याने अगर उनको सिर्फ आशनाई व मुलाक़ात मजूर है तो वो मेरे दोस्त है, शफीक है, मेरा सलाम क़ुबूल फरमाये। और अगर करावत व रिश्तेदारी

---

१. भूमिका। २. युग। ३. अपराध का कारण।

मलहूज[1] है तो वो मेरे भाई है, मगर उम्र मे छोटे, मेरी दुआ कुबूल फरमाये। साहबीन की राय का इख्तलाफ मशहूर है। मुझसे कुछ नही हो सकता। मगर हर एक कौल जुदा-जुदा लिखूँ। आज न लिखा, न सही, दो-चार दिन के बाद लिखूँगा। तुम समझ तो गए होगे, के, 'साहबीन' मिर्जा कुर्बान अली बेग और मिर्जा शमशाद अली बेग है। भाई साहब की रज़ा जोई मुझको मजूर, और ये गजल मारूज है। मेरी तरफ से सलाम कहो—

अज़[2] मन गज़ले गीरो व फरमाए के मुतरिब
दर नै दमद अज़ रू ए नवाजिश दो से दम रा
ज़ुज[3] दफे गम ज़ियादा न बूदस्त कामे मा

---

१ लिहाज। २. मेरी यह गजल लीजिए और गायक को आदेश दीजिए। वह थोड़ी देर के लिए कृपा करके वशी मे गाए।

३. वेदना को दूर करने के अतिरिक्त हमारा कोई उद्देश्य नही था, जैसे दिन में जलने वाला दीपक निरर्थक है उसी तरह दुर्दिन मे हमारा जाम व्यर्थ हो गया। उसके एकान्त कक्ष मे वायु भी नही पहुंचती। सभवत वायु मार्ग के अणुओ तक हमारा सन्देश पहुंचा दे। हे प्रात समीर उसकी पोशाक की गध ले आ। हमारा मस्तिष्क पुष्प की सुगन्ध से सन्तुष्ट नही होता। हम सदैव हमा के लिए दाने फेकते है किन्तु हमारे जाल मे चीटियाँ आती है और सारे दाने ले जाती है। तुमने कहा है कि जब वह हृदय की भावना से परिचित होगा तो उसका हृदय पसीज जाएगा। प्रिय के सामने अपनी स्थिति का वर्णन तो दूर रहा, हम अपना नाम भी नही ले सकते। हमारा सन्देश हम तक और हमारा अभिवादन भी हम तक। हमारा अभिवादन और सन्देश किसको व्यथित कर सकता है? ससार मे हमारा उद्देश्य विनाश के अतिरिक्त कुछ नहीं। हमारी जैसी विपत्ति, हे ईश्वर किसी पर न आए। हजरत हाफिज के कथनानुसार, गालिब, प्रेम करने के कारण हमारा नाम रहती दुनिया तक रहेगा।

गज़ल

गोई चरागे रोज़े सिया हस्त जामे मा
दर खिलवतश गुजर न बुवद बाद रा मगर
सर सर ब ख़ाक रसानद पयामे मा
आँ बादे सुवह इतरे अज़ाँ पैरहन बियार
तस्की ज़ बू ए गुल न पिज़ीरद मशामे मा
हर बार दाना बहर हमा अफगनेम व मोर
आयद बदाम व दाना रुबायद ज़ दामे मा
गुफ़्ती चूँ हाले दिल शुनवद मेहरबाँ शवद
मुश्किल के पेशे दोस्त तुवाँ बरद नामे मा
अज़ मा व मा पयाम व हम अज मा व मा सलाम
रजे दिले मा बाद पयामो सलामे मा
मक़्सूदे मा ज़ दहर हर आईना नेस्तीस्त
या रब के हेच दोस्त मबादा बकामे मा
'गालिब' बकौले हजरते हाफिज ज फ़ैज़े इश्क
सिप्तस्त बर जरीद ए आलम दवामे मा

१३

(१२ नवम्बर १८६१)

चाश्त गाहे से शम्बा, द्वाज दहुम नवम्बर सन् १८६१ ई० ।

आज जिस वक्त के रोटी खाने घर जाता था, शहाबुद्दीनखा तुम्हारा ख
और मिश्री की ठिलिया लेकर आए । मैं उसको लिवा कर घर गया । अप
सामने मिश्री तुलवाई । आध पाव ऊपर दो सेर निकली । खानए दौलत आब

यही काफी व बाफी है; और अब हाजत नही। रोटी खाकर बाहर आया। तुम्हारे इब्ने अम[1] का आदमी, जवाब खत का मुतकाज़ी[2] हुआ के शुतर सवार जाने वाला है। मै खाना खाकर लेटने का आदी हूँ; लेटे लेटे मिसरी की रसीद लिख दी। मतालिबे मुन्दर्जा खय का जवाब बशर्त्ते हयात कल भेजूँगा।

१४

(२९ फरवरी १८६२ ई०)

यक शम्बा ९ फरवरी १८६२ ई०।

साहब,

सुबह जुमे को मैने तुमको खत लिखा। उसी वक़्त भेज दिया। पहर दिन चढ़े सुना के शब को फिर दौरा हुआ। गया, खुद उनसे हाल पूछा। अली मुहम्मद बेग की जबानी ये मालूम हुआ के बनिस्वत दौरा[3] हाय साबिक खफ़ीफ था और इफाक़ा[4] जल्द हो गया। कल मिर्जा शम्शादअली बेग नाकिल[5] थे के मुझसे अली हुसेन कहते थे, के नवाब साहब फरमाते हैं के लोहारू चलोगे और हमारी दाल रोटी क़ुबूल करोगे ? मैने कहा के मै दाल-रोटी चाहता हूँ; मगर पेट भर कर। गालिब कहता है के इस बयान से ये मालूम हुआ के सालिक[6] से सुलूक[7] मजूर नही। तन्हा[8] हवा ए शमशाद दर सरे अस्त।

रमूज़े[9] मुमलिकते खीश खुसरवाँ दानन्द
गदा ए गोशा नशीनी तू हाफिजा मखरोश

—गालिब

---

१. भतीजा। २. तकाजा करने वाला। ३ पहले के सभी दौरो की अपेक्षा। ४. आराम। ५. वर्णनकर्त्ता। ६. उपकर्त्ता। ७. उपकार। ८. शमशाद से भेंट करने की इच्छा बनी हुई है। ९ अपने साम्राज्य के रहस्य बादशाह ही जानते हैं। हाफ़िज़, तुम एकान्त मे बसते हो, फिर शोर क्यो मचाते हो ?

१५

(१५ फरवरी १८६२)

शम्बा १५ शाबान व फरवरी वक्त नमाजे जुहर[1]।

'नैयरे[2] असगर' सिपहर सुखन सराई मौलाना अलाई के खातिर निशान व दिल नशीन हो के आज सुबह को ५ या ६ घडी दिन चढे दोनो भाई साहब तशरीफ लाए। मै गया और मिला। अलीहुसेनखा को भी देखा। थोडी देर के बाद भाई साहब वालिदा साहबा के पास गए। मै घर आया, खाना खाया। दोपहर को तुम्हारा खत पाया। दो घडी लोट-पोट कर जवाब लिखा और डाक मे भिजवाया।

ये मर्ज जो भाई को है, इस राह से के जिदे[3] सेहत है, मकरूहे[4] तबा है, वर्ना हरगिज मूजिबे खौफो खतर नही। मै तो भूल गया था, अब भाई के बयान से याद आ गया के बारह-तेरह बरस पहले एक दिन नागाह ये हालत तारी[5] हो गई थी। वो मौसम जवानी का था और हजरत आदी ब अफ्यून न थे। तन्किया[6] वर्क फौरन और ब इसहाल बाद चन्द रोज अमल मे आया। अब सिने[7] कहोलत, इस्तमाले अफयून मजीद अले, दौरा जल्द-जल्द मुतवातिर हुआ। इज्तराव अजराहे मुहब्बत है। आज रू ए हिकमत इज्तराव की कोई वजह नही। नजरी[8] मे यकता हकीम इमामुद्दीनखा वो टौक, अमली[9] मे चालाक हकीम अहसनुल्लाखा, वो करोली रहे। हकीम महमूदखा वो हमसायए दीवार ब दीवार, हकीम गुलाम नजफखा, वो दोस्ते कदीम सादिकु लविला[10] हकीम 'बका' के खानदान मे दो साहब मौजूद, तीसरे हकीम 'मझले', वो भी शरीक हो जाएँगे। अब आप फरमाइए हकीम

१. मध्याह्नोपरान्त। २. कवित्व के आकाश के लघु सूर्य। ३. स्वास्थ्य-विरुद्ध। ४. अरुचिकर। ५. छा गई थी। ६. शौच और उल्टी से कुछ दिनो मे दोषो का पचन हुआ। ७. वृद्धावस्था। ८ सैद्धान्तिक ज्ञान। ९ व्यावहारिक ज्ञान। १०. सच्ची मित्रता रखने वाले।

कौन है ? हाँ दो-एक डाक्टर व ऐनग्रार हमकौमी हुक्काम नामवर या कोई एकाध वैद, सो मन्जवी[1] और गुमनाम। बहरहाल, खातिर जमा रखो; खुदा के फज्ल पर नजर रखो। सुभान अल्लाह्, तुम मुझसे सिपारिश करो अमीनुद्दीनखाँ की। क्या मेरे पहलू मे दिल या मेरे दिल मे ईमान, जिसको मुहब्बत भी कहते है, बकद्रे परे पश्शा[2] व सरे मोर[3] भी नही ? मालिजा हुक्मा की राह पर रहेगा। नदीमी[4] और गमखारी मे अगर कुसूर करूँ तो गुनाहगार। मियाँ, ऐसे मौके में राए अतिब्बा मे खिलाफ कम वाके होता है। मरज मुशख्खस[5] दवा मुअय्यन,[6] सूए[7] मिजाजे साजिज नही, माद्दी है, और माद्दा वारिद[8] है। कोई तबीब सिवाय तनकिए के कुछ तदबीर न सोचेगा। तनकिए मे सिवाय मुखरिजाते बलगम और कुछ तजवीज न करेगा। तजवीज है के दो दिन के बाद तनकियए खास हो और अयारिज का मुस्हिल दिया जाए। अस्मा[9] व आयात[10] शफाबख्श मुकर्रर है, रद्दे सेहर व दफे बला उनके जरिए से मुतसख्खिर है, लेकिन इन मुल्लाओं और अजायमखानो[11] ने तह तोड दी है। कुछ नही जानते और बाते बखानते है। तुम्हारे बाप पर कोई सेहर क्यो करेगा ? बेचारा अलग एक ऐसे गोशे मे रहता है के जब तक खास वहाँ का कस्द न करे, कभी कोई वहाँ न जाए। ये खयाल अबस। हाँ, खैरात और मसाकीन से तलबे दुआ और अहलुल्लाह् से इस्तमदाद।[12] शहर मे मसाकीन शुमार से बाहर, अहलुल्लाह् मे एक हाफिज अब्दुल अजीज। मा बखैर शमा बसलामत। दिन और तारीख ऊपर लिख आया हूँ।

नजात का तालिब
—गालिब

---

१. एकान्तवासी। २. मच्छर का पर। ३. चींटी का सिर। ४. मुसाहिबी। ५. निदानित। ६. निश्चित। ७ प्रकृति की विकृति नही। विकारो के कारण है। ८. शीत है। ९. नाम जप। १०. आयत का पाठ। ११. दरिद्र। १२. सहायता चाहना।

१६

(१६ फरवरी १८६२)

यकशम्बा, १६ फ़रवरी सन् १८६२ ई० हगामे नीम रोज।

साहब,

कल तुम्हारे खत का जवाब भेज चुका हूँ। पहुँचा होगा? आज सुबह को भाई साहब के पास गया। भाई जियाउद्दीनखाँ और मिया शहाबुद्दीनखा भी वही थे। मौलवी सदरुद्दीन मेरे सामने आए। हकीम महमूदखा के तौर पर मालिजा करार पाया है। याने उन्होने नुस्खा लिख दिया है, सो उसके माफ़िक हुबूब[1] बन गए हैं। नुक़ू[2] की दवाएँ आज आकर भीगेगी। कल हुबूब के ऊपर वो नुक़ू पिया जाएगा। मगर अन्दाज़ो अदा से ऐसा मालूम होता था के अभी हज़रत मरीज की और उनके हवाखाहो[3] की राय मे क़स्द इस इस्तलाज[4] का मुजबज़ब[5] है। नुस्खे की हकीकत को मीज़ाने[6] नज़र मे तोल रहे है। *उस्ताद मीर जान भी थे। नीम नामाकूल मिर्जा असदबेग भी थे।* सब तरह खैरियत है।

कल तुम्हारे खत मे दो बार ये कलमा मरकूम देखा के दिल्ली बड़ा शहर है। हर किस्म के आदमी वहाँ बहुत होगे। अै मेरी जान, ये वो दिल्ली नही है, जिसमे तुम पैदा हुए हो। वो दिल्ली नही है जिसमे तुमने इल्म तहसील किया है; वो दिल्ली नही है, जिसमे तुम शाबान बेग की हवेली मे मुझसे पढ़ने आते थे, वो दिल्ली नही है जिसमे मै सात बरस की उम्र से आता जाता हूँ, वो दिल्ली नही है जिसमे इक्यावन बरस से मुकीम हूँ। एक कैप है—मुसलमान, अहले

१. गोलिया। २. काढ़ा। ३ शुभेच्छु। ४. चिकित्सा। ५ दुविधा। ६. दृष्टितुला।

हुर्फा या हुक्काम के शागिर्द पेशा, बाकी सरासर हुनूद। माजूल[1] बादशाह के-जुकूर[2], जो बकियतुस्सैफ[3] है, वो पाच-पाच रुपया महीना पाते है। उनास[4] मे से जो पीरजन[5] है, वो कुटनिया और जवाने कसबिया। उमरा ए इस्लाम मे से अमवात[6] गिनो, हसनअलीखां वहुत बड़े बाप का बेटा, सौ रुपए रोज़ का पिन्सनदार, सौ रुपए महीने का रोज़ीनादार बन कर नामुरादाना मर गया। मीर नसीरुद्दीन, बाप की तरफ से पीरजादा, नाना और नानी की तरफ से अमीरज़ादा, मजलूम मारा गया। आगा सुल्तान, बख़्शी मुहम्मद अलीखां का बेटा, जो ख़ुद भी बख़्शी हो चुका है, बीमार पडा। न दवा, न गिज़ा; अन्जामेकार मर गया। तुम्हारे चचा की सरकार से तज्हीज़[7] व तकफीम हुई। अहया[8] को पूछो, नाज़िर हुसेन मिर्ज़ा जिसका बड़ा भाई मक़्तूलो मे आया, उसके पास एक पैसा नही। टके की आमद नही। मकान अगरचे रहने को मिल गया है, मगर देखिए छुटा रहे या जब्त हो जाए। बुड्ढे साहब, सारी अमलाक बेच कर नौश जा[9] कर कर, व यकबीनी[10] व दो गोश, भरतपूर चले गए। ज़ियाउद्दौला की पान सौ रुपए किराए की अमलाक वागुजाश्त होकर फिर कुर्क हो गई। तवाह, ख़राव लाहौर गया, वहाँ पड़ा हुआ है। देखिए क्या होता है। किस्सा कोताह, "किला" और झज्जरगढ, और बहादुरगढ और बल्लबगढ़ और फर्रुखनगर कमोबेश तीस लाख रुपए की रियासते मिट गई। शहर की इमारतें ख़ाक मे मिल गई। हुनरमन्द आदमी यहाँ क्यो पाया जाए? जो हुकुमा का हाल लिखा है, वो बयान[11] वाके है! सुलहा[12] और ज़ुहाद[13] के बाब मे जो हर्फ मुख़्तसर मैंने लिखा है, उसको भी सच जानो। अपने वालिद माजिद की तरफ से ख़ातिर जमा रखो। सेहर-आसेब का गुमान हर्गिज़ न करो। ख़ुदा चाहे

---

१. सिंहासनच्युत। २. पुरुष। ३. मरने ने बचे हुए। ४. स्त्रिया। ५. बूढ़िया। ६. मृत्युएँ। ७. क्रिया कर्म। ८ जीवित। ९. खा-पीकर। १०. बिना माल असबाब के, छड़े। ११. सत्य। १२. सदाचारी। १३. ईश्वर भक्त।

"जमीरान" बरवजने दुर्गरान लुगते अरबी[1] है न मारिब। मैं ये नही कह सकता के ये फूल हिन्दुस्तान मे होता है या नही। इसकी तहकीकात अज रू ए 'अल्फाजुल अदविया, मुमकिन है।

आज उसने जुल्लाब लिया। दस दस्त आए। मवाद खूब इखराज हुआ।

फारसी ए गैर फसीह—इमरोज़ फलानी मुस्हिल गिरफ्त। दह दस्त आमदन्द। मवाद खूब बरामद।

फारसी ए फसीह—इमरोज फलानी पुगा दारू ए मुस्हिल आशामेद। ता शाम दह बार निशिस्त, या दह बार ब मुस्तराह रफ्त या दह बादर ब बैतुलखला रफ्त। मादए फासिद चुनांके बायद इखराज याफ्त।

मालूम रहे के लूतियो[2] के मन्तिक मे खुसूसन और अहले फारस के रोजमर्रे में उमूमन 'निशिस्तन' इस्तेआरा[3] है, 'रीदन' का। चुनांचे एक तज्करे मे मरक़ूम है के इस्फ़हान मे एक अमीर नें शोअरा की दावत अपने बाग मे की। मिर्ज़ा सायब और उस अस्र[4] के कई शोअरा जमा हुए। एक शायर के तज्किरे मे उसका नाम मुन्दर्ज है और मै भूल गया हूँ। आकोल था, मगर मेदा उसका ज़ईफ था। हिर्स व शरह के सबब से बहुत खा जाता था, हज़्म न कर सकता था। खाना खा खाकर, शराब पी पी कर दरवाजा बाग का मुकफ़्फिल करके सब सो रहे। इस मर्दे आकोले फिज़ूल ने रात भर मे सारा बाग हग भरा, न एक जगह बल्के कभी उस क्यारी मे और कभी उस रविश पर, कभी उस दरख्त के तले, कभी उस दीवार की जड मे। किस्सा मुख्तसर, गायते शर्मो हया से दो चार घड़ी रात रहे, दीवार से कूद कर चला गया। सुबह को जब सब जागे, उसको इधर उधर ढूँढा, कही न पाया। मगर हज़रत का फुज्ला कई

---

१. अरबी नही और न अरब के लोगो ने इसे अपनाया है। २. अनैतिक व्यभिचार करने वालो की बातचीत मे। ३. ध्वन्यर्थ। ४. युग।

जगह नज़र आया। मिर्ज़ा सायब ने हँस कर फरमाया "यारां[1], शुमा रा चे उफ़्तादा अस्त के मी गोयद फलाने दरे बाग नेस्त ? मी बीनम के मखदूम हमदरी बाग चन्द जा निशिस्ता अस्त।"

सुबह जुमा, ५ रमजान व ७ मार्च साले रस्ताखेज।

रुबाई खत मे लिखना भूल गया। ये मैंने भाई को तहनियत मे भेजी थी–

ऐ कर्दा[2] बमेहर जर फिशानी तालीम
पैदा जे कुलाह तो शिकोहे देहीम
बादा ब तो फरखुन्दा जे यजदाने करीम
परवानगी ए जदीदे अक़्ता ए कदीम

१९

(१९ जून १८६२ ई०)

यार भतीजे, गोया भाई, मौलाना अलाई,

खुदा की दुहाई, न मै वैसा हूँगा जैसा 'नैयर' समझा है और तुम मुझको लिख चुके हो याने खफकानी और खयाल तराश, न वैसा हूँगा जैसा मिर्ज़ा अली हुसेनखां बहादुर समझे होगे।

ऐ काश[3] कसे हर आ चे हस्तम दानद

दोजाने मे मेरा इन्तजार और मेरे आने का तकरीबे शादी पर मदार ! ये भी शोवा है, उन्ही जुनून का जिससे तुम्हारे चचा को गुमान है मुझ पर

---

१. यारो तुम क्या सोचते हो कि अमुक व्यक्ति नही है। मै देखता हूँ के मखदूम बाग में कुछ स्थानो पर बैठा हुआ है। २. तुमने सूर्य को स्वर्णवर्षण का उपदेश दिया। तुम्हारी टोपी से मुकुट की छवि प्रकट होती है। तुम्हे जो पैतृक अधिकार मिला है वह मंगलकारी हो। ३. प्रत्येक व्यक्ति अपने विचार के अनुसार मेरे बारे मे सोचता है।

जुनून का। जागीरदार मैं न था, के एक जागीरदार मुझको बुलाता। गवया मैं न था के अपना साज़ो सामान लेकर चला जाता। दोजने जाकर शादी कमाऊँ और फिर उस फस्ल मे के दुनिया कुर्रए नार[1] हो! लोहारू, भाई के देखने को न जाऊँ और फिर उस मौसम मे के जाड़े की गर्मीए[2] बाज़ार हो!

कल उस्ताद मीर जान साहब ने तुम्हारा ख़त मुझको दिखाया है। मैंने उनको जाने न जाने मे मुतरद्दुद पाया है। जाएँ न जाएँ, मैं अपनी तरफ से तरगीब करता रहता हूँ और कहता रहूँगा। गुलाम हसनखा अगर किसी वक्त आ जाएँगे, तो उनको तुम्हारी तहरीर का ख़ुलासा ख़ातिर निशान करूँगा। हक सुभान ताला इन दोनो साहबो को या एक को इनमे से तौफीक दे या मुझको ताकत या तुमको इन्साफ़ के मेरे न आने को दिल्ली की दिल-बस्तगी[3] पर महमूल न करो। मुझको रश्क है, जज़ीरा नशीनो के हाल पर उमूमन और रईसे फर्रुखाबाद पर ख़ुसूसन के जहाज़ से उतरकर सर जमीने अरब मे छोड़ दिया। अहा, हा, हा!

पड़िए गर बीमार तो कोई न हो बीमारदार
और अगर मर जाइए तो नौहाख़ाँ[4] कोई न हो

कुल्लियात के इन्तबा का इख़्तेताम अपनी ज़ीस्त मे मुझको नजर नही आता। 'क़ाते बुरहान' का छापा तमाम हो गया। 'हकुल तसनीफ' की एक जिल्द मेरे पास आ गई। वो तुम्हारे अम्मे नामदार के नज्र हुई। बाकी जिल्दे जिनका मैं खरीदार हुआ हूँ और दरख़ास्त मेरी मतबे मे दाखिल है, जब तक कीमत न भेज दूँ, क्यो कर आएँ? रुपए की तदबीर मे हूँ। अगर बहम पहुँच जाए तो भेज दूँ। तुम्हारे पास जो 'काते बुरहान' पहुँची है, अगर छापे की है तो सही है। जहाँ तरद्दुद हो, गलत[5] नामए मुलहका में देखलो। ज्यादा इन्क-

---

१. अग्निमडल। २. शोभा। ३. दिलचस्पी। ४ मातम करने वाला। ५. सलग्न अशुद्धिपत्र।

शाफ़ मंजूर हो, मुझसे पूछ लो। अगर कलमी है तो दजए[1] ऐतबार से साकित[2] है। उसको मेरी तालीफ[3] न समझो, बल्के मुझको मोल ले लो और उसको फाड़ डालो। आज योमुल[4] खमीस, १९ जूनुल मुबारक, बारह पर तीन बजे तुम्हारा खत आया। उधर पढा इधर जवाब लिखने बैठा। यहाँ तक लिख चुका था के शेख शहाबुद्दीन सुहरवर्दी आए। तुम्हारा खत उनको दिया। वो पढ़ रहे है, हम लिख रहे हैं। अब्र आया हुआ है। हवा सर्द चल रही है।

२०

जाने गालिब,

दो खत मुतवातिर तुम्हारे पहुँचे। 'मगरवी' उर्फ़ा[5] मे से है। बेश्तर उसके कलाम मे मज़ामीने हकीकत[6] आगीन है। लेकिन 'दामने गिला दारद' व 'गरीवाँ गिला दारद', इस जमीन मे मैने उसकी गज़ल नही देखी। हाजी मुहम्मद जान 'कुदसी' की गज़ल इस जमीन मे है—

दर[7] बज्मे विसाले तो व हगामे तमाशा
नज्जारा जे जुम्बीदने मिज्गा गिला दारद

ये एक शेर उसका मुझे याद है।

भाई, तुम्हारा बाप बद गुमान है। यानी मुझको जिन्दा समझता है। मेरा सलाम कहो और ये शेर मेरा पढ सुनाओ—

गुमाने जीस्त बुवद बर मनत ज बेदर्दी
बदस्तमर्ग, वले बदतर अज़ गुमाने तो नीस्त

---

१. विश्वास। २. रहित, भग्न। ३. सम्पादन। ४. गुरुवार। ५. प्रसिद्ध। ६. वास्तविकता से पूर्ण। ७. जिस समारोह मे आपके दर्शन हुये वहाँ नेत्रों ने निमिषों को भी सहन नही किया।

मुझे काफूर व कफन की फिक्र पड रही है। वो सितमगर शेरो सुखन का तालिब है। जिन्दा होता, तो वही क्यो न चला आता ? मुझ पर से ये तकलीफ उठवालो और तुम इस जमीन मे चन्द शेर लिख कर भेज दो। मैं इस्लाह देकर भेज दूँगा। 'असाए[1] पीर ब जाये पीर'। वल्लाह मेरा कलामे-हिन्दी या फारसी कुछ मेरे पास नही है। आगे जो कुछ हाफिज़े मे मौजूद था वो लिख भेजा। अब जो कुछ याद आ गया वो लिखता हूँ—

ग़ज़ल—

बा[2] मन के आशकम सुखन अज नगो नाम चीस्त
दर अम्रे खास हुज्जते दस्तूरे आम चीस्त
मस्तम ज़े खूने दिल के दो चश्मम अज़ा पुरस्त
गोई मखोर शराबो न बीनी बजाम चीस्त
बा दोस्त हर के बादा ब खिलवत खुरद मुदाम
दानद के हूरो कौसरो दारुस्सलाम चीस्त

---

१. बूढे की लकड़ी बूढे का प्रतिनिधित्व करती है। २. मुझ प्रेमी से बदनामी की बाते करना क्या अर्थ रखता है ? इस विशेष कार्य में सामान्य नियमो से क्या लेना देना है ? मेरे नेत्र हृदय रक्त से भरे है, मै उन्ही से मस्त हूँ। तुम मुझसे कहते हो सुरा न पीऊँ, किन्तु यह नही देखते के जाम मे क्या रखा है ? जो व्यक्ति अपने प्रिय के साथ एकान्त में सुरापान करे वह जानता है के अप्सरा क्या है, कौसर (स्वर्गीय स्रोत) और मंगल भवन क्या है ? हम वेदना मे डूबे हुए है और हमारी औषधि शराब है। इससे हलाल और हराम (ग्राह्य और त्याज्य) की बाते क्यो करते हो ? जो दयालु लोग होते है उनसे प्याले का कुछ हिस्सा मिलता है, देखना है सुरा-पायी के प्यालो को आकाश से क्या मिलता है ? 'गालिब' ने यदि गुदड़ी और कुरान न बेच दी होती तो वह शराब का मूल्य क्यो पूछता ?

मा खस्त ए गमेम व बुवद मय दवा ए मा
बाखस्तगाँ हदीसे हलालो हराम चीस्त
अज कास ए किराम नसीवस्त खाक रा
त अज फलक नसीव ए कासे किराम चीस्त
'गालिव' अगर न खिरका व मुसहिफ बहम फरोख्त
पुरसद चराके निरखे मये लाल फाम चीस्त

२१

(१८ जुलाई १८६२)

लो साहव, परसो तुम्हारा खत आया और कल दोपहर को उस्ताद मीर जान आये। जव उनसे कहा गया तो ये जवाव पाया के मैं मुद्दत से आमादए[1] सफरे लोहारू बैठा हूँ। हकीम साहव की गाडी की रवानगी के वक्त मैंने अपनी गठरी भेजी थी। वो फिरी आई इस मुराद से के गाडी मे जगह गठरी की, न सवारी की। नाचार चुप हो रहा। अब वो गठरी वैसी ही बँधी हुई रखी है। जब मियाँखाँ और वजीरखाँ रवाना होंगे और मुंशी इमदाद हुसेन मुझको इत्तिला देंगे तो मैं फौरन चल दूँगा। पा वरिकाव हूँ, कल ही आखिरे रोज गुलाम हसनखाँ आये। कल उन्होंने चौथे दिन खाना खाया था। हैजा हो गया था। कै मुतवातिर, दस्त पै व पै, गरज़ वच गये। कहते थे के आज जुलाई की १७ तारीख है, तेरह दिन यह और पांच दिन अगस्त के और न जा सकता। तनखा लेकर वाट बूट कर एक दिन न ठहरूँगा। लोहारू की राह लूँगा। मिर्जा शम्शादअली वेग से तुम्हारा पयाम कहा गया। क्या वईद[2] है जो गुलाम-हसनखाँ के हम सफर हो जाएँ। भाई की तरफ से मुंशी इमदाद हुसेनखाँ को लिखवा भेजो के मियाँखाँ वगैरा के साथ उस्ताद को जरूर भेजना और

---

१. लोहारू की यात्रा के लिये तैयार। २. दूर।

तुम अपनी तरफ से अपने इब्ने अम् गुलाम हसनखाँ को वहवालए मेरी तहरीर के अयादत[१] और अवायल अगस्त मे रवानगी की ताकीद लिख भेजो।

दर वज्मे विसाले तो व हगामे तमाशा
नज्जारा ज़ जुम्वीदने मिज्गा गिला दारद

ये जमीन 'कुदसी' अले उर्रहमाँ के हिम्से मे आ गई है। मै इसमें क्योकर तुख्मरेजी[२] करूँ? और अगर वेहयाई से कुछ हात-पाव हिलाऊ तो इस शेर का जवाब कहाँ से लाऊँ?

हर्गिज[३] न तवा गुफ्त दरी काफिये अशार
बेजास्त बिरादर अगर अजमन गिला दारद

इल्तवाए[४] शुर्बे शराब—२२ जून। शुरू शराब १० जुलाई।
अलमिन्नतु[५] लिल्लाह के दरे मयकदा वाजस्त।

२२

(२७ जुलाई १८६२)

सुबह यकशबा २७ जुलाई सन् १८६२ ई०।

मेरी जान,

सुन, पजशबा पजशबा, जुमा नौ, हफ्ता दस, इतवार ग्यारह; एक मिजह[६] बरहम ज़दन मेह नही था। इस वक़्त शिद्दत मे वरस रहा है। अगीठी मे

---

१. मिज़ाज पुर्सी। २. बीज वपन। ३. इस काफिये मे शेर नही कहे जा सकते। यदि भाई इसके लिए शिकायत करता है तो व्यर्थ है। ४. सुरापान का स्थगन। ५ ईश्वर की कृपा है, मधु शाला का द्वार खुला हुआ। ६. पल भर के लिए।

कोयले दहका कर पास रख लिये हैं। दो सतरे लिखी और कागज को आग मे सेक लिया। क्या करूँ ? तुम्हारे खत का जवाब जरूर, लो सुनते जाओ। मिर्जा शमशाद अली बेग को तुम्हारा खत पढवा दिया। उन्होने कहा के गुलाम हुसेनखाँ की मैयत पर क्या मौकूफ है, मुझे आज सवारी मिल जाए, कल चल निकलूँ। अब मै कहता हूँ के ऊँट-टट्टू का मौसम नही। गाडी की तदबीर हो जाए, बस।

पचास बरस की बात है के इलाही बख्शखाँ मरहूम ने एक ज़मीन नई निकाली मैने हस्बुल हुक्म गजल लिखी। बैतुल गजल ये—

पिला दे ओक से साकी जो हमसे नफरत है
प्याला गर नही देता, न दे, शराब तो दे

मकता ये—

असद खुशी से मेरे हात-पॉव फूल गये
कहा जो उसने जरा पाव दाब तो दे

अब मै देखता हूँ के मतला और चार शेर किसी ने लिख कर इस मकते और इस बैतुल गज़ल—को शामिल उन अशार के करके गजल बना ली है और उसको लोग गाते फिरते हैं। मकता और एक शेर मेरा और पाच शेर किसी उल्लू के। जब शायर की जिन्दगी मे गाने वाले शायर के कलाम को मस्ख[1] कर दे, तो क्या बईद है के दो शायर मुतवफ्फा[2] के कलाम मे मुतरिबो ने खल्त कर दिया हो। मकता बेशक मौलाना मगरबी का है, और वो शेर जो मैने तुमको लिखा है और ये शेर जो अब लिखता हूँ—

---

१. विकृत। २ मृत।

दामाने[1] निगह तग व गुले हुस्न तो बिसियार
गुल चीनें बहारे तो जे दामाँ गिला दारद

ये दोनो शेर कुदसी के है। 'मगरबी' कुदमा[2] मे और उर्फा[3] मे है, जैसा 'अराकी'। इनका कलाम दकायक व हकायके तसव्वुफ से लबरेज। 'कुदसी' शाहजहानी शोअरा मे, सायब व कलीम का हम अस्र और हम चश्म, इनका कलाम शोर अगेज, इन बुजुर्गो की तर्जो रविश मे जमीनो आस्मान का फर्क।

भाई को सलाम कहना और कहना के साहब व जमाना नही के इधर मथरादास से कर्ज लिया और उधर दरबारी मल को मारा। उधर खूबचन्द चैनसुख की कोठी जा लूटी। हर एक पास तमस्सुक मुहरी मौजूद, शहद लगाओ चाटो। न मूल न सूद। इससे बढकर ये बात के रोटी का खर्च बिलकुल फूपी के सर। बा ईहमा कभी खान ने कुछ दे दिया, कभी अलवर से कुछ दिलवा दिया, कभी माॅ ने कुछ आगरे से भेज दिया। अब मै और बासठ रुपए आठ आने कलक्टरी के, सो रुपये रामपूर के। कर्ज देने वाला एक मेरा मुख्तारे कार, वो सूद माह व माह लिया चाहे, मूल मे किस्त उसको देनी पडे, इन्कम टैक्स जुदा, चौकीदार जुदा, सूद जुदा, मूल जुदा, बीबी जुदा, बच्चे जुदा, शागिद-पेशा जुदा, आमद वही एक सौ बासठ, तग आ गया। गुजारा मुश्किल हो गया। रोजमर्रा का काम बन्द रहने लगा। सोचा के क्या करूँ, कहाँ से गुजायश निकालूँ? कहर[4] दरवेश, बर जाने दरवेश। सुबह की तबरीद मतरूक, चाश्त का गोश्त आधा, रात की शराबो गुलाब मौकूफ। बीस-बाईस रुपया महीना बचा, रोजमर्रा का खर्च चला। यारो ने पूछा——तबरीदो शराब

---

१. दृष्टि का आँचल छोटा है, तुम्हारे सौन्दर्य के पुष्प अधिक है। तुम्हारे वसन्तपूर्ण उद्यान से फूल चुनते समय मैं अपने सकीर्ण आॅचल की शिकायत कर रहा हूँ। २. प्राचीन। ३. प्रसिद्ध। ४. फकीर का क्रोध फकीर की झोली पर।

कब तक न पीओगे ? कहा गया जब तक वो न पिलाएँगे। पूछा—न पीओगे, तो किस तरह जीओगे ! जवाब दिया के जिस तरह वो जिलाएँगे। बारे, महीना पूरा नहीं गुजरा था के रामपूर से अलावा वजह मुकर्ररी और रुपया आ गया। कर्ज मुतफर्रिक़ अदा हो गया। मुतफर्रिक रहा, खैर रहे। सुबह की तबरीद, रात की शराब जारी हो गई। गोश्त पूरा आने लगा। चूँके भाई ने वजह मौकूफी और बहाली पूछी थी, उनको ये इबारत पढा देना और हमजा-खां को बाद सलाम कहना—

ऐ[1] बेखबर ज लज्जते शर्बे मुदामे मा

देखा, हमको यों पिलाते हैं। दरीबे के बनियों के लौंडों को पढाकर मौलवी मशहूर होना और मसायल अबू[2] हनीफा को देखना और मसायल हैजो[3] निफास में गोता मारना और है और उर्फा के कलाम से हकीकते हक्कहू वहदते वुजूद[4] को अपने दिलनशीं करना और है। मुशरिक[5] वो हैं जो वुजूद को वाजिब व मुमकिन में मुश्तरिक जानते हैं, मुशरिक वो हैं जो मुसलिमा[6] को नुबूअत में खातिम उल मुरसलीन का शरीक गर्दानते हैं, मुशरिक वो हैं, जो नौ मुस्लिमों को अबलाइअम्मा[7] का हम असर मानते हैं। दोजख उन लोगों के वास्ते है। मैं मवहिदे[8] खालिस और मोमिने[9] कामिल हूँ। जबान से 'ला इलाहा इल्लिल्लाह' कहता हूं और दिल में ला मौजूद इल्लिल्लाह समझे हुआ हूँ। अम्बिया सब वाजिबुल ताजीम और अपने-अपने वक्त में सब मुफतरिज्जुत[10] इताअत थे मुहम्मद अलेसलाम पर नुबअत खत्म

१ मैं जो सदा शराब पीता हूँ, अरे मूर्ख तुम उसका आनन्द क्या समझोगे।
२. एक इमाम, मुस्लिम धर्मशास्त्र के एक आचार्य। ३ रज(स्त्राव)। ४ अस्तित्व।
५ बहुदेववादी। ६. मुसलिमा ने अपने को नबी कहा था, कुछ लोगों ने उन पर भरोसा किया था। ७ [illegible]। ८ एकेश्वरवादी।
९. पक्का मुसलमान। १० पूज्य।

हुई, ये खातिमुल मुरसलीन और रहमतुल आलमीन हैं, मकतए नुबूअत का मतला इमामत, और इमामत न इज्माई बल्के मिन अल्लाह है। और इमाम मिन अल्लाह अली अलेमलाम है, मुम्माहसन, मुम्माहुसेन इसी तरह ता मेहदी[1] मऊद अलेमलाम।

[2]वरी जीस्तम, हम वरी वगुजरम

हाँ, इतनी बात और है के इबाहत और जिन्दिका को मरदूद और शराब को हराम और अपने को आसी[3] समझता हूँ। अगर मुझको दोजख मे डालेंगे तो मेरा जलाना मकसूद न होगा, बल्के मै दोजख का ईंधन हूँगा और दोजख की आँच को तेज करूँगा, ताके मुशरिकीन व मुनकिरीन[4] नुबूअत मुस्तफवी व इमामत मुर्त्तजवी उसमे जले। सुनो मौलवी साहब, अगर हटधर्मी न करोगे और कतमाने हक को गुनाह जानोगे, तो अलबत्ता तुमको याद होगा और कहोगे के याद है, जिन रोजो मे तुम अलाउद्दीनखाँ को गुलिस्ताँ और बोस्ताँ पढाते हो और तुमने एक दिन गरीब को दो-तीन तपाँचे मारे है। नवाब अमीनुद्दीनखाँ उन दिनो मे लोहारू है। अलाउद्दीनखा की वालिदा ने तुमको डेवढी पर से उठा दिया। तुम बाचश्म पुरआब मेरे पास आए। मैंने तुमसे कहा के भाई शरीफजादो को और सरदारजादो को चश्मे[5] नुमाई से पढाते है। मारते नही। तुमने बेजा किया। आयन्दा ये हरकत न करना। तुम नादिम हुए। अब वो मकतबनशी तिफ्ल से गुजर कर पीरे[6] हफ्ताद साला के वायज[7] बने। तुमने कई फाको मे एक शेर हाफिज का हिफ्ज किया है-—

---

१ मेहदी तक चलेगा। २. इसी विश्वास के साथ जीवित रहूँ और मरू। ३ गुनहगार। ४. हजरत मुहम्मद की पैंगबरी और हजरतअली की इमामत को स्वीकार न करने वाला। ५. घूर कर देखना। ६. सत्तर बरस का बूढ़ा। ७. उपदेशक।

"चूँ पीर[1] शुदी 'हाफिज' इला आखिर ही" और फिर पढते हो उसके सामने के उसकी नज्म का दफ्तर, हाफिज के दीवन से दो चन्द सै चन्द है, मजमूअए नस्र जुदागाना, और ये भी लिहाज़ नही करते के एक शेर हाफिज़ का ये है और हजार इसके मुखालिफ है—

सूफी[2] विया के आइना साफस्त जाम रा
ता विगरी सफाए मये लाल फाम रा
शराबे नाब खुरो रूए महजबीनाँ बी
खिलाफे मज़हबे आनाँ जमाल ईना वी
तरसम के सरफ ए न वरद रोज़े वाज़ खास्त
नाने हलाले शैख़ जे आवे हरामे मा
साकी मगर वजीफए 'हाफिज' ज़ वादा दाद
का गुफ्ता गश्त तुर्रे ए दस्तारे मौलवी

---

१. पूरा शेर इस प्रकार है—

चूँ पीर शुदी हाफिज अज मयकदा वेरूँ शो
रिन्दो व खराबाती अज अेहवा शवाव औला

"हाफिज" वृद्ध होने पर मधुशाला मे छोड देना चाहिए। मुवावएया मे ही सुरायान ठीक है।

२. सूफी आ, जाम का शाशा स्वच्छ है, तू लाल सुरा की स्वच्छता देख सकता है। निरी सुरा पी और सुन्दरियो का मुख देख। उन लोगो के धर्म के विरुद्ध इनका सौन्दर्य देख। मुझे भय है प्रलय के दिन हमारी सुरा ने शेख की परहेजगारी वढ न जाए। साकी ने 'हाफिज' के लिए सुरापान ही भक्ति के रूप मे प्रदान किया, इसका परिणाम यह हुआ कि मौलवी साहब की पगडी की इज्जत जाती रही।

मियां, मैं बडी मुसीबत मे हूँ। महल सरा की दीवारे गिर गई है। पाखाना ढह गया, छतें टपक रही है, तुम्हारी फूपी कहती है, हाय दबी! हाय मरी! दीवानखाने का हाल महलसरा से बदतर है। मैं मरने से नही डरता, फुकदाने[1] राहत से घबरा गया हूँ। छत छलनी है। अब्र दो घटे बरसे तो छत चार घटे बरसती है। मालिक अगर चाहे के मरम्मत करे तो क्योकर करे। मेह खुले तो सब कुछ हो। और फिर अस्नाए[2] मरम्मत मे मैं बैठा किस तरह रहूँ। अगर तुमसे हो सके तो बरसात तक भाई से मुझको वो हवेली जिसमे मीर हसन रहते थे, अपनी फूपी के रहने को और कोठी मे से वो बालाखाना मय दालाने जेरी जो इलाही बख्शखा मरहूम का मस्कन था, मेरे रहने को दिलवा दो। बरसात गुजर जाएगी, मरम्मत हो जाएगी, फिर 'साहब' और 'मेम' और 'बाबा लोग' अपने कदीम मस्कन मे आ रहेगे। तुम्हारे वालिद के ईसारो[3] अता के जहा मुझपर अहसान है, ये एक मूरव्वत का अहसान मेरे पायाने[4] उम्र मे और भी सही।

—गालिब

२३

(६ अगस्त १८६२)

मौलाना अलाई,

न मुझे खौफे मर्ग, न दावए सब्र है। मेरा मजहब, बखिलाफे[5] अकीदए क़दरिया जब्र है। तुमने मियाँजीगिरी की, भाई ने बिरादर परवरी की। तुम

---

१ आराम न रहना। २. मरम्मत के समय। ३. त्याग और बलिदान। ४. अन्तिम आयु। ५. दो प्रकार के विचार-कदरिया मानव को कर्त्ता मानते है, जब्रिया मानव को कर्त्ता न मान कर परमेश्वर को कर्त्ता मानते है।

जीते रहो, वो सलामत रहे। हम इसी हवेली मे ताकयामत रहे। इस इल्हाम की ताजी और इस इज्माल[1] की तफसील ये है के मेह की शिद्दत से छोटा लड़का डरने लगा। उसकी दादी भी घबराई। मुझको खिलवतखाने का दरवाजा गर्वरूया[2] और उसके आगे एक छोटा सेदरह[3] याद था। जब तुम्हारे पॉव मे चोट लगी है तो मै उसी दरवाजे से तुमको देखने आया था। ये समझ कर खिलवतखाने को महलसरा बनाया चाहता था के गाड़ी-डोली-लौड़ी-असील-काछन-तेलन-तबोलन-कहारी-पिसनहारी, इन फिर्कों का ममर[4] वो दरवाजा रहेगा; मेरी और मेरे बच्चो की आमदोरफ्त दीवानखाने मे से रहेगी। अयाजन बिल्लाह् ! वो लोग दीवानखाने मे से आएँ जाएँ; अपने-बेगाने को हरवक्त पिछल पाइयॉ नजर आएँ। बी वफादार जिनको तुम कुछ और भाई खूब जानते है, अब तुम्हारी फूपी ने उन्हे वफादार बेग बना दिया है। बाहर निकलती है, सौदा तो क्या लाएँगी, मगर खलीक[5] और मिलनसार है, रस्ता चलतो से बाते करती फिरती है। जब वो महल से निकलेगी, मुमकिन नही के अतराफे नहर की सैर न करेगी। मुमकिन नही के दरवाजे के सिपाहियो से बाते न करेगी, मुमकिन नही के फूल न तोडे और बीबी को ले जाकर न दिखाये और न कहे के 'ये फूल ताई–चचा के बेटे की काई की ऐ।' शरह-तुम्हारे चचा के बेटे की क्यारी के है। है–है ! ऐसे आलीशान दीवानखाने की ये किस्मत और मुझसे नाजुक मिजाज दीवाने की ये शामत ! माहजा उस सेदरी को अपने आदमियो के और लडको के मकतब के लिए हर्गिज काफी न जाना। मोर और कबूतर और दुम्बा और बकरी, बाहर घोडो के पास रह सकते थे ! अरफ्तो[6] रब्बी ब फस्केहिल अजायम।

पढा और चुप हो रहा। मगर तुम्हारी खातिरे खातिर जमा रहे के असबाबे वहशत व खौफो खतर अब न रहे। मेह खुल गया है। मकान के मालिको की

---

१. सक्षेप। २ पश्चिम की ओर का। ३. तीन दरवाजे वाला। ४. मार्ग। ५. शिष्ट। ६ जब मैं असफल रहा तो मैंने भगवान को पहचाना।

तरफ से मदद शुरू हो गई है। न लडका डरता है न बीबी घबराती है, न मैं बेग्राराम हूँ। खुला हुग्रा कोठा, चाँदनी रात, हवा सर्द, तमाम रात फलक पर मिर्रीख[1] पेशे-नजर। दो घडी के तडके जोहरा[2] जल्वागर। इधर चाँद मगरिब मे डूबा उधर मशरिक से जोहरा निकली। सुबुही[3] का वो लुत्फ, रोशनी का वो ग्रालम!

२४

(९ सितम्बर १८६२)

सुबह से शम्बा, नहुम सितम्बर सन् १८६२ ई०।

जाने गालिब, मगर जिस्म से निकली हुई जान,

कयामत को दोबारा मिलने की तवक्को है, खुदा का ग्रेहसान। मिर्जा कुर्बानग्रलीबेग तुम्हारी कशिश के मजजूब[4] क्यो बनते? वो तो खुद 'सालिक'[5] है। मगर हाँ, ये साहबजादए सग्रादतमन्द 'रिज्वान' सो इसके ग्राप मालिक है। नवाब साहब का हम मतबख[6] ग्रौर ग्रापका हममायदा[7] होना बेहतर हुग्रा। काश; तुम ये लिखते के मुशाहिरा क्या मुकर्रर हुग्रा। इस्ना[8] ग्रशरी एक तुम हो, सो तुम्हे क्या ग्रिख्तियार है? ग्रलबत्ता ग्रशर ए मुबश्शिरा की ग्रव्वलियत पर मदार है। बाप तुम्हारा खिलाफे कायदए ग्रहले सुन्नत जमात, ग्रशरा[9] मे से सलासा[10] को कम करता था, 'रिज्वान' ने न माना। क्योकर मानता? वो तो सलसा का दम भरता था। तहव्वरखाँ साहब के बाब मे बन्दे[11] जोया इस खबर का है के ग्रब लोहारू से उनका इरादा किधर का है?

---

१. मगल। २. शुक्र। ३. प्रात का। ४. तल्लीन। ५. मार्गदर्शक। ६, ७. पकाने-खाने मे साथ। ८ शिया। ९. दस। १०. तीन। ११. जिज्ञासु।

'रिज्वान' को दुआ पहुँचे। नवाव साहब की इनायत और मौलाना अलाई की सोहबत मुबारक हो। पीर जी से जब पूछता हूँ के 'तुम खूब शख्स हो' और वो कहते है—'क्या कहना है!' और मै पूछता हूँ—'किसका!' तो वो फरमाते है—'मिर्जा शम्शादअली बेग का।'—ऐ और किसी का नाम तुम क्यों नही लेते! देखो यूसुफअलीखा बैठे है। हीरासिंघ मौजूद है। "वाह साहब, क्या मै खुशामदी हूँ जो मुँह देखी कहूँ! मेरा शेवा हिफ्जुल[1] गैब है; गायब की तारीफ करनी क्या अैब है?" 'हॉ साहब, आप ऐसे ही वजादार है, इसमे क्या रैब[2] है!'

२५

मियॉ,

तुम मेरे साथ वो मामले करते हो, जो अहया[3] से मौसूम व मामूल है। खैर तुम्हारा हुक्म बजा लाया। गज़ल वाद इस्लाहे के पहुँचती है। जनाव लफ्टट गवर्नर बहादुर ने दरवार किया। मेरी ताज़ीम व तौकीर और मेरे हाल पर लुत्फ व इनायत, मेरी अर्जिश व इस्तहकाक से ज्यादा, वल्के मेरी खाहिश और तसव्वुर से सिवा, मवजूल[4] की। इस हुजूमे अमराजे[5] जिस्मानी और आलामे[6] रूहानी को इन वातो से क्या होता है? हरदम दमे[7] नज़ा है, दिल वो गम से खूपिज़ीर हो गया है के किसी वात से खुश नही हो सकता। मर्ग को नजात समझे हुए हूँ, और नजात का तालिव हूँ। कई दिन से कोई तहरीर दिल पिज़ीर तुम्हारा नज़र नही आई। न मुझे तुमने याद किया, न अपने भाई को कुछ लिखा। अब इस खत का जवाब जल्द लिखो। पहले अपने वच्चो

---

१. अनुपस्थित। २. सन्देह। ३. जीवित। ४. ध्यान देना। ५. शारीरिक कष्ट। ६. आत्मिक दु:ख। ७. प्राण विसर्जन।

का हाल, फिर वहाँ के औजा[1]। जैसा तुम्हारा कायदा है, मुनक्का[2] और मुफस्सिल[3] लिखो। फक्त।

नजात का तालिब
—ग़ालिब

२६

(१८६३ ई०)

इकबाले निशाना,

बखैरो आफियत व फतहो[4] नुसरत लोहारू पहुँचना मुबारक हो। मकसूद इन सुतूर की तहरीर से ये है के मतवा 'अकमल उल मताबे' मे चन्द अहबाब मेरे मसविदात उर्दू के जमा करने पर और उसके छपवाने पर आमादा हुए है। मुझसे मसविदात माँगे है और अतराफ व जवानिब से भी फराहम किए है। मै मसविदा नही रखता। जो लिखा, वो जहाँ भेजना हो वहाँ भेज दिया। यकीन है के खत मेरे तुम्हारे पास बहुत होगे। अगर उनका एक पार्सल बनाकर बसवीले डाक भेज दोगे या आजकल मे कोई इधर आने वाला हो, उसको दे दोगे तो मूजिब मेरी खुशी का होगा, और मै ऐसा जानता हूँ के उसके छापे जाने से तुम भी खुश होगे। बच्चो को दुआ।

—ग़ालिब

२७

(१८६३ ई०)

वली अहदी मे शाही हो मुबारक
इनायाते इलाही हो मुबारक

---

१. रहन-सहन। २. स्पष्ट। ३. विस्तृत। ४. विजय और सफलता।

मिर्ज़ा अलाउद्दीन अहमदख़ाँ 'अलाई' व 'नसीमी' के नाम

इस अम्र फर्रुख़ो[1] हुमायूँ[2] की शोहरत मे कोशिश, वेहौसलगी है और इसके इख़फा[3] मे मुबालिगा[4], ख़फकानियत। तुम अपनी जबान पर न लाओ। अगर कोई और कहे, माना न आओ, न इश्तेहार न इस्ततार[5]।

दौरा हुआ, मगर मुद्दते[6] मोअय्यना के वाद और फिर झाग का न आना और तुम्हारे पुकारने से मुतनव्बह[7] हो जाना मादे की कमी की अलामते हैं। शिद्दत मे जिस कद्र खिफ्फत हो, गनीमत है।

मेरे ख़ुतूत उर्दू के इरसाल के वाव मे जो कुछ तुमने लिखा, तुम्हारे हुस्ने तवा पर तुमसे वईद था। मैं सख़्त वेमज़ा हुआ, अगर वेमज़गी के वजूह लिखूँ, तो शायद एक तख़्ता कागज सियाह करना पड़े। अव एक वात मौजिज व मुख़्तसर लिखता हूँ। सुनो भाई, अगर उन ख़ुतूत का तुमको इख़फा मज़ूर हो और शोहरत तुम्हारे मनाफीए तवे हो, तो हर्गिज न भेजो। किस्सा तमाम हुआ। और अगर उनके तल्फ होने का अन्देशा है, तो मेरे दस्तख़ती ख़ुतूत अपने पास रहने दो और किसी मुत्सद्दी[8] से नकल उतरवा कर, चाहो किसी के हात, चाहो वसवीले पार्सल इरसाल करो, लेकिन जल्द। ख़ुदा के वास्ते, कही गुस्से मे आकर 'अताए[9] तोवा लकाए तो' कहकर असल ख़ुतूत न भेज देना, के ये अम्र मेरे मुख़ालिफे मकसूद है।

भला साहव, डरता हूँ मै तुमसे, उधर ख़त पढ़ा, इधर जवाव लिखकर डाक मे भेजा। तुम्हारा ख़त रहने दिया है। जब आका[10] गम्मादअली वेग आएँगे, पढ लेंगे।

१, २ शुभ। ३. छिपाना। ४. अत्युक्ति। ५. कमी। ६. निश्चित अवधि। ७. सावधान। ८. लिपिक। ९. 'तुम्हारी चीज़ तुम लो'। १० बड़ा भाई।

२८

(३० मई १८६३ ई०)

सुबह शम्बा, ३० मई सन् १८६३ ई०।

ला मौजूद इल्लिल्लाह। उस खुदा की कसम जिसको मैंने ऐसा माना है और उसके सिवा किसी को मौजूद नही जाना है के खुतूत के इरसाल को मुकर्रर न लिखना अज़राहे मलाल न था। तालिब के जौक को सुस्त पाकर मैं मुतवक्कफ[1] हो गया। मुतवस्सित एक जलीलुल कद्र[2] आदमी, और तालिब कुतुब का सौदागर है, अपना नफा-नुक्सान सोचेगा, लागत बचत को जाँचेगा। मै मुतवस्सित को मुहतमिम समझा था और ये खयाल किया था के ये छपवाएगा। ३० रुक्के एक जगह से लेकर उनको भेजे। उसकी रसीद मे तकरीबन उन्होने तलबे रुक्कात बतकलीफे सौदागर लिखी और उस सौदागर को मफक्कूदुल[3] खबर लिखा। जाहिरा किताबे लेकर कही गया होगा, किताबे लेने गया होगा। ये २३ लिफाफे और ३४ खत बदस्तूर मेरे बक्स मे मौजूद व महफूज़ रहेगे। अगर मुतवस्सित बतकाजा तलब करेगा, इन खुतूत की नकले उसको और अस्ल तुमको भेज दूँगा, वर्ना तुम्हारे भेजे हुए कागज तुमको पहुँच जाएँगे।

मियाँ, इन खुतूत के इरसाल मे तुमने मुझसे वो किया जो मेने तुमसे दोजाने मे किया था। भला, मैं तो पीरे[4] खरफ हूँ, और सिने खराफत को निसियान[5] लाजिम है। तुमने क्या समझ कर कपड़ा लपेट कर और मुखतम[6] करके भेजा? खतो पर एक कलीलुल[7] अर्ज कागज लपेट कर इरसाल किया होता। अगर मुंशी बिहारीलाल मेरा और शहाबुद्दीन का दोस्त न होता तो पचास रुपए का मुझको धप्पा लगता।

---

१. विलम्ब करने लगा। २. प्रतिष्ठित। ३. गायब। ४. बेकार, बुड्ढा। ५. भूल चूक। ६. मुद्रांकित। ७. कम चौडा।

मिर्जा अलाउद्दीन अहमदखाँ 'अलाई' व 'नसीमी' के नाम

रसीदा[1] बूद बलाए वले बख़ैर गुज़श्त।

—गालिब

२९

(११ जून १८६३ ई०)

बदस्तमर्ग, वले बदतर अज गुमान तो नीस्त

मुकर्रर लिख चुका हूँ के कसीदे का मसविदा मैंने नही रखा। मुकर्रर लिख चुका हूँ के मुझे याद नही के कौन-सी रुबाइयाँ माँगते हो। फिर लिखते हो के रुबाइयाँ भेज, कसीदा भेज। माने इसके ये के तू झूटा है, अब के तो मुकर्रर भेजेगा। भाई, कुरान की कसम, इजील की कसम, तौरेत[२] की कसम, व ज़बूर[४] की कसम, हुनूद के चार वेद की कसम, दसातीर की कसम, जिन्द[५] की क़सम, पाजन्द की कसम, उस्ताद की कसम, गुरु के ग्रन्थ की कसम, न मेरे पास वो कसीदा, न मुझे वो रुबाइयाँ याद। कुल्लियात के बाब मे जो अर्ज कर चुका हूँ—

बर हमा नेम के हस्तेम व हमाँ खाहेद बूँद। जब मै दस-पद्रह जिल्दे मँगा लूँगा, एक भाई को और एक तुमको अरमुगा[६] भेजूँगा और अगर भाई को जल्दी है तो लखनऊ मे 'अवध अख़बार' का मतबा, मालिक उसका मुशी नवल किशोर मशहूर। जितनी जिल्दे चाहे लखनऊ से मँगा ले। मै बहरहाल दो जिल्दे जिस वक्त मौका होगा भेज दूँगा।

नजात का तालिब

—गालिब

---

१. विपत्तियाँ आ गई थी किन्तु वे टल गई। २. हजरत मूसा द्वारा अवतरित ग्रंथ। ४. हज़रत दाऊद द्वारा अवतरित ग्रंथ। ५. पारसियो का धर्म ग्रंथ। ६. भेट स्वरूप।

३०

(२१ जून १८६३ ई०)

यकशबा, ३ मुहर्रम सन् १२८० हि०, मुताबिक २१ जून १८६३ ई०।

मेरी जान, मिर्जा अली हुसेनखाँ आये और मुझसे मिले। मैंने खुतूत मुरसिला तुम्हारे एकमुश्त उनको दिये। अब तुम्हारे पास भेजने का उनको अख्तियार है, रसीद का अलबत्ता मुझे इन्तजार है। अली हुसेनखाँ से आने की हकीकत और यहाँ इकामत की मुद्दत पूछी गई। जवाब पाया के एक महीना दस दिन की रुखसत लेकर आया हूँ। बीबी बीमार है। उसका इस्तेलाज मजूर है। मेरी जान अली हुसेनखाँ के काम आये तो दरेग न करूँ। भला, ये मुबालिगा सही, बल्के बेशक तबलीग[1] व गुलो[2] है। लेकिन करीब करीब इसके याने जो हैजे[3] इमकान से बाहर न हो, उसमें कुसूर क्यो कर किया जाएगा बल्के शायद तुम्हारी सिपारिश की भी हाजत न हो। मगर सोचो के आईने[4] गमखारी व अन्दोहगुसारी क्या होगी। मिर्जा बद-वजा व बदरविश नही के पन्दोबन्द[5] का मुहताज हो। कोई उसका मुकदमा किसी महकमे मे दायर नही के मसलिहत व मशवरत की अहतियात हो। रहे उमूरे खानगी, यानी बीबी और उसके आबा और इखवान[6] के मामले, उसमे न तुमको दखल न मुझको मदाखलत। तुम अली हुसेनखाँ को इस पैवन्द पर क्या छेडते हो और ये नही समझते के उसका दादा कितना बडा आदमी था और अब उसके दादा की और उसकी ससराल एक है। ये जरियए फख्र है उसको और उसके तुफेल से तुमको। बल्के थोडी सी नाजिश अगर मुझ नगे[7] अकुर्बा के हिस्से मे भी आ जाए तो कुछ बईद नही।

---

१. प्रचार। २. अत्युक्ति। ३. सभावना। ४. दु खित होने और सहानुभूति करने का नियम। ५. उपदेश। ६. भाई-बिरादर। ७. कुलकलक।

हर चन्द तुम्हारा हरेक कलमा एक वजला[१] है, लेकिन इस ख़ुसर[२] व ख़ुसरानी[३] ने मार डाला। क्या कहूँ जो मुझको मजा मिला है? कहाँ ख़ुसर व ख़ुसरान, लुगाते अरबी उल अस्ल और कहाँ रोज़मर्रए मशहूर के ख़ुसर ससरे को कहते हैं। सनते[४] इश्तेकाक व तबाक को किस सीनाज़ोरी से बरता है। अच्छा मेरा मियाँ, ये 'ख़ुसर' बमाने 'पिदरज़न' क्या लफ्ज़ है? हुरूफ़ बैनुल फारसी व उल अरबी मुश्तरिक हैं। लेकिन इन मानो मे न फारसी है न अरबी है। फारसी मे पिदरेजन बफक्के[५] इज़ाफत कहते हैं। अरबी जिस तरह बमाने नुक्सान, लुगते मुन्सरिफ हैं, शायद ससरे का इस्मे जामिद भी हो, या फिल हकीकत 'ससरे' की तफरीस व तारीब हो। ये पुरसिश न बसबीले इस्तेहज़ा[६] है, बल्के बतरीके इस्तफसार व इस्तेलाम[७] है। जो तुम्हे मालूम हो, बल्के अगर तुम पर मझूल हो, तो मालूम करके मुझे लिख भेजो।

यूसुफअलीखाँ अज़ीज़ मानिन्द उस दहक़ाँ[८] के, जो दाना डाल के मह का मन्तजिर हो, और अब्र आए और न बरसे मुज़्तिर[९] व हैरान हैं। अली हुसेनख़ाँ आते हैं, अली हुसेनख़ाँ आते हैं। आये। वो आये, तो क्या लाये?

—ग़ालिब

३१

(३ जुलाई १८६३)

साहब,

मैं अजकार[१०] रफ़्ता व दरमाँदा हूँ। आज तुम्हारे खत का जवाब लिखता हूँ। लफ्ज़ ख़ुसर के बाब मे इतनी तोज़ी क्या ज़रूर थी। मेरा इल्म लुगाते

---

१. व्यग। २. ससुर। ३. सास। ४ प्रत्यय आदि लगाकर शब्द बनाना। ५. इज़ाफत को छोडकर। ६. व्यग स्वरूप। ७. जानकारी। ८. किसान। ९. उद्विग्न। १०. बेकार।

अरबिया का मुहीत नही है और ये बतरीके हक[1] उल यकीन जानता हूँ के खुसर लुगते फारसी नही, मसरे की तफरीज से खुसर पैदा हो तो क्या अजब है। तुमसे इसकी तहकीक चाही थी के ये लुगते अरबी उल अस्ल न हो, वो मालूम हुआ के अरबी नही, लुगते हिन्दी है मुफर्रिस है, और यही था मेरा अकीदा।

अली हुसेनखाँ आये, दो तीन बार मुझसे मिल गये। अब न वो आ सकते है, न मै जा सकता हूँ। नसीबे दुश्मनॉ, वो लँगडे—मै लूला। उनके पाव का हाल मुफस्सिल तुमको मालूम होगा, जोके लगी, क्या हुआ, कहाँ तक नौबत पहुँची। मेरी हकीकत सुनो। महीना भर से ज्यादा का अर्सा हुआ। बाँये पाँव मे वर्म, कफेपा[2] से पुश्तेपा[3] को घेरता हुआ पिंडली तक आमास[4]। खडा होता हूँ तो पिंडली की रगे फटने लगती है, खैर, न उठा, रोटी खाने महलसरा न गया, खाना यही मगा लिया। पेशाब को क्यो कर न उठूँ? हाजती रख ली। बगैर उकडू बैठे बात नही बनती। पाखाने को अगरचे दूसरे तीसरे दिन जाऊँ, मगर जाऊँ तो सही। ये सब मौके खयाल मे लाकर सोच लो के क्या गुजरती होगी। आगाजे[5] फितक मजीद अलैं या मुस्तजाद।

पीरी[6] व सद ऐब चुनी गुफ्ताअन्द।

अपना ये मिसरा बार बार चुपके चुपके पढता हूँ—

ऐ मर्गे नागहा, तुझे क्या इन्तजार है

मर्ग अब नागहानी कहाँ रही? असबाबो[7] आसार सब फराहम है हाय, इलाहीबख्शखाँ मगफर का क्या मिसरा है!

---

१ विश्वास। २ पाव के तलवे। ३ पाव का ऊपरी हिस्सा। ४. शोथ ५ उसपर हर्निया भी। ६. बुढापे को इसीलिए सौ ऐब कहते है ७. उपकरण।

मिर्जा अलाउद्दीन अहमदखा 'अलाई' व 'नसीमी' के नाम

आह, जी जाऊँ निकल जाए अगर जान कही !

जायद बेफायदा ।

जुमा, ३ जुलाई, सन् १८६३ ई० ।

मर्ग का तालिब
—ग़ालिब

३२

(२० सितम्बर १८६३)

सुबह यक शना २० सितम्बर १८६३ ई० ।

जाना आलीशाना,

पहले ख़त, और, बतवस्सुत बरखुरदार अली हुसेनखा मुजल्लिद 'कल्लियाते फारसी' पहुँचे। हैरत है के चार रुपए कीमत किताब और '४ आने' महसूले डाक कालिबे[1] इन्तबा मे आकर पाच रुपए कीमत '५ आने' महसूल करार पावे। ख़ैर, जहा सी वहाँ सै। मेरा हाल तुम्हे और तुम्हारा हाल मुझे मालूम है--

ई[2] हम अन्दर आशकी बालाए गम हाय दिगर

अब के चिट्ठी शायद मै न दे सकूँ। नवम्बर सने हाल मे पचास तुम्हारे पास पहुँच जाएँगे। इशा अल्लाहुल अली उल अजीम मै बेहया था, न मरा, अच्छा होने लगा। अवारिज[3] मे तखफीफ[4] है। ताकत चली आती है। मुख्तसर मुफीद—

---

१. छापना। २. प्रेम मे यह भी एक वेदना सही। ३. बीमारी। ४. कमी।

दर[1] नामा जुज़ ई मिसर ए शायर चे नवीसम
अ वाये जे महरूमी ए दीदार दिगर हेच

नजात का तालिब
—ग़ालिब

३३

(३ दिसम्बर १८६३)

इकबाले निशान मिर्जा अलाउद्दीनखा बहादुर को गालिबे गोशा नशी की दुआ पहुँचे।

बरखुरदार अली हुसेनखा आया। मुझसे मिला। भाई का हाल उसकी जबानी मालूम हुआ। हक ताला अपना फज्ल करे। अलवलद[2] ले अबेई तुम इसके मिजदाक[3] क्यो बने! खफकान व मिराक[4] अगरचे तुम्हारा खानाज़ादे मौरूसी[5] है, लेकिन आज तक तुम्हारी खिदमत मे हाजिर न हुआ था, अब क्यो आया? अगर आया तो हर्गिज उसको ठहरने न दो। हाक दो। खबरदार उसको अपने पास रहने न देना। शफीके मुकर्रम व लुत्फे[6] मुजस्सिम मु शी नवलकिशोर साहब बसबीले डाक यहाँ आये, मुझसे और तुम्हारे चचा और तुम्हारे भाई शहाबुद्दीनखाँ से मिले। खालिक ने उनको जुहरा की सूरत और मुश्तरी की सीरत अता की है। गोया बजाय खुद 'किरानुस्सादैन'[7] है। तुमसे मैंने कुछ न कहा था और कुल्लियात के दस मुजल्लद की कीमत '५०' मान लिये थे। अब उनसे जो जिक्र आया तो उन्होने पहली कीमत मुश्तहरए[8]

---

१. पत्र मे कवि की इस पक्ति के अतिरिक्त क्या लिखूँ? दर्शन न होने से बहुत दु ख है। २ पुत्र पिता का भेद होता है। ३. समान। ४. प्रलाप। ५ पैत्रिक। ६ सशरीर दया। ७. जब शुक्र और बृहस्पति एक राशि पर हो। ८. समाचार पत्र में प्रकाशित।

अखबार लेनी कुबूल की। याने ३ रुपए ४ आने फी जिल्द, इस सूरत मे दस मुजल्लद के ३२ रुपए ८ आने मै दूँ और ३२ रुपए ८ आने तुम दो। हमगी[१] '६५' मतबे 'अवध अखबार' मे पहुँचाने चाहिए। मै दिसम्बर माहे हाल की १०वी, ११वी को तालव[२] हूँगा। कहो ३२ रुपए ८ आने अली हुसेनखां को दे दूँ। कहो लखनऊ भेज दूँ। इस निगारिश[३] का जवाव जल्द भेजो। भाई साहव की खिदमत मे मेरा सलाम कहना, और उस्ताद मीर जान के मेरी तरफ से कदम लेना।

नजात का तालिव
—ग़ालिब

पंज शंबा, २१ जमादि उस्सानी "साले गफर," मुताविक ३ दिसम्बर साल—'क्या गजब ! है है !'–१८६६ ई०। ये गोया तारीखे वफात जनाव गवर्नर लार्ड एलिगन साहब बहादुर की है।

३४

(१३ दिसम्बर १८६३ ई०)

मौलाना अलाई,

वल्लाह! अली हुसेनखाँ का बयान दमुवतजाए[४] मुहब्बत था। हर वार कहता था के हक वजानिव उनके हैं—न कोई हम सुखन न कोई हमनफ़स[५], न सैर न शिकार, न मजलिस न दरवार, तन्हाई व बेगगली और वस। जी न क्यो कर घवराए! खफ़कान क्यो न हो जाए?

---

१. कुल, पूर्ण। २ मंगवा लूँगा। ३ लेखन। ४. प्रेम के कारण। ५. नम्र स्वभावी।

न दिन याद न तारीख। आज चोथा, या भई शायद भूल गया हूँ पाचवा दिन है के मुंशी नवल किशोर बसवारी डाक रहगराए[1] लखनऊ हुए। कल पहुँच गए हो या आज पहुँच जाएँ। आज, रोजे यक शबा, १३ दिसम्बर की है। एक दिन मुंशी साहब मेरे पास बैठे थे और बरखुरदार शहाबुद्दीनखाँ भी था। मैंने 'साकिब' को मुखातिब करके कहा के अगर मै दुनियादार होता तो इसको नौकरी कहता। मगर चूँके फकीरे तकियादार हूँ, तो ये कह सकता हूँ के तीन जगह का रोजीनादार हूँ। साढे बासठ रुपए याने सात सौ पचास साल सरकारे अंगरेजी से पाता हूँ और बारह सो साल रामपूर से और चौबीस रुपया साल इन महराज से। तौजी ये के दो बरस से हर महीने मे चार अखबार मुझको भेजते है, कीमत नही लेते। मगर हाँ, अडतालीस टिकट मै मतबे मे पहुँचा दिया करता हूँ। बत्तीस रुपए आठ आ ने जो मेने पूछे थे के अली हुसेनखाँ के हवाले करूँ, मकसूद इससे ये था के हर साल बसबीले हुण्डवी दुश्वार है। खैर, अब जिस तरह होगा हिसार पर हुण्डवी लिखवा कर तुमको भेज दूँगा। तुम हिसार पहुँच कर रुपया मंगवा लीजो। खुदा चाहे तो दिसम्बर मे रुपया तुम्हारे पास पहुँच जाए। उस्ताद मीर जान साहब को कदम बोस कह कर मुझको फरऊन[2] बनना पडा। दोहाई खुदा की अब ऐसा न करूँगा। मेरा सलाम बल्के दुआ उनको कह देना। परसो मौलवी सदरुद्दीन साहब को फालिज हो गया। सीधा हात रह गया है। जबान मोटी हो गई है। बात मुश्किल से करते है और कम समझ मे आती है। मै अपाहिज हूँ। जा नही सका। जो उनको देख आता है उससे उनका हाल पूछा जाता है। दिन तारीख सदर[3] में लिख आया हूँ। कातिब का नाम, गालिब है के दस्तखत से पहचान जाओ।

---

१ रास्ता पकडना। २ अवज्ञाकारी। ३. ऊपर।

३५

(१ जनवरी १८६४)

यकुम जनवरी सन् १८६४ ई०।

अलाई मौलाई को गालिबे तालिब की दुआ। बेचारे मिर्ज़ा का मामला अली हुसेनखाँ की मार्फत तय होगा। यहाँ पन्द्रह का सवाल. वहाँ दस मे तीन कम करने का खयाल! मुतवस्सित दूसरा, जो अली हुसेनखाँ बहादुर के वाद दरमियान आये, वो क्या करे और क्या कहे? मिर्जा कानहर[1] व मुतवक्किल हैं, न पन्द्रह मागते है न दस। अल्लाह बस, मा सिवा हवस।

जनाव त्रिवेलियन साहब, भाई के दोस्ते दिली, दिल्ली आये। लार्ड साहब कहलाते है। सुनता हूँ के कल अकबराबाद जाते है।

भाई अली वख्शखाँ मुद्दत से वीमार थे। रात को बारह पर दो वजे मर गये। इन्नालिल्लाह व इन्नाइलहे राजऊन। तुम्हारे अम्मे नामदार आज दिन के वारह वजे 'सुलतान जी' गए हैं। मै न जा सका? तजहीज[2] व तक्फीन उनकी तरफ से अमल मे आएगी। वारह पर ३ वजे ये खत मैंने तुम्हे लिखा है। कल गन्ना, २ जनवरी, सुबह को डाक घर भेज दूँगा। मुशफकी[3] शफीकी[4] मीर जान साहब को सलाम माउल अकराम।

नजात का तालिब
—गालिब

३६

(१८ मई १८६४)

चहार शबा, १८ मई सन् १८६४ ई०, दर्फ़ले अयाम, कासी ईद का दिन, सुबह का वक्त।

---

१ सन्तोषी और निराकांक्षी। २. क्रिया कर्म। ३.४. स्नेही।

मेरी जान,

गालिबे कसीरुल[१] मतालिब की कहानी सुन । मै अगले जमाने का आदमी हूँ । जहाँ एक अम्र की इब्तिदा देखी ये जान लिया के अब ये अम्र मुताबिक इस बिदायत[२] के निहायत[३] पिजीर होगा । यहाँ अख्तेलाफे तवा[४] का वो हाल के आगाज[५] मगशूश, अन्जाम[६] मखदूश । मुब्तिदा[७] खबर से बेगाना, शर्ते[८] जजा से महरूम । सुना, और मुतवातिर सुना के किस्सा तय हो गया । अब अलाउद्दीनखाँ मय कवायल आएँगे । दिल खुश हुआ के अपने महबूब की शक्ल मय उसके नतायज के देखूँगा । परसो आखिरे रोज भाई पास गया । असनाए[९] इख्तलात व इन्बसात मे मैने पूछा के कहो भई, अलाउद्दीनखाँ कब आएगे ? जवाब कुछ नही । 'अजी' वो किस्सा तो तय हो गया ? 'हाँ वो तो रुपया मैने दे भी दिया ।' मैने कहा--"तो अब चाहिये के वो आएँ ।" फरमाया के "शायद अभी न आए ।"

मालूम हुआ के खैर ठेगा बाजा । नाचार इरादा किया के जो कुछ कहना था, अब वो लिख कर भेजूँ । परसो तो शाम हो गई थी । कल बगलगीर होने-वालो ने दम न लेने दिया । उस पर तुर्रा ये के 'साकिब' ने कहा के भाई तुमसे शाकी[१०] है । अब जरूर आ पडा के गुजारिशे मुद्दआ से पहले तुम्हारे रफे-मलाल मे कलाम करूँ । भाई, तुम मेरे फर्जन्द बल्के बेह् अज फर्जन्द हो । अगर मेरा सुलबी[११] बेटा इस दीदो[१२]दानिस्त व तहरीर व तकरीर का होता तो मै उसको अपना यारे वफादार और जरियए[१३] इफ्तखार जानता । मेरे खुतूत के न पहुँचने का गिला गलत । तुम्हारा कौन सा खत आया के उसका जवाब यहाँ से न

१. अधिक लालसा रखने वाला । २. प्रारभ । ३ अन्तहीन । ४. स्वभाव । ५. आरभ दोषपूर्ण । ६ अन्त सन्दिग्ध । ७. आदि-अन्त । ८ कार्य-कारण । ९. बातचीत के समय । १०. उससे भी अधिक शिकायत करने वाला । ११ औरस पुत्र । १२. समझ बूझ । १३. प्रतिष्ठा का कारण ।

लिखा गया ! मेरे पास जो मकासिद जरूरी फराहम थे, वो मैंने इस नज़र से न लिखे के अब तुम आते हो। जबानी गुफ्तो शुनीद हो जाएगी। साकिब ने चलती गाडी में रोड़ा अटका दिया। तब मुझे तोतहो[1] तम्हीद मे एक वरक लिखना पडा। वर्ना आगाजे निगारिश यहाँ से होता—

या असदुल्लाह् अल गालिब !

वा[2] मन अज जेह्ल मुआरिश शुदा ना मुन्फअली
के गरश हज वो कुनम ईं बुवदश मदहे अजीम

ये रिसाला मौसूम व 'मुहरिके काते बुरहान' जो 'साक़िब' ने तुमको भेजा है, मेरे कहने से भेजा है और इस इरसाल से मेरा मुद्दआ ये है के इसके मुआयने के वक्त इस किताब की वेरब्ती[3] ए इवारत पर और मेरी अपनी करावत[4] और निस्वत[5] हाय अदीदा पर नजर न करो। बेगाना वार[6] देखो और अज़ रू ए इन्साफ हकम[7] वनो; वेहैफो[8] मेल। उसने जो मुझे गालियाँ दी है, उस पर गुस्सा न करो। गलतियाँ इवारत की, शिद्दते इतनावे ममल[9] की सूरत, सवाल दीगर जवाव दीगर, इन बातो को मतमह[10] नजर करो। वल्के अगर फुरसत मसादत[11] करे, तो उन मरातिव को अलग एक कागज पर लिखो और वाद[12] अितमाम मेरे पास भेज दो। मेरा एक दोस्ते रूहानी के वो मिन्जुम्लए रिजालुल[13] गैव है। इन हफवात[14] का खाका[15] उडा रहा है। नैयरो रख्शाँ ने उसकी मदद दी है। तुम भी भाई मदद दो।

---

१. भूमिका। २. अज्ञानता के कारण तुमने लडना शुरू किया और लज्जित नही हो। यदि मै उसकी बुराई करूँ तो तुम्हारी वडी प्रशसा होगी। ३. विशृंखलित वाक्यावली। ४. आत्मीयता। ५. अगणित सम्वन्ध। ६. पराया। ७. निर्णायक, पच। ८. निष्पक्ष। ९. जटिल, उलझी हुई। १०. दृष्टिगोचर। ११. साथ दे। १२. समाप्त होने पर। १३. अदृश्य (शुभ योनियो में से)। १४. वेहूदगी। १५ मजाक उडा रहा है।

और वो अम्र मुबहम के जो तुम्हारे वालिद की तकरीर से दिलनशी नही हुआ । याने किश्मा चुक जाना और दिल्ली आना, उसका माजरा मुफस्सिल व मुशर्रह लिख ।

दिन, तारीख, अपना नाम, आगाजे किताबत मे लिख आया हूँ । अब इरसाले जवाब की ताकीद के सिवा और क्या लिखूँ ? फकत ।

३७

(३० मई १८६४ ई०)

दोशम्बा, २३ जिलहज्जा सन् १२८० हि० ।

ऐ मेरी जान,

"मसनवी अब्रे गोहरबार" कौन सी फिक्र ताजा थी के मै तुझको भेजता। 'कुल्लियात' मे मौजूद है । माहजा शहाबुद्दीनखाँ ने भेज दी । मै मुकर्रर क्या भेजता ?

"तबे मुर्हरिक" के देखने से इन्कार क्यो करते हो ? अगर मुनाफिए[१] तबा तहरीर को बसबबे इन्जजार[२] न देखा करते तो फरीकैन[३] की कुतुब मबसूता[४] कहा से मौजूद होती ? 'अफसोस' को मैने अरबी जाना, अरबी नही है । अब माना, ये एक सहवे[५] तबीयत था । मेरा ऐतराज तो खल्ते[६] मबहस पर है— 'अफसोस' व 'फसोस' एक क्यो हो जाए ?

यहाँ के अतवार[६] मुझसे बवजूदे[७] कुर्ब मखफी[८] और तुम पर बाई[९] हमा बोद आशकार[१०] । 'दूराने[११] बाखबर दर हुजूर, व नजदीकान बेबसर दूर।'

---

१ स्वभाव विरुद्ध । २. झिडकना । ३ वादी प्रतिवादी । ४ मोटी । ५ भ्रम । ६ रीति रिवाज । ७ निकटता के रहते हुए भी । ८. छिपी हुई । ९. यद्यपि आप दूर है । १० प्रकट । ११. दूर रहकर भी उपस्थित है और निकट रहते हुए भी अन्धा दूर रहता है ।

रुपया आ गया। दिल से निकला, मखज़न[1] से निकला, हात से नही निकला। जब हात से निकल जाएगा और जिन्स मोल ली जाएगी और ये गन्द कट जाएगा, तब तरसाँ[2] तरसाँ पेशगाहे[3] नादरी मे तुम्हारे यहाँ आने के बाब मे कुछ अर्ज किया जाएगा। मै इन दिनो मरदूद[4] भी हूँ। वस्सलाम।

सुबह[5] दम बा अबुलबशर गुफ्तम
पार ए जर बिदे के जर दारी
हैफ बाशद के अज चू मन पिसरे
खाके रगी अज़ीज तर दारी
गुफ्त-हैफस्त अज तो खाहिशे जर
केह तू गजीन ए गोहरदारी
गज दाने सुखन हवाल ए तुस्त
खुद बेबी ता चे आँ पिसरदारी

---

१. उद्भव स्थल। २. डरते डरते। ३. नादिर के दरबार मे। ४ अपमानित। ५. "मैने प्रात काल हजरत आदम से कहा—आप ऐश्वर्यशाली है, मुझे कुछ (थैली) द्रव्य दीजिए। बहुत दुःख है, मेरे जैसे पुत्र की अपेक्षा आप मिट्टी को अधिक प्यार करते है। हजरत आदम ने कहा--तुम्हारा स्वर्ण के प्रति लालसा प्रकट करना उचित नही। तुम्हारे पास तो स्वय मोतियो (काव्य) का कोष है। तुम स्वय विचार करो, तुम्हे कितनी गौरवास्पद वस्तु मिली है। प्रिय पुत्र, मेरे पास फिर द्रव्य कहाँ है? मेरे पास जो कुछ है ले जा। मैने कहा—आप मुझे यह वचन दीजिए, कि यदि आपके पास द्रव्य हो तो आप दे देगे। हजरत आदम ने कहा—"यदि तुम उसकी धूर्त्तता से परिचित हो तो उस थैली को खोल दो और उसे उलट दो। और कह दो कि मेरा उद्देश्य इतना ही है, यही है। यह बात कहानी बन गई है। अब पृथ्वी पर क्या डालूँ और तुम उठाकर क्या ले जाओगे?"

पेशे मन जर कुजास्त जान पिदर?
बे बरी हर चे दर नज़रदारी
गुफ़्तम्—ईनक बे बन्द पैमाने
ज़र व मनमी देही, अगर दारी
सबे जबीले आँ उमर अय्यार
गर ज अैयारियश खबरदारी
बे कुशा जूद व ज़र बे रीजो बगोये
के हमी मुद्दआ मगर दारी
गुफ्त--बाबा फसान ए बूदस्त
चे फेरो रीजमो चे बरदारी

३८

(९ जुलाई १८६४)

शम्बा, ९ जुलाई सन् १८६४ ई० ।

अलाई मौलाई, गालिब को अपना दुआगो और खैरखाह तसव्वुर करें। माद्दा हाय तारीख को न आप कालिबे[1] नज्म मे लाए और न और को इस अम्रे[2] मुनकर की तकलीफ दे। भाई समझो, यजीद[3] पर लान[4] मिनजुम्लए[5] इबादत सही, लेकिन तकरीबन कह देते हैं के "बर[6] यजीद लानत।" किसी

---

१. कवितावद्ध करना। २ कुकर्म। ३. खलीफाओ के स्थान पर माविया अरब के शासक बने। उनके पुत्र यजीद भी एक प्रकार से राजा की तरह शासन करते रहे। उनके समय मे कर्बला की लडाई हुई और हज़रत हुसेन का बलिदान हुआ। शिया लोग इसीलिए यजीद को गाली देना बुरा नही मानते। ४ लानत। ५. सब प्रार्थनाओ में। ६. यज़ीद पर लानत।

मोमिन ने उसकी हजो मे कसीदा नहीं लिखा। इब्दा[1] ए माद्दा हाय तारीख तुम्हारे हसनात[2] मे लिखा गया। मुसाब[3] तुम हो चुके। अज्र पाओगे इशा अल्लाह्। अब अपने को बदनाम और किसी को मलूल[4] और अदावत को जाहिर और अगर जाहिर हो, तो मुहकम[5] न करो। अलीबख्शखाँ मरहूम मुझसे चार बरस छोटा था। मै सन् १२१२ हि० मे पैदा हुआ हूँ। अब के रज्जब के महीने से उनहत्तरवाँ बसर शुरू हुआ है। उसने ६६ बरस की उम्र पाई। नई तकरीर व तहरीर का आदमी था। अकबराबाद मे म्योर साहब से मिले। अस्नाए[6] मुकालिमत मे कहने लगे के मैं चचा जान के साथ जरनैल लार्ड लेक साहब के लश्कर में मौजूद था और होल्कर से जो महारबात[7] हुए हैं, उसमे शामिल रहा हूँ। बेअदबी होती है, वर्ना अगर कबा[8] व पैरहन[9] उतार कर दिखलाऊ तो सारा बदन टुकडे टुकडे है। जाबजा तलवार और बरछी के जख्म है। वो एक बेदार[10] मग्ज और दीदावर[11] आदमी, उनको देख देखकर कहने लगा के नवाबसाहब हम ऐसा जानते है के तुम जरनैल साहब के वक्त मे चार-पाँच बरस के होगे। ये सुनकर आपने कहा के दुरुस्त, जाबजा इरशाद होता है। खुदायश[12] बयामुर्जाद व बदी दरोग हाय बेनमक मीगीराद।

—गालिब

३९

(१७ सितम्बर १८६४)

अजी मौलाना अलाई,

नवाब साहब दो महीने तक इजाजत दे चुके और ये मैं खबरतरागी नहीं

---

१. तारीख कहने का नया ढंग। २. गुण। ३. पुण्यकृत योग्य। ४ दुखी। ५. दृढ। ६. बातचीत के समय। ७. युद्ध। ८. एक प्रकार की अचकन। ९. पाशाक। १०. बुद्धिमान। ११. समझदार। १२. ईश्वर उसे क्षमा करे और दण्ड न दे।

करता। मौलाना अली मुहम्मद बेग की जबानी है के नवाब, अलाउद्दीनखाँ से कह चुके हैं के किस्सा मिट गया है, अब तुम शौक से दिल्ली जाओ। दो हफ्ते से लेकर दो महीने तक की तुमको रुख्सत है। फिर तुम क्यों न आए? खुदा ने दुआ, खुदावन्द[1] ने इस्तेदुआ कुबूल की। तुम्हारी तरफ से सुस्तकदमी और दिलसर्दी की क्या वजह? अगर हाकी की हिकायत झूट है, तो तुम सच लिखो के माजरा क्या है। मिर्जा यूसुफ अलीखाँ 'अजीज' तुम्हारे बुलाए हुए और मेहदी हुसेन भाई साहब के मतलूब, मिर्जा अब्दुल कादर बेग के कवायल के साथ कल रवाना लोहारू हुए हैं।

शबा, १५ सितम्बर १८६४।

नजात का तालिब
—गालिब

४०

(२ नवम्बर १८६४)

मिर्ज़ा अलाई मलाई,

न लाहौर से खत लिखा, न लोहारू से। बकद्र[2] माह ए हुमुक महवे इन्तजार[3] वल्के उम्मीदवार रहा। अब जो किसी तरह की तवक्को न रही तो शिकवा तराजी का मौका हात आया। अगरचे जानता हूँ के एक शिकवे के दफा[4] मे 'तूती नामा' बराबर एक रिसाला लिखोगे और हजार वजहे मवज्जह[5] बयान करोगे। मैं इस तसव्वुर का मजा उठा रहा हूँ के देखूँ क्या लिखते हो? दादी साहिबा से लिखवाना। फूपी साहिबा से लिखवाना। गालिब से लिखवाना। वादे हुसूले इजाजत न आना। इसके भी कुछ माने हैं या

१. स्वामी। २. मूर्खो की तरह। ३. प्रतीक्षा मे तल्लीन। ४ दूर करने मे। ५ कारण।

नही ? अच्छा मेरा मियाँ, कुछ इस बाब मे लिख। चुपडी और दो दो, एक मन्दील[1] और एक सीला,[2] या कोई और चीज मुबारक।

बच्चो को मेरी दुआ कहना और उनकी खैरो आफियत लिखना। उस्ताद मीर जान साहब को सलाम। मजा तो जब मिलेगा के तुम दिल्ली आओ और अपनी जबान से लाहौर के हगाम ए अजुमन का हाल बयान करो।

चहार शबा, ३ नवम्बर सन् १८६४ ई०।

नजात का तालिब
—ग़ालिब

४१

(९ दिसंबर १८६४ ई०)

जुमा, नहुम रज्जब व दिसबर।

मेरी जान,

तुम्हारा खत भी आया और अली हुसेनखाँ नज्मुद्दीन भी तशरीफ लाया। अगर सरनविश्ते[3] आसमानी मे भी अवाखिरे[4] रज्जब या अवायले[5] शाबान में हमारा तुम्हारा मिल बैठना मुन्दर्ज है, तो जबानी कह सुन लेगे। कलम को इन असरार की महरमियत[6] नही है। जो शख्स अपने मुल्को माल व जानो तन व नगो नाम के उमर मे आशिफता व सरगर्दा बल्के आजिज़ व हैरान हो, दूसरे को उससे क्या गिला ? हाय नजीरी—

वामा[7] जफा वो ना खुशी बाखुद गुरूरो सरकशी
अज मा नई अज खुद नई आखिर अज़ाने कीस्ती

---

१. पगडी। २. दुपट्टा। ३. भाग्य। ४ अन्तिम। ५ प्रथम। ६ रहस्य ज्ञान। ७ हमारे साथ तो अप्रसन्नता और अत्याचार और अपने साथ गर्व तथा धृष्टता। तुम हमारे भी नही और अपने भी नही। फिर तुम किसके हो ?

महले अक्ल व होश, दिमाग, सो तबा, अफ्यून का मुखमर[1] हो जाना अलावा। अल्लाह जो चाहे सो करे। ऐसा प्यारा बागो बहार भाई, यो बिगड़ जाए ?

नजात का तालिब

—ग़ालिब

४२

(६ जनवरी १८६५)

लो साहब, वो मिर्जा रज्जबबेग मरे, उनकी ताजियत आपने न की। शाबानबेग पैदा हो गए। कल उनकी छट्टी हो गई, आप शरीक न हुए ?

औ वा ए ज़ महरूमी ए दीदार दिगर हेच

मियाँ, ख़ुदा जाने किस तरह ये चार सतरे तुझको लिखी है। शहाबुद्दीन-ख़ाँ की बीमारी ने मेरी जीस्त का मजा खो दिया। मैं कहता हूँ के इसके ऐवज, मैं मर जाऊँ। अल्लाह इसको जीता रखे, इसका दाग मुझको न दिखाए। या रब, इसको सेहत, या रब इसकी उम्र बढा दे। तीन बच्चे, एक अब पैदा होने वाला है। या रब, इसको इसकी औलाद के सर पर सलामत रख।

नजात का तालिब

—ग़ालिब

४३

(जनवरी १८६५ ई०)

मेरी जान,

नासाजी[2] ए रोज़गार व बेरव्ती[3] अतवार व बतरीके[4] दाग बालाए दाग, आरजू ए दीदार वो दो[5] आतिशे शरारा बार और ये एक दरिया ए

१. नशे मे मस्त। २. समय की प्रतिकूलता। ३. चाल-चलन मे परिवर्तन। ४ घाव पर घाव। ५ अग्निवर्षी सुरा।

नापैंदा किनार। व[1] कना रब्बना अज़ाबुन्नार। खुदा ने भाई ज़ियाउद्दीनख़ाँ के बुढापे पे और मेरी बकसी पर रहम फरमाया। मेरा शहाबुद्दीनख़ाँ बच गया। अमराज़े मुख़्तलिफा मे घिर गया था—बवासीर ख़ूनी, ज़हीर,[2] तप,[3] सुदा, बारे, अब मिन[4] कुल्लुल वुजूह, सेहत हासिल है। जौफ जाते ही जाएगा। आगे कौन से कवी[5] थे के अब उनको ज़ईफ कहा जाए ? एक बुड्ढा किसी गली मे जाते जाते ठोकर खाकर गिर पडा। कहने लगा—हाय बुढापा ! इधर-उधर देखा। जब जाना के कोई नही है, कहता हुआ बढ़ा के—'जवानी मे क्या पत्थर पडते थे।' वस्सलाम।

गा़लिबे मुस्तहाम[6]

४४

(१३ फरवरी १८६५)

सुबहे दो शम्बा, शाज दहुम[7] अज़ महे[8] सयाम।

मेरी जान,

नए मेहमान का क़दम तुम पर मुबारक हो। अल्लाह ताला तुम्हारी और उसकी और उसके भाइयो की उम्रो दौलत वरकत दे। तुम्हारी वतर्ज़े तहरीर से साफ नही मालूम होता के सईद है या सईदा है। 'साकिब' उसको अज़ीज़ और 'गालिब' अज़ीजा जानता है। वाज़े लिखो, ता एहतमाल रफ़ा हो। खत साकिब के नाम का तोबा-तोबा, खत काहे को, एक तख्ता कागज़ का। मैंने सरासर पढा, लतीफा व बज्ला[9] व शूख़ी व शूख़ चश्मी का बयान जब

---

१. ईश्वर, मुझे नरक की अग्नि से बचा। २. पेचिश। ३. मस्तक की पीड़ा। ४. पूरी तरह से। ५. हृष्ट पुष्ट। ६. विषण्ण। ७. सोलह। ८. रमजान का महीना। ९. मजाक।

करता के फहवाए[1] इबारत से जिगर खून न हो जाता। भाई का गम जुदा, ऐसा सुखन गुज़ार, ऐसा ज़बानावर, ऐसा अँयारे[2] तर्रार, यो आजिज व दरमाँदा व अज कार रफ्ता हो जाए! तुम्हारा गम जुदा, सागर[3] अव्वल व दुर्द! क्या दिल लेकर आये, क्या ज़बान लेकर आये, क्या इल्म लेकर आए! क्या अक्ल लेकर आए! और फिर किसी रविश को बरत न सके। किसी शेवे की दाद न पाई। गोया 'नजीरी' तुम्हारी ज़बान से कहता है—

जौहरे[4] बीनिशे मन दर तहे जगार बेमुद
आँके आइन ए मन साख्त न परदाख्त दिरेग

भाई, इस मुआरिज़[5] मे मै भी तेरा हमताला और हमदर्द हूँ। अगर चे एक[6] फना हूँ, मगर मुझे अपने ईमान की कस्म, मैंने अपनी नज्मो नस्र की दाद ब[7] अन्दाज ए बायस्त पाई नही। आप ही कहा, आप ही समझा। कलन्दरी व आज़ादगी व ईसारो[8] करम के जो दराई मेरे ख़ालिक ने मुझमे भर दिए है, बकद्रे हज़ार एक, ज़हूर मे न आए, न वो ताकते जिस्मानी के एक लाठी हात मे लूँ और उसमे शतरजी और एक टीन का लोटा मय सूत की रस्सी के लटका लूँ और प्यादापा चल दूँ—कभी शीराज़ जा निकला, कभी मिश्र में जा ठहरा, कभी नजफ[9] जा पहुँचा, न वो दस्तगाह[10] के एक आलम का मेजबात बन जाऊँ। अगर तमाम आलम मे न हो सके, न सही। जिस शहर मे रहूँ, उस शहर मे तो भूका नगा नजर न आऊँ—

---

१. तात्पर्य। २. अच्छा वक्ता। ३. सुरा पात्र पहला और उसमें ही तलछट। ४. मेरी दृष्टि को जंग लग गया। जिसने मेरा दर्पण बनाया उसने मेरी ओर ध्यान नही दिया, बहुत दुख है। ५. अपराध। ६. एक कला। ७ यथेष्ट। ८. त्याग-दान। ९. जहाँ हजरत अली की मजार है। १०. सामर्थ्य।

न[1] बुस्ताँ सराए न मयखान इ
न दस्ताँ सराए न जानान इ
न रक़्से परी पैकराँ वर विसात
न गौगाए रामिश गिराँ दर रिवात

खुदा का मकहूर,[2] खल्क का मरदूद, बूढा, ना तवाँ, बीमार, फकीर, नकवत[3] मे गिरफ्तार। तुम्हारे हाल मे गौर की और चाहा के इसका नज़ीर बहम पहुँचाऊँ। वाक ए कर्बला से निस्बत नही दे सकता—लेकिन वल्लाह तुम्हारा हाल उस रेगिस्तान मे वेऐनही ऐसा है, जैसा मुस्लिम[4] इब्ने अकील का हाल कूफे मे था। तुम्हारा खालिक तुम्हारी और तुम्हारे बच्चो की जानो आवरू का निगहबान। मेरे और मामलात के कलामो कमाल से कतै नज़र करो, वो जिस किसी को भीक माँगते न देख सके और खुद दर वदर भीक माँगे, वो मै हूँ।

४५

(२३ फरवरी १८६५)

पजशम्वा २६ रमजान।

साहव,

कल तुम्हारा खत पहुँचा। आज उसका जवाव लिखकर रवाना करता हूँ। रज्जव वेग, शावान वेग, रमजान वेग, ये नामवर महीने है। सो खाली गए। शव्वाल वेग आदमी का नाम नही सुना। हाँ, ईदी वेग हो सकता है। पस, जव

---

१. न उद्यान न मधुशाला, न कोई कहानी सुनाने वाला फर्श पर न सुन्दरियो का नृत्य, न भोजनालय मे कव्वाली, गाने वालो का शोर। २. ईश्वर का क्रोध भाजन। ३. दरिद्रता। ४. कूफे के लोगो ने हज़रत हुसेन को यज़ीद के विरोध मे बुलाया था। हजरत हुसेन ने अकील के बेटे मुस्लिम को स्थिति जानने के लिए भेजा। वह कूफे में मारा गया।

ईद है और रोजे सईद है तो क्या बईद है के बखिलाफे शुहूरे[1] सलासऐ माजिया इस महीने मे तुम आ सको ? हँ है। मैं तो कहता हूँ न आ सको। इस माहे मुबारक मे इम्जाए[2] हुक्म सरकार का वो हगामा गर्म हो के पारसियो की ईद 'कोसह[3] बरनशी' का गुमान गुजरे । दूर क्यो जाओ, होली की धुलैंडी का समा लोहारू मे बँध जाए । एक खर सवार की सवारी बडी धूम से निकले। हुस्ने इत्तेफाक ये के ये वही मौसम है, होली और ईदे 'कौसह बर नशी' का जमाना बाहम है। हूत[4] के आफताब मे ये दोनो तेवहार होते है। कल आफताब हूत मे आया है। 'कौसह बरनशी' और होली का मुजदा[5] लाया है। खैर मैं चन्द रोज और सितम कशे फिराक और तेरे दीदार मुश्ताक रहूँ। तू कौसह बर नशी और होली की रगरलियाँ मना ले और खर सवार को बजर्बे ताज़ियाना दौडा ले। अलाउद्दीनखाँ, वल्लाह तू मेरा फर्ज़न्दे रूहानी ए मानवी है। फर्क इसी कद्र है के मैं जाहिल हूँ और तू मौलवी है। अरे जालिम ! इस कौसे बरनशी की दाद दे। अक्ल करामत है, इलहाम है, लुत्फे तबा है, क्या है, ? ये इस्म किस कदर मुनासिबे मुकाम है ! सबीहा[6] का मुकद्दम[7] तुम पर मुबारक हो, 'साकिब' मुझसे लडता था के भतीजा है। मैं कहता था के पोती है। वारे, मैं जीता और साकिब हारा। अरीजए[8] जुदागाना, उस्ताद मीर जान साहब के नाम पहुँचता है।

४६

(१ अक्टूबर १८६५)

यकशबा यकुम अक्तूबर सन् १८६५ ।

---

१. गुज़रे तीन मासो के बीतने के बाद ईद आती है। २. आदेश जारी होना। ३. एक त्यौहार का नाम। ४. मीन राशि। ५. शुभ समाचार। ६ पुत्री। ७. प्रथम। ८ पत्र।

मिर्जा अलाउद्दीन खाँ 'अलाई' व 'नसीमी' के नाम

शुक्रे[1] ईज़द के तुरा बापिदरत सुलह फितात
हूरियाँ रक़्स कुनाँ सागरे शुक्राना ज़दन्द
क़ुदसियाँ बहरे दुआए तो वो वाला पिदरत
क़ुर्र ए फ़ाल बनामे मने दीवाना जदन्द

मियाँ, तुम जानते हो के मैं आज़िमे[2] रामपूर था। असबाब मुसाअद[3] हो गए, बशर्ते हयात जुमे को रवाना हूँगा। लड़के वालों की खैरो आफियतअली हुसेनखाँ की तहरीर मालूम होती रहती है। मेरा लिखना जायद है। एक बार मैं साहब कमिश्नर की अयादत[4] को गया था। फरुख मिर्ज़ा भी मेरे साथ गया था। मिजाज की खबर पूछ आया। भाई साहब को मेरा सलाम कहना।

राक़िम

गालिब अली शाह

४७

(६ दिसम्बर १८६५)

जाना आलीशाना,

खत पहुँचा। हज़ उठा। तुम्हारी आशिफ़्ता[5] हाली में हर्गिज शक नहीं। तुम कहीं, कवायल कहीं, वाली ए शहर नासाजगार, अजामेकार[6] नापिदीदार, एक दिल और सौ आजार। अल्लाह तुम्हारा यावर,[7] अली तुम्हारा मददगार। मैं पा दर रिकाब, बल्के नाल दर[8] आतिश। कब जाऊँ और 'फरुखसियर' को

---

१. ईश्वर का धन्यवाद है, तुम में और तुम्हारे पिता में समझौता हो गया। अप्सराएँ धन्यवाद देने लगीं। देवदूतों ने तुम्हारे और तुम्हारे पिता की प्रशंसा करने का काम मुझ जैसे दीवाने को सौंप दिया। २. रामपुर जाने का इच्छुक। ३. एकत्रित। ४. मिज़ाज पुर्सी। ५. परेशानी। ६. परिणाम शून्य। ७. सहायक। ८. उद्विग्न।

देखूँ। एक खत मैंने अली हुसेनखाँ को लिखा। वहाँ से उसका जवाब आ गया। रोहेल्ला फोड़े फुन्सी में मुब्तिला है। खुदा उसको सेहत दे। शमशाद अली बेग कहाँ अलवर पहुँचा और इस तरह गया के शहाबुद्दीनखाँ से भी मिल कर न गया। खैर,

रमूज़े मसलिहते खीश खुसरवाँ दानन्द

यहाँ जश्न के वो सामान हो रहे हैं के जमशीद अगर देखता तो हैरान रह जाता। शहर से दो कोस पर आगापूर नामी एक बस्ती है। आठ-दस दिन से वहाँ खयाम बरपा थे, परसो साहब कमिश्नर बहादुर बरेली मय चन्द साहबो और मेमो के आए और खेमो मे उतरे, कुछ कम सौ साहब और मेम जमा हुए, सब सरकारे रामपूर के मेहमान। कल सेशबा, ५ दिसम्बर हुजूरे पुरनूर बड़े तजम्मुल[1] से आगापूर तशरीफ ले गए। बारह पर दो बजे गए और शाम को पाँच बजे खलत पहन कर आए। वज़ीरअलीखा खानसामाँ खज़ासी मे से रुपए फेकता हुआ आता था। दो कोस के अर्से मे दो हज़ार रुपए से कम न निसार हुआ होगा। आज साहेबान आलीशान की दावत है। टिपन, शाम का खाना—यही खाएँगे। रोशनी, आतिशबाजी की वो इफरात के रात-दिन का सामनाकरेगी! तवायफ कावो हुजूम, हुक्काम का वो मजमा के इस मजलिस को तवायफुल[2] मुलूक कहा चाहिए। कोई कहता है साहब कमिश्नर बहादुर मय साहबाने आलीशान के कल जाएँगे, कोई कहता है परसो। रईस की तसवीर खीचता हूँ—कद, रग, शक्ल, शमायल,[3] बे ऐनही भाई जियाउद्दीनखाँ उम्र का फर्क और कुछ कुछ चेहरा और लह्यिा[4] मुतफावत[5]। हलीम[6] व खलीक[7] बाजल,[8]

---

१ ऐश्वर्य। २ अ[illegible]लोक। ३. नखशिख। ४ हृष्ट पुष्टता। ५. अन्तर। ६. दयालु। ७. शिष्ट। ८. उदार।

करीम, मुतवाज़े,[1] मुतशरअ,[2] मुतवर्रे, शेर फहम, सैकडो शेर याद। नज्म की तरफ तवज्जे नही। नस्र लिखते है और खूब लिखते है।

जलाला ए तबातबाई की तर्ज बरतते है। शिगुफ्ता[3] जबी ऐसे के उनके देखने से गम कोसो भाग जाए। फसीह बयाँ ऐसे के उनकी तकरीर सुनकर एक और नई रूह कालिब[4] मे आए। अल्लाहु[5] मादामे इकबालहू व जादे इजलालहू। बादे इख्तेताम महाफ़िल तालिब रूखसत हूँगा। बादे हुसूले रुख़सत दिल्ली जाऊँगा।

भाई साहब की ख़िदमत मे बशर्त्ते रसाई व तावे गोयाई सलाम कहना और बच्चो की खैरो आफियत, जो तुमको मालूम हुई है, वो मुझको लिखना।

६ दिसम्बर सन् १८६५ ई० की, बुध का दिन, सुबह के ८ बजा चाहते है।

कातिब का नाम गालिब है के तुम जानते होगे।

४८

(२२ दिसम्बर १८६५)

जुमा, २२ दिसम्बर सन् १८६५ ई०, १२ पर २ बजे, तीन का अमल।

मिर्ज़ा,

रूबरू बे अज़[6] पहलू, आओ मेरे सामने बैठो। आज सुबह के सात बजे बाकरअलीखाँ और हुसेनअलीखाँ १४ मुर्ग—६ बडे और ८ छोटे (ले) के दिल्ली को रवाना हुए। दो आदमी मेरे उनके साथ गए। कल्लू और लड़का, नियाज़ अली, याने डेढ आदमी मेरे पास है। नवाब साहब ने वक्ते रुख़सत एक एक

---

१. नम्र। २. धार्मिक नियमो पर चलने वाला। ३. प्रकाशमान भाल। ४. शरीर। ५. ईश्वर उनका प्रताप स्थायी कर और उनके ऐश्वर्य मे वृद्धि कर। ६. अत्यन्त निकट।

दुशाला मरहमत[1] किया। मिर्ज़ा नईम बेग इब्न मिर्ज़ा करीम बेग दो हफ़्ते से यहाँ वारिद और अपनी बहन के यहाँ साकिन है। कहते है के तेरे साथ दिल्ली चलूँगा और वहाँ से लोहारू जाऊँगा। मेरे चलने का हाल ये है के इशा अल्लाह् ताला इसी हफ़्ते मे चलूँगा।

आप चल चूके, उर्दू लिखते लिखते जो खत के मुश्तमिल एक मतलब पर था उसको तुमने फारसी मे लिखा, और फारसी भी मुत्सद्दियाना नही के अमीर को और अपने बुजुर्ग को कभी बसीगए मुफरद न लिखे। ये वही छोटी 'हे' बडी 'हे' का किस्सा है। खैर, खत न दिखाऊँगा, मा[2] कुतेबा फीहे कहकर काम निकाल लूँगा। मैंने जो चलते वक़्त फरुख सियर के अतालीक[3] की जबानी भाई को कहला भेजा था के तुम अगर कोई अपना मुद्दआ कहो तो मै उसकी दुरुस्ती करता लाऊँ। जवाब आया के और कुछ मुद्दआ नही, सिर्फ मकान का मुकदमा है, सो उस मुकदमे मे मेरा और मेरे शुरका[4] का वकील वहाँ मौजूद है। अगर वो इस अम्र का जिक्र करते तो मै उनसे उनके खालू अली असगरखाँ के नाम अर्ज़ी या खत लिखवाता लाता। बहरहाल अब भी कासिर[5] न रहूँगा। तारीख ऊपर लिख आया। नाम अपना बदल कर 'मगलूब' रख लिया है।

४९

साहब,

तुम्हारा खत पहुँचा। मतालिब दिलनशी हुए। गोगा[6] ए खल्क से मुझको गर्ज नही। क्या अच्छी रुबाई है किसी की—

---

१. प्रदान। २. जो कुछ उसमें लिखा गया। ३. अध्यापक। ४. भागीदार। ५ अवसावधान। ६ संसार का कोलाहल।

मिर्जा अलाउद्दीन खाँ 'अलाई' व 'नसीमी' के नाम

मोमिन[1] ब खयाले खीश मस्तम दानद
काफिर बगुमॉ खुदा परस्तम दानद
मर्दम ज़ गलत फहमिए मर्दुम मुर्दम
अँ काश कसे हरुँचे हस्तम दानद

भाइयो से फिर नही मिला। बाजार मे निकलते हुए डर लगता है। जवाहर खबरदार, मेरा सलाम अखवीन[2] को और उनका सलाम मुझको पहुँचा देता है। इसी को गनीमत जानता हूँ,

ताव लाए ही बनेगी 'गालिव'
वाकआ सख्त है और जान अज़ीज़

हजारो खाहिशे ऐसी के हर खाहिश पे दम निकले
वहुत निकले मेरे अरमान, लेकिन फिर भी कम निकले

ये मक़्ता और मतला मुन्दर्जए'दीवान' है। मगर इस वक्त ये दोनो शेर हस्वे हाल नजर आए। इस वास्ते लिख दिए गए। तुमने अशार जदीद माँगे। खातिर तुम्हारी अजीज़, एक मतला, सिर्फ दो मिसरे आगे के कहे हुए, याद आ गए के वो दाखिले 'दीवान' भी नही। उन पर फिक्र करके, एक मतला और पाँच शेर लिखकर सात वैत की एक गजल तुमको भेजता हूँ। भाई, क्या कहूँ के किस मुसीवत से ये छ वैते हात आई है और वो भी वलन्द रुतवा नही—

वहुत सही गम गेती, शराव कम क्या है?
गुलामे साकी ए कौसर हूँ मुझको गम क्या है?

---

१. मोमिन अपने ध्यान मे मुझे उन्मत्त मानता है, काफिर मुझे ईश्वर भक्त समझता है। लोगो की भ्रान्तियो के कारण मै मर गया, मै मर गया। काश, जैसा मै हूँ, वैसा कोई मुझे जानता। २. वन्धु।

मतला सानी—

रकीब पर है अगर लुत्फ तो सितम क्या है ?
तुम्हारी तर्जो रविश जानते हैं हम क्या है ?
कटे तो शब कहे, काटे तो साप कहलाए,
कोई बताओ के वो जुल्फे खम बखम क्या है ?
लिखा करे कोई अहकामे तालए मौलूद,
किसे खबर के वहाँ जुम्बिशे कलम क्या है ?
न हश्रो[1] नश्र का कायल न केशो मिल्लत[2] का
खुदा के वास्ते ऐसे की फिर कसम क्या है ?
वो दादो[3] दीदे गिराँ माया शर्त है हमदम
वगर ना मोहरे सुलेमान व जामे जम क्या है ?
सुखन मे खामए 'गालिब' की आतिश अफशानी
यकीन है हमको भी लेकिन अब उसमे दम क्या है?

लो साहब, तुम्हारा फरमाने कजा[4] तवामान बजा लाया। मगर इस गजल का मसविदा मेरे पास नही है, अगर ब एहतियात रखोगे और उर्दू के दीवान के हाशिए पर चढा दोगे तो अच्छा करोगे। उम्र फरावान[5] व दौलत फजूँवाद[6] फ़क़्त।

५०

(२६ दिसंबर १८६५)

जाना जाना,

एक खत मेरा, तुम्हारे दो खतो के जवाब मे तुमको पहुँचा होगा। आज मैं अली असगर खाँ बहादुर के घर गया। उनसे मैंने तज़करा किया। फरमाया

---

१. प्रलय के पश्चात् ईश्वर के सम्मुख उपस्थित होने और दण्ड प्राप्त करने का दिन। २ सम्प्रदाय, धर्म। ३. दान और दर्शन दो मूल्यवान चीजें चाहिए। ४. प्राणघाती। ५. अधिक। ६. धन बढे।

के फरुख सियर की मा को लिख भेजो के साल भर की तनखा की रसीद भेज दे, यहाँ से रुपया भेज दिया जाएगा। आज मगल है, ७ शाबान की और २६ दिसम्बर की। दोनो भतीजे तुम्हारे जुमे के दिन, २२ दिसम्बर को रवानए देहली हुए। मै परसो योमुलस खमी[1] को मरहले[2] पैमाँ हूँगा।

अव्वले[3] मा आखरे हर मुन्तही, दर इकरामो इज्जत
आखिरे मा जेबे तमन्ना तिही; अज़ मालो दौलत

तू 'कमाने करोहा' कहा कर, फारसी भगारा कर। मुझसे हिन्दी की चिन्दी सुन—एक गुलेल हुजूर ने देनी की है, एक अली असगरखा से उमेठी। दोनो कल आएँगी। मिर्जा नईम बेग इब्ने मिर्जा करीम बेग दो तीन हफ्ते से यहाँ वारिद और अपनी वहन के हाँ साकिन[4] है। जाद की खुदा ने चिट्ठी फकीर पर की। राहला वो जाने। फक्त।

—गालिब

५१

(१३ जनवरी १८६५)

मियाँ, चलते वक्त तुम्हारे चचा ने गुलेल की फरमाइश की थी। रामपूर पहुँच कर वो वे सई[5] व वे तलाश हात आ गई। बनवा रखी। लडको ने, मुलाजिमो ने, सव ने मुझसे सुन लिया के ये नवाब जियाउद्दीनखाँ के वास्ते है। अव चलने से एक हफ्ता पहले तुमने गुलेल माँगी। भाई, क्या बताऊँ के कितनी जुस्तजू की, कही वहम न पहुँची। दस रुपए तक मोल को न मिली। नवाब

---

१ गुरुवार। २. रास्ते पर चलूँगा। ३ हमे आरभिक स्थिति मे ही जो प्रतिष्ठा प्राप्त हुई वह प्रत्येक ऐसे व्यक्ति का अन्तिम काल है जिसने सफलता प्राप्त की हो। और हमारी अन्तिम स्थिति वह है जब कि हमे धन-सम्पत्ति की इच्छा नही रहती। ४ ठहरे हुए। ५. अनायास।

साहब से माँगी । तोशाख़ाने मे भी न थी, एक अमीर के हाँ पता लगा। दौडा हुआ गया । ख़पची मौजूद पाई, लेकिन क्या ख़पची ? जैसे नजफ़ख़ाँ के अहद के तूरानियो मे हमारी तुम्हारी हड्डी, बनवाने की फ़ुर्सत कहाँ। आज ली, कल चल दिया । इस बॉस की कद्र करना और इसको अच्छी तरह बनवा लेना।

बादशाह फरुखसियर और उसके इखवान[1] खुशो खुर्रम है। फरुखसियर की माँ ने बाजरे का हलवा सोहन खिलाया ।

२५ शाबान, १३ जनवरी।

नजात का तालिब

—गालिब

५२

सआदत व इकबाले निशा, मिर्जा अलाउद्दीनखाँ बहादुर को फकीर असदुल्लाह् की दुआ पहुँचे ।

कल शाम को मख़दूम मुकर्रम जनाब आग़ा मुहम्मद हुसेन साहब शीराज़ी ब सवारी रेल मानिन्द दौलते दिलख़ाह, के नागाह् आवे, फ़कीर के तकिए मे तशरीफ़ लाए। शब को जनाब डिप्टी विलायत हुसेनखाँ के मकान में आराम फ़रमाया। अब वहाँ आते है । करीबे[2] तुलूए आफताब व चश्मे नीमबाज[3] ये रुक़्का तुम्हारे नाम लिखा हूँ । जो कुछ जी चाहता है, वो मुफस्सिल नही लिख सकता । मुख़्तसरे मुफीद, आग़ा साहब को देख कर यो समझना के मेरा बूढ़ा चचा 'गालिब' जवान होकर मेले की सैर को हाजिर हुआ है । पस नूर चश्माँ राहतजाँ मिर्ज़ा बाकरअलीख़ाँ बहादुर व मिर्ज़ा हुसेनअलीखाँ बहादुर जनाब आगा साहब का कदम बोस[4] बजा लायें और उनकी खिदमत गुजारी को अपनी सआदत और मेरी खुशनूदी समझे । बस ।

---

१. भाई बन्धु । २. सूर्योदय के लगभग। ३. अर्द्धोन्मीलित नेत्र। ४. चरण-चुम्बन ।

हाँ, मिर्ज़ा अलाई, अगर करनैल अलेक्जेंडर इस्कदर बहादुर से मुलाकात हो तो मेरा सलाम कहना।

५३

मिया,

मुद्दआ असली इन सुतूर की तहरीर से ये है के अगर कल कमेटी मे गए हो तो मेरे सवाल के पढे जाने का हाल लिखो। जिम्नन[1] जिक्र एक मुदब्बिर का लिखा जाता है। जो तुमने इस मुद्दब्बिर के सिफात लिखे सब सच है। अहमक, खबीसुल नफ़्स, हासिद, तबियत बुरी, समझ बुरी, क़िस्मत बुरी। एक बार मैंने दकनी की दुश्मनी मे गालिया खाई, एक बार बनारसी की दोस्ती म गालियाँ खाऊँगा। मैंने जो तुम्हे इसके बाब मे लिखा था वजह उसकी ये थी के मैंने सुना था के तुमने अपने साईसो से कह दिया है, या कहा चाहते हो के इसको बाजार मे बे हुरमत[2] करे। ये बात खिलाफे शेव ए[3] मोमनीन है। खुलासा ये के ये कस्द न करना। ये मोइद[4] उस कौल का है के जो मैंने तुमसे पहले कहा था, के तुम यो तसव्वुर करो के इस नाम का आदमी इस मुहल्ले मे बल्के इस शहर मे कोई नही।

—गालिब

५४

साहब,

बहुत दिन से तुम्हारा खत नही आया। आपका वकील बड़ा चर्ब ज़बान[5] है। मुकदमा उसने जीत लिया। चुनाचे उसकी तहरीर से तुमको मालूम हुआ होगा।

---

१. प्रसगवश, गौण रूप से। २. अपमानित। ३. धर्मपरायण व्यक्ति की नीति के विरुद्ध। ४. समर्थक। ५. बहुत बाते बनाने वाला।

ग़ालिब के पत्र

यकशबा, सलख[1] सफर सन् १२८५ हि० २१ जून सन् १८६८ ई० देहली।

(श्री सैयद अहमद अजीज कैफी सम्पादक तस्वीर 'जजबात' ने अधोलिखित पत्र को फरवरी १९२४ के अक मे प्रकाशित किया। उन्होने इस बात का उल्लेख किया है कि गालिब ने यह पत्र उनके दादा को लिखा था। पत्र मे इस बात का उल्लेख नही है कि यह वास्तव मे किसे लिखा गया था।)

(१८ जुलाई १८५८ ई०)

गुमाने जीस्त बुवद बर मनत ज़ बेदर्दी
बदस्त मर्ग वले बद्तर अज गुमाने तो नीस्त

मुझे जिन्दा समझते हो, जो नस्रे फारसी की फरमायश करते हो। गनीमत नही जानते के मुर्दा कुछ लिख कर भेज देता है ? पिन्सन अगरचे मिलेगा, पर देखिए कब मिलेगा ? उसके मिलने तक क्या होगा ? और उसके मिलने से मेरा क्या काम निकलेगा ? कते नजर इन उमूर से इस वजह[2] कलील को किस वस्ती मे बैठकर खाऊँगा ? ये शहर अब शहर नही, कहर है। कसीदे के अशार अभी क्यो भेजो ? जब जेबे[3] इन्तबा पा चुके तब एक लम्बर मुझको भी भेज देना।

मैने, बाद तौतए वो तम्हीद, आगाजे मई सन् १८५७ ई० से अपनी सरगुजिश्त लिखी है और बहैसियत इक्ते जाए[4] मुकाम वकाय भी उसमे दर्ज किए है। शेवए[5] लुजूम मा मालाय लुजूम मरई रखा है, याने इबारते फारसी बेआमेजिश[6] लफ्ज़े अरबी लिखी है और फारसी भी वो फारसी कदीम के जिसका

---

१. चन्द्रोदय की तिथि। २. थोडा मावजा। ३ मुद्रण से अलकृत। ४. स्थान और घटना के अनुरोध के अनुसार। ५. पूर्णरूप से लिखा है। ६. विना मिलाए।

अब पारस के बिलाद[1] मे भी निशान नही। ता[2] बहिन्दुस्तान चे रसद? चालीस सफ़े लिख चुका हूँ। इतमाम[3] मे इन्तजार यही है के पिन्सन का मुकदमा तय हो चुके। मिले या जवाव मिले और मैं बहरहाल किसी जगह इकामत[4] गुज़ी हो लूँ। हाँ, उसके वक्त तक जो कुछ काबिले तहरीर जवानिब-अजानिब से मालूम होगा वो नाचार लिख दूँगा। यहाँ कोई छापेखाना नही है। अगर इजाजत दोगे तो बाद इख़्तेताम इन औराक को तुम्हारे पास भेज दूँगा ताके हजार जिल्द मुन्तवा होकर उजडी हुई कलम रू हिन्द मे फैल जाएँ।

मगर[5] साहब दिले रोज़े बरहमत
कुनद दर हक़्के ई मिस्की दुआए

शेर ज़माँ खाँ अपने बाप की रिहाई की फिक्र मे मेरठ गए हैं, किस वास्ते के वो गरीब यहाँ की हवालात में से तहकीकात के लिए वहाँ भेजा गया।

यकशबा १८ जुलाई सन् १८५८ ई०।

—ग़ालिबे बेनवा[6]

---

१ नगर (बल्दा ब० ब०)। २. हिन्दुस्तान का क्या ज़िक्र। ३. समाप्ति। ४. निवास। ५. संभवत कोई पुण्यात्मा इस दरिद्र के लिए कुछ प्रार्थना करे।। ६. दरिद्र।

मुंशी शीवनरायन 'आराम' के नाम

१

साहब,

खत पहुँचा। अखबार का लिफाफा पहुँचा। लिफाफ़ो की खबर पहुँची। आपने क्यो तकलीफ की? लिफाफे वनाना दिल का वहलाना है। बेकार आदमी क्या करे? बहरहाल, जब लिफाफे पहुँच जाएँगे, हम आपका शुक्र बजा लाएँगे।

हरचे[1] अज़ दोस्त मी रसद नीकोस्त

यहाँ आदमी कहाँ है, के अखबार का खरीदार हो? महाजन लोग जो यहाँ बसते है, वो ये ढूँढते-फिरते है के, गेहूँ कहाँ सस्ते है। बहुत सखी होगे तो जिन्स पूरी तोल देगे। कागज़ रुपए महीने का क्यो मोल लेगे?

कल आपका खत आया। रात भर मैने फिक्रे शेर मे खूने जिगर खाया, इक्कीस शेर का कसीदा कह कर, तुम्हारा हुक्म वजा लाया। मेरे दोस्त खुसूसन मिर्ज़ा तफ़्ता जानते है के मै फने तारीख को नही जानता। इस कसीदे मे एक रविशे खास से इज़्हार सन् १८५८ का कर दिया है। खुदा करे, तुम्हारे पसन्द आवे। तुम खुद कद्रदाने सुखन हो और तीन उस्ताद इस फन के तुम्हारे यार है। मेरी मेहनत की दाद मिल जाएगी।

---

१. मित्र जो कुछ दे वह शुभ और अभीष्ट है।

मुंशी शीवनरायन 'आराम' के नाम

क़सीदा

मलाजे[1] कशवरो[2] लश्कर पनाहे शहरो सिपाह
जनाबे आलीए श्रैलन ब्रोन वाला जाह;
बलन्द रुतबा वो हाकिम, वो सरफराज अमीर
के बाज[3] ताज से लेता है जिसका तरफे कुलाह
वो मह्‌ज रहमतो राफत[4], के बहरे अहले जहाँ
नयाबते दमे ईसा करे है जिसकी निगाह
वो श्रैने अद्‌ल, के दहशत से जिसकी पुरसिश की
बने है शोल ए आतिश अनीसे परए काह[5]
जमी से सौद ए गौहर उठे बजाय गुबार
जहाँ हो तौसने[6] हश्मत का उसके जौलाँगाह
वो महरबाँ हो तो अन्जुम[7] कहे इलाही शुक्र
वो खश्मगी[8] हो तो गर्दूं कहे—'खुदा की पनाह,
ये, उसके अद्‌ल से अज्दाद को है आमेजिश—
के दश्तो कोह के अतराफ मे व हर सरे राह
हिजब्र[9] पंजे से लेता है काम शाने[10] का
कभी जो होती है उलझी हुई दुमे रूबाह[11]
न आफताब वले आफताब का हम चश्म,
न बादशाह वले मर्त्तबे मे हमसरे शाह

---

१. शरणगृह, सेना का शरण गृह। २. देश और सेना। ३. खिराज। ४. वह संसार के लोगो के लिए केवल दयालुता है। जिस तरह हजरत ईसा की साँसें मृतको को जीवित कर देती थी, उसी तरह की सामर्थ्य इनकी नज़र में है। ५. घास की पत्ती। ६. ऐश्वर्य का अश्व। ७. नक्षत्र। ८. रुष्ट। ९. शेर। १०. कघी। ११. लोमड़ी।

खुदा ने उसको दिया एक खूबरू फर्जन्द
सितारा जैसे चमकता हुआ ब पहलू ए माह
जहे सितारहे रौशन, के जो उसे देखे
शोआ ए मेहर दरख्शाँ हो उसका तारे निगाह
खुदा से है ये तवक्को के अहदे तिफ्ली में
बनेगा शर्क[1] से ता गर्ब इसका बाज़ीगाह
जवान होके करेगा ये वो जहाँ बानी
के ताबे इसके हो रोज़ो शबे सुपेदो स्याह
कहेगी खल्क इसे 'दावरे[2] पेहर शिकोह'
लिखेंगे लोग इसे 'खुसरे वे सितारा सिपाह
अता करेगा खुदावन्दे कारसाज़ इसे
खाने रोशनो खू ए खुशो दिले आगाह
मिलेगी इसको वो अक़्ले नेहुफ्तादाँ[3] के इसे
पड़े न कते खुसूमत में अहतयाजे गवाह
ये तुर्कताज से बरहम करेगा किशवरे रूस
ये लेगा, बादशहे चीं[4] से छीन तख्तो कुलाह
सने ईस्वी, अठारह सौ और अठावन
ये चाहते है जहाँ, आफरी से शामो[4] पगाह
ये जितने सैकड़े है सब हजार हो जाएँ
दराज़ इसकी हो उम्र इस कदर, सुखन कोताह
उम्मीदवारे इनायात 'शीवनरायन'
के आपका है नमकखार और दौलत खाह

---

१. पूर्व से पश्चिम तक। २ आकाश पर अधिकार रखने वाला अधिकारी। ३ गुप्त चीजो को जानने वाला। ४. प्रात सायं।

ये चाहता है के दुनिया मे इज्जोजाह के साथ
तुम्हे और इसको सलामत रखे सदा अल्लाह्

२

(३१ अगस्त १८५८)

शफीक मेरे, मुकर्रम मेरे, मुंशी शीवनरायन साहव,

तुम हजारो वरस सलामत रहो। तुम्हारा मेहरवानी नामा इस वक़्त पहुँचा और मैने इसी वक्त जवाव लिखा। वात ये है के मै नही चाहता के दो जुज्व या चार जुज्व की किताव हो। छ जुज्व से कम न हो। मिस्तर दस-ग्यारह सतर का हो, मगर हाशिया तीन तरफ वड़ा रहे। शीराज़े की तरफ का कम हो, ये वाते सव मिर्जा तफ़्ता को लिख चुका हूँ। उस यारे वेपरवा ने तुमसे शायद कुछ नही कहा। इसके सिवा ये है के कापी की तसही हो, गलतनामे[१] की हाजत न पडे। आप खुद मुतवज्जह रहिएगा और मुंशी नवी-वख्श साहव को अगर कहिएगा तो वो भी आपके शरीक रहेगे, और मिर्जा तफ्ता तो मालिक ही है। कागज 'शीवरामपुरी' हो। खैर, मगर सफेद व मुहरा किया हुआ और लआवदार हो। फिर ये हो के हाशिए पर जो लुगात के मानी लिखे जाएँ तो उसकी तर्जे तहरीर और तकसीम दिल[२] पसन्द और नजर-फरेव[३] हो। हाशिए की कलम वनिस्वत मतन की कलम के ख़फी[४] हो। खुलासा ये है के इन जिल्दो मे से दो जिल्दे विलायत को जाएँगी। एक जनाव फैजमाव मलिकए मुअज्जिम एंग्लिस्तान की नजर और एक मेरे आकाए कदीम लार्ड इलनवरा वहादुर की नज्र, और चार जिल्दे यहाँ के चार हाकिमो के नज्र करूँगा। 'मिर्जा तफ्ता' को पाँच जिल्दो को लिखा था, लेकिन अव छ

---

१. अशुद्धिपत्र। २ मनोरम। ३. नेत्राकर्षक। ४. वारीक।

जिल्दे तैयार कर दीजिएगा। यानी शीराजा और जिल्द और जदवल। और और इन छ जिल्दो की जो लागत पडे, रुपया जिल्द से लेकर दो रुपए जिल्द तक, वो मुझसे मँगवा भेजिएगा। मै बमुजर्रद[1] तलब के फौरन हुण्डवी भेज दूँगा। एक खरीदार पचास जिल्द के वहाँ पहुँचे है। वास्ते खुदा के मिर्ज़ा तफ्ता से कहिए के उनसे मिले। याने राजा उम्मीदसिंघ बहादुर इन्दौर वाले। वो 'छली ईंट' मे पोलीस के पिछवाडे रहते है। ताज्जुब है के आप का खत आ गया और 'मिर्ज़ा तफ्ता' ने मुझे पार्सल की रसीद नही लिखी। अब मेरा खत फारसी अपने नाम का और ये खत, दोनो खत उनको दिखा दीजिएगा और राजा उम्मीदसिंघ से मिलने को कहिएगा। और हाँ साहब ये उनको ताकीद कीजिएगा के वो रूबाई जो मैने लिख भेजी है उसको सबसे पहले जहाँ उसका निशान दिया है, इसी फिक्रे के आगे ज़रूर ज़रूर लिख दीजिएगा। और वो रुबाई बीसवे सफे मे इस फिक्रे के आगे है—

नै नै अख्तरे बख्ते खुसरो दर बलन्दी बजाए रसीद के रुख अज खाकिया निहुफ्त।

तुम उनको याद दिलाकर उनसे लिखवा लेना जरूर जरूर। ये जो तुमने लिखा के साहब ने सुनकर इसको पसन्द किया, मै हैरान हूँ के कौन-सा मुकाम तुमने पढ़ा होगा। क्योकर कहूँ के साहब इस इबारत को समझे होगे? इसकी जो हकीकत हो मुफस्सिल लिखो। ज्यादा, ज्यादा।

सेशबा, ३१ माहे अगस्त सन् १८५८ ई०।

जरूरी जवाब तलब

राकिम—असदुल्लाह

---

१ मागते ही।

३

(३ सितम्बर १८५८)

महाराज,

सख्त हैरत मे हूँ के मुंशी हरगोपाल साहब ने मुझको खत लिखना क्यों छोडा। अगर मुझसे खफा हैं तो क्यो खफा हैं और अगर शहर मे नही तो कहाँ गए और क्यो गए है, और कब तक आएँगे ? आप मेहरबानी फरमाकर ये उमूर मुझको लिखकर भेजिए। इससे अलावा एक रूबाई मिर्जा तफ्ता को भेजी है और उनको लिखा है के इसको 'दस्तम्बू' मे फला जगह दर्ज कर देना और एक दो फिक्रे भाई मुंशी नबीबख्श साहब को लिखे हैं और उनको भी 'दस्तम्बू' मे लिख देने का महल बता दिया है। मैं नही जानता इन दोनो साहबो ने मेरे कहने पर अमल किया और उन्होने नज्म को और उन्होने नस्र को किताब के हाशिये पर चढा दिया, या नही। तुमसे बहजार आरज़ू ख्वाहिश करता हूँ के अगर वो रूबाई और वो फ़िक्रे हाशिए पर चढ़ गए हैं, तो मुझको उनके लिखे जाने की इत्तिला दीजिए के तशवीश रफा हो और अगर उन दोनो साहबो ने बेपरवाई की है तो वास्ते खुदा के आप मिर्ज़ा तफ़्ता से रूबाई और मुंशी नबीबख्श साहब से दोनो फिक्रे ले लीजिए और महल्ले तहरीर मेरे ख़त से मालूम करके उनको जा बजा हाशिए पर रकम कीजिए और मुझको इत्तिला दीजिए जरूर, जरूर, ज़रूर। और एक और काम आपको करना चाहिए के शायद तीसरे सफे के आखिर मे या चौथे सफे के अव्वल मे ये फिकरा है—

अगर दर दमे दोगर व नहेब मवाश बहम जनद

'नहेब' का लफ्ज अरबी है, ये 'सहब' से लिखा गया है। इसको छील डालिएगा और इसकी जगह 'नवाए मवाश' बना दीजिएगा। हकीकत लिख कर, अब सवालात अलग अलग लिखता हूँ—

पहला सवाल—मिर्ज़ा तफ़्ता का हाल और उनके ख़त के न आने की वजह लिखिए।

दूसरा सवाल—मिर्ज़ा तफ्ता ने अगर रूबाई 'दस्तम्बू' के हाशिए पर लिख दी तो लसकी इत्तिला, वर्ना उनके नाम के खत से रूबाई और तहरीर का महल मालूम करके आप हाशिए पर लिख दे और मुझको इत्तिला दे।

तीसरा सवाल—मुंशी नबीबख्श साहब ने अगर मेरी भेजी हुई नस्र दर्ज कर दी है तो उसकी इत्तिला वर्ना वो नस्र उनसे लेकर और महल मालूम कर के हाशियए किताब पर लिख दीजिए और मुझको लिख भेजिए।

चौथा सवाल—आप, जिस तरह ऊपर लिख आया हूँ, 'नहेब' की जगह 'नवाय' का लफ्ज बना कर मुझ पर इनायत कीजिए।

पाचवा सवाल—खरीदार पचास जिल्दो के पहुँचे, मिर्ज़ा तफ्ता से मिले, रुपया पचास जिल्द की कीमत का दिया या हनोज ये उमूर वकू मे नही आए? इसकी इत्तिला जरूर दीजिए।

छटा सवाल—छापा शुरू हो गया नही। अगर शरू नही हुआ तो क्या सबब?

मुतवक्के हूँ के मेरे ये सब काम अज राहे इनायत बनाकर इन छ सवाल का जवाब, इसी तरह जुदा जुदा लिखिए और जरूर लिखिए और जल्द लिखिए।

रोज़े जुमा, सुअम सितम्बर सन् १८५८ ई०।

राकिम—असदुल्लाह ख़ाँ

४

(१९ अक्टूबर १८५८)

बरखुरदार नूरे चश्म मुंशी शीवनरायन को मालूम हो के मैं क्या जानता था के तुम कौन हो? जब ये जाना के तुम नाज़िर बंसीधर के पोते हो, तो

मालूम हुआ के मेरे फर्जन्द दिलबन्द हो। अब तुमको मुशफिकव मुकर्रम लिखूँ तो गुनहगार। तुमको हमारे खानदान और अपने खानदान की आमेजिश का हाल क्या मालूम है? मुझसे सुनो—तुम्हारे दादा के वालिद, अहदे "नजफ़-खाँ" व "हमदानी" मे, मेरे नाना साहव मरहूम खाजा गुलाम हुसेनखा के रफीक[1] थे। जब मेरे नाना ने नौकरी तर्क की और घर वैठे तो तुम्हारे पर-दादा ने भी कमर खोली, और फिर कही नौकरी न की। ये वाते मेरे होश से पहले की है, मगर जव जवान हुआ तो मैंने ये देखा के मुशी वसीधर, खा साहव के साथ है और उन्होने जो "कैठम गाव" अपनी जागीर का सरकार मे दावा किया है तो मुशी बसीधर उस अम्र के मुसरिम[2] है और वकालत और मुख्तारी करते है। मै और वो हमउम्र थे, शायद मुशी वन्सीधर मुझसे एक-दो वरस वडे हो या छोटे हो। उनीस-बीस बरस की मेरी उम्र और ऐसी ही उम्र उनकी। बाहम शतरज और इख्तलात और मुहव्वत, आधो आधी रात गुजर जाती थी। चूँके घर उनका वहुत दूर न था इस वास्ते जव चाहते थे चले जाते थे। वस, हमारे उनके मकान मे मछिया रडी का घर और हमारे दो कटरे दरमियान थे। हमारी वडी हवेली वो है के जो अव लख्मीचन्द सेठ ने मोल ली है। इसी के दरवाजे की सगीन वारहदरी पर मेरी निशिस्त थी और पास उसके एक 'खटिया वाली हवेली' और सलीमशाह के तकिए के पास दूसरी हवेली और काले महल से लगी हुई एक और हवेली और उससे आगे वढ कर एक कटरा के वो 'गडरियो वाला' मशहूर था और कटरा के वो 'कश्मीरन वाला' कहलाता था। उस कटरे के एक कोठे पर मै पतग उड़ाता था और राजा वलवानसिंघ से पतग लडा करते थे। 'वासलखा' नामी एक सिपाही तुम्हारे दादा का पेशदस्त रहता था और वो कटरो का किराया उगाह कर उनके पास जमा करवाता था।

---

१. मित्र। २. निगरानकार।

भाई, तुम सुनो तो सही, तुम्हारा दादा बहुत कुछ पैदा कर गया है, इलाके मोल लिए थे और ज़मीदारा अपना कर लिया था, दस-बारह हजार रुपए की सरकार की मालगुजारी करता था। आया वो सब कारख़ाने तुम्हारे हात आए या नही ? इसका हाल अजरूए तफसील जल्द मुझको लिखो।

रोजे सेशंबा, १९ अक्तूबर, वक्ते वरूदे ख़त।

—असदुल्लाह.

५

(२३ अक्टूबर १८५८)

बरखुरदार इकबाल निशा मुंशी शीवनरायन को बाद दुआ के मालूम हो–

तुम्हारे दो ख़त मुतवातिर पहुँचे। मेरे भी दो ख़त पसोपेश पहुँचे होंगे ? माफिक उस तहरीर के अमल किया होगा ? दो जिल्दे पुरतकल्लुफ[1] और पाँच जिल्दे बनिस्बत उसके कम तकल्लुफ मिर्ज़ा हातिम अली साहब के औहद ए[2] एहतमाम मे है। उससे हमको और तुमको कुछ काम नही। वो जैसी चाहे बनवाकर भेज दे। तुम एक जिल्द–बस, ज्यादा सर्फ क्यो करो ? अपने तौर पर अपनी तरफ से जैसी चाहो, बनवाकर भेज दो, मै तुमको अपने प्यारे यार बंसीधर की निशानी जानता हूँ, उसको, तुम्हारी निशानी जानकर अपनी जान के बराबर रखूँगा। बाकी हाल अपने ख़ानदान और तुम्हारे ख़ानदान (का) और बाहम पलकर अपना और बंसीधर का बड़े होना सब तुमको लिख चुका हूँ। मुकर्रर क्यो लिखूँ ?

बादशाह की तस्वीर की ये सूरत है के उजड़ा हुआ शहर, न आदमी न आदमजाद। मगर हाँ दो-एक मुसव्विरो[3] की आबादी का हुक्म हो गया है। वो रहते है, सो वो भी बाद अपने घरो के लुटने के आबाद हुए है, तस्वीरे भी उनके घरो म से लुट गई। कुछ जो रही वो साहेबान अँगरेज़ ने बड़ी ख़ाहिश

१ सुन्दर। २. तत्वावधान। ३ चित्रकार।

से खरीद कर ली। एक मुसव्विर के पास एक तस्वीर है, वो तीस रुपए से कम को नही देता। कहता है के तीन-तीन अशर्फियो को मैंने साहब लोगो के हात बेची है, तुमको दो अशर्फी को दूंगा। हाथी दाँत की तख्ती पर वो तस्वीर है, मैंने चाहा के उसकी नक्ल कागज़ पर उतार दे। उसके भी बीस रुपए मांगता है और फिर खुदा जाने अच्छी हो या न हो। इतना सर्फ[1] बेजा[2] क्या जरूर है। मैंने दो-एक आदमियो से कह रखा है, अगर कही से हात आ जाएगी तो लेकर तुमको भेज दूंगा। मुसव्विरो से खरीद करने का न खुद मुझमे मकदूर, न तुम्हारा नुक्सान मजूर।

अब छापा तमाम हो गया होगा. वो पाँच और दो, सात किताबे जो मिर्ज़ा साहब के तहवील हैं, वो; और वो एक जिल्द जो तुमने मुझको देनी की है, वो, ये सब लौह और जिल्द की दुरुस्ती के बाद पहुँच जाएँगी। मगर वो चालीस किताबे सरासरी जो मुझे चाहिए हैं। वो तो आजकल मे रवाना कर दो, और हाँ मेरी जान, ये चालीस किताबो का पगतारा[3] क्यो कर पहुँचेगा और महसूल इसका क्या होगा ? और ये भी तो बताओ के वो दस जिल्दे राय उमीद-सिंघ के पास कहाँ भेजी जाएगी ? मिर्ज़ा तफ्ता हातरस को जाते हुए उनका इन्दौर न होना और शायद फिर आगरे और दिल्ली का आना मुझको लिख चुके हैं। इन बातो का जवाब मुझको लिखो। तस्वीर के बाब में जो कुछ लिखो, वो करूँ और इन मुकदमात से इत्तिला पाऊँ। जवाब जल्द लिखो और मुफस्सिल लिखो।

निगाश्ता व रवाँदाश्त ए, २३ अक्तूबर सन १८५८ ई०।

अज़—गालिब

६

नूरे बसर, लख्ते जिगर मुंशी शीवनरायन को दुआ पहुँचे।

---

१ व्यय। २ अनुचित। ३. बडल।

ख़त और रिपोट का लिफाफा पहुँचा और सब हाल तुम्हारे खानदान का दरियाफ़्त हुआ। सब मेरे जिगर के टुकड़े है और तुम अपने दूदमान[1] के चश्मो[2] चिराग हो।

"अलेलमा ताका" शौक़ से लिखो। आखिर के सफे की दो सतरें अज रुए मजमून सरासर किताब के मज़मून के खिलाफ़ है। मैंने सरकार की फतह का हाल नही लिखा। सिर्फ, अपनी पन्द्रह महीने की सरगुज़िश्त लिखी है। तकरीबन शहरो[3] सिपाह का भी जिक्र आ गया है। और वो अपनी सरगुजिश्त जो मैंने लिखी है, सो इब्तदाए ११ मई सन् १८५७ से ३१ जुलाई सन् १८५८ ई० तक लिखी है। शहर, सितम्बर मे फतह हुआ। उसका भी बयान जिम्नन आ गया। खूब हुआ जो तुमने मुझसे पूछा, वर्ना बड़ी कबाहत[4] होती। अब मैं जिस तरह से कहूँ, सो करो। पहले सोचो के तक्सीम यो है के तीन सतरें ऊपर और तीन सतरें नीचे; और बीच मे एक सतर, इसमें किताब का नाम। क्यो मियाँ, तक़्सीम यो ही है? अब मैं दूसरे सफे पर सातो सतरें लिख देता हूँ। उसको मुलाहिज़ा करो और मेरा कहना मानो, वर्ना किताब की हकीकत गलत हो जाएगी और मतबे पर बात आएगी। इस सफे मे दो-एक बातें और समझा दूँ के वो ज़रूरी है। सुनो मेरी जान, 'नवाबी' का मुझको खिताब है, नज्मुदौला और अतराफ व जवानिब के उमरा सब मुझको नवाब लिखते है बल्के बाज़ अँगरेज भी। चुँनाचे साहब कमिश्नर बहादुर देहली ने जो अब इन दिनो मे एक रूबकारी भेजी है, तो लिफाफ़े पर "नवाब असदुल्लाहखाँ" लिखा। लेकिन ये याद रहे, नवाब के लफ्ज़ के साथ 'मिर्ज़ा' या 'मीर' नही लिखते। ये खिलाफे[5] दस्तूर है। या नवाब असदुल्लाहखाँ लिखो, या मिर्ज़ा असदुल्लाहख़ाँ लिखो। और बहादुर का लफ़्ज़ तो दोनो हाल में वाजिब और लाज़िम है।

---

१. वंश। २. नेत्र और दीपक। ३. नगर और सैनिक। ४. बुरा। ५. नियम विरुद्ध।

७

बरखुरदार, कामगार को बाद दुआ के मालूम हो के 'दस्तम्बू' के आगाज की इबारत अज रू ए एहतियात दो बार इरसाल की है। यकीन है के पहुँच गई होगी और छापी गई होगी और आपने उसी इबारत से इश्तेहार भी अखबार मे छापा होगा, या अब छापिएगा।

बहरहाल, इस शहर के अखबार सुनिए—हुक्म हुआ है दोशम्बे के दिन पहली तारीख नवम्बर को रात के वक्त सब खैरखाहाने अँगरेज़ अपने अपने घरो मे रोशनी करे और बाज़ारो मे और साहब कमिश्नर बहादुर की कोठी पर भी रोशनी होगी। फकीर भी इस तिहीदस्ती मे, के अठारह महीने से पिन्सन मुकर्ररी नही पाया, अपने मकान पर रोशनी करेगा; और एक कता पन्द्रह बैत का लिख कर साहब कमिश्नर शहर को भेजा है। आपके पास उसकी नकल भेजता हूँ। अगर तुम्हारा ज़ी चाहे, तो उसको छाप दो और जिस लबर मे ये छापा जाए वो लबर मेरे देखने को भेज देना।

और अब फरमाइये के मै किताबो के आने का कब तक इंतजार करूँ?

कता

दरी[1] रोजगारे हुमायूनो फ़र्रुख
के गोई बुवद रोज़गारे चरागाँ
शुदा गोश पुरनूर चूँ चश्मे बीना
ज़े आवाज़ ए इश्तेहारे चरागाँ

---

१. यह दीपमालिका का शुभ समय है। प्रकाशोत्सव के समाचार से आँखो की तरह कान भी प्रकाश से भर गए है। यह शहर प्रकाश का सागर है जहा दृष्टि चारो ओर दीपको को देख रही है। आकाश में सूर्य ने पूरा दिन दीपको की प्रतीक्षा मे बिताया।

मगर शहर दरियाए नूरस्त की जा
निगाह गश्ता हर सू दो चारे चरागाँ
बसर बुर्दा बर चर्ख़ मेहरे मुनव्वर
हमारोज़ दर इन्तेज़ारे चरागाँ
गवाहे मन ईनक खुतूते शोआई
के दारद दिलंश खार खारे चरागाँ
दरी शब रवा बाशद अज़ चर्खे गर्दा
कुनद गजे अंजुम निसारे चरागाँ
नबूदस्त दर दहर ज़ी पीश हर्गिज़
वदी रोशनी रूएकारे चिरागाँ
शुदज़ फैजे शाहशाहे इंग्लिस्ताँ
फुजूँ रौनके कारोवारे चरागाँ
जहादार विक्टोरिया कज फरोगश
ज़े आतिश दमद लाला जारे चरागाँ
ज़े अदलश चुनाँ गश्त परवाना अमन
के शुद दीदवानें हिसारे चरागाँ
वफर्माने सर जान लारन्स साहव
शुदी शहर आईनादारे चरागाँ
व देहली फलक रुतवा साडर्स साहव
वरारास्त नक़्शो निगारे चरागाँ
शुदज़ सइए हेनरी इजर्टन वहादुर
रवा हर तरफ़ जो ए वारे चरागाँ
सुख़न संज गालिव ज़े रू ए अकीदत
दुआ मी कुनद दर वहारे चरागाँ

मु शी शीवनरायन 'आराम' के नाम

के बादा फुजूं साले उम्रे शहशा
ब रूए ज़मी अज़ शुमारे चरागा[1]

८

(९ नवम्बर १८५८)

मियाँ,

तुम्हारे कमाल का हाल मालूम करके मै बहुत खुश हुआ। अगर मुझको कभी अँगरेज़ी लिखना होगा, तो यहाँ से उर्दू लिखकर भेज दूँगा। तुम वहाँ से अँगरेज़ी लिखकर भेज दिया करना। "किस्सए कासिदाने शाही" मैंने देखा। इस्लाह के वाव मे सोचा के अगर सव फिक्रों को मुकफा[2] और इवारत को रगीन वनाने का कस्द करूँ तो किताव की सूरत वदल जाएगी। और शायद तुमको भी ये मजूर न हो। नाचार, इस पर किनाअ़त की के जो अलफाज़ टकसाल वाहर थे वो वदल डाले। मसलन्—'वे' के ये गँवारू वोली है, 'वो'—

१ मेरी इस वात की साक्षी सूर्य की किरणे है, दीपको को देख कर सूर्य उद्विग्न हो गया। यह उचित होगा कि इस रात वह आकाश के समस्त तारो को दीपको पर न्यौछावर कर दे। ससार ने इससे पहले कभी इतने प्रकाशमान दीपक नही देखे। इग्लैण्ड की कृपा से दीपक वहुत प्रकाशमान है। विक्टोरिया के प्रताप से आग मे भी लाला के फल उग रहे हैं। उसके न्याय के कारण पतगे के मन मे कोई भय नही रहा, वह दीपको का रक्षक वन गया। सर जान लारेन्स की आज्ञा से यह नगर जगमगा उठा है। महिमाशाली साण्डर्स ने दिल्ली में दीपमाला को वहुत सजाया और हेनरी साहव की कृपा से चारो ओर दीपक की नहरें वह रही है। अपनी आस्था के अनुसार इस दीपमालिका के अवसर पर गालिव कवि प्रार्थना करता है—जितने दीपक जल रहे हैं, उनसे अधिक वर्षो तक साम्राज्ञी चिरजीवी हो। २. काफिएदार।

-ये ठेट उर्दू है, 'कराना'—ये बेरून जात की बोली है, 'करवाना'—ये फसी है। 'राजे' ये गलत है, 'राजा' सही है। कही कही रवावत[1] व जमायर[2] नामरबूत[3] थे, उनको मरबूत कर दिया है और एक जगह 'गहने बसे'—ये लफ्ज मेरी समझ मे न आया, इसको तुम सही समझ लेना। वाकी और सब मरबूत[4] और खूब और साफ है, हाजत इस्लाह की नही।

साहब, किताबे कब रवाना होगी ? दीवाली भी होली, अगर गगा जाने का कस्द हो तो भाई मेरी किताबे भेज कर जाना। और हाँ ये मैं नही समझा के मिर्जा मेहर की बनवाई हुई सात किताबे भी इन्ही किताबो के साथ भेजोगे या वो अपने तौर पर जुदा रवाना करेगे। वो तुमने अपनी बनवाई हुई किताब का आठ दिन का वादा किया था और उस वादे से ये बात तराविश[5] करती थी के सादा किताबे पहले रवाना होगी, और वो एक किताब हफ्ते के बाद सो वो हफ्ता भी गुजर गया, यकीन है के अब वो सब यकजा पहुँचे और शायद कल-परसो आ जाएँ। वो लम्बर अखबार का जो तुमने मुझको भेजा था उसमे एडमिन्स्टन साहब के लेफटेट (गवर्नर) होने की और बहुत जल्द आने की खबर लिखी थी। यहाँ मुझको कई बाते पूछनी है—

एक तो ये के ये चीफ सेक्रेतर नवाब गवर्नर जनरल के थे। जब ये लेफ्टेट गवर्नर हुए तो अब वहाँ चीफ सेक्रेतर कौन होगा ? यकीन है के विलियम म्योर साहब इस ओहदे पर ममूर हो। पस, अगर यो ही है तो इनके महकमे मे सेक्रेतर कौन होगा ?

दूसरी बात ये के मीर मुशी इनके तो वही मुंशी गुलाम गौसखा साहब रहेगे। यकीन है के इनके साथ आवे।

तीसरी ये बात के गवर्नर जनरल के फारसी दफ्तर के मीर मुशी एक बुजुर्ग थे, बिलगिराम के रहने वाले, मुशी सैयद जान खाँ। आया अब भी वही है या उनकी जगह कोई और साहब है ?

---

१. रब्त। २. सर्वनाम। ३. असबद्ध। ४. सुसम्बद्ध। ५. प्रकट।

इन सब बातो मे से जो आपको मालूम हो वो और जो न मालूम हो उसको मालूम करके मुझको लिखिए और जल्द लिखिए और जरूर लिखिए। यकीन तो है के तुम समझ गए हो के मै क्यो पूछता हूँ ? किताबे जाबजा भेजनी हैं। जब तक नाम और मुकाम मालूम न हो तो क्यो कर भेजूं ? जवाब लिखो और शिताब लिखो। किताबे भेजो और जल्द भेजो।

सेशबा ६ नवम्बर सन् १८५८ ई०।

९

(१३ नवम्बर १८५८)

बरखुरदार कामगार मुंशी शीवनरायन ताल उम्रहू व जाद[1] कद्रहू।

कल जुमे के दिन १२ नवम्बर को, ३२ किताबे आगई। मै बहुत खुश हुआ और तुमको दुआएँ दी। खत तुम्हारे नाम का अभी मेरा कहार डाक मे ले गया है। इस रुक्के की तहरीर से मकसूद ये है के मियाँ अब्दुल हकीम बहुत नेक बख्त और अशराफ और हुनरमन्द आदमी है। 'दिल्ली गजट' में हरफो के छापे का काम किया करते थे। चूँके वो छापेखाना अब आगरे मे है, ये भी वही आते है। तुम्हारे पास हाजिर होगे। उन पर मेहरबानी रखना, भला। वो शहर बेगाना है, इनको तुम्हारी खिदमत में शनासाई रहेगी, तो अच्छी बात है। 'सहाफी' का काम भी बकद्रे जरूरत कर सकते हैं। शायद अगर देहली गजट में इनका तौर दुरुस्त न हो, तो उस सूरत में बशर्त्ते गुंजायश अपने मतबे में इनको रख लेना।

निगाश्तए शंबा, १३ नवम्बर १८५८ ई०।

राकिम—असदुल्लाह

---

१. ज्यादा।

१०

(१८ नवम्बर १८५८)

साहब,

तुम्हारा खत आया। दिल खुश हुआ। देखिए, मिर्जा 'मेहर' (किताबे) कब रवाना करते हैं। अगर भेज चुके हैं तो यकीन है के आज यहाँ आ पहुँचे, आज न आएँ, कल आएँ, कल से मैं शाम तक राह देखता हूँ।

'मेहर नीम माह' नही, उसका नाम 'मेहर दीमरोज़' है और वो सलातीने[1] तैमूरिया की तवारीख[2] है। अब वो बात ही गई गुजरी, बल्के वो किताब अब छुपाने के लायक है—न छपवाने के काबिल। उर्दू के खुतूत जो आप छापा चाहते है, ये भी जायद बात हैं। कोई रुक्का ऐसा होगा जो मैंने कलम सभाल कर और दिल लगा कर लिखा होगा वर्ना सिर्फ तहरीर सरसरी है। उसकी शोहरत मेरी सुखनवरी के शुकूह[3] के मनाफी[4] है। इससे कतै नजर क्या जरूर है के हमारे आपस के मामलात औरो पर ज़ाहिर हो?

खुलासा ये के इन रुक्कात का छापा मेरे खिलाफे तबा है।

मुहर्रिरए पजशबा, १८ नवम्बर सन् १८५८ ई०।

११

(२० नवम्बर १८५८)

बरखुरदार इकबाले निशान को दुआ पहुँचे।

कल जुमे के दिन १९ नवम्बर सन् १८५८ को सात किताबो के दो पार्सल पहुँचे। वाकई किताबें जैसा के मेरा जी चाहता था, उसी रूप की है। हक ताला मिर्जा मेहर को सलामत रखे। रुक्को के छापे के बाब में ममानियत लिख चुका

---

१. तैमूर वश के नरेश। २. इतिहास। ३. शान। ४. विरुद्ध।

हूँ, अलबत्ता इस बाब मे मेरी राय पर तुमको और मिर्ज़ा तफ्ता को अमल करना जरूर है।

मतलब उम्दा, जो इस खत की तहरीर से मजूर है, वो ये है के जो किताब तुमने बनवाई है और मैंने तुमको लिखा था के पहले वर्क के दूसरे सफे पर अगरेजी इबारत लिखकर भेजना, खुदा करे वो इबारत तुमने न लिखी हो। अगर लिख दी हो नाचार, और अगर न लिखी हो तो अब न लिखना और सफा सादा रहने देना। और इसी तरह मेरे पास भेज देना। ये भी मालूम रहे के अब कुतुब की तक़सीम उस किताब के आने तक मुल्तवी रहेगी। और वो किताब मेरे पास जल्द पहुँच जाए तो बेहतर है।

२० नवम्बर सन् १८५८।

जवाब तलब बल्के किताब तलब

१२

(३० नवम्बर १८५८)

साहब,

तुम कधोली कब आए। और जब आए, तो वो मेरा खत बैरंग के जिसमे सात रुपए की हुण्डवी मलफूफ थी, पाया या नही पाया ? अगर पाया, तो माफिके उस तहरीर के अमल क्यो न फरमाया ? और उस खत मे एक मतलब जवाब तलब था उसका जवाब क्यो न भिजवाया ? अच्छा अगर तुम एकाध दिन के वास्ते कधोली गए थे तो कारपरदाजाने मतबा ने खत लेकर रख छोडा होगा और जब तुम आए होगे तो वो खत तुम्हे दिया होगा। फिर क्या सबब जो तुमने जवाब न लिखा ? या अभी कधोली से तुम नही आए या वो खत मेरा तलफ हो गया। तारीखे तहरीरे खत मुझे याद नही। अब ये लिखता हूँ के अगर खत पहुँचा तो मुझको खत

और हुण्डवी की रसीद और मेरे सवाल का जवाव लिखो और अगर खत नही पहुँचा तो इसकी तदवीर वताओ के अब मैं साहूकार से क्या कहूँ और हुण्डवो का मुसन्ना किस तरह से मागूँ ?

रोजे सेशम्वा ३० नवम्बर सन् १८५८ ई० ।

जवाव तलव, शिताब तलब

अज़—असदे मुजतरिब[1]

१३

(११ दिसम्बर १८५८)

साहब,

तुम खत के जवाव न भेजने से घबरा रहे होगे। हाल ये है के कलम वनाने मे मेरा हात अंगूठे के पास से जख्मी हो गया और वर्म कर आया। चार दिन रोटी भी मुश्किल से खाई गई है। वहरहाल अब अच्छा हूँ । 'पज आहग' तुमने मोल ले ली, अच्छा किया। दो छापे है, एक वादशाही छापेखाने का और एक मुंशी नूरुद्दीन के छापेखाने का। पहला नाकिस है, दूसरा सरासर गलत है। क्या कहूँ तुमसे ? जियाउद्दीनखाँ जागीरदार लोहारू मेरे सबवी भाई और मेरे शागिर्दे रशीद है, जो नज्मो नस्र मे मैंने कुछ लिखा वो उन्होने लिया और जमा किया। चुनाँचे 'कुल्लियाते नज्मे फारसी' चव्वन-पचपन जुज्व और 'पज आहग' और 'मेहर नीमरोज़' और 'दीवाने रेख्ता' सब मिलकर सौ-सवा सौ जुज्व मुतल्ले[2] और मुजहव[3] और अगरेज़ी अवरी की जिल्दे अलग अलग। कोई डेढ-सौ दो-सौ रुपए के सर्फ में वनवाई । मेरी खातिर जमा, के कलाम मेरा सब यकजा फराहम है। फिर एक शाहज़ादे ने उस मजमूएनज्मो नस्र की नकल ली। अब दो जगह मेरा कलाम इकट्ठा हुआ। कहाँ से ये फितना वरपा हुआ और

१. उद्विग्न। २. स्वर्णिम। ३. स्वर्णिम।

शहर लुटे। वो दोनों जगह का किताबखाना खाने[1] यगमा हो गया। हरचन्द मैंने आदमी दौडाए। कही से उनमे से कोई किताब हात न आई। वो सब क़लमी हैं। गरज इस तहरीर से ये हैं के कलमी "फारसी का कुल्लियात", कल्मी "हिन्दी का कुल्लियात", क़लमी पज आहग, क़लमी मेहर नीम रोज़। अगर कही इनमे से कोई नुस्खा बिकता हुआ आवे तो उसको मेरे वास्ते खरीद कर लेना और मुझको इत्तिला करना। मैं कीमत भेज कर मँगवा लूँगा। जनाब हेनरी स्टुअर्ट रीड साहब को अभी मैं खत नही लिख सकता। उनकी फरमायश हैं उर्दू की नस्र, वो अजाम पाए तो उसके साथ उनको खत लिखूँ। मगर भाई गौर करो उर्दू मे मैं अपने कलम का ज़ोर क्या सर्फ करूँगा? और उस इबारत मे मानी नाज़ुक क्यो कर भरूँगा? अभी तो यही सोच रहा हूँ के क्या लिखूँ? कौन सी बात, कौन सी कहानी, कौन-सा मज़मून, तहरीर करू और क्या तदबीर करू? तुम्हारी राय मे कुछ आए तो मुझको बताओ। एक करीने से मुझको मालूम हुआ हैं के शायद गवर्मेन्ट सौ-दो सौ 'दस्तम्बू' की खरीदारी करेगी और इन नुस्खो को विलायत भेजेगी। क्या बईद हैं के हफ्ते दो हफ्ते मे तुम्हारे पास इलाहाबाद से हुक्म पहुचे।

सुबह रोज़े शम्बा, ११ दिसम्बर सन् १८५८ ई०।

१४

(१५ दिसम्बर १८५८)

भाई,

ये बात तो कुछ नही के तुम खत का जवाब नही लिखते। खैर, देर से लिखो अगर शिताब नही लिखते। तुम्हारा खत आया। उसके दूसरे दिन मैंने जवाब भिजवाया। आज तक तुमने उसका जवाब न भेजा। हाला के उसमे

---

१. लूट।

जवाव तलव वाते थी। यानी मैंने अपनी नज्मो नस्र की कुतुव का हाल तुमको लिखकर तुमसे ये इस्तदुआ की थी के कलमी जो नुस्खा तुम्हारे हात आ जाए वो तुम खरीद करके मुझे भेज देना। रीड साहव के वाव मे मैंने ये लिखा था के जव कुछ उर्दू की नस्र उनके वास्ते लिख लूंगा तो 'दस्तम्बू' की खरीदारी की खाहिश करूंगा। माहज़ा तुमसे सलाह पूछी थी के किस हिकायत और किस रिवायत को फारसी से उर्दू करूं। तुमने इस वात का भी जवाव न लिखा।

सैयद हफीज़ुद्दीन अहमद की मुहर के खुदवाने को तुमने लिखा था के मुल्तवी रहे। फिर उसका भी कुछ ब्यौरा न लिखा। मैं उसको अभी कुछ नही समझा। उसको यकसू करो। हाँ, नाँ, लिख भेजो। तुम्हारी मुहर वदरुद्दीनअलीखाँ को दी गई है। यकीन तो ये है के इसी दिसम्बर महीने मे तुम्हारे पास पहुच जाए और १८५८ सन् खुदें। शायद कुछ देर हो, तो जनवरी सन् १८५९ में खुदे, इससे ज्यादा दिरग न होगी। तुमको रुपए हर्फ, आठ आने हर्फ से क्या इलाका? तुमको अपनी मुहर से काम।

सच तो कहो—क्या फिर कन्नोलो गए हो? क्या कर रहे हो? किस शगल मे हो? या मुझसे खफा हो? अगर खफा हो तो और कुछ न लिखो, खफगी की वजह लिखो। वहरहाल इस खत का जवाव शिताव भेजो और इसी खत मे वाद इन सव वातो के जवाव के मौलवी कमरुद्दीनखाँ का हाल लिखो के वो कहाँ हैं और किस तरह हैं। वरसरेकार हैं, या वेकार हैं। अच्छा, मेरा भाई, इस खत के जवाव में दिरग न हो। ज्यादा क्या लिखूं?

मुरस्सिलए चहार शम्बा १५ दिसम्बर सन् १८५८ ई०।

—गालिब

१५

(१८ दिसम्बर १८५८)

बरखुरदार,

आज इस वक्त तुम्हारा खत मय लिफाफो के लिफाफे के आया, दिल खुश हुआ। भाई, मै अपने मिज़ाज से नाचार हू। ये लिफाफे अज मुकाम व दर मुकाम व तारीख व माह मुझको पसन्द नही। आगे जो तुमने मुझे भेजे थे वो भी मैनें दोस्तो को बाँट दिए। अब यें लिफाफो का लिफाफा इस मुराद से भेंजता हू के इनके अैवज यें लिफाफें, जो दर मुकाम व अज मुकाम से खाली हैं, जिनमे तुम अपने खत भेंजा करते हो, मुझको भेंज दो और यें लिफाफें उसके अैवज मुझसे ले लो और अगर उस तरह के लिफाफें न हो तो इनकी कुछ जरूरत नही।

मुहर के वास्ते साहब, जमर्रुद[1] का नगीना और फिर चनें की दाल के बराबर और हश्त[2] पहलू इस उजडें शहर मे कहाँ मिलेगा। अकीक[3] बहुत खुशरग स्याह या सुर्ख जैसा तुमनें आगें लिखा है, हश्त पहलू होगा। ये मुहर मेंरी तरफ से तुमको पहुँचेगी। तुमको चार आने हर्फ, छ आनें हर्फ से कुछ मुद्दआ नही। आप अपनी मुहर चाहो जमर्रुद पर, चाहो अलमास[4] पर खुदवाओ। मै तो अकीक की मुहर तुमको दूगा। रही वो दूसरी मुहर, जब तुम्हारी मुहर खुद चुकेगी, जिस तरह तुम कहोगे, खुद जाएगी।

मिया, क्या करीना बताऊ गवर्मेंण्ट की खरीदारी का? एक बात ऐसी है के अभी मे कुछ नही कह सकता, खुदा करे उसका ज़हूर हो जाए। अभी मुझसे कुछ न पूछो। जनाब रीड साहब साहबी करते है। मै उर्दू मे अपना कमाल क्या जाहिर कर सकता हू? उसमें गुंजाइश इबारत आराई की कहाँ है?

---

१. पन्ना रत्न। २ अठ पहलू। ३ एक लाल रग का रत्न। ४. हीरा।

वहुत होगा तो ये होगा के मेरा उर्दू बनिस्बत औरो के उर्दू के फसीह होगा। खैर, बहरहाल कुछ करूगा और उर्दू मे अपना जोरे कलम दिखाऊगा।

कै का होना और दस्तो का आना ये चाहता है के तुमने रात को बुरी किस्म की शराब मिक़दार में ज्यादा पी होगी। कुछ तबरीद करो और शराब ज्यादा न पिया करो। मेरा रुक्का तुम्हारें नाम का और तफ्ता का रुक्का तुम्हारे नाम का हस्बुल हुक्म तुम्हारे वापिस भेजा जाता है। मैनें तफ़्ता का खफा होना इसी तरह लिखा था जैसा तुमको तुम्हारा खफा होना लिखा था। भला, वो मेरे फर्ज़न्द की जगह है। मुझसे खफा क्या होगे? उस दिन से आज तक दो-तीन खत उनके आ चुके है। चुनाचे एक खत अभी तुम्हारे खत के साथ डाक का हरकारा दे गया है।

मुर्हरिर ए शम्बा, १८ दिसम्बर सन् १८५८ ई०।

१६

(४ जनवरी १८५९)

अब एक अम्रे खास को समझो। दो जिल्दे 'दस्तम्बू' की मुझको लखनऊ भेजनी है और मेरे पास कोई जिल्द नही है। अब जो तुमसे मँगाऊँ और यहाँ से लखनऊ भिजवाऊ तो एक किस्सा है। ये साहब लोग अतराफो जवानिब से फ़रमाइशे भेजते है, तुमसे बकीमत कोई नही मगवाता। चालीस जिल्दें पहली और बारह हाल की सब तकसीम हो गई। इन दोनो साहबो की खातिर मुझको बहुत अजीज है। एक रुपए के ३२ टिकट और दो आने के दो टिकट इस खत में मलफूफ करके तुमको भेजता हूँ। दो पार्सल अलग अलग लखनऊ को इरसाल करो, आने आने का टिकट उस पर लगा दो। एक पार्सल पर ये लिखो—

ई पार्सल वसीगए पम्फ़लेट पाकिट इस्टाम्प पेड दर लखनऊ व महलए नख़ास दर इमाम वाडा इकरामुल्लाखाँ बमकान मिर्ज़ा इनायत अली बखिदमत मीर

हुसेन अली साहब बरसद। मुरस्सिलए शीवनरायन मुहतमिम मतवा मुफीद खलायक़ अज आगरा। दूसरे पार्सल पर यही इबारत मगर मकान का पता, नाम और दर लखनऊ, व इहातए खानसामाँ मुतसिल तकिए शेर अली शाह, व मकानात मौलवी अब्दुल करीम मरहूम वखिदमत मौलवी सिराजुद्दीन अहमद साहब बरसद।

समझ लिए ?

यानी दो पार्सल इस्टाम्प पेड, दोनो लखनऊ को, एक बनाम मीर हुसेन अली और एक बनाम मौलवी सिराजुद्दीन अहमद, वसवीले डाक रवाना कर दो और हाँ साहब, इन दोनो पार्स ो की रवानगी की तारीख़ मुझको लिख भेजो ताके मै अपने ख़त मे उनको इत्तिला दूँ।

एक अम्र और है। अगर तुम भी इस राय को पसद करो याने जिस तरह से तुमने एक जिल्द हेनरी इस्टुअर्ट रीड साहब को अपनी तरफ से भेजी है, इसी तरह दो जिल्दे इन दोनो साहबो को जिनका नाम कागज म लिखा हुआ है, भेज दो, मगर अपनी ही तरफ़ से, मेरा उसमे इशारा न पाया जावे। और ये दोनो साहब बिलफैल दिल्ली मे वारिद है। ये बात ऐसी नही है के खाही न खाही इसको किया ही चाहिए, एक सलाह है और नेक सलाह है, मुनासिब जानो करो वर्ना जाने दो। मियाँ, उर्दू क्या लिखूँ, मेरा ये मन्सब है के मुझ पर उर्दू की फरमायश हो ? खैर, हुई अब मै कहानियाँ किस्से कहाँ ढूँढता फिरूँ। किताब नाम को मेरे पास नही। पिन्सन मिल जाए, हवास ठिकाने हो जाएँ, तो कुछ फिक्र करूँ। पेट पड़ी रोटियाँ, तो सभी गलाँ मोटियाँ। ज्यादा ज्यादा।

रोजे सेशवा, ४ जनवरी सन् १८६४।

जवाब तलब
—गालिब

हरेक बात पे कहते हो तुम के तू क्या है
तुम्ही कहो के ये अन्दाज़े गुफ़्तगू क्या है?
चिपक रहा है बदन, पर लहू से पैराहन[1]
हमारे जेब को अब हाजते रफ़ू क्या है?
जला है जिस्म जहा दिल भी जल गया होगा
कुरेदते हो जो अब राख जुस्तजू क्या है?
रगो मे दौड़ते फिरने के हम नही कायल
जब आँख ही से न टपका तो फिर लहू क्या है?
वो चीज़ जिसके लिए हो हमे बहिश्त अजीज
सिवाय बाद ए गुलफाम मिश्क बू क्या है?
पिऊँ शराब अगर खुम भी देख लूँ दो-चार
ये शीशए वो कदहो[2] कूज़[3] ए सुबू[4] क्या है?
ये रश्क है के वो होता है हम सुखन तुझसे
वगरना खौफे बद आमोजिए अदू[5] क्या है?
रही न ताकते गुफ़्तार और अगर हो भी
तो किस उम्मीद पे कहिए के आरजू क्या है?
हुआ है शह का मुसाहिब फिरे है इतराता
वगरना शहर मे गालिब की आबरू क्या है?

ये तुम्हारा इकबाल है के नौ शेर याद आ गए। एक गजल ये और दो गजलें वो जो आया चाहती है, तीन हफ्ते का गोदाम तुम्हारे पास फराहम हो गया। अगर मँगवाओगे तो कसीदे भी दोनो भेज दूँगा।

मरकूम ए सेशम्बा, १९ माहे अप्रेल सन् १८५८ ई०।

---

१. वस्त्र। २. प्याला। ३ सुराही। ४. सुरापात्र। ५. ईर्ष्या से हृदय जलता है अन्यथा शत्रु जो बुराई कर रहा है, उसका डर क्या।

१९

(२७ अप्रेल १८५९)

भाई,

'हाशा सुम्मा हाशा' अगर ये गजल मेरी हो—'असद और लेने के देने पडे'। उस गरीब को मैं कुछ क्यो कहूँ ? लेकिन अगर ये गजल मेरी हो तो मुझ पर हजार लानत। इससे आगे एक शख्स ने ये मतला मेरे सामने पढा और कहा के किब्ला आपने क्या खूब मतला कहा है—

'असद' इस जफा पर बुतो से वफा की
मेरे शेर शाबाश रहमत खुदा की !

मैंने यही उनसे कहा के अगर ये मकता मेरा हो, तो मुझपर लानत। बात ये है के एक शख्स मीर अमानी 'असद' हो गुजरे है, ये मतला और ये गज़ल उनके कलामे मौजिज[1] निज़ाम मे से है और तजकरो मे मरकूम है। मैंने को कोई दो-चार बरस इब्तदा मे 'असद' तखल्लुस रखा है, वर्ना 'गालिब' ही लिखता रहा हूँ। तुम तर्ज़ें तहरीर और रविशे फ़िक्र पर ही नजर नही करते। मेरा कलाम और ऐसा मुज़खफ[2] ! ये किस्सा तमाम हुआ।

वो गजल तुम्हारे पास पहुँच गई है, छापने मे पहले एक नकल उसकी मिर्ज़ा हातिमअली 'मेहर' को दे देना। जिस दिन ए मेरा ख़त पहुँचे, उसी दिन वो गजल नकल करके उनको भेज देना।

'दस्तम्बू' की खरीदारी का हाल मालूम हो गया। मेरा भी यही गुमान था के लाहौर के जिले में गई होगी। जनाब मेकलोड़ साहब, फैनान्शल कमिश्नर पजाब ने बज़रयए साहब कमिश्नर देहली मुझसे मँगवाई थी। एक जिल्द उनको

---

१. चमत्कार। २. रद्दी।

भी भेज चुका हूँ। कसीदे मैंने दो लिखे हैं। एक अपने मुरब्बीए[1] कदीम जनाब फ्रेड्रिक अेडमिस्टन साहब बहादुर की तारीफ मे और एक जनाब मिंट गुमरी साहब बहादुर की मदह मे। एक पचपन शेर का, एक चालीस बैत का, और फिर फ़ारसी, उनको रेख़्ता की गज़लो में क्या छापोगे? जाने भी दो। रही गजलें साबिक की, वो जो मेरे हात आती जाएँगी, भिजवाता जाऊँगा। मिया, तुम्हारी जान की कसम, न मेरा अब रेख़्ता लिखने को जी चाहे, न मुझसे कहा जाए। इस दो बरस मे सिर्फ वो पच्चीस बीस शेर बतरीके कसीदा तुम्हारी खातिर से लिख कर भेजे थे। सिवाय उसके अगर मैंने कोई रेख़्ता कहा होगा तो गुनहगार। बल्के फारसी गजल भी, वल्लाह नही लिखी। सिर्फ ये दो कसीदे लिखें हैं। क्या कहू के दिलो दिमाग का क्या हाल है! परसो एक खत तुम्हे और लिख चुका हूँ। अब उसका जवाब लिखना। वद्दुआ।

चार शम्बा, २७ अप्रेल सन् १८५९ ई०।

२०

(१ जून १८५९)

बरखुरदार मुंशी शीवनरायन को दुआ पहुँचे।

खत तुम्हारा मय इश्तहार के पहुँचा। यहा का हाल ये है के मुसलमान अमीरो मे तीन आदमी—नवाब हुसेन अली खा, नवाब हामिद अलीखा, हकीम अहसनुल्लाखा, सो इनका हाल ये है के रोटी है तो कपडा नही। माहज़ा यहा की इकामत[2] में तज़बज़ुब[3]। खुदा जाने कहा जाएँ, कहा रहे। हकीम अहसनुल्लाखा ने 'आफताबे आलमताब' की खरीदारी कर ली है। अब वो मुकर्रर 'हालाते दरबारे शाही' क्यो लेगे? सिवाय साहूकारो के यहा कोई अमीर नही है। वो लोग इस तरफ क्यो तवज्जह करेगे? तुम इधर का खयाल

---

१. पुराने अभिभावक। २. निवास। ३. दुविधा।

दिल से धो डालो। रहा नाम इस रिसाले का, तारीखी जाने दो। 'रुस्तखैर हिन्द,' 'गोगाए सिपाह' 'फितनए महशर' ऐसा कोई नाम रखो। अब तुम ये बताओ के रईसे रामपूर के हा भी तुम्हारा अखबार या 'मयारुश्शोअरा' जाता है या नही। अबके तुम्हारे 'मयरुश्शोअरा' मे मैने ये इबारत देखी थी के 'अमीर' शायर अपनी गज़ले भेजते है, हमको जब तक उनका नामोनिशा मालूम न होगा अशार न छापेंगे। सो मै तुमको लिखता हूँ के ये मेरे दोस्त हैं और अमीर अहमद इनका नाम है और 'अमीर' तखल्लुस करते है। लखनऊ के जी इज़्ज़त[1] बाशिन्दो मे है और वहां के बादशाहो के रूशनास और मुसाहिब रहे है और अब रामपूर मे नवाब साहब के पास है। उनकी गजले तुम्हारे पास भेजता हूँ। मेरा नाम लिख कर इन गज़लो को छाप दो; यानी—गजले गालिब ने हमारे पास भेजी और उसके लिखने से इनका नाम और इनका हाल मालूम हुआ। नाम व हाल को जो मै ऊपर लिख आया, उसको अब के 'मयारु-श्शोअरा' मे छाप कर एक दो वरका या चहार वर्का रामपूर उनके पास भेज दो और सरनामे पर ये लिख दो—

दरे रामपूर बर दरे दौलत हुजूर रसीदा।

बखिदमत मौलवी अमीर अहमद साहब 'अमीर' तख़ल्लुस बरसद।

और मुझको इत्तिला दो और उस अम्र की भी इत्तिला दो के रामपूर को तुम्हारा अखबार जाता है या नही ?

मुरसिलए यक शम्बा, १२ जून सन् १८५९ ई०।

२१

(१९ जुलाई १८५९)

बरखुरदार नूरे चश्म मुंशी शीवनरायन को दुआ पहुँचे।

साहब, मै तो मुन्तज़िर तुम्हारे आने का था, किस वास्ते के मुंशी

---

१. प्रतिष्ठित।

बिहारीलाल भाइयों मे है मास्टर रामचन्दर के, उन्होने परसो मुझसे कहा था के मु शी शीवनरायन दो-चार दिन मे आया चाहते है। आज सुबह को नागाह तुम्हारा खत आया। अब मुझको इसका पूछना तुमसे जरूर हुआ के, आने को तुम्हारे, खबर झूट थी या इरादा था और किस सबब से मौकूफ रहा ? बाबू हरगोविन्द सहाय का मै बडा अहसानमन्द हूँ, हक-ताला इस कोशिश के अज्र मे उनको उम्रो दौलत दे। सआदतमन्द और नेक बख्त आदमी है।

तुम्हारी खाहिश को मै अच्छी तरह समझा नही। मिसरा तुमने लिखा और वो छापा गया। हजार-पान सौ दो वरके छप गए। अब जो मिसरा और कही से बहम पहुँचेगा वो किस काम आएगा? खुद लिखते हो के पहला जुज्व तुमको भेजा है। सब्र करो। वो जुज्व आने दो। मै उसको देख लू ँ। यकीन है के कलमी होगा। उसको देख कर और मजामीन को समझ कर मिसरा भी तजवीज कर दू ँगा। मगर इतना तुम और भी लिखो के आया यो मजूर हे के इस मिसरे की जगह और मिसरा लिखो या यही चाहते हो के ये भी रहे और वो भी रहे। खत तुम्हारा आज आ गया है, पम्फलेट पाकिट या आज शाम को या कल शाम तक आ जाएगा।

सेशम्बा, १९ जुलाई सन् १८५९।

२२

(२३ जुलाई १८५९)

बरखुरदार को बाद दुआ के मालूम हो, तुम्हारा खत पहुँचा और खत से कई दिन पहले रिसाल ए 'बगावते हिन्द' पहुँचा। तुम्हारी तसमीमे[1] अजीमत से मै खुश हुआ। अल्लाह् अल्लाह् ! अपने यार बंसीधर के पोते को देखू ँगा। 'रिसालए बगावते हिन्द' माह ब माह और 'मयारुश्शोअरा' हर महीने में दो बार पहुँचता रहे। बाकी गुफ्तगू अिन्दल मुलाकात हो रहेगी। अपने

१. मुसकल्प।

शफीके दिली मास्टर रामचन्दर साहव को तुम्हारे आने की इत्तला दी। वो वहुत खुश हुए। जो रुक्का उन्होने मेरे रुक्के के जवाव मे लिखा है, तुमको भेजता हूँ। पढ लेना। अगर दस्तम्वुएँ वाकी हो तो दो अपने साथ लेते आना।

शम्बा, २३ जुलाई सन् १८५९ ई०।

—गालिब

२३

(१७ अगस्त १८५९)

मियाँ,

ये क्या मामला है? एक खत अपनी रसीद का भेज कर फिर तुम चपके हो रहे। न 'मियारुल अशार' न 'वगावते हिन्द' न मेरे खत का जवाव, न हुण्डवी की रसीद! वरखुरदार नवाव शहावुद्दीन खाँ ने अगस्त से दिसम्वर तक पंज माहा 'मियारुल अशार' व 'वगावते हिन्द' का भेजा है यानी '३ रुपये १२ आने' मुझको दिए और मैंने हुण्डवी लिखवाकर वो हुण्डवी अपने खत मे लपेटकर तुमको भेजी, ये भी नही मालूम के वो खत पहुँचा या नही पहुँचा? जव इन मतालिव जुजई का ये हाल है तो किताव और अगरेजी अर्जी का तो अभी क्या जिक्र है? खुदा के वास्ते इन सव मकासद का जवाव जुदा जुदा जल्द लिखो। आज अगस्त की १७, वुध का दिन है, पहला लवर 'मियारुल अशार' का भी नही आया। ये है क्या? मुहर तुम्हारी खुदनी शुरू हो गई है। इसी अगस्त के महीने मे तुम्हारे पास पहुँच जाएगी।

अच्छा मेरा भाई, इस खत का जवाव जल्द पाऊँ और किताव और अर्जी का भी अगर तकाजा करूँ तो वईद नही, मगर आज शाम तक इस खत को रहने दूँगा। अगर तुम्हारा खत या मियारुल अशार या वगावते हिन्द कोई लिफाफा शाम तक आया तो इस खत को फाड डालूँगा वर्ना कल सुवह को डाक में भिजवा दूँगा। अपने वालिद को दुआ और इश्तियाके[1] दीदार कह देना।

---

१. दर्शन की इच्छा।

मरकूम ए चहार शम्बा, १७ माहे अगस्त सन् १८५९ ई०, वक़्ते द

२४

(२२ सितम्बर १८५९)

क्यो मेरी जान, तुमने खत लिखने की कसम खाई है या लिखना
गये हो ? शहर मे हो या नही हो ? तुम्हारे मतने का क्या हाल है ? त
क्या तौर है ? तुम्हारे चचा का मुकदमा क्योकर फैसल हुआ ? मेरा
तुमने किस तरह दुरुस्त किया ? करोगे या नही ? 'मियारुल अशार' का
पहुँच गया। 'बगावते हिन्द' का पार्सल अभी नही आया। इन सब मत
का जवाब लिखो और शिताब लिखो।

मुर्हरिरए पज शबा, २२ सितम्बर सन् १८५९ ई०।

—ग़ा

२५

(२० अक्टूबर १८५९)

मेरी जान,

दो जिल्दें 'बगावते हिन्द' की परसो मेरे पास पहुँची। उस वक्त वर
दार मिर्ज़ा शहाबुद्दीनखाँ मेरे पास बैठे हुए थे। एक जिल्द उनको दी, एक
रहने दी। कल एक पार्सल और मेरे नाम का आया। मैं खुश हुआ के वि
यत की अर्जी और दस्तम्बू का पार्सल होगा, देखा तो वही दो जिल्दें 'बगा
हिन्द' की हैं। हैरान रह गया के ये क्या ? जाहिरा मुहतमिमाने इरसाल
अज़राहे सहव[1] दुबारा भेज दी हैं। चाहता था के लिफाफा बदल कर डा
टिकट लगा कर भेज दूँ। फिर सोचा के पहले तुमको इत्तिला करूँ। शायद य

---

१. गलती से।

किसी और को दिलवा दो। बस अब तुम्हारे कहने का इन्तजार है, जो कहो सो करूँ। कहो तुमको भेज दूँ, कहो कही और तुम्हारी तरफ से भेज दूँ। मेरे किसी काम की नही। वद्दुआ।

मरकूम ए २० अक्तूबर सन् १८५९ ई०।

राक़िम—असदुल्लाह

२६

(२ नवंबर १८५९)

बरखुरदार मुंशी शीवनरायन को बाद दुआ के मालूम हो—

क्या मेरे ख़त नही पहुँचते के जवाब उधर से नही आता? दो मुजल्लद 'बगावाते हिन्द' के ज्यादा पहुँचे है। उसके वास्ते तुमसे पूछा गया था। उसका भी जवाब न आया। मैने यूसुफअलीखाँ 'अजीज़' के ख़त मे कुछ इबारत तुम्हारे नाम लिखी थी। क्या उन्होने तुमको न पढाई होगी? उसका भी तुमने कुछ जवाब न लिखा। विलायत की अर्जी और किताब के बाब में तो मैं कुछ कहता ही नही जो उसका जवाब माँगूँ। कुछ मुझ से खफा हो गए हो तो वैसी कहो। ये ख़त तुमको बैरंग भेजता हूँ ताके तुमको तकाजा मालूम हो।

ये लो, एक और बात सुनो। तुम्हारा तो ये हाल के मुझको ख़त लिखने की गोया तुमने कसम खाई है और मेरी ये ख़्वाहिश के नवाब गवर्नर जनरल बहादुर की ख़बर, जो वहाँ तुमको मालूम हुआ करे, मुझको लिखा करो। खुसूसन अकबराबाद मे आकर जो कुछ वाकै हो वो मुफस्सिल लिखो। आया जनाब लेफ़्टट गवर्नर बहादुर भी साथ आएँगे या जुदा-जुदा आकर यहाँ फराहम हो जाएँगे। दरबार की सूरत, खैरखाहो के तक़्सीमे इनाम की हकीकत, कोई नया बदोबस्त जारी हो, उसकी कैफ़ियत, ये सब मरातिब मुझको लिखा करो, देखो, खबरदार! इस अम्र मे तनाहुल[1] न करना। अब क्या सुनने

---

१. आलस्य।

२९

(१४ मार्च १८६०)

बरखुरदार इकबाल आसार मुंशी शीवनरायन को बाद दुआ के मालूम हो के एक नुस्ख़ा 'बगावते हिन्द' का और एक दो वर्का 'मयारुश्शोअरा' का मार्फत बरखुरदार मिर्ज़ा शहाबुद्दीनखाँ के पहुँचा और आज चार शम्बा, १४ मार्च की है के एक नुस्ख़ा 'बगावते हिन्द' भेजा हुआ तुम्हारा रामपूर पहुँचा। ख़ुदा तुमको जीता रखे। अब मैं शम्बे के दिन, १७ मार्च को दिल्ली रवाना हूँगा। तुमको बतरीके इत्तिला लिखा है। अब बदस्तूर इरसाले ख़ुतूत दिल्ली को रहे, यहाँ न भेजना।

हाँ भाई, इन दिनो मे बरख़ुरदार मिर्ज़ा यूसुफअलीख़ाँ वहाँ आए हुए हैं, आज ही उनका ख़त मुझको पहुँचा है। तुम ज़रूर उनसे मिलना। मुंशी अमीरअली साहब के हाँ वो उतरे हुए हैं। उनको बुलाकर मेरी दुआ कहना और कहना के अच्छा है, दिल्ली चले आओ; वहाँ जो मुझसे मिलोगे तो ज़बानी सब कलाम हो रहेगा और अगर वो हातरस गए हो, तो ये रुक़्क़ा जो तुम्हारे नाम का है, एक कागज़ में लपेट कर टिकट लगाकर हातरस को शेख करीम बख़्श चौकीदारो के दफ़ेदार, के घर के पते से भेज देना। ज़रूर ज़रूर।

रवाँदाश्त ए चहार शम्बा, १४ मार्च सन् १८६० ई०, वक़्ते दोपहर।

अज़—ग़ालिब

३०

(अप्रेल १८६०)

मियाँ,

दीवान के मेरठ में छापे जाने की हकीकत सुन लो, तब कुछ कलाम करो। मैं रामपूर में था के एक ख़त पहुँचा, सरनामे पर लिखा था—'अर्ज़दाश्त

अजीमुद्दीन अहमद, मिन मुकाम मेरठ।' वल्लाह, बिल्लाह अगर जानता हूँ के अजीमुद्दीन कौन है और क्या पेशा रखता है। बहरहाल पढा। मालूम हुआ के हिन्दी दीवान अपनी सौदागरी और फायदा उठानें के वास्ते छापा चाहते हैं। खैर, चुप हो रहा। जब मैं रामपूर से मेरठ आया। भाई मुस्तफाखाँ साहब के हाँ उतरा। वहाँ मुंशी मुमताजअली साहब मेरे दोस्ते कदीम मुझको मिले। उन्होंने कहा के अपना उर्दू का दीवान मुझको भेज दीजिएगा। अजीमुद्दीन, एक किताब फ़रोश उसको छापा चाहता है। अब तुम सुनो—दीवाने रेख्ता अतम व अकमल[१] कहाँ था? मगर हाँ मैंने गदर से पहले लिखवाकर नवाब यूसुफ़अलीखाँ बहादुर को रामपूर भेज दिया था। अब जो मैं दिल्ली से रामपूर जाने लगा तो भाई जियाउद्दीनखाँ साहब ने मुझको ताकीद कर दी थी के तुम नवाब साहब की सरकार से 'दीवाने उर्दू' लेकर उसको किसी कातिब से लिखवाकर मुझको भेज देना। मैंने रामपूर में कातिब से लिखवाकर वसबीले डाक ज़ियाउद्दीनखाँ को दिल्ली भेज दिया था। आमदम[२] बर सरे मुद्दाए साबिक। अब जो मुंशी मुमताज़अली साहब ने मुझसे कहा तो मुझे यही कहते बन आई के अच्छा दीवान तो मैं ज़ियाउद्दीनखाँ से लेकर भेज दूंगा। मगर कापी की तसही का जिम्मा कौन करता है? नवाब मुस्तफाखाँ ने कहा के 'मैं'। अब कहो मैं क्या करता? दिल्ली आकर जियाउद्दीनखाँ से दीवान लेकर एक आदमी के हात नवाब मुस्तफाखाँ के पास भेज दिया। अगर मैं अपनी ख्वाहिश से छपवाता तो अपने घर का मतबा छोड़कर पराए छापेखाने मे किताब क्यो भिजवाता? आज इसी वक़्त मैंने तुमको ये खत लिखा और इसी वक़्त भाई मुस्तफाखाँ साहब को एक खत भेजा है और उनको लिखा है—अगर छापा शुरू न हुआ हो, तो न छापा जाए और दीवान जल्द मेरे पास भेजा जाए। अगर दीवान आ गया तो फौरन तुम्हारे पास भेज दूँगा और

१. पूर्ण। २. पहले की तरह मैं अपने अभीष्ट पर आता हूँ।

अगर वहाँ कापी शुरू हो गई है तो मै नाचार हू, मेरा कुछ कुसूर नही है; और अगर सरगुज़िश्त को भी सुनकर मुझको गुनहगार ठहराओ तो अच्छा। मेरा भाई, मेरी तक़सीर माफ कीजियो। रमजान और ईद का किस्सा लगा हुआ है। यकीन है के कापी शुरू न हुई हो और दीवान मेरा मेरे पास आए और तुमको पहुँच जाए।

१९ या २० जनवरी सन् १८६० ई० को किताब और दोनो अर्जियाँ विलायत को रवाना करके रामपूर गया हूँ। तीन महीने की जहाज की आमदो रफ़्त है, सो गुजर चुकी है। ख़ाही इसी महीने मे, ख़ाही आगाजे माहे आयन्दा याने मई में जवाब के आने का मुतरसिद[1] हूँ। देखिए आए या न आए, आए तो ख़ातिरख़ाह आए या ऐसा ही सरसरी आए।

३१

(२५ जून १८६०)

साहब,

मै तुम्हारा गुनाहगार हूँ। तुम्हारी किताब मैने दवा रखी है। वडी कोशिश और मेहनत से इसको वहाँ न छपने दिया और मगवा लिया। आज, पीर के दिन २५ जून को पार्सल की डाक मे रवाना किया है। लो, अब मेरी तक्सीर माफ़ करो और मुझसे राजी हो जाओ और अपनी रज़ामन्दी की मुझे इत्तिला दो। ये किताब यानी दीवाने रेख़्ता तुमको मैने दे डाला। अब इसके मालिक तुम हो। मै नही कहता के छापो, मै नही कहता के न छापो। जो तुम्हारी ख़ुशी हो, सो करो। अगर छापो तो बीस जिल्द का ख़रीदार मुझको लिख लो। और अच्छा, मेरा मियाँ, ज़रा तसही का बहुत ख़याल रखियो।

---

१. आकांक्षी।

३२

(३ जुलाई १८६०)

मियाँ,

तुम्हारी बातो पर हँसी आती है। ये दीवान जो मैंने तुमको भेजा है, अतम व अकमल है। वो, और कौन-सी दो चार गजले ह जो मिर्जा यूसुफअली-खाँ 'अजीज' के पास है और इस दीवान मे नही ? इस तरफ से आप अपनी खातिर जमा रखे के कोई मिसरा मेरा इस दीवान से बाहर नही। माहजा उनसे भी कहूँगा और वो गजले उनसे मँगाकर देख लूँगा।

तस्वीर मेरी लेकर क्या करोगे ? बेचारा 'अज़ीज़' क्यो कर खिचवा सकेगा ? अगर ऐसी ही जरूरत है तो मुझको लिखो। मै मुसव्विर से खिचवा कर तुमको भेज दूँ, न नज्र दरकार न नियाज। मै तुमको अपने फर्जन्दो के बराबर चाहता हूँ और शुक्र की जगह है के तुम फर्जन्द सआदतमन्द हो। खुदा तुमको जीता रखे और मतालिब आलिया को पहुँचाए।

सेशम्बा, ३ जुलाई सन् १८६० ई०।

—ग़ालिब

३३

(१० जनवरी १८६२)

मियाँ,

मै जानता हूँ के मौलवी मीर नियाज़अली साहब ने वकालत अच्छी नही की। मेरा मुद्दआ ये था के वो तुम पर इस अम्र को जाहिर करें के दिल्ली में हिन्दी दीवान का छपना पहले उससे शुरू हुआ है के हकीम अहसनुल्लाखाँ साहब तुम्हारा भेजा हुआ फर्मा मुझको दे और वो जो मैंने यहाँ के मतबे में छापने की इजाजत दी थी, ये समझकर दी थी के अब तुम्हारा इरादा उसके छापने का नही। गौर करो, मेरठ के छापेखाने वाले मुहम्मद अज़ीम ने पिन्

इज्जो[1] इलहा से दीवान लिया था और मैंने, नजर तुम्हारी नाखुशी पर वजन्न उससे फेर लिया। ये क्यो कर हो सकता था के और को छापनें की इजाजत दूँ। तुमने जो खत लिखना मौकूफ किया मैं समझा के तुम खफा हो। मैंने मौलवी नियाजअली साहब से कहा के बरखुरदार शीवनरायन से मेरी तक़्सीर माफ करवा देना। भाई, खुदा की कसम, मैं तुमको अपना फर्जन्दे दिलबन्द समझता हूँ। उस दीवान और तस्वीर का ज़िक्र क्या जरूर है? रामपूर से वो दीवान सिर्फ तुम्हारे वास्ते लिखवाकर लाया। दिल्ली मे तस्वीर बहजार जुस्तजू बहम पहुँचा कर मोल ली और दोनो चीज़े तुमको भेज दी। वो तुम्हारा माल है। चाहो अपने पास रखो, चाहो किसी को दे डालो, चाहो फाड़ कर फेंक दो। तुमने 'दस्तम्बू' की जदवल और जिल्द बनवाकर हमको सौगात भेंजी थी, हमने अपनी तस्वीर और उर्दू का दीवान तुमको भेजा। मेरे प्यारे दोस्त, नाज़िर बसीधर की तुम यादगार हो।

ऐ गुल[2], बतो खुरसन्दम, तू बू ए कसे दारी

१० जनवरी सन् १८६२ ई०।

खुशनदी का तालिब—
ग़ालिब

३४

(३ मई १८६३)

बरखुरदार मुंशी शीवनरायन को दुआ के बाद मालूम हो—तस्वीर पहुँची, तहरीर पहुँची। सुनो—मेरी उम्र सत्तर बरस की है और तुम्हारा दादा मेरा हमउम्र और हमबाज़ था; और मैंने अपने नाना साहब, खाजा गुलाम हुसेन मरहूम से सुना के तुम्हारे परदादा साहब को अपना दोस्त बताते थे और फ़रमाते

---

१. विनम्रता। २. पुष्प मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। तुम में किसकी गन्ध है?

थे के मैं बसीधर को अपना फर्जन्द समझता हूँ। गरज इस बयान से ये है के सौ सवा सै बरस की हमारी तुम्हारी मुलाकात है; फिर आपस में नामा व पयाम की राहो रस्म नही ! और इस राहो रस्म के मसदूद[1] होने का हासिल ये ह के एक (को) दूसरे के हाल की खबर नही। अगर तुमको मेरे हाल से आगाही होती तो मुझको बसबीले डाक कभी अकबराबाद न बुलाते।

लो, अब मेरी हकीकत सुनो। छटा महीना है के सीधे हात मे एक फुन्सी हुई; फुन्सी ने सूरत फोड़े की पैदा की। फोडा पक कर, फूटकर, एक जख्म, जख्म क्या एक गार बन गया। हिन्दुस्तानी जर्राहो का इलाज रहा, बिगडता गया। दो महीने से काले डाक्टर का इलाज है। सलाइयाँ दौड रही हैं। उस्तरे से गोश्त कट रहा है, बीस दिन से सूरत इफाकत की नजर आने लगी है।

अब एक और दास्तान सुनो—गदर के रफा होने और दिल्ली के फतह होने के बाद मेरा पिन्सन खुला, चढ़ा हुआ रुपया दाम दाम मिला, आयन्दा को बदस्तूर बे कमो कास्त जारी हुआ, मगर लार्ड साहब का दरबार और खलत जो मामूली व मुकर्ररी था, मसदूद हो गया; यहाँ तक के साहब सेक्रेतर भी मुझसे न मिले और कहला भेजा के अब गवर्मेण्ट को तुमसे मुलाकात कभी मंजूर नही। मैं फकीर मुतकब्बिर,[2] मायूस दायमी होकर अपने घर बैठ रहा और हुक्कामे शहर से भी मिलना मैंने मौकूफ़ कर दिया। बड़े लार्ड साहब के वुरूद के जमाने में नवाब लेफ़्टट गवर्नर बहादुर पंजाब भी दिल्ली में आए। दरबार किया। खैर, करो, मुझको क्या ? नागाह दरबार के तीसरे दिन बारह बजे चपरासी आया और कहा के नवाब लेफ़्टंट गवर्नर ने याद किया है। भाई, ये आखिरे फरवरी है और मेरा हाल ये है के अलावा उस दाँयें हात के जख्म के सीधी रान मे और बाँये हात में एक-एक फोडा जुदा है। हाजतों में पेशाब करता हूँ, उठना दुश्वार है। बहरहाल सवार हुआ, गया। पहले साहब सेक्रेतर

---

१. टूटना। २. गौरव युक्त।

बहादुर से मिला। फिर नवाब साहब की खिदमत मे हाजिर हुआ। तसव्वुर में क्या, बल्के तमन्ना मे भी जो बात न थी वो हासिल हुई, यानी इनायत से इनायत, अखलाक से अखलाक! वक़्ते रुख्सत खलत दिया और फरमाया के 'ये हम तुझको अपनी तरफ़ से अजराहे मुहब्बत देते हैं और मुज्दा देते हैं के लार्ड साहब के दरबार मे भी तेरा लबर और खलत खुल गया। अम्बाले जा, दरबार मे शरीक हो, खलत पहन।' हाल अर्ज किया गया। फरमाया—'खैर, और कभी के दरबार में शरीक होना।' इस फोडे का बुरा हो। अम्बाले न जा सका। आगरे क्यो कर जाऊँ ?

बाबू हरगोविन्द सहाय साहब को सलाम। मज़मून वाहेद। ३ मई।

शब्दार्थ

अ

अगुश्त नुमा=उल्लेखनीय
अगुश्त बददाँ=दाँतो तले उँगली
अजुमन=सभा, गोष्ठी
अकदस=पवित्र
अकब=निकट
अकमल=पूर्ण
अकरब=वृश्चिक (राशि)
अकसाम=प्रकार ब व.
अकाबिर=महान् (व्यक्ति) ब व.
अकीदा=विश्वास
अकुर्बा=पारिवारिक जन
अख़लाक=शालीनता
अखवी=बन्धु ब. व.
अगनिया=गनी (ऐश्वर्यशाली) ब. व.
अगलब=सभवत
अगलात=गलतियाँ
अजजा=अश, अंग ब. व.
अजदाद पूर्वज ब. व.
अजम=ईरान,
अजमत=बडप्पन
अज़रूएकयास=अनुमान के अनुसार
अजल=मृत्यु
अजल=युगादि
अज़ला=जिला ब. व.
अजली=शाश्वत
अजसरे नौ=नवीन रूप से, आरभ से
अज़ादार=शोक मानने वाले
अज़ाब=अत्यधिक वेदना, पाप का फल,
अजीज़=प्रिय
अजीज़तर=प्रियतर
अजीक=बड़ा, महान्
अजीमत=इच्छा, आकाक्षा
अज्म=विचार, निश्चय
अज्र=पुण्यफल
अतम=समाप्ति
अतराफ=चारो ओर,
अतालीक=अध्यापक
अतिब्बा=चिकित्सक ब. व.
अतिया=दान
अदम=अभाव, मृत्यु

अदू = शत्रु
अदूकश = शत्रुहता
अद्ल = न्याय
अनमली = पहेली
अनवाव = विविध
अन्जाम = परिणाम
अन्जामेकार = परिणाम
अन्जुम = नक्षत्र,
अन्दिया = मनोभाव
अन्दोह = दु ख
अन्दोहावर = दु खद
अफजाइश = आधिक्य
अफजाई = वढावा
अफजूँ = विकसित
अफरोज = अधिक
अफसा = अधिक परिमार्जित
अफसुर्दा = उदास, मुरझाया हुआ
अफाल = कार्य व. व.
अफू = क्षमा
अत्र = पिता
अवस = व्यर्थ
अन्न = वादल
अन्नोवारा = वरसात
अम = चाचा
अमकना = मकान व. व.
अमराज़ = रोग ब. व.
अमवात = मृत्यु ब, व.
अमवाल = माल ब. व.
अमला = कर्मचारी
अमलाक = स्थावर सम्पत्ति ब. व.
अम्न = शान्ति
अम्नोआमान = शान्ति
अम्र = आज्ञा (व्याकक्रिया)
अम्रेमुनकिर = कुकर्म
अम्रेवाकई = वास्तविक घटना
अयादत = मिजाजपुर्सी
अयानत = सहायता
अयालो अतफाल = वाल-वच्चे, परिवार
अय्यार = चालाक
अरवाह = रूह (आत्मा) व. व.
अरायज = प्रार्थना पत्र व. व.
अरीजा = प्रार्थना
अर्ज़ = चौडाई
अर्मुगाँ = भेट
अलकाव = अल्ल, आनुवशिक उपाधि,
आदरार्थक उपाधि व व
अलम = दु ख
अलल उमूम = सामान्यतया
अलामत = लक्षण, चिह्न
अल्मास = हीरा

अवाखिर = अन्तिम
अवाम = जनसाधारण ब. व.
अवायल = प्रारभ
अवारिज = रोग व. व.
असकाम = दोष, त्रुटि ब. व.
असबावे वहशत = भय का कारण
असमार = फल ब. व.
असलाफ व अखलाफ = पूर्वज और वशज
असवात = ध्वनि व. व.
असातिजा = उस्ताद (आचार्य) व. व.
असीर = वन्दी
असील = परिचारिका
अस्मा = पदार्थ
अस्र = युग
अशखास = शख्स (व्यक्ति) व. व.
अशराफ = सभ्य ब. व.
अशार = शेर (कविता) ब. व.
अशिया = वस्तु ब. व.
अश्कफिशानी = अश्रुवर्षा
अहतयाज = आवश्यकता
अहतियात = सावधानी
अहद = वचन, प्रतिज्ञा, काल, समय, युग
अहदो अस्र = युग
अहबाब = बन्धु व. व.
अहमक = मूर्ख
अहयानन = वेवस
अहले खित्ता = आसपास के लोग, स्थान विशेष के लोग
अहले हिर्फा = शिल्पी, कारीगर
अहाली = परिचारक
अहिब्बा = प्रिय व. व.

आ

आईन = विधान, नियम
आका = स्वामी, वडा भाई
आकिल = बुद्धिमान्
आगाज = आरभ
आगाज़े तहरीर = लेख का प्रारभ
आज़ादगी = स्वतन्त्रता
आज़ार = कष्ट
आजिज़ = दुखी
आज़िम = इच्छुक
आजुर्दगी = दु.ख
आजुर्दा = दुखी
आतिश अफशानी = अग्निवर्षा
आतिशे सय्याल = शराब
आदाद = संख्या

आफताब = सूर्य
आफरी = धन्य
आफ़रीनश = अपमानित
आफियत = कुशलता, विश्रान्ति
आब = पानी
आवेहयात = अमृत
आमास = शोथ
आमेजिश = मिलावट
आराइश = सजावट, अलकरण
आरिज़ा = रोग
आलम = ससार
आलमे वेरंगी = परोक्ष जगत
आलात = औजार, उपकरण ब. व.
आलाम = दु ख व. व. विपत्तियाँ
आलिमुलगैंव = ईश्वर
आलमे गैव = परोक्षजगत
आलमे शहादत = प्रत्यक्ष जगत
आलिम = विद्वान्
आवारगाँ = आवारा ब. व.
आवारगी = आवारापन
आसार = चिह्न
आसी = दोषी
आस्ताँ = देहली
आशकारा = प्रकट
आशना = परिचित, स्नेही
आशिक़ेजार = अत्यधिक प्रेमी,
मरमिटने वाला प्रेमी,
आशिफ़्ताहाली = परेशानी
आशुफ़्ता = परेशान
आशोव = क्रान्ति
आहू = हिरन

इ

इशा = गद्य
इआनत = सहायता, कृपा, लाभ
इकवालेनिशाँ = शुभलक्षण
इकराम = प्रतिष्ठा
इकामत = निवास
इकामतगाह = निवास स्यान
इखफा = लोप
इखराज = निर्वासन
इखलास = शिष्टता
इखवाँ = भाई विरादरी
इख्तताम = समाप्ति
इख्तलात = मेलमिलाप
इजमा = भीड़
इजमाल = मक्षेप

इजलाल = प्रताप ब॰ व.
इज़ाफा = वृद्धि
इज़ाफी = षष्ठीसूचक 'इ' की मात्रा
इज्जो इलहा = विनम्रता
इज्जोजाह = प्रतिष्ठा
इज्जोशान = प्रतिष्ठा
इज़्तराब = व्याकुलता
इज्मे हलाल = निर्बलता
इताअत = अनुसरण, सेवा
इताब = कोप
इत्तेफाक = सयोग
इदराक = इन्द्रियजन्य ज्ञान
इनकता = पार्थक्य
इनबसात = प्रसन्नता
इनहतात = बुढापा, घटाव
इनहदाम = तोड़ फोड़
इनायत = कृपा
इनायतनामा = कृपा-पत्र
इन्केबाज = अजीर्णता
इन्कलाब = क्रान्ति
इन्कसाव = दु ख
इन्कशाफ = प्रकटीकरण
इन्तकाल = मृत्यु
इन्तकाम = बदला
इन्तेमाम = समाप्ति
इन्तबा = मुद्रण
इन्तहा = पराकाष्ठा
इन्दराज = उल्लेख, दर्ज करना
इन्हेदा = तोड़ फोड़
इफरात = आधिक्य
इफ़लास = दरिद्रता
इफ़ाकत = स्वास्थ्य
इफ़ाका = आराम
इफ़्तखार = गर्व
इबराम = अनुरोध
इबहाम = भ्रम
इब्तिला = सघर्ष
इमलाक = स्थावर सम्पत्ति ब. व.
इमामत = इमाम का पद, नेतृत्व
इम्तियाज़ = भेद, अन्तर
इम्तेसाल = जिसकी उपमा दी जाए
इरसाल करना = भेजना
इलाक़ा = सम्बन्ध, प्रदेश
इल्तफात = प्रेम, कृपा
इल्तबास = अनुकृति
इल्तमास = अनुरोध
इल्तेज़ाम = अनिवार्य
इल्लत = कारण, दोष, व्यसन
इसक़ात = पतन
इसहाल = विरेचन

इस्तगासा = दावा, निवेदन ,प्रार्थना
इस्ततार – कमी
इस्तफसार = पूछताछ
इस्तफादा = लाभ
इस्तमदाद = प्रार्थित
इस्तरार = उद्विग्नता
इस्तलाज = उपचार
इस्तलाह् = परिभाषा
इस्तह्काक = अधिकार, पात्रता
इस्तेग्रजाव = आश्चर्य
इस्तेग्रारा = रूपक
इस्तेदुग्रा = प्रार्थना
इस्तेन्वात=पूछताछ, परिणाम निकालना
इस्तेफा = त्यागपत्र
इस्तेवाद = आश्चर्य
इस्तेलाम = जानकारी
इस्तेह्जा = व्यग
इस्ना अशरी = शिया
इस्म = संज्ञा, नाम
इस्मेजामिद = ऐसी सज्ञा जिससे कोई दूसरा शब्द नही बनता।
इस्मेशरीफ = शुभनाम
इस्लाह् = सशोधन
इश्तकाक = निरुक्ति
इश्तियाक = शौक
इश्तेहार = विज्ञापन
इह्तराज = परहेज, बचाव
इह्दा = उपदेश

ई

ईसार = त्याग

उ

उकदा = उलझन
उजमा = बड़े लोग
उजरत = मेह्नताना
उजूरादार = कर्मचारी
उनास = स्त्री व व.
उफ़क = क्षितिज
उमरा = धनी, सामन्त व. व.
उमक = गहराई
उमूमन = साधारणतया
उमूर = कार्य व. व
उर्फा = ज्ञानी व. व.
उलफत = प्रेम
उलूम = ज्ञान व व
उस्लूव = रीति, शैली

उस्तवार = उचित, दृढ
उस्ताद = आचार्य, गुरु
उश्शाक = प्रेमी ब. व.

ए

एख्तेलात = प्रेम, हेल-मेल
एख्तेसार = सक्षिप्त
एहतराक = जलन
एहतियाज = लालसा
एहतियात = सावधानी
एहतेमाल = सभावना
एहदा = मार्गदर्शन
ऐयारे तर्रार = अच्छा वक्ता
ऐराब = मात्रा (अक्षर)
ऐलानोशीव = प्रकाशन

क

कज अन्देश = दुर्बुद्धि
कजफहम = मूर्ख
कज़ा = काल, मृत्यु, आदेश
कजारा = सयोगवश
कतमाने हक = सचाई का छिपाना
कता = कविता के चार चरण, चौका (कविता)
कता करना = काटना, (तर्क) खडित करना
कद्रदानी = गुण ग्राहकता
कद्रशनास = गुणज्ञ
कफस = पिंजरा
कफेदस्त = हथेली
कफेपा = पाँव का तलवा
क़बा = एक प्रकार की अनकन
कबाहत = बुराई
कबीह = दोषपूर्ण
कबील = ढग, गिरोह
कमतर = घटिया
कमाँ = धनुष
कयामत = प्रलय
कयास = अनुमान
करम गुस्तरी = दयाशीलता
कराची = लड्डा, माल ढोने का ठेला।
करावत = निकटता, रिश्तेदारी
कराइन = लक्षण ब. व
करार = धैर्य
कर्जेहसना = बिना ब्याज का ऋण
कलक = दुःख
कलन्दर = सन्यासी

कलाम = वचन

कलील = किञ्चित्

कवाफी = काफिया ब. व.

कवी = हृष्ट पुष्ट

कसरा = इकार मुक्त (उच्चारण)

कशवर = देश

कश्फ = अन्तर्वाणी

कहर = क्रोध, विपत्ति

काजिब = असत्यभाषी

कातिब = लिखने वाला (उर्दू मुद्रण)

कातै = खडन करने वाला (तर्क)

कादिर = प्रभुता सम्पन्न, समर्थ

कापीनिगार = कापी लिखने वाला (उर्दू मुद्रण)

काफिया = अन्त्यानुप्रास से पहले का अक्षर

काबिज = कब्जा करने वाला

कामत = कद

कारजार = रणांगण

कार परदाज = कर्मचारी

कासिद = पत्रवाहक, डाकिया

कासिर = वञ्चित, असावधान

काशाना = नीड

किताबत = लेखन (उर्दू मुद्रण)

किनाअत = सन्तोष

किब्ला = पूज्य, अग्रगण्य

किसास = कत्ल

किस्सत = कंजूसी, ओछापन

कुतुब = किताब ब. व.

कुदमा = प्राचीन (लोग) ब. व.

कुन्दजहन = मूर्ख

कुर्ब = निकटता

कुव्वते आकिला = बुद्धिबल

कुल्लियात = काव्य संकलन

कुसूफ़ = ग्रहण

कोर्निश = अभिवादन

कैस = मजनू

कोताह = सक्षिप्त, छोटा

कोह = पर्वत

कौकब = नक्षत्र

कौलज = पेट का दर्द

कौल = कथन, वचन

ख

खत = पत्र, रेखा

खते तिलाई = सुनहरा लेखन

खद्शा = खतरा

खफकान = उन्माद

ख़फचाक = खुर के बीच का भाग
ख़बरतराशी = समाचार गढना
ख़म = झुका हुआ
ख़र = गधा
ख़लायक = प्राणी ब. व.
ख़लीक = शिष्ट
ख़ल्क = ससार
ख़लफ = पुत्र
ख़ाकरोब = भगी
ख़ाकिस्तर = भूमिसात
ख़ान ए बेचिराग = निर्दीप घर
ख़ाना बाग = घर के पीछे का उद्यान
ख़ाब = नीद, स्वप्न
ख़ाम = कच्चा
ख़ामा = कलम
ख़ायफ = भयभीत
ख़ालिक = ईश्वर
ख़ासोआम = विशेष और सामान्य (जन)
ख़ाहाँ = इच्छुक
ख़ाही = चाहे
ख़ाही न ख़ाही = चाहे न चाहे
ख़िजालत = लज्जा
ख़िजिल = लज्जित
ख़िफ्फत = लज्जा

ख़िरका = गुदडी
ख़िरदमन्द = बुद्धिमान्
ख़िलाफेतबा = स्वभाव विरुद्ध
ख़िल्त = मेल मिलाप
ख़िश्त = ईंट
ख़ीश = आत्मीय
ख़ुतूत = पत्र ब. व.
ख़ुदनुमाई = गर्व
ख़ुदादाद = ईश्वरदत्त
ख़ुदा न ख़ास्ता = ईश्वर न चाहे
ख़ुदावन्द = स्वामी
ख़ुदासाज = ईश्वर कृत
ख़ुम्स = पंचमाश (शरा के अनुसार जजिया)
ख़ुर्मा = खजूर
ख़ुसर = श्वसुर
ख़ुसरानी = सास
ख़ुसूफ – ग्रहण
ख़ुसूमत = शत्रुता
ख़ुसूसन = विशेप रूप से
ख़ुशनूद = प्रसन्न
ख़ुशोख़ुर्रम = प्रसन्न
ख़ैरख़ाह = शुभेच्छु
ख़ैरतलब = शुभेच्छु
ख़ैरो आफियत = कुशल समाचार

ग

गजन्द = हानि

गजलखानी = गजलपाठ

गम = दुख

गम अफज़ानामा = दुखद पत्र

गमगीन = दुखी

गमजदा = दुखी

गम्जा = हाव-भाव

गमेगेती = सासारिक दुख

गम्माज = चुगलखोर

गरदानना = पाठ करना

गर्दाव = भॅवर (जाल)

गर्ब = पश्चिम

गर्बी शुमाल = पश्चिमोत्तर

गसब करना = माल हजम करना

गायत = तात्पर्य

गायव = अन्य पुरुष सर्वनाम (व्याकरण)

गावशक = आर (गाडीवान जिससे बैल हाँकता है)

गिल = मिट्टी

गिला = शिकायत

गीरत = लज्जा

गीरोदार = पूछताछ

गुरवा = गरीब व. व.

गुरूव = अस्त

गुफ्तगू = वार्तालाप

गुफ्तोशुनीद = बातचीत

गुरेजपा = भगोडा

गुलू = अत्युक्ति

गुस्ताखी = धृष्टता

गुस्ले सेहत = स्वास्थ्य प्राप्ति के पश्चात् किया जाने वाला स्नान।

गैवदॉ = परोक्षज्ञ

गोगा = शोर

गोशबर आवाज = ध्यान मग्न

गोशा = एकान्त

गोशी = एकान्तवासी

ज

जईफ = वृद्ध

जजा = दण्ड

जदवल = हाशिया (चित्र, पुस्तक)

जदीद = नवीन, आधुनिक

जद्दा = दादा

जन = स्त्री

जमजमा = मधुरध्वनि

जमजमा परदाज़ = मधुरभाषी

जमर्रुद = पन्ना (रत्न)
जमा = बहुवचन (व्याकरण)
जमीमा = अतिरिक्त
जमीर = अन्तःकरण, पुरुषवाची सर्व-
नाम (व्याकरण)
जर = सोना, द्रव्य
जरदश्त = पारसी धर्म के उपदेष्टा
जराफत = हास्य
जराहत = जर्राही, खडन (तर्क)
जरीदा = एकाकी
जरीफ = हास्यकर्ता
जलील = नीच
जलीस = साथी
जल्वा = प्रकाश
जल्वागर = प्रकाशमान
जवाज = प्रमाण
जवायद = अधिक
जश्न = उत्सव
जहत = दिशा
जहीर = पेचिश
जहूर होना = प्रकट होना
जागुदाज = प्राणलेवा
जांगुजी = आत्मसात्
जानिवदार = पक्षपाती
जावजा = यत्र-तत्र

जामा = समष्टि
जायल = नाश
जाया = व्यर्थ
जाविया = कोण
जाहिल = मूर्ख
जाहो जलाल = ऐश्वर्य
ज़िद = विपरीत
जिन्दाँ = कारागार
जिन्दिका = पारसियो की आस
नास्तिकता
जिस्मानियात = शारीरिक
जिन्हार = सर्वथा, सम्प्रति
जिलहज्जा = एक मास का नाम
जिल्लत = अपमान, कलक
जिस्मानी = शारीरिक
जिस्मोजान = शरीर और प्राण
जीकादा = एक मास का नाम
जीस्त = जीवन
जुकूर = पुरुष व. व.
जुज = अश
जुजई = अशीय
जुजवी = आशिक
जुनूद = सेना
जुन्न = पवित्र
जुम्ला = वाक्य

तस्कीन = सन्तोष, ढाढस
तस्ख़ीर करना = वश में करना
तशवीव = सौन्दर्य, प्रेमिका की प्रशसा
तशवीश = चिन्ता
तहजीव = सभ्यता
तहनियत = वधाई
तहमीक = मूर्खता
तहम्मुल = सतोष
तहरीर = लेख, रचना
तहवील = अधिकार
तहवीलदार = रक्षक
तहसीन = प्रशसा
तहसील = प्राप्त करने की क्रिया
ता = तक, जिससे
ताजियत = शोक प्रकाश
ताज़ियाना = दण्ड स्वरूप, कोडा
ताजीम = आदर सत्कार
ताजील = शीघ्रता
तादील = शीतपेय
तानीस = स्त्रीलिंग
तावोतवा = सामर्थ्य
तामिया = अन्तिम
ताम्मुल = विलम्व, सोच-विचार
तायर = पक्षी
ताला = भाग्य

तालिव = इच्छुक
तालीफ = सम्पादन
तारीक = अन्धकारपूर्ण
तारीख = इतिहास
तार्रुफ = परिचय
ताले = भाग्य
तासीर = गुप्त
ताह्हुल = पारिवारिक जीवन
तिफ्ल = वच्चा
तिव = चिकित्साशास्त्र
तिलस्मी = जादूभरा
तिलाई = सुनहरी
तिश्नालव = प्यासा
तुख्मरेजी = वीजवपन
तुर्फा = विशेपता, विचित्रता
तुलूए आफताव = सूर्योदय
तूवा = कल्पवृक्ष
तूल = लम्वाई
तैयुश = ऐश
तोतहोतम्हीद = भूमिका
तोशा = भोजन
तोशाख़ाना = भडार
तोहमत = आक्षेप, दोपारोपण
तौकी = फरमान, आदेश
तौकीर = प्रतिष्ठा

तौदी = विदाई

तौफीक = सामर्थ्य, उपदेश

तौहृय्यजे इमकान = आशाप्रद

तौहीद = अद्वितीयता, (ईश्वरसम्बन्धी

द

दकीक = साधन

दविस्तान = शिक्षणालय

दवीर = लेखक, विद्वान्

दमवदम = प्रतिक्षण

दमवी = रक्तसम्बन्धी

दमेनजा = प्राणविसर्जन का समय

दरमादां = विवश

दराजी = लम्वाई

दरियाए शोर = कालापानी, अन्दमान

दलायल = दलील (व. व.)

दवाम = स्थायी

दस्त = हाथ

दस्तगाह = सामर्थ्य

दस्तगीरी = सहायता की वृत्ति

दस्तोगिरेवा = परस्पर सम्बद्ध

दश्त = जगल

दहका = किसान

दाम = जाल

दारुस्सुरूर = आनन्दधाम

दारोगीर = पूछताछ

दास्तान = कहानी

दिरङ्ग = देर

दिलरीश = व्यथित हृदय

दिलसितानी = दिल दुखाना

दीदवादीद = साक्षात्कार

दीदावर = समझदार

दीदार = चेहरा, दर्शन

दीदोदानिस्त = बुद्धि, समझ

दीदोदानिश = समझबूझ

दीवाचा = भूमिका

दीवान = अन्त्यानुप्रास के आधार तैयार किया गया गजल-सकलन

दीवानगी = पागलपन

दुआ = आशीर्वाद

दुआगो = शुभाकाक्षी

दुरुद = अभिवादन

दूदमान = वंश

देह = गाँव

देहन्दा = दानी

दोशम्बा = सोमवार

न

नकल = कहानी
नखल = खजूर का पेड़, शाद्वल
नजरफरेव = नेत्राकर्षक
नजरी = सैद्धान्तिक ज्ञान
नज़रे सानी = पुर्नानिरीक्षण
नजात = मुक्ति
नज्म = पद्य
नज़र = भेंट
नतायज = परिणाम व. व.
नदीम = मित्र, मुसाहिब
नदीमी = मुसाहिबी, मित्रता
नफरी = घृणा
नफूर = घृणा करने वाला
नफ़्स = भावना
नफ्से नातिका = वाक्शक्ति
नयावतन = प्रतिनिधिस्वरूप
नवीद = दावत
नवीदे वज्म आराई = आनन्दोत्सव का समाचार
नस्र = गद्य
नशेव = ढलान
नश्वोनुमा = उन्नति
नहुफ्तादा = गुप्त वात जाननेवाला
नाकिल = वर्णन करने वाला
नाकिस = बुरा
नाख़ादा = निरक्षर
नाखुदा = नाविक
नागाह = असामयिक
नाजिल = अवतरित
नातमाम = अपूर्ण
नातवा = अशक्त
नातवानी = कमजोरी
नातिक = वोलनेवाला
नादिर = अलभ्य
नापिदीदार = परिणाम रहित
नाफ = नाभि
नामा = पत्र
नामानिगारी = पत्रलेखन
नामावर = पत्रवाहक
नार = आग
नाला = शोरगुल
नावक = वाण
नासाज़ी = अस्वस्थता
नासिपासी = अकृतज्ञता
नासूदमन्द = निरर्थक
नाशिनाम = अनभिज्ञ
निकोई = नेक
निगाहवान = रक्षक

निगारिश = लेखन
निगाश्ता = लिखित
नियाज = परिचय, आस्था
निसयान = विस्मरण
निसार होना = न्यौछावर होना
निस्फ = आधा
निशात = हर्ष
निशिस्त = बैठक
निहा = गुप्त
निहानी = गुप्त
निहायत = अन्त
निहाल = पेड
नीम = आधा
नीममुर्दा = अधमरा

नीमरोज = मध्याह्न
नुकू = काढा
नुजूम = ज्योतिष
नुजूल = अवतरण
नुबूअत = नवी का पद
नुसरत = सफलता
नुस्खा = प्रति (पुस्तक)
नूर = प्रकाश
नूरेकाहिर = सूर्य
नेमुलबदल = तत्स्थानीय
नौजदहम = १९ वा
नौअ् = प्रकार
नौहाखा = मातम करने वाला

प

पजशम्बा = गुरुवार
पन्दोबन्द = उपदेश
पयाम् = सन्देश
परदाज = प्रयत्न
परेपश्श = मच्छर का पर
पशेमान = अपमानित, परेशान
पहलूतिही = उपेक्षा
पाकीजा = पवित्र
पायानेउम्र = अन्तिम आयु
पायानेकार = अन्ततोगत्वा

पायाब होना = सूखना
पाये आली = उच्चस्तर
पालग्ज = त्रुटि
पासखनिगार = उत्तरदाता
पासबानी = पहरेदारी
पिन्दार = उपदेश
पीर = वृद्ध
पुरतकल्लुफ = सुन्दर
पुरसिश = प्रयत्न, पूछताछ
पुरनारा = वण्डल

पुश्तेपा = पाँव का ऊपरी हिस्सा
पेचो ताब = उलझन
पेशदस्त = अगुवा, हरावल
पेशेअजी = इससे पहले
पैकार = लडाई
पै दर पै = लगातार
पै ब पै = लगातार
पैरहन = पोशाक
पैवन्द = जोड़
प्यादापा = पैदल

फ

फख्र = गर्व
फज़्वाद = वृद्धिशील
फज्ल = कृपा
फज्लोकरम = कृपा और दया
फर = सजावट
फरऊन = अवज्ञाकारी, घमंडी
फरजाम = निवृत्ति
फरमावरदार = आज्ञाकारी
फराग = अवकाश
फरागत = निवृत्ति
फरावान = अधिक
फरोग = उन्नति
फरोगुजाश्त = भूलचूक, अन्तर
फरोमाया = कमीना
फर्ज़न्द = पुत्र
फर्त = प्रसन्नता
फरुख = शुभ
फर्द = चरण (कविता)
फलक = आकाश
फलक रफ्त = गगनचुम्बी
फलसफा = दर्शनशास्त्र
फलाह = भलाई
फवायद = फायदा व. व
फसाहत = परिमार्जन, सरलता, (भाषा)
फसीह = परिमार्जित, सरल (भाषा)
फसीहवया = परिमार्जित भाषा बोलने वाला
फस्खे अज़ीमत = विचार स्थगन
फहम = बुद्धि
फहरग = शब्दकोश
फहवाए इबारत = तात्पर्य
फाका = उपवास
फायल = कर्ता (व्याकरण)
फारिगुलबाल = निश्चिन्त
फ़ासिखनिगार = व्यंग लेखक
फिका = इस्लामी धर्मशास्त्र

फितना = उपद्रव
फिगार = घायल
फितक = हार्निया, अन्त्रवद्धि
फितरत = स्वभाव
फिराक = वियोग
फिरावानी = आधिक्य
फिर्क़ए शोअरा = कवि सम्प्रदाय
फिस्को फुजूर = बुराई
फुकराफ = कीर ब. व.
फुगाँ = आह
फुजला = विद्वान् ब व.
फुतूह = अतिरिक्त आय
फ़ैज़ = कल्याण
फ़ैजमाब = माननीय
फ़ैज़रसानी = लाभकर

ब

बइत्तफाके राय = सहमति से
बई हमा = तथापि
बाईद = दूर
बकदरे मिकदार = यथाशक्ति
बकारसाजी = दृढता, दक्षता
बखील = कजूस
बख्त = भाग्य
बज्मे अहबाब = मित्रमडल
बतवस्सुत = माध्यम से, द्वारा
बतीब = दिल से
बद = बुरा
बदस्तूर = यथापूर्व
बदीही = प्रकट, निर्विवाद
बनीआदम = मानव वश
बन्दगी = अभिवादन
बसवील = द्वारा
बसारत = दृष्टि
बशारत = शुभ समाचार
बरखुरदार = सुपुत्र
बरफ = पेय पदार्थ (शराब)
बरहक = उचित
बरहम = नष्ट भ्रष्ट
बर्क़ = बिजली
बलादे शर्किया = पूर्व के नगर
बलागत = अच्छाई
बलीग = परिमार्जित
बसद = सैंकड़ों
बहबूद = भलाई
बहमाजेहत = हर प्रकार से
बहर = छन्द

वहल = क्षमा
वहार = वसन्त
वहिश्त = स्वर्ग
वा आँ के = यद्यपि
वा ई हमा = तथापि
वाचश्म पुरआव = आसूभरी आखो से
वाज़पुर्स = दुवारा पूछताछ
वाज़ीगाह = क्रीडागण
वातिन = गुप्त
वातिल = झूठा
वाव = विपय, अध्याय
वायस = कारण
वारिद = शीत
वारहा = कई वार
वालिग = वयस्क
वासरा = दृष्टि
विदायत = प्रारभ
वियावान = जंगल
विरद = पाठ
विल फतह = 'आ' से युक्त
विलफैल = इस समय तो
विलमुशाफा = प्रत्यक्ष
विलाद = नगर
विस्त = वीस
विही = एक तरह का मेव
वुक्ल = कजूसी
वुत = मूर्ति
वुतलान = झूठ
वुरहान = तर्क
वुर्ज = राशि (ग्रह)
वुसूर = फोड़े-फुन्सी
वेऐनही = हूव हू, यथापूर्व
वेकसी = विवशता
वेक़स्द = विना सकल्प
वेख़ात्मा = अपूर्ण
वेगाना = पराया
वेगिरह = विना गाठ का
वेचिराग = निर्दीप
वेजा = अनुचित
वेनवा = दरिद्र
वेवारा = विना वर्षा का
वेमकदूर = निस्सहाय
वेमुवालिगानि = स्सन्देह
वेरिज्क = विना खाये
वेवसवास = निश्चिन्तता से
वेसई = अनायास
वेसरोपा = सर्वया निस्सहाय
वेशतर = अधिकतर
वेह = अधिक
वेहिम्म = निष्क्रिय

बेहुरमत = अपमानित
बेहैफोमेल = निष्पक्ष
बै = विक्रय
बैत = दो पक्तियो का छन्द, इसमे अन्त्यानुप्रास भी रहता है
बैतुल खला = शौचालय
बोद = दूर
बौलो बराज़ = मूत्र-शौच

म

मतिख़ = तर्कशास्त्र
मशूर = सविधान
मशूरे उलफत = कृपा करना
मइशत = आर्थिक स्थिति
मकतब = पाठशाला
मकतबनशी = पाठ शाला मे पढने वाला
मकतूब = पत्र
मकतूल = जिसे कत्ल किया गया
मकदूर = सामर्थ्य
मकबूल = प्रिय, स्वीकृत
मकलूब = हृदय परिवर्तन
मकसूद = अभीष्ट, उद्देश्य व. व
मकसूम = भाग्य
मकदूर = क्रोध भाजन
मख़ज़न = भडार, कोश
मख़तल = निष्क्रिय, बाधा डालने वाला।
मख़दूम = सेव्य
मख़दूश = सन्दिग्ध
मख़नूक = जिसे फासी दी गई
मख़फी = गुप्त
मख़सूस = विशिष्ट
मगफरत = क्षमा
मगफूर = स्वर्गीय
मगफूरा = स्वर्गीया
मगमूम = दु खी
मगरिब = पश्चिम
मगरिबी = पश्चिमी
मगशूश = मूर्च्छित
मज़कूर = उल्लिखित
मज़नून = अभीष्ट
मज़बल = घूरा
मज़मू = कुल, सम्पूर्ण
मज़मून = विषय व. व. परमव्यना
मज़नूम = पेशयुक्त (उर्दू लिपि) युर
मजलूम = जिस पर अत्याचार कि गया
मजहूल = व्यर्थ, ए या ओ की मा से युक्त अक्षर (उर्दू लिपि

मजाज़ी = काल्पनिक, लौकिक
मजीद अलै = इसके अतिरिक्त
मतन = पाठ (पुस्तक)
मतब = दवाख़ाना
मतबा = मुद्रणालय
मतबूआ = मुद्रित
मतरूक = व्यक्त
मतला = गजल का अन्तिम शेर, जिसमे कवि का काव्य नाम रहता है
मतलूब = अभीष्ट, अपेक्षित
मतालिब = मतलब ब. ब.
मदह = प्रशसा
मदार = केन्द्र
मदारिज = पद, प्रतिष्ठा, स्तर
मद्दाह = प्रशसक
मनसब = प्रतिष्ठा
मनसूरो कामयाब = सफल
मुनाफी ए तबा = स्वभाव विरुद्ध
मन्ज़वी = एकान्तवासी
मन्दील = पगडी
मफकूद = लुप्त
माफ़तूह ज़बर = युक्त (उर्दू लिपि)
मबज़ूलकरना = आकर्षित करना
मबनी = आधारित
मबसूता = मोटी
ममदूद = सहायक
ममदूह = प्रशस्य
ममनू = निषिद्ध
ममनून = कृतज्ञ
मम्बा = उद्भवस्थल
मयख़ाना = मधुशाला
मयस्सर = उपलब्ध
मरई = पिछली सुविधा
मरकूम = लिखित
मरदूद = अपमानित
मरबूत = सयुक्त, सुसम्बद्ध
मरवारीद = मोती
मरहला = रास्ता
मरातिब = पद, प्रतिष्ठा
मराम = सफलता
मरासिम = रस्म ब. ब.
मर्ग = मृत्यु
मलऊन = निन्द्य
मलफूफ = लिफाफे मे बन्द
मलहूज़ = जिसका लिहाज रखा गया
मलाल = दु ख
मलिक ए मुअज़्ज़मा = साम्राज्ञी
मलिका = रानी
मलीह = सलोना

मलूल = दुखी
मलेका = दक्षता
मवज्जह = कारण
मसदर = क्रियार्थक-सज्ञा
मसदूद = वन्द
मसनवी = आख्यानक काव्य
मसमू = सुना हुआ, प्रयुक्त
मसरूफ = व्यथित, व्यस्त
मसलन = उदाहरणतया
मसाकिन = निवास-स्थान व. व.
मसविदा = प्रारूप
मसारिफ = व्यय व. व.
मसूद = नेक, शुभ
मस्कन = निवास स्थान
मस्तूर = स्त्री
मशरब = धर्म
मशवरत = परामर्श
मशविश = सन्दिग्ध
मशायत = विदाई
मशायख = शेख व. व.
मश्शाक = अभ्यासी; दक्ष
महजूफ = लुप्त
महफूज़ = सुरक्षित
महवस = कारागार
महवूवा = प्रेमिका

महरमियत = रहस्यज्ञान
महरूम = अभागा, वचित
महल = स्थान, पत्नी
महलसरा = अन्त. पुर
महसूव होना = हिसाव मे लिखा जाना
महारवत = युद्ध व व
महासिबा = हिसाव
मा कूल = पूर्ण
माकूस = उल्टा
माखिज़ = उद्धरण
माखूज़ = वन्दी, अपमानित, उद्धृत
माजिद = पूज्य
माजी इस्तमरारी = अपूर्णभूत
माजी मुतलक = पूर्णभूत
माजूल = सिंहासनच्युत
मादूम = नश्वर, लुप्त
मादूमे महज = सर्वथा लुप्त
मानवी = अर्थ से सवन्धित (भाषा)
मानिका = मिलन
माने = वाधक
मारिज़ = अन्तर्गत
मारूज = प्रार्थित
मालिजा = उपचार
मालोमता = धन-सम्पत्ति
माविदत = पुनरागमन, वापसी

मा सिवा = इसके अतिरिक्त
मा़ग = वृत्ति, आय
माशूक़ाने मजाज़ी = सांसारिक प्रेमिकाएँ
माह = चांद
माहज़ा = अत, यही
माहबमाह = प्रतिमास
माहे सयाम = रमजान का महीना
मिज़दाक़ = उदाहरण
मिज़ह = पल, क्षण
मिज़ा = पलक
मिनजुम्ला = वन्वित
मिन्नतपिज़ीरी = अनुनय विनय
मिन्हाई = कटौती
मिराकी = प्रलाप
मिर्रीख़ = मगल
मिसदाक = अनुकूल
मिसरा = पक्ति, चरण (कविता)
मिस्ल = समान
मीज़ान = तराज़ू, तुला (राशि)
मुंजिज = दोप-पाचन के लिये यूनानी चिकित्सा का एक उपाय
मुअज़्ज़म = महान, वड़ा व व.
मुअन्नस = स्त्रीलिग
मुअय्यन = नियुक्त

मुअल्लिम = अध्यापक
मुआफिक्त = अनुकूलता
मुआरिज़ = अपराह्न
मुआलिज = चिकित्सक
मुक़द्दम = श्रेष्ठ
मुकद्दर = विपण्ण
मुकफ़्फ़िल = ताले मे वन्द
मुकर्रम = दयालु
मुकर्रमतनामा = कृपापत्र
मुकर्रर = पुन., दुवारा
मुकर्ररी = निश्चित (स्त्री लिंग)
मुक़र्रिव = निकटस्थ
मुकस्सित = जिसकी किस्त वाँधी गई
मुकस्सिर = वंचित
मुकालिमत = वार्तालाप
मुकालिमा – वार्ता
मुक़ैयद = वन्दी
मुक्तज़ब = झूठा
मुक्तज़ी = जिसका तगादा हो
मुख़तम = समाप्त
मुख़फ़्फ़फ़ = संक्षिप्त
मुख़विर = समाचार देने वाला
मुख़मर = नशे में मस्त
मुख़ातिव = सम्बोधित
मुख़िल = वाधा

मुख़्तलिफ = विविध
मुख़्तसिर = संक्षिप्त
मुग्नेनमात = जिसका अस्तित्व ही गनीमत हो
मुजक्कर = पुल्लिंग
मुजतमा = एकत्रित
मुजतरिब = उद्विग्न
मुजदा = शुभ समाचार
मुजबज़ब = सन्दिग्ध
मुजमहिल = निर्बल
मुजमिलन = संक्षेपत, सब मिलाकर
मुजरिम = अपराधी
मुजल्लिद = सजिल्द
मुजस्सिम = मूर्तिमान
मुज़हिब = सुनहरा
मुज़ाफ = संयुक्त
मुजारे = विधि (व्याकरण)
मुज़ाहम = रुकावट
मुजिर = हानिकारक
मुज्तहिद = आविष्कारक
मुज्तिर = उद्विग्न
मुतआरिफ = परिचित
मुतइय्यन = नियुक्त
मुतकदमीन = प्राचीन लोग
मुततब्बा = अनुसरण

मुतनब्बह = सावधान, अवगत
मुतनाफत = अन्तर
मुतफर्रिकात = विविध
मुतबन्ना = दत्तक
मुतवफ़्फा = स्वर्गीया
मुतवर्रम = शोथयुक्त
मुतवस्सित = मझला, मध्यमश्रेणी क
मुतवस्सिल = सम्बन्धी व. व
मुतवाजे = नम्र
मुतवातिर = लगातार
मुतसव्विर = कल्पित
मुतहक्किक = अनुसन्धान कर्ता
मुतहमिल = सहन
मुतहय्यर = चकित
मुताक्किब = पीछे
मुताख़्ख़िरीन = आधुनिक व. व.
मुताबिक = अनुसार
मुताल्लकी = सम्बन्धी
मुताल्लिक = सम्बन्धित
मुती = भक्त, अनुयायी
मुत्सद्दी = लिपिक
मुत्तव्विर = धैर्यशाली
मुत्सर्रिफ = व्ययशील
मुदव्विर = विद्वान्, गम्भीर
मुद्दआ = इच्छा, उद्देश्य

मुनकर = अस्वीकार करनेवाला
मुनक्कह = स्पष्ट
मुनाफत = विरोध
मुनाफी = प्रतिकूल
मुनासिफा = समान (दो टुकडे)
मुनीम = दाता
मुन्जवत = नियमवद्ध
मुन्तखिब = सकलित
मुन्तवा = मुद्रित
मुन्दरिज = उल्लिखित
मुन्दर्जा = उल्लिखित
मुन्सरिफ़ = व्ययशील, प्रत्ययादि से विकृत होने वाला (शब्द)
मुन्हसिर = निर्भर
मुफक़्कद = लुप्त
मुफरत = आधिक्य
मुफरिद = पृथक, एकवचन
मुफरिस = वर्गीकरण करने वाला
मुफलिस = दरिद्र
मुफसिद = उत्पाती
मुफस्सिल = विस्तृत, विवरण सहित
मुफारिकत = वियोग
मुफीद = लाभप्रद
मुफ्ती = सन्दिग्ध
मुवहमाँ = सन्दिग्ध
मुबारक = शुभ
मुवालिगा = अत्युक्ति
मुब्तदी = आरम्भकर्ता, सिक्खड
मुव्हम = सन्दिग्ध
मुमताज़ = श्रेष्ठ
मुमानियत = निषेध
ममालिक = मुल्क व. व.
मुरव्वा = चौकोन
मुरब्बी = अभिभावक
मुरव्विज = व्यवहृत
मुरसिला = प्रेपित
मुराद = वाञ्छा
मुरादिफ = पर्यायवाची
मुरासिला = पत्र (लिखित)
मुरसिलीन = ईश्वर के सन्देश वाहक
मुरीद = भक्त
मुर्तजवी = हजरत अली से सम्बन्धित
मुर्तफा = ऊँचा
मुर्शद = दीक्षागुरु, गुरु
मुर्शदे कामिल = पूर्ण गुरु
मुलहका = सम्मिलित
मुल्तवी = स्थगित
मुसन्ना = प्रतिलिपि
मुसल्लिम = प्रामाणिक
मुसव्विर = चित्रकार

मुसाअदत = अनुकूलता
मुसाब = पुण्यकर्ता, योग्य
मुस्तकबिल = भविष्य
मुस्तकाजी = तगादा करने वाला
मुस्तगर्क = तल्लीन
मुस्तनद = प्रामाणिक
मुस्तफवी = हज़रत मुहम्मद से सबधित
मुस्तरिद = रद किया हुआ
मुस्तर्द करना = लौटाना
मुस्तस्की = तृषा रोग
मुस्तहक = अधिकारी, पात्र
मुस्तहसन = नेक, शुभ
मुस्तहाम = विषण्ण
मुस्तामिल = जिसका प्रयोग होता है
मुस्तार = अमानत, उधार
मुशख्खस = निर्णीत, निर्धारित
मुशतवीह = साकार
मुशद्द = द्वित्वयुक्त (अक्षर)
मुशफिक = प्रेमी
मुशरिक = बहुदेववादी
मुशर्रफ = अनुगृहीत
मुशर्रह = व्याख्या सहित
मुशविश = परेशान
मुशाहिदा = दर्शन
मुशाहिरा = वेतन, वृत्ति
मुश्तकात = प्रातिपदिक
मुश्तरिक = सहयोगी, सम्मिलित
मुश्तहरा = विज्ञप्त
मुश्तहिर = प्रसिद्ध, विज्ञप्त
मुश्ताक = इच्छुक, प्रेमी
मुहकम = दृढ
मुहकिक = अनुसन्धानकर्त्ता
मुहतमिम = प्रबन्धक
मुहरकन = मुहर खोदने वाला
मुहर्रिर = लिखित
मुहल्लित = घातक
मुहव्वल = उद्धृत
महसिन = कृपा करने वाला, उपकार
मुहीत = वृत्त
मूजिब = कारण, उचित
मेहरबानी नामा = कृपापत्र
मैमनत = शुभ
मोअय्यना = निर्धारित
मोइद = समर्थक
मोमीन = धार्मिक व्यक्ति
मोहमल = निरर्थक
मौकूफ = स्थगित
मौज = लहर
मौजिजा = चमत्कार
मौजिद = कारण

मौज्जिज = तग, परेशान

मौज्जिज़ = प्रिय

मौतमद = सचिव

मौतरिज = विरोधी, आक्षेपकर्ता

मौरिद = उपस्थित

मौरूसी = पैत्रिक

मौरिफ = परिचित

मौलूद = अस्तित्ववान्

मौल्लिफ = सम्पादक

मौसूफ = प्रशंसित

मौसूम = नामधेय

मौहूम = अस्पष्ट, भ्रान्त

मौहेदा = एक नुक्ते वाला (अक्षर-लिपि)

य

यककलम = सर्वथा

यकजा = एक स्थान पर

यकफन्नी = समव्यवसायी

यकशबा = रविवार

यगमाई = चोर उचक्के

यगानगी = अपनापन

याद आवरी = स्मरण

याबिस = दोष (काव्य)

यावर = सहायक, मित्र

यास = निराशा

र

रजूर = दुखी

रकम करना = लिखना

रकमज़दा = लिखित

रकीव = प्रतिप्रेमी, एक प्रेमिका के दो प्रेमी हो, एक दूसरे के लिए रकीव

रख्शिन्दा = चमकदार

रज्जाक = अन्नदाता, दानी

रज्जा के हकीकी = वास्तविक दाता, ईश्वर

रत्ब = दोप

रदीफ = अन्त्यानुप्रास

रफीक = मित्र

रस्मोराह = सम्वन्ध

रशीद = नेक

रहजनी = चोरी

रहम = दया

रहमत = कृपा

रहरवा = रास्ता चलना

राकिम = लिखनेवाला

राज = रहस्य
रायगा = व्यर्थ
रावी = वक्ता, कहानी कहने वाला
राहतेजाँ = हर्षदायक
रिफाकत = साथ
रुख्सार = गाल
रुसवा = बदनाम
रूद = नदी
रूदाद = विवरण
रूपोश = मुँह छिपाने वाला
रूबकारी = सरकारीपत्र, अदालती कार्यवाही
रूबाई = चार चरण की कविता विशेष
रूसा = रईस ब. ब.
रूशनास = परिचित, जान पहचान
रूशनासी = परिचय
रेख्ता = खड़ी बोली मे लिखी हुई कविता की विशेष शैली
रेहलत = मृत्यु
रैब = सन्देह
रोजमर्रा = मुहावरा (भाषा)

ल

लगन = परात
लगो = झूठ, बनावटी, निराधार
लफ = अपह्नुति
लफ्ज़ी = शाब्दिक
लब = होठ
लरजा = कम्प
लाबवालियाना = वीतरागिता
लाबलद = निस्सन्तान
लुगत = शब्द
लुगात = शब्दकोश, शब्द ब. ब.
लैलोनिहार = रातदिन
लौह = तख्ती, लिखने का आधार
लौहे मज़ार = कबर का पत्थर जिस पर तिथि अंकित की जाती है

व

वकू = घटित
वक़्त = समय
वक़्ते सोम = नमाज पढने का समय, धार्मिक कार्य का मुहूर्त
वजदान = परम-आनन्द
वजदानी = निरर्थक
वजला = व्यंग
वजुल सद्र = छाती का दर्द

वजू = नमाज से पहले अंगन्यास-
करन्यास जैसी क्रिया
वजूद = अस्तित्व
वज्द = अभिवादन, मस्ती
वतन = देश
वफात = मृत्यु
वबा = महामारी, दैवी विपत्ति
वरजिश = व्यायाम
वर्दी = पोशाक
वली अहद = युवराज
वसवसा = दुविधा
वसी = विस्तृत
वस्फ = विशेषता
वहशत अगेज = आतकपूर्ण
वाकआ = घटना
वागुजाश्त = छुटकारा, किसी चीज
का बन्धन से छूटना,
सरकारी वृत्ति का पुन
जारी होना

वाज़दीद = भेट
वाजिब = उचित
वायज = उपदेशक
वारिद = आगत
वाला = दीवाना, उच्च
वालिद = पिता
वालिदा = माता
वालिदैन = माता-पिता
वालियान = शासक, स्वामी ब. व.
वाली = अधिपति, शासक
वाहद = एकमेव
विकला = वकील ब. व.
विलादत = जन्म
विसाल = मिलन
वुरूद = पहुँच

स

सग = पत्थर
सआदत = नेक
सआदत आसार = सुशील
सआदतमंदी = नेकी
सई = प्रयत्न
सईद = शुभ
सऊबत = दु ख, कठिनाई
सग = कुत्ता
सतायश = प्रशसा
सनत = अलंकरण
सनद = प्रमाण
सना = प्रशसा

सनाख़ां = प्रशासक
सन्नाई = कारीगरी
सफ = पंक्ति
सफर = यात्रा
सबह् = माला
सबात = सन्ताप
सबीहा = पुत्री
सब्जाजार = हराभरा
सब्रो सबात = धैर्य
समर = फल
समाअ्रत करना = सुनना
सयाहत = यात्रा
सय्यात = अपराध
सरजाम पाना = पूर्ण होना
सरगर्दां = परेशान
सरगिरा = अप्रसन्न, रुष्ट
सरगुजिश्त = आत्मकथा
सरज़द = प्रकट
सरमायए इल्मी = ज्ञान सम्पत्ति
सरापा = शिखनख
सुराब = मृगमरीचिका
सरासीमगी = परेशानी
सरिश्तए आमेजिश = सम्बन्ध
सरीर = ध्वनि
सरेमोर = चींटी का सिर, तुच्छ

सर्फ़ = व्यय
सर्फ़ोनह्व = व्याकरण
सलफ़ = पूर्वज
सलातीन = शासक ब.व.
सल्ब = खींच
सह्न = आँगन
सह्रा = मरुभूमि
सह्व = भ्रम, भूल
सह्हाफ = जिल्द बाँधने वाला
सहीफा = पुस्तक
साकिन = निवासी
सागर = मधुप्याला
साद = सही का चिह्न
सादिक = सच्चा
सिदिकुल विदार = सच्चा मित्र
सानी = द्वितीय
साफी = पवित्र
साबिका मारिफ़त = पूर्व परिचय
सामिआ = श्रवण शक्ति
सामित = मौन
सायर = यात्री, सैर करनेवाला, ज्ञा
सायल = प्रार्थी
साया = छाया
साये तलफ़न = छद्म छाया
सालिक = साधक, पथिक (धर्म)

साहल = किनारा
साहरी = जादूगरी
सिअ्रम = तीस
सिकालत = कर्कशता
सिजल = प्रमाणपत्र, तहरीर
सितमकशी = अत्याचार
सिद्क = सचाई
सिन = आयु
सिने कहोलत = वृद्धावस्था
सिनेनमू = युवावस्था
सिपास = अभिनन्दन
सिफत = विशेपता, गुण, विशेषण
सिबात = दृढता
सियादत = सैयद का पद
सियासत = दण्ड, राजनीति
सियाह = काला
सिला = प्रतिफल
सीम = चाँदी
सीरत = स्वभाव
सीला = उत्तरीय, दुपट्टा
सुक़्म = कमी, त्रुटि, दोष (काव्य)
सुकून = विराम चिह्न
सुखन फहम = काव्य मर्मज्ञ
सुखन सराई = काव्य प्रशसा
सुतूर = सतर व. व.
सुदा = सिर दर्द
सुवुक = हलका
सुब्ूही = प्रात काल का
सुराह = निरुक्त
सुलहा = सदाचारी
सुलूक = उपकार
सुल्स = एक तिहाई
सूदमन्द = लाभकर
सूदी = ब्याजू
सेचन्द = तिगुना
सेदरह = तीन दरवाजो वाला
सेपहर = तीसरा पहर
सेमाहा = तीन मास का
सेहत = स्वास्थ्य
सेहर = जादू
सैद = शिकार
सैफ = तलवार
सोगवार = दु खी
सोहवते मरगूव = सगति अनुकूल
सौदाई = पागलपन

श

शगल = चस्का
शदायद = आधिक्य

शदीद = अधिक, तेज
शफा = स्वास्थ्य
शफीक = प्रियकारी, मित्र
शफीके दिली = सच्चा मित्र
शबाब = यौवन
शबे गुज़िश्ता = गत रात्रि
शमायल = नखशिख
शरा = इस्लामी धर्मशास्त्र
शर्क़ = पूर्व
शशमाही = छमाही
शाकी = शिकायत करने वाला
शागिर्द = शिष्य
शाद = प्रसन्न
शादमाँ = प्रसन्न
शादमानी = आनन्द
शाना = कंघा, कधा
शाम्मा = घ्राणशक्ति
शिकनी = तोडने की क्रिया

शिकवा = शिकायत
शिकेब = सन्तोष
शिकेबाई = धैर्य
शिगुफ़्ताजबी = प्रकाशमान् मस्तक वाल
शिताब = शीघ्र
शिद्दत = अधिकता
शीराज़ा = पृष्ठ (पुस्तक)
शीरी = मीठा
शुतर = ऊँट
शुमूल = सम्मिलित
शुरका = सम्मिलित होने वाले
शुर्फा = शरीफ ब. व.
शेवा = ढंग
शै = वस्तु
शैफ़्ता = परेशान
शोआ = किरण
शौहर = पति

ह

हक्केताला = ईश्वर
हकम = पंच
हकीकी = वास्तविक
हकीर = नीच
हक्को इस्लाह = संशोधन
हज़ = आनन्द

हज़फ = लोप
हजम = मोटाई (पुस्तक)
हजल = अपमान
हनोज़ = अभी
हफवात = वेहूदगी
हफ़्तसाला = सात वर्ष की

हफ़्ताद पुश्त = सात पीढ़ियाँ
हब्स = कारागार
हमउम्र = समवयस्क
हमकलाम = बातकीत करने वाला मित्र
हमकौम = सजातीय
हमागी = कुल, पूर्ण
हमजा = अरबी-फारसी का एक अर्द्ध-स्वर
हमजाद = अपने जैसा
हमताला = समान भाग्य रखने वाला
हमदिगर = परस्पर
हमनफ़्स = सम स्वभाव
हमबमानी = समानार्थक
हमराह = साथ
हमवार = अनुकूल
हमसाया = आश्रय
हमशीरा = बहन
हमादान = सर्वज्ञ
हम्माम = स्नान
हयात = आयु, जीवन
हरचन्द = सब प्रकार से
हरज़ा सराई = बकवास
हरम = अन्तःपुर, पत्नी
हरारत = गर्मी, हल्का ज्वर
हिरज़ा = व्यर्थ
हर्फ़ेनिदा = सम्बोधनवाचक अव्यय
हर्ब = शस्त्र
हलाकत = मृत्यु
हलालखोर = भंगी
हलीम = दयालु
हवसनाकाना = विवशता से
हवाख़ाह = शुभेच्छु
हसद = ईर्ष्या
हसनात = गुण ब.व.
हसरत = आकांक्षा
हस्ती = अस्तित्व
हस्बुल हुक्म = आदेशानुसार
हाजत = आवश्यकता
हादिस = नाशमान्
हाफिज़ा = स्मरणशक्ति
हायल = बाधक
हाल = वर्तमान
हासिद = ईर्ष्या करने वाला
हिकायत = कहानी
हिज्र = वियोग
हिद्दत = गर्मी
हिफ्ज़ = रक्षा
हिफ्ज़े सेहत = स्वास्थ्य-रक्षा
हिफ्ज़ो अमान = सुरक्षा
हिरज़ा = व्यर्थ

हिलाल = शुक्ल द्वितीया का चाद

हुकमा = हकीम ब. व

हुज्जत = तर्क

हुनूद = हिन्दू ब. व.

हुब्ब = गोलियाँ (औषधि) व. व.

हुमका = मूर्ख

हुमा = पौराणिक गाथाओ का एक पक्षी, जिस व्यक्ति के सिर पर इस पक्षी की छाया पडती है वह राजा बनता है

हुमायूँ = शुभ

हुलिया = आकृति

हुसूल = प्राप्त

हुसूले अज्र = फल प्राप्त

हुसूले सेहत = स्वास्थ्य प्राप्ति

हुस्ने इत्तफाक = सयोग से होने व अच्छा कार्य

हुस्ने कलाम = काव्य सौष्ठव

हुस्ने खत = सुलेखन

हुस्नेजन = नारी का सौन्दर्य, सद्भ

हुस्ने तवा = सुस्वभाव

हुस्ने तलब = माँगने की अच्छी शै

हूत = मीन (राशि)

हैरतजदा = आश्चर्य चकित

हौलनाक = भयानक

———

अशुद्ध	शुद्ध	पृ०	पं०
मुशाहिरेइ के लाके	मुशाहिरे के इलाके	१३७	१
गौज़े	ग़ौज़े	१४४	३
वद्दुआ	वद्दुआ	१५०	२
मेरहूम	मरहूम	१५७	८
तरद्दद	तरद्दुद	१६१	१४
सुकने	सुकूने	१६४	१०
क़व्वते	कुव्वते	१७४	११
मत्र	मूत्र	१७७	२१
हिज्री	हिज्र	१८०	१८
कोरब्त	को रब्त	१८०	७
हुस्ने आरिस	हुस्ने आरिज़	१८१	४
वो शैफ़्ता	व शैफ़्ता	१८१	२०
फिल वजूद	फ़िल वजूद	१८३	६
न बना	न बन	१८३	७
एहतियात हरसाल	एहतयात इरसाल	१९३	१६
मरकूम यकशब	मरकूम ए यकशंबा	१९३	२१
शरीके गालिब	शरीके गालिब	१९४	७
अलफखा	अलफरवा	१९४	१०
माघोराम	माधोराम	१९४	१३
सुखन के गौल	सुखन के गौल	१९४	१५
शानसाँ	शनासाँ	१९५	१
गनीम न जानिये	ग़नीमत न जानिये	१९७	१३
व अरबी और	व अरबी लिखी है	१९७	१७
सरत	सतर	१९७	१७

अशुद्ध	शुद्ध	पृ०	पं०
छुपने गई है	छपने गई है	१९७	१८
गोश ए	गोशए	१९८	१९
अपसे	आपने	१९९	१५
पुरकुद्रत	पुरकुद्रत	१९९	१७
मलिके मौज़्ज़मे	मलिकए मौज्ज़मए	२००	४
नामनिगार	नामानिगार	२००	१२
अला हाज़ल	अला हज़ल	२०२	४
खाजा	खाजा	२०४	२१, २२
नगय्युर	मुतगय्यर	२०५	१६
अतिशे दोज़ख	आतिशे दोज़ख	२०६	७
मजारिज	मदारिज	२०६	१९
हुआ करता हूँ	दुआ करता हूँ	२०७	१९
अशरूफुल	अशरफुल	२०८	२
कमल रू ए हिन्द	कलम रू ए हिन्द	२१०	८
मरकूमा सहरगाहे	मरकूम ए सहरगाहे	२१०	१२
खाज़ा	खाजा	२११	२
खाजा	खाजा	२१४	१
मुन्शी साह के	मुन्शी साहब के	२११	२४
रिस्तेदारो से	रिश्तेदारो से	२१२	११
खनचाक	खफचाक	२१२	१३
शर पर	शेर पर	२१४	१०
आजीजुद्दीन	अजीजुद्दीन	२१५	५
वराछियाँ	वरछियाँ	२१५	३
ये कायदे कल्लियात	क़ायदए कुल्लियात	२१८	१

अशुद्ध	शुद्ध	पृ०	पं०
उदू के	उर्दू के	२४६	१५
अहले सुखन	अहले सुखन से	२४७	३
बाये मुदेहा	बाये मुह् हेदा	२४७	१०
नज्मो नस्रको	नज्मो नस्र का	२४९	९
दस्तू ब	दस्तबू	२४९	११
बफज़े मुहाल	बफर्जे मुहाल	२५१	५
पदा हुए है	पैदा हुए हैं	२५३	३
दाह्रद	दारद	२५५	१९
औरा मेरा	और मेरा	२५६	४
बला कुव्वता	बला कुव्वता	२५७	१२
मानने वालो का	मारने वालो का	२५७	१८
महल इनाम	महले इनाम	२५८	११
गुपूतान्दन	गुश्तान्दन	२६४	२३
मुस्हदा	मौहदा	२६६	१२
वायदे के माफिक	कायदे के माफिक	२७०	३
वज़रिय मेरे	वजरिये मेरे	२७१	१८
नज़र करो	नज़र करो	२७२	१
जुज्वा को	जुज्व का	२८४	२०
लतफसीव	बतफसील	२८५	१३
नमत आयए	नेमत आयए	२९१	१५
जान मुझसे	जाने मुझसे	३१८	१
सितम्बर को	सितम्बर के	३३१	८
मुस्तलाहातुश्शोरा	मुस्तलाहतुश्शोरा	३३६	१०
मालवी	मौल्वी	३३७	३

अशुद्ध	शुद्ध	पृ०	पं०
कफियत	कैंफियत	३३८	१६
पाचबद	पाचवेद	३४६	२
पिन्सदारो को	पिन्सनदारो को	३४८	४
अबादी	आबादी	३४८	७
फने लगत	फ़ने लुगत	३५८	१६
भरोंनाथ	भैंरोनाथ	३५९	६
नाम अल्लाह	रहे नाम अल्लाह	३६३	[illegible]
चाँदनी चोक	चाँदनो चौक	३६४	[illegible]
हर सुबह को	हम सुबह को	३६९	[illegible]
को अम्र	कोई अम्र	३७०	[illegible]
रपये साल	रुपये साल	३७०	१२
वहैत	व हैत	३८२	६
हफ़्ते है	हफ्ते मे	३८३	११
कुछ फवायद	कुछ कवायद	३८३	१४
माहब की	साहब की	३८८	३
जिल्दे मँगऊँ	जिल्दे मँगाऊँ	३८८	९
काततब्वो	का ततब्वो	३९३	४
मलवा दे	मिलवा दे	४०३	१०
अमीनुउद्दीनखाँ	अमीनुद्दीनखाँ	४११	१६
दो तीन दिन	दो तीन	४१३	५
उमूर मुक़्तज़ी	उमूरे मुक्तज़ी	४२१	१६
वात करने की	वात न करने की	४२८	१
वत ये है	वैत ये है	४३४	१८
तरद्दद	तरद्दुद	४४४	९

अशुद्ध	शुद्ध	पृ०	पं०
एकक़्ता	एक कता	४४७	१७
वद्दुश्रा	वद्दुश्रा	४५६	९
के वल	केवल	४६२	२४
खय का	खत का	४६९	४
हुक्मा की	हुकमा की	४७१	५
अच्छ है	अच्छे है	४७४	११
व ज़माना	वह जमाना	४८४	८
खबचन्द	खूबचन्द	४८४	९
नुवअर्त	नुवूअत	४८५	१९
मथुशाला मे	मधुशाला	४८७	१६
छोड देना	छोड देनी	४८७	१६
मुश्रावएश्रा	युवावस्था	४८७	१६
सुरायान	सुरापान	४८७	१७
वूद	बूद	४९५	१३
मह का मन्तज़र	मेह का मुतज़र	४९७	१२, १३
कल्लियाते	कुल्लियाते	४९९	१०
मगफर	मगफूर	४९८	२०
ताक़्त	ताकत	४९९	१८
कवायल के	कवायल के	५१०	७
उमर मे	उमूर में	५११	१७
उतकी	उनकी	५१२	९
वेरव्ती	वेरव्ती	५१२	२१
मज़वात	मेज़मान	५१४	१७
और खद	और खुद	५१५	११

अशुद्ध	शुद्ध	पृ०	पं०
सलास ऐ	सलास ए	५१६	१
उल्ताद	उस्ताद	५१६	१६
रुखसत	रूख़सत	५१९	६
चल चूके	चल चुके	५२०	५
अवसाधन	असावधान	५२०	१९
लुत्ज तो	लुत्फ तो	५२२	२
मेहर दीमरोज़	मेहरनीमरोज़	५४६	४
खुदबाने को	खुदवाने को	५५०	७
ए मेरा	ये मेरा	५५७	१७
मनक्कह	मुनक्कह	५६४	५
जरनता हूँ	जानता हूँ	५६७	१
ख़ुदनदी	ख़ुशनूदी	५७०	१५
दरवार मे	दरबार मे	५७२	८